परलोक के खुलते रहस्य

परामनोविज्ञान, मनोविज्ञान और योगविज्ञान
पर आधारित एक मौलिक आध्यात्मिक कृति

अरुण कुमार शर्मा

परलोक के खुलते रहस्य

परामनोविज्ञान, मनोविज्ञान और योगविज्ञान
पर आधारित एक मौलिक आध्यात्मिक कृति

अरुण कुमार शर्मा

संकलन

मनोज कुमार शर्मा
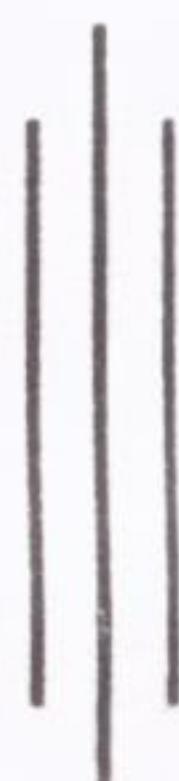
आस्था प्रकाशन

वाराणसी

- पुस्तक
  परलोक के खुलते रहस्य

- प्रकाशक
  आस्था प्रकाशन
  वाराणसी-

- प्रथम संस्करण
  सन् 2012 ई.

- मूल्य- 300/-

- **कार्यालय**
  आस्था प्रकाशन
  बी. 5/23, अवधगर्वी, हरिश्चन्द्र रोड
  वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
  दूरभाष : 0542-3297913, 09794058579

विषय सूची

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पंचम अध्याय

***

☆ ☆

महान चिन्तक, मनीषी, तत्ववेत्ता

पिता श्री

पं. अरूण कुमार शर्मा

की

स्मृति में

मनोज कुमार शर्मा

☆ ☆

अरुण कुमार शर्मा (गुरुजी)

ध्यान की परम अवस्था में

परम समाधि

प्रकाशकीय

यह जगत स्वयं अपने आप में प्राकृतिक घटना है और हमारा जीवन उस घटना का विस्तार है। उस विस्तार में कभी-कभी ऐसी घटनाएं घटती हैं जो अपने आप में अविश्वसनीय और चमत्कारपूर्ण लगती हैं। जिन पर सहसा विश्वास नहीं होता लेकिन प्राकृतिक नियम के विरूद्ध जगत में कुछ भी असामान्य नहीं होता। जो भी घटनायें अथवा चमत्कार देखने को मिलते हैं वह प्रकृति के नियम के अन्तर्गत होते हैं।

हमारे शरीर और ज्ञानेन्द्रियों की अपनी एक सीमा है और उन सीमाओं के बाहर कोई कार्य होता है तो हम सहज रूप से उस पर विश्वास नहीं कर पाते। जिसे हम रहस्य या अन्धविश्वास कहकर टाल देते हैं। लेकिन फिर भी हमारी आत्मा के किसी कोने से आवाज बराबर उठती रहती है और कहती रहती है कहीं न कहीं सत्य है। उसे पूर्णरूप से नकार नहीं सकते।

गुरुजी के प्रारम्भिक जीवन से अबतक जो घटनाएं घटी, जो विश्वास से परे अनुभव हुए, जो विलक्षण अनुभूतियां हुई, उन सबको गृरुजी ने सहज भाव से स्वीकार किया और किया आत्मसात। पिछले कई वर्षों से कितनी कथाएं और लेख आदि लिखे उन्हे गिना नहीं जा सकता है। यहां यह कहना असंगत न होगा कि गुरुजी का सारा जीवन रहस्यमय रहा। यहां तक कि वे स्वयं अपने आप में एक रहस्य थे। उनका सहज मिलनसार व्यक्तित्व, निश्चल और अपनत्व भरा व्यवहार और साथ ही सादा जीवन देखकर कभी ऐसा नहीं लगा कि लम्बे आध्यात्मिक तेज से भरपूर गौरवर्णीय वृद्ध शरीर की आत्मा ने उस परम रहस्य की खोज में कितना कष्ट झेला और कितना दुख-दर्द उठाया होगा। जो उनको समझने वाला या आत्मसात करने वाला होगा वही उनके अन्तर्मुखी रहस्यमय व्यक्तित्व को समझ सकता है।

गुरुजी अक्सर कहते थे। जीवन एक काल के प्रवाह के अलावा कुछ नहीं है। जीवन का प्रत्येक क्षण मूल्यवान है। जो प्रत्येक क्षण को भोगता है वही मनस्वी है। प्रत्येक क्षण का अपना एक भोग है। जब मनुष्य एक क्षण भोग लेता है तब

उसे दूसरा क्षण मिलता है। आप सोचिए काल और क्षण की गति कितनी तीव्र है जो हर.पल अपनी गति से भाग रही है अनन्त की ओर। उसकी गति को मापना असम्भव है। इसलिए गुरुजी ने समय को महत्व दिया। बोलते थे समय ही कृष्ण है और कृष्ण ही काल है और काल ही क्षण है। जो समय को देता है महत्व और उसका करता है सदुपयोग वही कृष्ण को प्राप्त कर सकता है। गुरुजी के आदर्श कृष्ण थे। वे अक्सर जब भी समय मिलता कृष्ण के आदर्शों की व्याख्या बड़ी ही खूबी से करते। सुनने वाला मंत्र मुग्ध हो जाता और उसे समय का भान ही नहीं रहता। उसे कथा समाप्त होते तो लगता कि अभी कुछ सुना ही नहीं। लेकिन जब उस व्यक्ति को समय का आभास होता तो वह बोलता इतना समय हो गया मुझे तो पता ही नहीं चला। तब गुरुजी कहते जिस समय आप कृष्ण प्रसंग सुन रहे थे उस समय आप डूब गये थे और भूल गये समय को। यही रहस्य है कृष्णमय होने का.... जहां न काल है और न तो है समय....।

योग-तंत्र, ज्योतिष, वेद, पुराण और दर्शनशास्त्र के गूढ़ और रहस्य की व्याख्या को सरल और सुबोध और हृदय को स्पर्श करने वाली प्राञ्जल भाषा में प्रस्तुत करना गुरुजी की अपनी विशेषता थी। अगर आप उनकी एक भी पुस्तक पढ़ें हैं तो अन्य पुस्तक पढ़ने की स्वतः प्रेरणा जाग्रत हो जायेगी।

पचास वर्षों से अनवरत् लिखने वाले गुरुजी अपने जीवन के आखिरी पल भी लेखन को अपने से दूर नहीं कर पाये और अक्सर यही कहते भी थे कि अभी तो बहुत कुछ लिखना है। अभी तो कुछ लिखा ही नहीं। यदि देखा जाये तो उनका यह कहना सत्य भी था। दीर्घकाल का स्वअर्पित, स्वानुभव और उनका ज्ञान, अध्यात्मपरक अनुभूतियां पूर्णरूप से पुस्तक अथवा किसी अन्य रूप में अभिव्यक्त नहीं हो पायी। इसकी पीड़ा गुरुजी को अक्सर होती थी। उनकी यही व्यथा देखकर मैं अपना सब कुछ भूल कर उनके स्वानुभव पुस्तकों को पूर्ण करने में अपने जीवन के दस वर्ष लगा दिये। फिर भी पूर्ण नहीं कर पाया। इस प्रसंग में यह बतला देना आवश्यक है कि गुरुजी की कई आध्यात्मिक पुस्तकें हैं जो कि अपूर्ण हैं। उनकी आध्यात्मिक विषयों से सम्बन्धित कई पाण्डुलिपियां हैं जो इन पुस्तकों की तरह अधूरी है। मैं पूर्ण समर्पित और अपने कर्तव्य को देखते हुए रात-दिन उसे व्यवस्थित और सम्पादन करने में लगा हूँ उद्देश्य यही है मेरा। गुरुजी की पुस्तकों के माध्यम से धनोपार्जन करना नहीं है। मैं प्रकाशक नहीं हूँ। लेकिन मेरा मुख्य उद्देश्य यही है कि गुरुजी की सारी पुस्तकें प्रकाश में आयें। उनके एक-एक शब्द

कहीं गुम न हो जायें। यही उनके प्रति मेरा कर्म और कर्तव्य है साथ है उनके प्रति मेरी सच्ची श्रद्धांजलि है। पुस्तक को संकलन करना और व्यवस्थित रूप से प्रकाशन करना एक श्रम साध्य कार्य है। मैं और मेरी पत्नी का ज्यादातर समय संकलन करने में लग जाता है। पुस्तक तो प्रकाशित होती है और आप तक पहुंच भी जाती है लेकिन पुस्तक पूर्ण करने में क्या-क्या कठिनाइयां आती हैं वह तो मेरी आत्मा ही जानती है। न कभी गुरुजी अर्थ के पीछे भागे और न ही मैं। लेकिन प्रकाशन का तो अपना खर्च होता है और लगता है समय। लेकिन गुरुजी के उन भक्तों का मैं आभारी हूँ जो समय-समय में पुस्तक से सम्बन्धित आर्थिक परेशानियों को दूर करने में सदा सहयोग करते रहते हैं।

अब रही गुरुजी की पुस्तक जो अबतक प्रकाशित हो चुकी है और भविष्य में भी होगी।

गुरुजी की पहली पुस्तक मारण पात्र जो अपने आप में अद्भुत है। उन्होने जो अनुभव किये, जिन साधकों से किया सत्संग उसका रूचिपूर्ण विधि से किया है वर्णन। उसके बाद गुरुजी की दूसरी पुस्तक कुण्डलिनी शक्ति है जिसमें योग-तंत्र और कुण्डलिनी के विषय में आध्यात्मिक और वैज्ञानिक तरीके से व्याख्या किया है गुरुजी ने।

परलोक विज्ञान, मरणोत्तर जीवन का रहस्य, अभौतिक सत्ता में प्रवेश और अब परलोक के खुलते रहस्य। इस पुस्तक में जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म से सम्बन्धित विषयों पर गुरुजी ने बड़े ही सरल तरीके से व्याख्या की है। जिसमें विज्ञान, अध्यात्म का चमत्कारपूर्ण घटनाओं की व्याख्या को गुरुजी ने बड़े ही सहज और सरल तरीके से किया है व्यक्त।

तीसरा नेत्र (प्रथम और द्वितीय) पुस्तक में तिब्बत व रहस्यमय स्थानों की जो जीवन-मरणदायिनी यात्रा की और जो अद्भुत अनुभव और गुप्त साधकों से सत्संग किया उसका सजीव वर्णन पढ़ने को मिलता है। इसी प्रकार तंत्र-योग पर आधारित कथा प्रसंग तिब्बत की वह रहस्यमय घाटी, वह रहस्यमय कापालिक मठ, मृतात्माओं से सम्पर्क, वक्रेश्वर की भैरवी, आकाशचारिणी, रहस्य आदि पुस्तकें हैं जिसमें गुरुजी ने अपने विभिन्न अनुभवों को बड़े ही सरल और रोमाञ्च कर देने वाले घटनाओं का सजीव वर्णन किया है। इसी प्रकार आवाहन, कारण पात्र और वह रहस्यमय संन्यासी पुस्तकों में भी आत्माओं और उससे सम्बन्धित अनुभवों का सजीव वर्णन देखने को मिलता है।

गुरुजी की आने वाली पुस्तकों की चर्चा करना मैंने यहां पर आवश्यक समझा। परलोक के खुलते रहस्य के बाद जिन पुस्तकों का मैं कार्य व संकलन कर रहा हूँ वह इस प्रकार है। कालञ्जयी, जिसमें शिव के विराट रूप और उनके रहस्य का वर्णन है और सिद्ध सन्त-महात्माओं का चमत्कारिक वर्णन है। कालपात्र ज्योतिष सम्बन्धित है जिसमें गुरुजी ने सहज और सरल तरीके से ज्योतिष विषय पर प्रकाश डाला है। जिसे पाठकगण सहज और सरल रूप से आत्मसात कर सकते हैं.।

तंत्रम् में तंत्र के विषय में गुरुजी ने अद्भुत व्याख्या की है। तंत्र की गुप्त क्रियाओं का भी वर्णन है। कुण्डलिनी योग में कुण्डलिनी और योग सम्बन्धित विषयों पर गुरुजी ने बड़े ही सरल और सहज तरीके से व्याख्या की है।

गुरुजी अपने जीवन में भगवान कृष्ण को ही आदर्श रूप में देखते थे। कृष्ण नामक पुस्तक में कृष्ण पर उनकी व्याख्या अद्भुत है। उनके आध्यात्मिक जीवन और चरित्र पर गुरुजी ने काफी मार्मिक व्याख्या की है जो अपने आप में अद्भुत है।

भक्तों के अनुरोध पर साधना और सिद्धि पुस्तक में जन कल्याणार्थ साधना सम्बन्धित रहस्यों का सरल रूप से गुरुजी ने व्याख्या की है। यह पुस्तक साधना मार्ग में काफी उपयोगी सिद्ध होगी।

गुरुजी की इन सारी पुस्तकों पर कार्य चल रहा है। जैसे-जैसे पूर्ण होगी वह समय-समय पर प्रकाशित होती रहेगी। मेरे जीवन का सबसे महत्वपूर्ण दायित्व है। मैं कहां तक सफल होता हूँ यह तो गुरुजी और माँ जगज्जननी की कृपा पर ही निर्भर है।

मनोज कुमार शर्मा

अपनी बात

क्या मैं शरीर हूँ? क्या मैं शरीर के भीतर हूँ? ये दोनों महत्वपूर्ण प्रश्न हैं अपने आपमें। भारतीय 'प्रज्ञा' आदिकाल से इन दोनों प्रश्नों के विषयों में चिन्तन मनन करती आ रही है। जिसका परिणाम है भारतीय दर्शन और जिसका आधार है अध्यात्म। अध्यात्म का मूल उद्‌देश्य है शाश्वत आनन्द जिसे हम शाश्वत महासुख भी कह सकते हैं- की उपलब्धि। जैसे प्यास, पानी के अस्तित्व को प्रमाणित करती है और जैसे भूख इस बात का प्रमाण है कि भोजन कहीं अवश्य होना चाहिए। वैसे ही मनुष्य की शाश्वत आनन्द की आकांक्षा इस बात का प्रमाण है कि कहीं न कहीं सच्चिदानन्द है अवश्य। उसे ज्ञात हो या न हो, प्रत्येक सुख की आकांक्षा उसी शाश्वत महासुख की आकांक्षा है और जबतक उस महासुख की, उस शाश्वत आनन्द की अनुभूति आत्मा को नहीं हो जाती तबतक उसे प्राप्त करने के लिए आत्मा बार-बार धारण करती है शरीर। जन्म और पुनर्जन्म का एकमात्र यही मूल कारण है जिसे हम 'धर्म' कहते हैं। वह इसी शाश्वत सुख की ही यात्रा है इसलिए वह मनुष्य की श्वास जैसी अनिवार्य आवश्यकता है। संसार की किसी भी उपलब्धि में सुख नहीं है। वासना के पूर्ण होने का भी प्रश्न नहीं है। किसी भी वस्तु का अभाव दुख देता है। उसकी प्राप्ति भी चंचल मन को सुख नहीं दे पाती क्योंकि जैसे ही मन की कोई इच्छा पूरी होती है, मन किसी दूसरी वस्तु के अभाव का अनुभव करने लगता है। वासना अतृप्त रहती है। वह पूरी हो ही नहीं सकती। वास्तविकता तो यह है कि शाश्वत महासुख पूर्णरूप से वासना रहित होने पर ही प्राप्त हो सकता है और प्राप्त करने वाला व्यक्ति ही ऐश्वर्यवान होता है और तब उसे पहली बार इस बात का अनुभव होता है कि समस्त संसार का साम्राज्य प्राप्त कर लेने पर भी भीतर का भिखारीपन नहीं मिटता यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो धर्म उसी भिखारीपन को नष्ट करने का एकमात्र आयोजन है। धर्म भीतर से सम्राट बनाना चाहता है। धर्म की यात्रा परमात्मा के सामीप्य में पहुंचने की यात्रा है स्वयं के अतिरिक्त किसी और परमात्मा को पूजने की नहीं। मनुष्य की यही सम्भावना उसे धर्म की शरण में ले जाती है।

मनुष्य की मृत्यु के प्रति जो शोध की भावना है वह भी धर्म को मनुष्य के लिए अनिवार्य कर देता है क्योंकि मृत्यु का बोध सर्वाधिक मनुष्य को ही होता है पशु-पक्षियों में नहीं। पशु-पक्षियों को तो अपनी मृत्यु का पता ही नहीं चलता। केवल मनुष्य को इस बात का ज्ञान है कि किसी न किसी दिन मृत्यु का आना निश्चित है। वह आयेगी और सब कुछ छीन ले जायेगी। कुछ भी साथ न ले जाने देगी। मृत्यु के सामने मनुष्य की यह असहजता ही अमृत की खोज के लिए प्रेरित करती है और वही अमृत तो परमात्मा है और धर्म उसी अमृतत्व की खोज है। चाहे राम-रावण का युग हो, चाहे महाभारत का युग हो, धर्म की आवश्यकता हर समय रहती है और आज भी है। सच पूछा जाये तो वर्तमान युग में अति आवश्यकता है धर्म की। इसलिए कि पूरब और पश्चिम ने मनुष्य को दो भागों में विभक्त कर दिया है। पूरब के लिए संसार माया है, भ्रम है, व्यर्थ है। पश्चिम की दृष्टि में आत्मा एक कल्पना है, अन्धविश्वास है, इसके अलावा और कुछ नहीं। धर्म का कहना है कि मनुष्य और आत्मा दोनों साथ-साथ है। अन्तर बस इतना ही है कि एक दृश्य है और दूसरा है अदृश्य।

यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो पूरब हो या हो पश्चिम दोनों की दिशा एक प्रकार से दयनीय ही है। पूरब अपनी अधूरी अधार्मिक धारणा के कारण ही आज भौतिक रूप से दीनहीन हो गया है और पश्चिम अपनी एकांकी दृष्टि के कारण आज हिंसा और ऊब से भर गया है। आज का सभ्य मनुष्य लाठी, डण्डा, तीर, तलवार आदि से नहीं लड़ता, लेकिन क्या अणु बम और हाहड्रोजन बम उसी के भयंकर रूप नहीं है। पिछले तीन हजार वर्षों में लगभग पांच हजार युद्ध हुए हैं जिनमें दस करोड़ लोगों की हत्या हुई है। आज भी इतनी विस्फोट सामग्री है कि हमारे जैसी एक हजार पृथ्वी को नष्ट किया जा सकता है। आज के धुरन्धर वैज्ञानिक मनीषियों का कहना है कि ये सब शान्ति और सुरक्षा के लिए है। मेरा प्रश्न है? क्या मनुष्य के भीतर कुछ परिवर्तन हुआ है? नहीं बिल्कुल नहीं कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। महाभारत काल में मनुष्य जैसा था, आज के युग में उससे भी अधिक अमानवीय और पशु है।

पशु क्यों? आज का मनुष्य अपने आपमें सर्वाधिक बेचैन है। पशु बेचैन नहीं होता। पशु आत्महत्या नहीं करता। जिस दिन पशु आत्मघात कर लेगा, समझ लेना चाहिए कि वह पशु अधिक समय तक पशु नहीं रहेगा, मनुष्य बनना शुरू कर दिया है उसने। पशु चिन्तित नहीं है और बेचैन भी नहीं है इसलिए पशु के आत्महत्या

करने का कोई कारण नहीं है।

पशु हँसता नहीं मनुष्य हँसता है। यदि आपको कोई पशु हँसता हुआ दिखलायी दे जाये तो आपकी क्या दशा होगी? स्वयं समझ सकते हैं इसलिए पशु नहीं हँसता क्योंकि वह दुखी और बेचैन नहीं है मनुष्य की तरह हँसना अपने दुख को भुलाना है। दुख को भुलाने का साधन है हँसी और यही एकमात्र कारण है कि संसार में जितना दुख बढ़ता जाता है और बेचैनी बढ़ती जाती है उतना ही मनोरंजन के साधन भी बढ़ते जाते हैं। वर्तमान में मनुष्य को मनोरंजन के साधन देने में लगी है संसार की पचास प्रतिशत शक्ति। आज के युग में मनुष्य को जितना मनोरंजन जो दे पाता है वही सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। आज के मनुष्य की सोच में कहीं कोई अवश्य बुनियादी भूल है। हमारी जो धारणा है, उसके अनुसार वह भूल यह है कि वह सोचता है कि समस्याओं के मूल कारण बाहर हैं लेकिन धर्म का कहना है कि समस्याओं की जड़ें उसके भीतर ही है। मनुष्य की अन्तिम आशा है धर्म और यदि मनुष्य ने वास्तविक अर्थों में धार्मिक होने का शीघ्र प्रयास नहीं किया तो टाला न जा सकेगा तीसरा महाविनाशकारी महायुद्ध। भारतीय धर्म की मूलभित्ति अध्यात्म है। अध्यात्म, आत्मा परमात्मा का विषय है। अध्यात्म द्वारा ही सच्चे अर्थों में धर्म की उपलब्धि और अध्यात्म को उपलब्ध होने के लिए दो मार्ग हैं योग और तंत्र। बाहर से दोनों मार्ग अलग-अलग समझ में आते हैं, लेकिन दोनों एक प्रकार से अभिन्न हैं और हैं एक दूसरे के पूरक। तंत्र मार्ग की साधना अति गम्भीर और गुह्य है रहस्यमयी तो है ही इसकी गोपनीयता को योग द्वारा ही समझा जा सकता है और उसका जो रहस्य है उसका भी उद्घाटन योग के ही द्वारा सम्भव है।

योग-तंत्र का साधना मार्ग सरल सहज नहीं, अति कंटकाकीर्ण है। योग-तंत्र के स्वरूप के वास्तविक ज्ञाता और सच्चे साधक उंगली पर गिने जा सकते हैं वर्तमान समय में। आज का योग, आसन और प्राणायाम तक ही सीमित होकर रह गया है। तंत्र की भी यही स्थिति है। श्मशान, मदिरा, खोपड़ी, नारी, बलि आदि से संबंधित मूर्खतापूर्ण उपद्रवी क्रियाओं तक ही सीमित होकर रह गया है तंत्र भी। इन दोनों के अलावा ज्योतिष का भी स्वरूप विकृत हो चुका है। पहले ब्राह्मणों की सम्पत्ति थी ज्योतिष। ब्राह्मणों का अधिकार था ज्योतिष पर। लेकिन अब वह सम्पत्ति और वह अधिकार छीन लिया है ब्राह्मणेत्तर जातियों ने। जिसके परिणामस्वरूप योग-तंत्र की तरह ज्योतिष भी दुर्दशा का पात्र हो गया है।

योग-तंत्र और ज्योतिष, ब्रह्म विद्या है। तीनों एक दूसरे के पूरक हैं, इसमें सन्देह नहीं। किसी एक की साधना बिना दोनों की सहायता से सम्भव नहीं। योग तांत्रिक साधना की पहली उपलब्धि है शाश्वत सुख अथवा आनन्द। जो मनुष्य को इहलौकिक और पारलौकिक दोनों अवस्थाओं में समान रूप से प्राप्त रहता है। दूसरी उपलब्धि है आवागमन से मुक्ति और तीसरी उपलब्धि है आत्मसत्ता का प्रणाश और परमात्म सत्ता में विलीनीकरण।

मैं एक साधक हूँ इसमें किञ्चितमात्र भी संदेह नहीं लेकिन मेरी साधना का लक्ष्य अथवा उद्देश्य उपुर्यक्त तीनों उपलब्धियों में कोई भी नहीं है। प्रारम्भ से ही मेरा लक्ष्य रहा है तीनों ब्रह्म विद्याओं के गुह्य और गोपनीय तत्वों से परिचित होना और साथ ही उनका अनुभव भी प्राप्त करना। मैं अपने शरीर को धन्यवाद देता हूँ कि मुझे अपने लक्ष्य साधन की दिशा में प्रत्येक स्थिति और परिस्थिति में पूर्ण सहयोग दिया उसने। तरह-तरह का दुख, तरह-तरह की पीड़ा वेदना और तरह-तरह का कष्ट सहन करते हुए भी साथ नहीं छोड़ा शरीर अति उपकृत हूँ मैं अपने शरीर का क्योंकि उसके महत्व से भलीभांति परिचित मैं। लक्ष्य कोई भी हो, साधना तो साधना ही है। इस विचित्र संसार में पग-पग पर साधक के मन को आकर्षित करने के साधन बिखरे हुए हैं। उसकी चित्ताकर्षक आभा में साधक को अपने मार्ग पर चलना कठिन हो जाता है। वैसे बाह्य दृष्टि से बड़ा ही सरल और सहज प्रतीत होता है। किन्तु अध्यात्म का मार्ग है बड़ा ही कंटकाकीर्ण साथ ही फिसलन भरा है। जरा सी असावधानी, जरा सी चूक और जरा सी भूल सत्यानाश कर देती है साधक का। उसका भौतिक जीवन विषमय तो हो ही जाता है। इसके अतिरिक्त मानसिक स्थिति भी हो जाती है एक प्रकार से विकृत। यदि कोई साधक यह सोचता समझता है कि संसार में उसका कोई अपना है, मार्ग में उसका कोई सहयोगी है तो यह उसका भारी भ्रम है और है भारी भूल। यहां न कोई किसी का अपना है और न तो कोई है पराया। न कोई किसी को सहयोग देता है न किसी का कोई विरोधी ही है। न कोई किसी का आँसू ही पोंछने वाला है और न तो कोई है यह कहने वाला कि घबड़ाओ मत मैं हूँ न। सभी अपना-अपना पिछले जन्म का प्रारब्ध भोगने आये हैं और भोग भी रहे हैं और साथ ही साथ अगले जन्म के लिए प्रारब्ध का निर्माण भी कर रहे हैं। सर्वत्र नियति की लीला है और सर्वत्र है प्रारब्ध का खेल। कुछ तो आपको अपने विचारों के अनुकूल मिलेंगे तो कुछ मिलेंगे प्रतिकूल भी। कुछ में मिश्रित भाव भी होंगे। कुछ

ऐसे भी होंगे जो दिखने में तो कुछ होंगे लेकिन अनुभव और व्यवहार में कुछ और ही होंगे। कौन आज कैसा है? वह कल कैसा व्यवहार करने लग जायेगा यह कोई नहीं कह सकता।

जीवन रहस्यमय है। जीवन में कब कौन सी घटना घट जायेगी? कब क्या से क्या हो जायेगा? इसका पूर्वाभास भी नहीं हो पाता। घटनाएँ घटती रहती हैं और अपनी स्मृतियों का ढेर छोड़ती रहती हैं और हम हैं कि उन ढेरों के नीचे बराबर चले जाते हैं और अन्त में आ जाती है मृत्यु और स्मृतियों के वे सारे के सारे ढेर जो हमारी चिता के साथ जल कर हो जाती हैं भस्म। साधना से संबंधित सभी प्रकार के लोगों के पत्र आते हैं और फोन भी आते हैं मेरे पास। साधना के प्रति उनकी जिज्ञासा और कौतूहल स्वाभाविक है। प्रायः सभी की धारणा समान ही होती है। किसी देवी-देवता की पूजा, पाठ, जप, हवन, व्रत, ध्यान आदि को ही समझा जाता है साधना। लौकिक दृष्टि से ये सब बाह्य उपासना है इसके अलावा और नहीं। किसी भी प्रकार की उपासना यदि ज्ञान से परिपक्व नहीं है तो उसे व्यर्थ समझा जायेगा।

जहाँ तक प्रश्न साधना का है। उसका संबंध सीधे आध्यात्मिक विषयों से है। साधना का मुख्य विषय है- आसुरी सम्पदा का त्याग और दैवी सम्पदा की उपलब्धि। (लेखक के 'तंत्रम्' पुस्तक में इस विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है) अध्यात्म मार्ग की यात्रा साधक के लिए सावधानी और धैर्यपूर्वक अकेले की यात्रा है। पग-पग पर परीक्षा होती रहती है। भ्रम और सन्देह उत्पन्न करने वाले लोग भी मिलते रहते हैं। वातावरण कभी-कभी विपरीत बनने लग जाता है। साधक को, स्वयं को सावधानीपूर्वक अपनी गति को संयमित रखकर आगे बढ़ना पड़ता है। हर मोड़ पर अपने कार्यकलापों की पूरी ईमानदारी से समीक्षा करनी पड़ती है। वैसे गन्तव्य की दूरी बहुत अधिक नहीं है जहाँ उसे पहुँचना है। जहाँ चिरशान्ति है फिर भी साधक के लिए वहां तक पहुँचाना बड़ा ही कठिन है क्योंकि एक तो फिसलन भरा मार्ग, गिरने की आशंका, पतित होने का भय और दूसरा भ्रमित करने वाले चौराहे। किधर जाएं और किधर न जाएं ? निर्णय करना कठिन होता है इसलिए गुरु और इष्ट का होना आवश्यक है। गुरु मार्गदर्शक का काम करता है और इष्ट रक्षा करता है। साधक को यह धारणा नहीं बना लेनी चाहिए कि प्रारब्ध का मायाजाल केवल संसारी लोगों के लिए ही है साधकों के लिए नहीं। ऐसा मान लेना भारी भूल है।

संसार में साधक का संघर्ष सर्वाधिक जुझारू होता है। उसे हर समय और हर पल संघर्ष करना पड़ता है। माया मोह के तीव्र प्रवाह में कहीं बह न जाये इसका हर समय ध्यान रखना पड़ता है। उससे कोई ऐसा कर्म न हो जाये जो उसके प्रारब्ध को और अधिक पुष्ट बना दे। वह अपने आपको प्रारब्ध की पकड़ से मुक्त कर ले। इसी बात की तो साधक साधना करता है। जिस प्रक्रिया में व्यक्ति स्वयं को साधता है उसी प्रक्रिया का नाम है साधना लेकिन सामान्य व्यक्ति की साधना और साधक की साधना में पृथ्वी और आकाश का अन्तर है।

सामान्य संसारी व्यक्ति की साधना प्रारब्ध की ग्रन्थियों को और भी दृढ़ मजबूत और अधिक कसने का कार्य करती है और जबकि साधक उन ग्रन्थियों को धीरे-धीरे खोलते हुए उससे मुक्त होने का प्रयास करता है और एक दिन मुक्त भी हो जाता है पूर्णरूप से। साधना आशक्तियुक्त और अहंकार से भरी होने के कारण बंधन का कारण बन जाती है लेकिन दूसरे की साधना समर्पणयुक्त कामना वासनारहित और आशक्ति रहित होने के कारण कर्ता को भव बंधन से मुक्त बनाती है।

सच्चे साधक को दोहरा प्रहार झेलना पड़ता है। पहला है भौतिक अथवा लौकिक प्रहार और दूसरा है स्वयं के भीतर से उठती हुई वासना, कामना और विकारों का प्रहार। दोनों प्रकार के प्रहार साधारण नहीं हैं लेकिन सामना तो करना ही पड़ेगा साधक को। जरा सी असावधानी दुष्परिणाम का कारण बन जाती है। राम-रावण और महाभारत जैसा युद्ध साधक के भीतर हमेशा होता रहता है।

'परलोक के खुलते रहस्य' को ही लीजिए। मेरे जीवन की सर्वाधिक रहस्यमयी और विलक्षण पुस्तक है यह। पूरे बीस वर्ष की साधना यात्रा का है परिणाम। उसे संयोजित करने और लिपिबद्ध करने में ही लग गये पाँच वर्ष। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि यदि मेरे पुत्र मनोज कुमार शर्मा का सहयोग और आस्था प्रकाशन की प्रेरणा उपलब्ध न हुई होती तो 'परलोक के खुलते रहस्य' पुस्तक काल के तिमिराच्छन्न अन्धकार में ही पड़ी रहती न जाने कबतक।

अभीतक तो नहीं, लेकिन अब मुझे यह स्पष्ट रूप से कहना आवश्यक हो गया है कि अनुभवों और अनुभूतियों को शब्दों के माध्यम से ठीक-ठीक व्यक्त कर पाना कठिन कार्य है। भाषा पर अधिकार न हो तो और भी जटिल हो जाता है यह कार्य। मैंने इस दिशा में कितना संघर्ष किया है मानसिक स्तर पर इसे बतलाया नहीं जा सकता और न तो किया ही जा सकता है लिपिबद्ध ही। मेरी

अबतक की प्रत्येक पुस्तक और प्रत्येक रचना के पीछे संघर्ष की, कष्ट की, पीड़ा की और न जाने कितने लौकिक पारलौकिक प्रहारों की लम्बी कथा व्यथा भरी है और है मर्मस्पर्शी। जिसे भला कौन जान समझ सकता है सिवाय मेरी आत्मा के।

'परलोक के खुलते रहस्य' भी एक ऐसी ही पुस्तक है जो मेरे आध्यात्मिक जीवन की एक संघर्ष कथा है। यदि आप भी संघर्ष करने के लिए तैयार हैं और तैयार हैं प्रहारों को सहने के लिए तो अवश्य अपनाये इस कंटकाकीर्ण साधना मार्ग को। मार्ग खुला है आपके लिए।

अरुण कुमार शर्मा

संस्मरण

हमारा जीवन एक रहस्य है और रहस्यमय आवरण से ढका है। हम हर समय रहस्यों के घेरे में रहते हैं और जीते हैं लेकिन जिस स्तर पर हमें यह रहस्य सामान्य सा प्रतीत होता है वास्तव में यह उतना सामान्य नहीं है और न तो है साधारण। बस हम टाल देते हैं और वह टालना ही उन रहस्यों को रहस्यमय बना देता है।

हम उन रहस्यों को उघाड़ना नहीं चाहते, न तो जानने की चेष्टा करते हैं। प्रश्न करने से भी कतराते हैं। हम जानबूझकर अपनी इन परिस्थियों के बारे में अनजान बनते हैं और रहना भी चाहते हैं। जो अनजाने में एक प्रकार से सुरक्षा प्रदान करती है। बस सुरक्षित जीते चले जाना ही हमारी प्रवृत्ति है। रहस्यमयी स्थितियों को ज्यों का त्यों ढका रहने देने को हम नियति मान बैठते हैं। रहस्यों के बारे में 'क्यों' का प्रश्न उठाना भी अपने आप को जोखिम में डालना समझते हैं। 'क्यों' पूछते ही सारे सुरक्षा के बाढ़ टूट जाते हैं और हम अकेले और नितान्त अकेले हो जाते हैं। 'क्यों' पूछने वाला हर व्यक्ति अकेला हो जाता है। अज्ञात की चुनौतियों के बीच अपना अकेला रास्ता बनाने को लाचार हो जाता है। यही 'क्यों' शब्द गुरुजी को १६ वर्ष की छोटी सी उम्र में अकेला कर दिया, नितान्त अकेला. .....।

अज्ञात की चुनौतियों के बीच अपना रास्ता बनाने को लाचार। वह मनस्वी अज्ञात की चुनौतियों को स्वीकार कर अकेले चला उस रहस्य को जानने और आत्मसात करने। उनका जीवन रहस्यमय रहा और जीवन के आखिरी पल भी रहे रहस्यमय। हँसते-बोलते एक क्षण में अपना शरीर त्याग कर वह सन्त अज्ञात और रहस्यमय जगत में चला गया। जिसे जानने के लिए अपना सारा जीवन लगा दिया।

आज १५ जुलाई २०११ गुरु पूर्णिमा का पर्व है गुरुजी के जितने भक्त थे उनका सुबह से आना शुरू हो गया था। गुरुजी को महासमाधि के लिए अभी कुछ ही समय हुए थे। भक्त लोग आ रहे थे गुरुजी की गद्दी पर, उनके आदम कद

तस्वीर पर माला फूल चढ़ा रहे थे और उनके साथ बिताए अपने स्मरण सुना रहे थे लेकिन मेरी मानसिक स्थिति उस समय अच्छी नहीं थी बस यही सोच रहा था कि जो व्यक्ति अभी कुछ दिन पहले इसी गद्दी पर बैठ कर सबसे बातें कर रहा था आज वह नहीं है एक प्रतीक के रूप में हो गया है। क्या यही सत्य है? इस संसार में कुछ भी स्थिर नहीं लेकिन गुरुजी पिछले कुछ दिनों से मुझे संकेत दे रहे थे। उन्हे अपनी मृत्यु का आभास हो चुका था। एक दिन मैंने पूछा आप कोई तैयारी नहीं कर रहे हैं गुरु पूर्णिमा नजदीक आ रही है। आपके हजारों भक्त काफी दूर-दूर से आते हैं। कुछ बोले नहीं.....चुप रहे ऐसा लगा जैसे वे मेरी बातों में रूचि नहीं ले रहे हैं बस इतना बोले माँ की इच्छा देखा जायेगा।

खैर, लोगों से मैं अनमने मन से बात करता रहा। पता नहीं चला मैं कब उठा उन लोगों के बीच से. रात्रि का समय था, शायद १० बज रहा था। बिना बोले सीधे लाली घाट के धूल से अटी सीढ़ियों पर जा बैठा। सामने श्मशान में एक दो लाशें जल रही थीं। आग मन्द पड़ रही थी। अब धीरे-धीरे राख का ढेर नजर आने लगा। बस सारे दृश्य मेरे मानसपटल पर एक के बाद एक चलचित्र की भांति उभरने लगे।

सोचने लगा गुरुजी तुलसी बुआ के निधन के बाद अल्पायु में परम वैराग्य को गये थे उपलब्ध। जन्म मृत्यु के रहस्य को जानने के लिए इसी घाट की सीढ़ियों में अपना समय बिताये होंगे। यही घाट उनके जीवन को आमूलचूल परिवर्तन कर दिया एक क्षण में। हजारों जलती हुई चिताओं को राख में बदलते देखा होगा लेकिन आज वह मनस्वी स्वयं उसी जगह और उसी स्थान पर राख में परिवर्तित हो गया और स्वयं पंचतत्व में हो गया विलीन।

चारो तरफ गहरा सन्नाटा, रात्रि का कौन सा पहर था मुझे याद नहीं लेकिन तभी एक जानी पहचानी चन्दन की महक धीरे-धीरे मेरे आसपास फैलने लगी। पिताश्री कहीं आसपास मौजूद हैं हल्का सा आभास होने लगा उनकी उपस्थिति का मेरे मानस पटल में। ऐसे लगा जैसे सम्पर्क करना चाहते हो और कुछ बतलाना भी चाहते हैं मैंने भी अपने मन को एकाग्र करने का प्रयत्न किया लेकिन सफलता नहीं मिल रही थी लेकिन मेरे विचार में अपने आप उनके कहे शब्द उभरने लगे। जैसे वो कह रहे हैं मुझसे कि अपने कर्तव्य पर ध्यान दो बहुत जिम्मेदारी तुम पर है। जब मैं दुखी होता था तो अनवरत लिखने लगता था और अपने मनोभाव को कागज पर उड़ेल देता था। मैं कहां गया हूँ! मैं तो सब कुछ देख रहा हूँ, सबके

मनोभाव पढ़ रहा हूँ, मैं तो तुम लोगों के बीच में हूँ, आत्मा की मृत्यु नहीं होती। मृत्यु तो शरीर की होती है और जन्म भी शरीर का होता है।

कुछ देर बाद चन्दन की महक होने लगी मन्द धीरे-धीरे। लगा जैसे मेरे बगल से कोई उठकर चला गया। जब तन्द्रा भंग हुई तो देखा घाट के चारो तरफ एक अबूझ सा सन्नाटा पसरा हुआ है। श्मशान घाट के पास कुछ साधु जप-पूजा कर रहे थे। बस उठा घर की ओर चल पड़ा। काफी भक्त जा चुके थे। एक दो लोग मेरा इन्तजार कर रहे थे उन्हे विदा कर अपने कमरे में चला गया। नींद नहीं आ रही थी। पता ही नहीं चला कब सवेरा हो गया। बाहर से आये गुरुजी के भक्त वो भी चले गये बस रह गया एक निःशब्द वातावरण। पूरे मकान में अबूझ सा सन्नाटा, कभी कभार लोग आ जाते मिलने के लिए। कभी-कभी सांत्वना के लिए टेलीफोन की घण्टी बज जाती लेकिन कुछ दिन बाद वो भी बन्द हो गयी। बस गुरुजी की याद और उनका अध्ययन कक्ष भर रह गया मेरे लिए।

एक दिन किसी अदृश्य प्रेरणा वश मैं गुरुजी की सारी फाइलें, हस्तलिखित पाण्डुलिपियां देखने लगा। सहसा लगा गुरुजी ने इतनी सारी पुस्तकें लिखी, हिमालय, तिब्बत और कहां-कहां की जीवन मरणदायिनी यात्रा की। उन सन्तों से मिला ज्ञान का रहस्य और सिद्धि उसे आत्मसात कर पुस्तक के रूप में लिखते गये लेकिन उन्होने कभी भी अपने बारे में कुछ भी नहीं लिखा और न तो किसी से जिक्र किया। बस इसी प्रेरणा से मुझे बल मिला......। जिस कलम से गुरुजी लिखते थे उसे उठाया बस लिखने बैठ गया..... लोगों से मिलना जुलना धीरे-धीरे कम हो गया। मुझे अपने जीवन का एक उद्देश्य मिल गया कि गुरुजी की पुस्तकों को पूर्ण करना है बस। मैं गुरुजी के अनबुझे पहलू और उनके साथ बिताये पल को लिपिबद्ध करने का एक छोटा सा प्रयास कर रहा हूँ। यही मेरी सच्ची श्रद्धांजलि है गुरुजी के प्रति। चलिए गुरुजी के जन्म के समय से प्रारम्भ करते हैं

गुरुजी का जन्म १ जनवरी १९२४ (दोपहर १२.३०) वाराणसी में हुआ था। बाल्यावस्था में एकान्त प्रिय थे। हर समय एकान्तवास करना, कम से कम बोलना, जो मिलता वो खा लेते अन्य बालकों की तरह कभी किसी चीज के लिए जिद नहीं करते थे। पिताश्री अमरनाथ शर्मा अपने समय के प्रकाण्ड विद्वान और कर्मकाण्डी थे उनका ज्यादातर समय बनारस के बाहर ही व्यतीत होता था। माताश्री रूग्णावस्था को प्राप्त थी और एक दिन उनका देहान्त हो गया। गुरुजी को उनकी

बुआ तुलसी देवी और दादा पं. बेचनजी शर्मा ने पालन पोषण किया।

बचपन से मनस्वी और एकान्त प्रिय होने की वजह से परिवार वालों को चिन्ता रहती थी। तुलसी बुआ का विवाह बाल्यावस्था में हुआ था लेकिन असमय वैधव्य योग बन जाने की वजह से पति सुख से वंचित रहीं और फिर कभी भी ससुराल नहीं गयीं। गुरुजी को ही अपना पुत्र मानकर पालन पोषण करने लगी। जब भी थोड़ा सा वक्त मिलता तो घर में बने शक्ति पीठ 'माँ तारा' की उपासना में लीन हो जाती। ('माँ तारा' शक्ति पीठ लगभग ३०० वर्ष पुराना है।) गुरुजी को पहला आघात उस समय लगा जब असमय तुलसी बुआ का देहान्त हो गया। उस समय गुरुजी की उम्र १६ वर्ष की थी। चिता की आग देख कर जन्म-मृत्यु के रहस्य को जानने की उत्कण्ठा हो गयी और बस यहीं से गुरुजी के जीवन में धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगा। अक्सर उदास रहने लगे। इसी उदासी को देखकर गुरुजी के पिताश्री ने २० वर्ष की उम्र में उनकी शादी कर दी। किन्तु गृहस्थ जीवन का पूर्णरूप से पालन करते हुए भी अपने उद्देश्य से भटके नहीं।

गुरुजी एक अच्छे पिता, अच्छे पति और आज्ञाकारी पुत्र बन वे अपना धर्म बाखूबी निभाते रहे। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात भी कभी नौकरी के पीछे भागे नहीं जबकि उनको अवसर बार-बार मिलते रहें। मेरी माँ ने कभी भी गुरुजी को नहीं रोका वो भी परम भक्त थीं माँ महामाया की।

कभी-कभी मेरी माँ बोलती भी थीं कि आप नौकरी आदि करते नहीं, महीनों बाहर रहते हैं साधु संन्यासियों के बीच खर्चा कैसे चलेगा? तब गुरुजी बोलते सब माँ करेंगी आज तक वही तो दे रहीं हैं। सच बात तो यह है कि गुरुजी को जब आवश्यकता होती तो आकस्मिक रूप से पैसा आ जाता और मेरी माँ पूछती कि पैसा कहां से आया तो बस माँ जगज्जननी को देखकर मुस्कुरा दिया करते और बोलते कुछ भी नहीं थे।

एकाएक सन् १६५६ में गुरुजी के पितामह पं.बेचनजी शर्मा का निधन और उनके पिताजी का आकस्मिक संन्यास ग्रहण करना गुरुजी की आत्मा को हिला गया। लेकिन अपनी जिम्मेदारी को देखते हुए मूक एवं शान्त बने रहे। मेरे पितामह अमरनाथजी अब स्वामी अमरमुनि हो गये। संन्यास के बाद वह बस माँ तारा की अनवरत साधना में लग गये। गुरुजी समय-समय पर अपने पिता का ख्याल रखना, हम सभी को देखना और अपने उद्देश्य के प्रति अटल रहते हुए अपनी जिम्मेदारी निभाते रहे। जो भी ज्ञान प्राप्त हुआ, अनुभव मिला सब पुस्तक के रूप

में लिखते गये। कठिन से कठिन समय में भी गुरुजी कभी भी विचलित नहीं हुए और पर्वत की तरह सीधा व अडिग रहे।

यह घटना १९८५ की है गुरुजी के एक भक्त थे। दार्जिलिंग में गुरुजी की कृपा से उनकी चाय का व्यवसाय काफी फला फूला और वे काफी धनी हो गये। सुख सुविधा की कोई कमी नहीं थी और उनके बार-बार आग्रह करने पर पिताजी ने दार्जिलिंग जाने का कार्यक्रम बनाया। उस समय मैंने ग्रेजुएशन पूरा किया। मेरे पूरे परिवार के लोग काफी प्रसन्न थे। गुरुजी के पास प्रमाण पत्र लेकर गया तो वे भी काफी प्रसन्न हो कर हँसते हुए बोले कि इनाम के लालच में आये हो, मैं कुछ बोला नहीं चुप रहा। गुरुजी कुछ पल सोचने के बाद बोले चलो तुम्हे दार्जिलिंग घुमा लायें। अब तुम्हे कुछ और ज्ञान की आवश्यकता है। उस समय कुछ समझ में नहीं आया बस चल दिया गुरुजी के साथ तय समय के अनुसार।

दार्जिलिंग, सिक्किम, रम्फू, भुटान, कालिंगपांग का भ्रमण किया। कालिंगपांग में गुरुजी के भक्त प्रधान के कोई परिचित थे जो कालिंगपांग के पास एक बौद्ध मंदिर में रहते थे। वहीं कभी-कभी चीनी मार्शल आर्ट का शिविर लगाते थे और मार्शल आर्ट के अच्छे ज्ञाता थे। छात्रों को मार्शल आर्ट के साथ ही साथ बौद्ध ध्यान योग की शिक्षा भी देते थे। संयोग वश एक दिन मैं भी देखने गया। मैं काफी प्रभावित हुआ। मेरी उत्सुकता तथा मेरे मनोभाव को देख कर गुरुजी बोले सीखना है तो व्यवस्था करा देता हूँ उस समय भक्त प्रधान भी साथ थे वे बोले हाँ क्यों नहीं मैं अभी व्यवस्था करा देता हूँ। बस दूसरे ही दिन व्यवस्था हो गयी मेरे प्रशिक्षण की। गुरुजी अपने शिष्यों तथा साधु-संन्यासियों के बीच व्यस्त रहते थे और मैं अपने प्रशिक्षण में। समय कब बीत गया पता ही न चला और फिर वापस बनारस चला आया गुरुजी के साथ। लेकिन बीच-बीच में मैं जब भी समय मिलता आगे के प्रशिक्षण के लिए कालिंगपांग जाता रहता था। इसी तरह आते जाते दो वर्ष का समय कब व्यतीत हो गया पता ही नहीं चला। मार्शल आर्ट के साथ-साथ बौद्ध योग और ध्यान का भी गहन अभ्यास किया। एक क्रिया आज भी नहीं भूलती है वह यह कि अभ्यास द्वारा शरीर के छब्बीस केन्द्रों को प्राणायाम द्वारा प्राण ऊर्जा को प्रवाहित करना तथा जाग्रत करना। कुण्डिलिनी साधना के पहले शरीर के उन छब्बीस केन्द्रों को सक्रिय करना एक महत्वपूर्ण क्रिया है। जब गुरुजी ने कुण्डिलिनी योग में इसका वर्णन किया तब ज्ञात हुआ कि छब्बीस केन्द्र कितने महत्वपूर्ण हैं। एक दिन चर्चा वश मैंने पूछा गुरुजी से कि आपने कालिंगपांग में बौद्ध ध्यान और

चीनी मार्शल आर्ट का अभ्यास के लिए भेजा और मैंने भी बड़े ही मनोयोग से अभ्यास किया इसका क्या प्रयोजन था। गुरुजी बोले- अभी तुम नहीं समझोगे जब समय आयेगा तो स्वतः ही समझ जाओगे लेकिन संक्षेप में समझा देता हूँ। तुम्हारा पिछला जन्म बौद्ध धर्म से जुड़ा हुआ था और तुम माँ तारा के उपासक थे। हो सकता है कि तुम्हारे पिछले जन्म के संस्कार का उदय हुआ होगा और समय आने पर इस रहस्य को तुम स्वतः ही जान जाओगे। आज यही हुआ गुरुजी की भविष्यवाणी सत्य हुई जबकि मैं पूजा-पाठ से कोसों दूर था और आज माँ तारा की आराधना में पूर्णरूप से समर्पित हूँ।

सन् १९९३, मैं मुम्बई गया और माँ की कृपा से अच्छा काम मिला और पार्ट टाईम मार्शल आर्ट का प्रशिक्षण देता था। समय अच्छा गुजर रहा था, काफी लोगों से जान पहचान भी हो गयी थी। समय मिलने पर बनारस आता। उन दिनों घर परिवार में अन्य सदस्य भी थे इसलिए माता-पिताजी की उतनी चिन्ता नहीं थी। एक दिन गुरुजी का फोन आया बनारस चले आओ तुम्हारी माँ की तबीयत ठीक नहीं है, मैं अकेला हूँ। तत्काल मैं बनारस चला आया। आते ही माँ के कमरे में गया वहां गुरुजी बैठे थे। गुरुजी ने आदेशात्मक रूप में मुझसे कहा- तुम्हारे ऊपर काफी जिम्मेदारी आने वाली है मुम्बई मत जाओ। उस समय मैं समझा नहीं उनका आशय......लेकिन मैं कभी भी उनके आदेश को टालता नहीं था। चूंकि मैं जानता था उनके बारे में कि वे कुछ सोच कर ही बोले होंगे। समय बीतता रहा माँ धीरे-धीरे ठीक होने लगी। आज गुरुजी नहीं हैं लेकिन उनकी भविष्यवाणी तथा एक-एक बात मेरे मानसपटल पर चलचित्र की तरह एक के बाद एक उभरते चले जा रहे हैं। बस एक प्रयास है गुरुजी की अबूझ बातें आपके सामने प्रस्तुत कर सकूं। खैर माँ ठीक हो गयी लेकिन श्वांस रोग हो जाने की वजह से कभी स्वस्थ्य रहती कभी अस्वस्थ्य और कमजोर भी काफी हो गयी थी। दादाजी की उम्र ९८ वर्ष की हो गयी थी वे भी काफी अस्वस्थ्य रहने लगे। माँ कुलदेवी तारा की आराधना, पूज़ा धीरे-धीरे मैं करने लगा। जब भी उन्हे देखता था एक असीम आनन्द का अनुभव होता था। धीरे-धीरे मुम्बई को भूल ही गया। समय बीतता गया मेरे इष्ट मित्रों का फोन कभी-कभी आ जाया करता था बाद में वे भी बन्द हो गया। दादाजी के गुजरने के बाद माँ की पूजा-पाठ की जिम्मेदारी मेरे ऊपर आ गयी।

मेरे जीवन का आध्यात्मिक समय शुरू हो गया था। एक स्कूल में

खेल प्रशिक्षक हो गया था। दिन भर व्यस्तता रहती थी लेकिन सायंकाल मैं कहीं भी रहता ऐसा लगता जैसे माँ बुला रही है। बस तुरन्त घर वापस आता और माँ की आराधना में लग जाता। जीवन मन्द गति से चल रहा था आध्यात्मिक ज्ञान उतना था नहीं बस घर में जिस तरह पूजा विधि होती उसी तरह करता था।

२२ मई १९९४ दोपहर २ बजे दादाजी अमर मुनी समाधि ले लिए, चारो ओर हाहाकार मच गया। उनको विधिवत् जल समाधि दे दी गयी लेकिन गुरुजी शान्त भाव से क्रियाकर्म करते रहें। सभी शिष्य बन्धुजन चले गये, सारा कोलाहल शान्त हो गया। एक अजीब सा सन्नाटा घर में बिखरा रहा मेरा भी मन काफी उदास था। मुझसे ज्यादा मेरे बड़े भाई का मन उदास था क्योंकि दादाजी बचपन से ही अपने ज्ञान, कर्मकाण्ड, यज्ञ आदि के रहस्यों से अवगत कराते रहते थे और विधिवत वैदिक शिक्षा भी दिलायी। गुरुजी के कहने पर मेरे बड़े भाई अशोक जी को संस्कृत विद्यालय से आचार्य की शिक्षा प्राप्त की और सदैव दादाजी के सेवा में लगे रहते थे। गुरुजी समय-समय पर उन्हे समझाते रहे और कहते रहे अपने मन को स्थिर करो और अपने कार्य में लग जाओ और बड़े भाई अपने कर्म पर ध्यान देने लगे। समय अपनी गति से चल रहा था। चर्चा वश मैंने एक दिन गुरुजी से पूछा कि जिस कार्य के लिए आपने मुझे चुना है वह तो मेरे बड़े भाई या छोटा भाई भी तो कर सकता है। हँसते हुए बोले तुम्हारे दादाजी का ज्ञान कौन लेता? जानते हो जन्मभूमि और कर्मभूमि दोनों अलग होती है। मनुष्य जहां जन्म लेता है जरूरी नहीं कि वही उसका कर्मक्षेत्र बने। तुम्हारे बड़े भाई का जन्म तो बनारस में हुआ है लेकिन वह चाहते हुए भी बनारस को अपना कर्मक्षेत्र नहीं बना सकते यही नियति है।

आज मेरे बड़े भाई आचार्य अशोक द्विवेदी (शर्मा) दिल्ली में अपने परिवार के साथ रहते हैं। जब भी गुरुजी याद करते वे तत्काल बनारस चले आते अपने व्यस्त कार्यक्रमों को छोड़कर। आज गिने चुने वेद के ज्ञाताओं में उनकी गिनती होती है। वे वेद परायण केन्द्रम् के अध्यक्ष हैं। हजारों ब्राह्मण वेद कर्मकाण्ड का प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं और भारतीय धर्म की मूलभित्ति को आगे बढ़ा रहे हैं। समय बीतता गया माँ अस्वस्थ्य रहते हुए भी घर का काम सम्भाल रही थी। उनकी स्थिति देखी न जाती थी मुझसे। गुरुजी भी कभी स्वस्थ्य रहते तो कभी अस्वस्थ्य।

दादाजी की समाधि के बाद गुरुजी माँ के समक्ष सप्तमी की मध्य रात्रि जो कि माँ तारा का विशेष पूजन का पर्व था। उस रात गुरुजी ने मुझे तंत्रोक्तविधि

विधान बतलाया कि किस तरह पूजन,ध्यान, स्तुति करना चाहिए परम्परागत तरीके से मुझे ज्ञान दिया। तभी से मैं उन्हे अपना गुरु मानता हूँ। वे मेरे पिता, गुरु और मेरे मित्र भी थे। इसलिए मैं यहां पिताश्री न सम्बोधित कर गुरुजी सम्बोधन कर रहा हूँ। इसका यही रहस्य है। गुरुजी के बतलाये परम्परागत विधि से माँ की आराधना में लग गया, समय बीतता गया। एक दिन पूजन कर खाली हुआ तभी गुरुजी आवाज दिये कहा कि तुमसे कुछ बात करनी है। मैंने कहा कि वस्त्र बदल कर आ रहा हूँ। गुरुजी चाय के शौकीन थे। उनका ज्यादातर समय लेखन कार्य में ही बीतता था। मैंने दो कफ चाय बनायी और गुरुजी के पास चाय लेकर गया। वे अपने अध्ययन कक्ष में बैठे मारण पात्र पुस्तक को पूर्ण करने में लगे थे बोले बैठो......मैंने चाय दी खुश हो गये बोले चाय की तलब हो रही थी अच्छा हुआ ले आये।

खैर, तुमसे कुछ जरूरी बात करनी है मेरी ओर देखते हुए बोले- अब समय हो गया है शादी कर लो। तुम्हारी माँ को जरूरत है अकेली रहती है मन लगेगा। जब उनकी बात पूरी हो गयी तब मैंने कहा- जब आपने मुझे माँ की सेवा के लिए समर्पित कर दिया है तब शादी की बात मैं समझ नहीं पा रहा हूँ। गुरुजी बोले- क्या मैंने शादी नहीं की? मैं चाहता तो गैरिक वस्त्र धारण कर लेता और हिमालय चला जाता। क्या तुम्हारे दादाजी ने शादी नहीं की? उन्होने भी अपना गृहस्थ धर्म निभाया और बाद में संन्यास ले लिया। मुझे देखो सारे दुख दर्द को सहते हुए भी अपना लक्ष्य पूरा कर रहा हूँ। गृहस्थ संन्यास सबसे कठिन संन्यास है। गृहस्थ बनकर अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए संन्यासी बने रहो। उस दिन चुप रहा और फिर अवसर देख कर एक दिन मैंने कहा- छोटे भाई अनिल की शादी कर दीजिए मुझे दूर रखें इन सब झंझटों से। वे कुछ उदास होकर मेरी ओर देखे, उनकी आंखों में कुछ पल के लिए एक गहरी उदासी छा गयी जिसका आशय मैं नहीं समझा और फिर बोले- अनिल अभी पढ़ाई कर रहा है छोटा है उसे राजनीति का शौक है तुम्हारे बड़े भाई के साथ रह कर कर्मकाण्ड और ज्योतिष भी सीख रहा है और उसके पास समय कम है। मैं समझा नहीं। गुरुजी बोले समय आयेगा तो सब कुछ समझ जाओगे। तुम चिन्ता मत करो माँ भेज रही है तुम्हारे लिये योग्य कन्या।

संयोगवश मेरी मौसी सतना में रहती थी किसी राजकीय विद्यालय में प्राचार्या थी। माँ को देखने एक दिन वाराणसी चली आयी। सप्ताह भर रही माँ की अस्वस्थता देख कर बोली कि अब आपको एक बहू की आवश्यकता है। जो

आपकी सेवा कर सके। मेरे एक परिचित अपनी बेटी के विवाह के लिए योग्य लड़का खोज रहे हैं। मैं जाकर चर्चा करती हूँ। जब यह बात गुरुजी को पता चली तो वे मेरी तरफ देख कर मुस्कुराये और बोले लड़की मां शारदा की बचपन से भक्त है। वह जगतजननी की भक्त है हो सकता है कि माँ की माया हो। हो सकता है माँ खुद बुला रही हैं अपनी सेवा के लिए। माँ जो करती हैं अच्छा ही करती हैं। समय बीतता गया। एक दिन मौसीजी का फोन आया बोली मैं चर्चा कर चुकी हूं। एक दो दिन में लड़की का परिवार वाराणसी जा रहा है मिलने के लिए आप लोगों से। संयोग से एक दिन पूरा परिवार आया सबसे पहले पिताजी से मुलाकात हुई। औपचारिकताएं पूरी होने के बाद वे लोग सन्तुष्ट हो गये। जब कन्या देखने की बात आयी तो गुरुजी बोले आपको मेरे बेटे से जो कुछ पूछना है पूछ लीजिए। मैं तो आपकी कन्या को यहीं से देख चुका हूँ। चतुर्वेदीजी हतप्रभ हो गये और बोले- ये आप क्या कह रहे हैं? चूंकि वो तो अपनी कन्या को भी साथ लेकर आये थे। चतुर्वेदीजी बोले- अरे आपने तो अभी देखा भी नहीं फिर कैसे आप बोल रहे हैं कि मैं तो आपकी कन्या को देख लिया है। गुरुजी बोले- देख नहीं लिया अभी देख रहा हूँ। आपकी बेटी माँ शारदा की परम भक्त है उसे मेरी जगज्जननी ही बुला रही है। अभी वह कौन सा वस्त्र पहनी और कौन लोग साथ हैं होटल में बतला दे रहा हूँ एक क्षण में। गुरुजी ने सारा किस्सा उजागार कर दिया पूर्णतया सत्य निकला। चतुर्वेदीजी बोले- बस हमें कुछ जानना समझना नहीं है। आप जैसे ज्ञानी और महान पुरूष के घर मेरी लड़की आयेगी यह मेरा सौभाग्य होगा।

एक दो दिन बाद मुर्हूत देख कर रस्म अदायगी कर दिया गया और जनवरी १९९६ को शादी हो गयी। मेरी माँ काफी खुश थी। एक दिन गुरुजी ने कहा- मुझसे, बहू की जो शिक्षा अधूरी है उसे पूरा करवा दो। आगे काम आयेगा। गुरुजी का आदेश मानकर पत्नी की शिक्षा पूर्ण करवा दी। धीरे-धीरे समय सरकता रहा। सब लोग अपने कार्य में व्यस्त रहते थे। गुरुजी अपने अध्ययन और लेखन में तथा अपने भक्तों के बीच उनका समय कटता रहा। १९९७ में मेरी बेटी का जन्म हुआ। गुरुजी ने उसका नाम आस्था रखा। उसके साथ गुरुजी का काफी समय बीतता। उसे हमेशा अपने पास रखते थे। वर्ष १९९९ दोपहर का समय गुरुजी शान्त भाव से अपने अध्ययन कक्ष में बैठे थे। जब मैं पहुंचा तो उन्हे गम्भीर देख कर पूछा- क्या हुआ, कोई बात हो गयी क्या? बोले नहीं, मजाक के लहजे में फिर बोले देखो इतना संघर्ष करके इतने सारे संस्मरण लिखा। मैं चाहता हूँ कि योग और तंत्र का सही ज्ञान लोगों तक पहुंचे। परन्तु हमारे देश का दुर्भाग्य है। विदेश

में किसी चीज पर शोध होता है तो तुरन्त सारा विश्व जान जाता है।

लेकिन हमारे ऋषि मुनि, साधक उन रहस्यों को जानते हैं जिसे जानने का प्रयास आज का विज्ञान कर रहा है। खैर छोड़ो, जिस दिन मैं मृत्यु को हो जाऊंगा उपलब्ध लकड़ी की जगह मेरी सारी पुस्तकें, पाण्डुलिपियां रख कर जला देना। मैंने हँसते हुए कहा- आपका तात्पर्य क्या है? बोले- इसे कौन प्रकाशित करेगा। चार-पांच बार प्रकाशकों को बुलाओ तब आते हैं। कोई बात हो गयी क्या? बोले नहीं। फिर मजाक के लहजे में बोले देखो उन लोगों के पास समय नहीं होता। एक मारण पात्र पुस्तक को दिये एक वर्ष लग गया लेकिन प्रकाशित होने में ऐसा समय लग रहा है अन्य पुस्तकों के लिए पचास साल लग जायेंगे।

मैंने कहा- आप चिन्ता न करें। अभी आपने माँ की उपासना की जिम्मेदारी दी है और यह दूसरी जिम्मेदारी भी मैं पूरी करूंगा। आपकी सारी पुस्तकें एक के बाद एक आपके सामने प्रकाशित होंगी। मेरा आत्म विश्वास देख कर हँसने लगे। बोले- इतना आसान नहीं है प्रकाशन करना। मैंने कहा- एक बार अवसर तो दीजिये। उस समय आस्था दो वर्ष की हो गयी थी। मेरे गोद में थी। एकाएक उसकी ओर देखते हुए बोले आस्था के नाम से अपना प्रकाशन शुरू करो और प्रकाशन के विषय में जानकारी प्राप्त करो। पैसों की दिक्कत आयेगी, गुरुजी बोले- लाखों रूपए लगेंगे, कहां से आयेगा? मैंने कहा आपके भक्त लोग कब काम आयेंगे। गुरुजी के उन परम भक्तों से प्रकाशन के विषय में चर्चा की सभी तैयार हो गये। यथाशक्ति सभी ने सहयोग किया। सभी के सहयोग से गुरुजी की नयी पुस्तक 'तीसरा नेत्र' प्रकाशित किया। एक पुस्तक से शुरूआत हो गयी। इसके बाद एक के बाद एक दस पुस्तकों का प्रकाशन हुआ। बस एक दुख है गुरुजी के सामने सारी पुस्तकों के प्रकाशन का जो वचन दिया था वह पूरा नहीं कर पाया। लेकिन प्रकाशन से मुझे यह फायदा तो अवश्य हुआ गुरुजी के पुस्तक संकलन और सम्पादन करते-करते अपने देश की प्राच्य विद्या का होने लगा ज्ञान..... बस मैं धीरे-धीरे पुस्तकों में डूबने लगा। अपनी पत्नी को कम्प्यूटर की ट्रेनिंग दिलवायी और गुरुजी के लिखे पुराने नोट बुक से कम्पोजिंग करवाने लगा। जिससे बहुत सारे पड़े पुराने मैटर जो अधूरे थे गुरुजी से पूछ-पूछ कर उसे पूरा करने लगा। समय चक्र बड़ी तेजी से चलता रहा। तीसरा नेत्र और मरणोत्तर जीवन का रहस्य पुस्तक को पुरस्कृत किया गया उत्तर-प्रदेश सरकार की ओर से।

तंत्र-योग में रूचि होने लगी जागृत। साधना सम्बन्धित बहुत सारी गुप्त

विद्या का अध्ययन और साधना करने लगा। संयोगवश जाड़े का समय था। गुरुजी थोड़े अस्वस्थ थे। श्वांस का रोग हो गया था। थोड़े बहुत कमजोर भी हो गये थे। चिकित्सा सम्बन्धित सारी व्यवस्था समय-समय पर होती रही। लोगों का आना-जाना लगा रहता था। एक दिन किसी भक्त की जन्म कुण्डली देख रहे थे। मैं चुपचाप बैठा रहा। जब वह भक्त चला गया तो गुरुजी बोले- तुम्हे अगर योग और तंत्र में रूचि है तो सबसे पहले ज्योतिष का गहन अध्ययन करो। साधना में मुर्हूत, नक्षत्र, तिथि आदि का साधक को ज्ञान होना चाहिए। बस फिर क्या था गुरुजी के सान्निध्य में ज्योतिष का मनोयोग से अध्ययन करने लगा। यह बात सही है कि मुर्हूत, तिथि का काफी महत्व है तंत्र क्रिया और पूजन, बली के लिए।

एक दिन ज्योतिष पर चर्चा होने लगी गुरु जी के साथ। उन्होने बतलाया सन् १९७२ से ज्यादातर लड़कियां मांगलिक होंगी और लड़के शनि, मंगल प्रधान होंगे। आने वाला समय नारी का प्रभुत्व पूरे संसार में होगा। यह बात तो सही है। आज ज्यादातर लड़कियां मांगलिक ही पैदा हो रही हैं। गुरु जी बोले- मांगलिक होना कोई खराब बात तो नहीं है क्योंकि मंगल नेतृत्व, प्रशासन का कारक है। आज विश्व में उच्च पदों पर नारी का प्रभुत्व है यह देखने को मिल रहा है।

प्रसंगवश गुरुजी ने यह बतलाया कि अपने वाला समय काफी यादगार होगा। मैंने पूछा- इसका कारण क्या है? कारण यह है कि २१वीं शताब्दी २००० से २०१२ तक प्रकृति अपने को नये तरीके से ढालेगी है। १०० में से १२ वर्ष प्रकृति का संक्रमण काल कहलाता है। प्रकृति संसार मनुष्य सभी इससे प्रभावित होंगे। सभी को कुछ-कुछ कड़वी यादें दे जायेगा यह बारह वर्ष। क्योंकि पूरा जगत स्पन्दन है। यह वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया है। इस विश्व ब्रह्माण्ड में कोई वस्तु ठोस नहीं है सभी में स्पन्दन हो रहा है तो मनुष्य भी तो प्रकृति का एक अंश है वह कैसे अछूता रहेगा। गुरुजी की बात आज अक्षरशः सत्य सिद्ध हो रही है। २००० से अभी तक सारा संसार प्रकृति मनुष्य ने काफी कुछ खोया। सभी के पास कुछ न कुछ कड़वी यादें जिसे भुलाना सम्भव नहीं है।

आगे गुरुजी बोले कि समय आ गया है तुम्हे अपने को और मजबूत करने का। यह बारह वर्ष समय तुम्हारे लिए भी कठिन है। इसलिए तुम्हे आध्यात्म मार्ग से जोड़ रहा हूँ और साधना करवा रहा हूँ यही तुम्हे काम आयेगा भविष्य में।

अब मेरा प्रतिदिन एक घण्टा का समय सत्संग में बीतने लगा गुरुजी के साथ। मैं दस बजे पूजा-पाठ से खाली होता और उस समय गुरुजी भी अपने

अध्ययन कक्ष में आकर लिखने लगते। उस समय केवल विभिन्न विषयों की चर्चा होती क्योंकि मेरे अन्दर भी इस विद्या को जानने की उत्कण्ठा रहती थी।

खैर, ज्योतिष पर ही प्रसंग चल रहा था। मैंने पूछा- आजकल लोग इतना अशान्त क्यों हैं? मंन्दिरों में पहले से ज्यादा भीड़ लगने लगी है। गुरुजी जरा हँसते हुए बोले- इसका कारण बड़ा ही सरल है। आज का मानव अशान्त है। तुरन्त परिणाम चाहता है। वह मन्दिर जाता है प्रार्थना करने नहीं, पूजा करने नहीं, भगवान से मांगने जाता है। उसे लगता है कि मांगने से भगवान उसके सारे दुखों को दूर कर देंगे। संयोगवश जब दुख दूर हो जाता है तो भक्त कहीं और भगवान कहीं और, यही गलत है। मनुष्य को प्रार्थना करनी चाहिए ईश्वर ही तो जगत का नियन्ता है सुख दुख तो कर्मो का खेल है। अगर मनुष्य प्रार्थना करे तो उसे वो सारी चीजें मिल जायेंगी जिसकी आशा भी वह नहीं करता। आज का विज्ञान भी इस बात को मानने लगा है कि प्रार्थना में इतनी ताकत है कि रोग व्याधि पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ने लगता है। वैज्ञानिकों का कहना है कि प्रार्थना मन की एक विशेष ऊर्जा है। जब मन प्रार्थना में लीन हो जाता है तो मन एक विशेष दैवी ऊर्जा को करने लगता है प्राप्त और मनुष्य के अन्दर एक सकारात्मक सोच बढ़ जाती है। यही कारण है कि प्रार्थना का प्रचलन ज्यादातर धर्मों ने स्वीकार किया है। परन्तु धर्म के अनुसार प्रार्थना करने के तरीके अलग-अलग हो सकते हैं। प्रातःकाल स्नान करने के बाद प्रार्थना का बेहतर समय है। प्रार्थना से मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ शारीरिक स्वास्थ्य पर भी अनुकूल असर देखने को मिलता है। व्यक्ति दिन भर स्वस्थ और प्रसन्न रहता है। उसकी सोच सकारात्मक होने लगती है। चेहरे पर दैवी तेज भी आ जाता है। लोग स्वतः उस व्यक्ति के प्रति आकर्षित होने लगते हैं और उनके विचारों और बातों को देते हैं महत्व। इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ कि माँ की प्रार्थना करो। साधना करो। उनसे कुछ मांगो नहीं। बस उनकी अनुकम्पा के लिए प्रार्थना करो। जगज्जननी है वो सब कुछ देख रही है। साधक सिद्धी मांगता है, मंत्र जप कर उसका फल मांगता है, वह हो जाता है निष्फल। तुम जो पूजा करो, पाठ करो, साधना करो सब माँ को कर दो अर्पण। फिर देखो उसका आनन्द। दूसरा रहस्य यह भी है गुरुजी आगे बोले कि आज ज्यादातर व्यक्ति या साधक को उन्हे अपने इष्ट की जानकारी नहीं होती है। इसलिए न तो प्रार्थना सफल होती और न तो सफल होती है साधना। मैंने पूछा- इसका कारण क्या है? इष्ट के बारे में पूरी जानकारी का न होना।

पहला अगर सद्गुरु है तो वह अपने साधना बल पर शिष्य को इष्ट का कराता है दर्शन और देता है जानकारी और बतलाता है विधि। दूसरा ज्योतिष में नवम् भाव, भाग्य, धर्म और इष्ट का कारक होता है। नवम् भाव का स्वामी कौन है इस आधार पर इष्ट की जानकारी देता है। क्योंकि जातक जिस नक्षत्र में पैदा होता है उसी के आधार पर जन्म कुण्डली का निर्माण होता है। उस नक्षत्र मण्डल में कौन सी ऊर्जा है क्योंकि हमारा शरीर हर समय अदृश्य ऊर्जा को करता रहता है ग्रहण। तभी मैंने बीच में बोला- आपको पता है कि किस नक्षत्र से प्राण ऊर्जा को ग्रहण किया जा सकता है? हाँ मैं जानता हूँ मेरी राशि वृष है और मृगशिरा नक्षत्र है उस नक्षत्र में महाकाल मण्डल से ऊर्जा निस्तृत होती है जिसकी अधिष्ठात्री हैं माँ काली। मैंने तुरन्त कहा कि तभी आप माँ काली की पूजा उपासना करते हैं। गुरुजी जरा हँसते हुए बोले- हाँ बात तो सही है लेकिन स्वामी अक्षरानन्दजी द्वारा जो मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ और अपने पिछले जन्म का रहस्य प्राप्त हुआ वो मेरे जीवन के आध्यात्मिक यात्रा का पहला अनुभव रहा। खैर, अब तो तुम पूरी बात जाने बिना मेरा पीछा नहीं छोड़ोगे। मैंने कहा यह बात तो है। गुरुजी बोले- आज बस इतना ही अब मुझे लिखने दो....। इस विषय पर कल चर्चा होगी। दूसरे दिन मैं पूजा से खाली होकर दो कप चाय बनाया अपने हाथों से और ले गया उनके अध्ययन कक्ष में। उनको मेरे हाथ की चाय काफी पसन्द थी।

खैर, औपचारिक बातचीत के बाद वही प्रसंग आगे चला। गुरुजी बोले- मेरे पिछले तीन जन्म की चर्चा बाबा ने की थी और यह भी कहा था कि मैं पिछले जन्म में मोह और ग्लानी की वजह से मृत्यु को हुआ था प्राप्त। इसकी वजह से मेरी आत्मा अशान्त थी चूंकि मैं तीन जन्मों से साधक हूँ लेकिन पिछले जन्म में मेरी मृत्यु एक प्रकार से मूर्च्छा में हुई थी इसलिए इस जन्म में मैं अपने पिछले जीवन का भान नहीं रहा लेकिन बाबा की कृपा से अपना पिछला जन्म और उसका रहस्य जान गया। रही बात जगज्जननी काली की तो मैं शाक्त साधक हूँ और तीन जन्मों से माँ काली मेरी इष्ट हैं। उन्ही की साधना करता आ रहा हूँ और आज भी कर रहा हूँ। माँ तारा मेरे परिवार की कुल देवी हैं जो आदिशक्ति हैं और काली महाकाल की नियन्ता हैं।

फिर आगे बोले- तुम भी पिछले जन्म में साधक थे। माँ तारा ही तुम्हारी इष्ट थी और इस जन्म में भी तुम्हे तारा की पूजा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। तुम्हारी इष्ट हैं और कुल देवी भी। इष्ट की पूजा प्रार्थना सर्वोपरि है इसलिए मैं

काली की आराधना करता हूँ। तुम्हे नहीं कहा कि इनकी पूजा करो। माँ काली के रहस्य, विविध स्वरूप वर्णन कर चुका हूँ तंत्रम् पुस्तक में। इष्ट को जानने का तीसरा रहस्य है स्वप्न के माध्यम से। स्वप्न की देवी स्वप्नेश्वरी देवी हैं। जो स्वप्न जगत की अधिष्ठात्री है बहुत ही कम ग्रन्थों में देवी का उल्लेख मिलता है। मैंने पूछा मंत्र भी होगा। मंत्र है सात दिन तक २१ बार निम्न मंत्र पढ़कर देवी का स्मरण करके सो जायें स्वप्न में उत्तर मिल जाता है। किसी भी प्रश्न का उत्तर चाहते हो तो सफेद कागज पर लाल स्याही से लिख कर उत्तर प्राप्त कर सकते हो। ऐसे लिख सकते हो मेरा इष्ट देव या देवी कौन है माँ इसका उत्तर दें। सात दिन के अन्दर पता चल जायेगा और अपने गुरु से आज्ञा लेकर उनकी आराधना करने से सफलता निश्चित प्राप्त होती है। इष्ट देवी की पूजा सर्वोपरि है फिर उसके बाद आप किसी की भी आराधना करते हैं तो शुभ होगा।

स्वप्नेश्वरी नतस्तुभ्यं फलाय। मम सिद्धिमंसिद्धि वा स्वप्ने सर्व प्रदर्शनः।।

प्रसंगवश गुरुजी ने बतलाया कि बिना इष्ट देव की आराधना से सफलता नहीं मिलती। चाहे आप किसी भी क्षेत्र में हो सामाजिक व्यापारी साधक कुछ भी हों जब तक आपके इष्ट प्रसन्न नहीं होंगे आपको किसी भी क्षेत्र में सफलता मिलना मुश्किल है। इष्ट रक्षा करता है और सद्गुरु मार्ग प्रशस्त करता है जीवन और जगंत में। इन दोनों का अपना विशेष महत्व है।

इसके बाद गुरुजी कुछ गम्भीर हो गये किसी गहरी सोच में डूब गये। मैंने भी कुछ बोला नहीं और वहां से उठ चला आया। व्यस्तता के कारण प्रसंग आगे नहीं बढ सका। एक दिन समय मिला तो प्रसंगवश मैंने पूछा- आप बोलते-बोलते चुप हो गये थे और गहरी सोच में पड़ गये थे उस दिन। कारण क्या था? समय आयेगा तो बतलाऊंगा। वह कौन सा रहस्य था मैंने काफी प्रयत्न किया जानने के लिए लेकिन सफलता नहीं मिली। यह रहस्य गुरुजी अपने मृत्यु के दो महीने पहले बतालाया यानि अप्रैल २०११ को।

प्रसंगवश मैंने पूछा- अगर सद्गुरु न उपलब्ध हो तो व्यक्ति को किसे गुरु बनाना चाहिए। आत्मा को। भगवान बुद्ध को ज्ञान आत्मा के द्वारा हुआ इसीलिए आत्मज्ञान को हुए उपलब्ध। तभी तो उन्होने आत्मा को सब कुछ माना। आत्मा ही प्रथम गुरु होती है। अगर मनुष्य अन्तरात्मा की सूक्ष्म आवाज को सुने तो उसे कभी असफलता नहीं मिल सकती है। लोग अपने अन्तरात्मा की आवाज सुनने का प्रयास करे तो उनका हर कदम सही उठेगा लेकिन ईर्ष्या द्वेष से ऊपर उठकर।

दिव्य गुरुरूपी आत्मा प्रत्येक मनुष्य के हृदय में स्थित है। महान साधकों ने बारम्बार यह बात कही है। साधक को सत्य की खोज में पथ प्रदर्शन करने वाला प्रकाश उसके आन्तर से ही प्राप्त हो सकता। ज्ञानरूपी प्रकाश तुम्हारे अन्दर ही है। केवल वही प्रकाश ज्ञानरूपी मार्ग को कर सकता है प्रकाशित। यदि तुम अपने आन्तर में देखने में असमर्थ हो तो उसे बाहर ढूढ़ना व्यर्थ है। साधक का पथ प्रदर्शक उसके अपने आन्तर में ही निहित है। प्रारम्भिक अवस्था में बाह्य पथ प्रदर्शक आवश्यक होता है और उसे प्राप्त भी होता है। परन्तु जैसे-जैसे साधक आन्तरिक साधना विकास मार्ग पर प्रगति करता जाता है बाह्य निर्देशन धीरे-धीरे न्यून होता जाता है और उसे अपने आन्तर जगत से ही पथ प्रदर्शन की आवश्यकता पड़ती है। वही आन्तर जगत दिव्य चेतना का केन्द्र है। उसके जीवन का आदि स्त्रोत वह परमसत्ता है जो इस जागतिक जगत का आधार है और उसके विकास को अपरोक्ष रूप से शक्ति भी प्रदान करता रहता है।

इस जगत का परमसत्य है मृत्यु। मृत्यु शरीर की होती है आत्मा की नहीं। यह परमसत्य है। एक से एक महान हस्तियां विचारक वैज्ञानिक, सन्त, महात्मा भी इस जगत में आते हैं और जगत को अपने ज्ञान से आलोकित कर फिर लुप्त हो जाते हैं। उनका गुरु पथ प्रदर्शन एकमात्र परमेश्वर है वइ पूरे विश्व ब्रह्माण्ड का नियन्ता है। वही जगत गुरु है। वह ज्ञान का प्रकाश है जो मानव जाति और जगत के समस्त सद्‌गुरुओं के हृदय में ज्ञानरूपी आभा से प्रज्जवलित करता रहता है। आध्यात्मिक पथ के साधकों के हृदय को भी प्रकाशित करता है। ज्ञान के समस्त सच्चे सद्‌गुरुओं की शक्ति और प्रेरणा का स्रोत वही जगत नियन्ता है और अदृश्य पथ प्रदर्शक भी वही है जो जाने अनजाने में आपको अपनी एक ध्वनि से सत्य की राह बतलाता है। हमारे प्राचीन हिन्दू धर्म ग्रन्थों में बार-बार इसी बात पर जोर दिया कि ईश्वर और सद्‌गुरु एक ही है और अभिन्न है। जिस परमेश्वर को हम अपने आध्यात्मिक प्रयत्नों से खोज रहे हैं वह हमारा पथ प्रदर्शक भी है। वही हमारे हृदय में पहले अन्तरात्मा की आवाज के रूप में बाद में नीरव नाद के रूप में प्रगट होता है।

अगर देखा जाये तो वह सद्‌गुरु प्रत्येक मानव और साधक के हृदयरूपी कमल में विराजित है। वे ही हृदय की आन्तरिक नीरवता में अपनी दिव्य वाणी द्वारा उसका निर्देशन करता रहता है। यही उनका स्वरूप है। गुरुजी आगे बोले- आज के आधुनिक युग में सद्‌गुरु मिलना कितना कठिन हो गया है। ऐसा गुरु या

पथ प्रदर्शक हो जो साधना मार्ग पर आये कठिनाइयों पर विजय पाने तथा समय-समय साधना की सफलता में हमारी सहायता करे। निराशा होने पर सांत्वना दे सके। अपने ज्ञानरूपी प्रकाश से बल दे सके, अज्ञान और पथभ्रष्ट होने से हमें रोक सके। देखा जाये तो सच्चे साधक बाह्य जगत में एक सच्चा गुरु खोजने में अपना जीवन और समय बर्बाद कर देते हैं। उस समय परम गुरु की ओर ध्यान ही नहीं देते जो उनके अत्यन्त निकट है। जिसकी ज्ञान, शक्ति और करूणा अनुकम्पा असीम है और साथ ही सदैव सुलभ है वह साधक की छोटी से छोटी आकांक्षा तक से सदैव अवगत रहता है और सहायता के लिए एक सच्ची पुकार का तुरन्त उत्तर देता है। हमें इस बात पर विश्वास ही नहीं है और श्रद्धा-विश्वास की कमी है कि आन्तर जगत में आत्मारूपी परमेश्वर हमें मार्ग बतलाने के लिए तत्पर है। हममें वह क्षमता है कि हम उससे सीधा सम्पर्क स्थापित कर सके और उनकी कृपा प्राप्त कर सके। यदि हमारे अन्दर परम श्रद्धा, कुछ पाने की प्यास है अगर हम पूर्णरूपेण समर्पित होकर दृढ़ निश्चय के साथ उन्मुख हों और उस नियन्ता से पथ प्रदर्शक बनने की प्रार्थना करें तो ऐसे समस्त संशय दूर हो सकते हैं। अगर हम संच्चे मन से आन्तर जगत में स्थित गुरु पर निर्भर रहने लगेंगे तो हम देखेंगे कि अपरोक्ष रूप से या किसी न किसी रूप से सहायता अवश्य प्राप्त होने लगती है।

मेरी एक शंका है- मैंने कहा। बोलो- गुरुजी ने कहा। अगर जगत और परम जगत यानि ब्रह्माण्ड के जगत गुरु परब्रह्म परमेश्वर हैं और आत्मारूपी अंश के रूप में, गुरु रूप में हमारे आन्तर में हैं तो क्या बाह्य गुरु की आवश्यकता नहीं है। गुरुजी ने कहा- निस्संदेह विभिन्न श्रेणियों के गुरु और महात्मागण का अस्तित्व है और वे साधकों के आध्यात्मिक विकास में विभिन्न प्रकार से सहायता करते हैं। तुम्हे याद रखना चाहिए कि समस्त सद्गुरु जीवन मुक्त होते हैं और उनकी चेतना उस परम चेतना से तादात्म्य स्थापित करती है। एक प्रकार से वे परम चेतना के अंश और सभी साधकों के सम्बन्ध में उनकी दिव्य चेतना पूर्ति के माध्यम हैं। जब किसी साधक को सहायता की आवश्यकता होती है और वह होता है उसका अधिकारी तो परिस्थिति अनुसार सद्गुरु स्वयं प्रगट होकर परोक्ष-अपरोक्ष रूप से सहायता और मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

इसी प्रसंग में मैं तुम्हे एक घटना सुना रहा हूँ। लाहिड़ी महाशय पिछल कई जन्मों से परम साधक थे। लेकिन इस जन्म में किसी कारण वश पिछले जन्म का

ज्ञान नहीं रहा। एक दिन उनके सामने घनी जटाजूट, गले में रूद्राक्ष की माला, हाथ में कमण्डल, एकाएक सामने एक भयंकर साधु को देखकर लाहिड़ी महाशय हतप्रभ हो गये और घबड़ा गये कुछ बोलते उसके पहले वह संन्यासी बोले- अरे तुम कहां थे लाहिड़ी। कितने वर्षों से तुम्हे खोज रहा हूँ चलो मेरे साथ। लाहिड़ी महाशय बोले- बाबा मैं तो आपको जानता भी नहीं आप कहां चलने की बात कह रहे हैं। वह संन्यासी लाहिड़ी महाशय के पिछले जन्म के सद्गुरु थे। उन्होने तत्काल लाहिड़ी महाशय के सिर पर अपना दाहिना हाथ रखा और एक झटके से उन्हे अपने पिछले जीवन का सारा रहस्य का ज्ञान हो गया। तत्काल उस संन्यासी का पैर पकड़ कर लगे रोने।

बस फिर क्या ज्ञान का मार्ग खुलते यह जगत हो गया उनके लिए व्यर्थ, तुम यह सोचो अगर तुम सच्चे साधक हो और जन्म-जन्मान्तर का संस्कार है तो गुरु खुद ही खोज लेगा शिष्य को इसलिए जबतक सद्गुरु का नहीं होता दर्शन तो अपने आन्तर में झांकों। सारा रहस्य होने लगेगा का उजागर। तुम तो भाग्यशाली हो पिछले जन्म में माँ के उपासक थे लेकिन संस्कार अब जाग्रत हुआ। माँ की आराधना में लग गये और गुरु के रूप में मुझे पा गये साधना का निर्देशन तो तुम्हे हो ही रहा है उपलब्ध। प्रसंगवश मैंने अपने विचार व्यक्त किये। आपका तात्पर्य है परमेश्वर ही जगत गुरु है और परमेश्वर का अंश आत्मा है और आत्मा ही प्रथम गुरु है। आत्म मार्गदर्शन के लिए आन्तर जगत में प्रवेश करते ही और साधक की पूर्णता होते ही सद्गुरु स्वयं मार्ग प्रशस्त करते हैं।

हाँ यही सूक्ष्म रहस्य है साधना का। तब प्रवेश का मार्ग क्या है- मैंने पूछा। ध्यान....ध्यान ही एकमात्र साधन है आन्तर का द्वार खोलने के लिए। मेरे पास कई ऐसे साधक आते हैं और करते हैं सत्संग और साथ ही अपने विचार भी रखते हैं। कहते हैं कि मैं चार से पांच घण्टे ध्यान करता हूँ। मुझे ऐसी अनुभूति हो रही है वैसी अनुभूति हो रही है। कुछ लोग यहां तक कहते हैं कि उनकी कुण्डलिनी जागरण हो गयी है और आगे क्या करना है मैं सुनता रहता, बस सोचने लगता हूँ। क्या जवाब दूं उन्हे। अगर आप मीठा खायेंगे तो उसके स्वाद का तो वर्णन कर सकते हैं बस यही कहेंगे कि बड़ा ही स्वादिष्ट है। अगर आपको आध्यात्मिक उपलब्धि हो गयी है तो आप निरपेक्ष हो जायेंगे और हो जायेंगे मौन।

ध्यान ही एकमात्र है उस रहस्यमय जगत को जानने का। तुम्हे पता है ध्यान तो एक मिनट में लग सकता, एक क्षण में आप ध्यानस्थ हो सकते हैं नहीं

तो वर्षों तक ध्यान करते रहिये बस मन एकाग्र होगा, मन को शान्ति मिलेगी और उसके सिवाय कुछ नहीं। जानते हो गुरुजी आगे बोले ध्यान के लिए भगवान बुद्ध भटकते रहे। कहां नहीं गये। जब थक हार कर पीपल के वृक्ष के नीचे जिसे बोधिसत्व कहा जाता है तंब ज्ञान को उपलब्ध होने के पश्चात १४ दिन और १४ रात तथागत ध्यानस्थ रहे। जब वे ध्यान से उठे तब वे सिद्धार्थ से बुद्ध हो गये। तथागत हो गये। ब्रह्माण्ड का सारा रहस्य एक झटके में हो गया अनावृत्त। तथागत के कौन गुरु थे? उनकी गुरु स्वयं उनकी आत्मा थी इसलिए आत्मा को सर्वोपरि माना था। उन्होने कौन सी तैयारी की थी ध्यान लगाने की। ध्यान बस एक क्षण में लग गया। आमूलचूल परिवर्तन हो गया। आज के अनुयायी हैं कोई नया बुद्ध तो नहीं बना। कारण तुम समझ ही रहे हो। मीराबाई को ही ले लो ध्यान की एक अवस्था में कृष्णमय हो गयी। उसने कौन सी तैयारी की थी। तुलसीदास को ले लो उनका कौन गुरु था। पत्नी की बात से आघात लगा उल्टे पांव वापस आ गये और एकान्त में लगे सोचने उसी सोचने में ध्यान की उस बिन्दू को कर लिया स्पर्श। तुलसी से तुलसीदास बन गये और हो गये अमर। इसी तरह सूरदास को ले लो। वेश्या से हुए अपमानित और ध्यान के उस बिन्दू को हो गये उपलब्ध कृष्णमय हो गये। महावीर के साथ भी ऐसा ही हुआ। राजपुत्र थे ध्यान की अवस्था में गये और हो गये महावीर। इसे क्या कहेंगे आन्तर जगत में प्रवेश का बस एक ही मार्ग है वह है ध्यान। आप उस सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं। यह आप और आपकी तपस्या पर निर्भर करता है।

तुलसी बुआ की मृत्यु के बाद मुझे एक आघात लगा कुछ क्षण में मैंने उस अदृश्य सत्ता को कर लिया स्पर्श मेरा जीवन ही बदल गया। ध्यान सरल भी है और है अत्यन्त कठिन भी। अब आती है कुण्डलिनी शक्ति की बात। मैंने अपनी अगली पुस्तक 'कुण्डलिनी योग' में काफी सूक्ष्म रहस्यों का वर्णन किया हूँ तथा 'कालपात्र' में नक्षत्रों के विषय में। खैर,

कुण्डलिनी की बात हो रही है तो सुनो। सात चक्र हैं, सात भुवन हैं यानि सात आकाश और सात शरीर। इन चक्रों की साधना एक जन्म की नहीं है। मूलाधार चक्र पृथ्वी तत्व और भौतिक शरीर की साधना है। मूलाधार चक्र सिद्ध हो जाता है तो उसकी सिद्धी का मतलब है कि आपका शरीर जमीन से उठ जायेगा। यही अणिमा सिद्धी है। उसी तरह सातों चक्रों का सम्बन्ध प्राणों से है और सातो शरीर से प्राण ऊर्जा का सम्बन्ध है। उसके आघात और चक्रों के मंत्र से

वह जाग्रत होता है। इन सभी के लिए साधक को सात जन्म लेने होते हैं। एक जन्म में एक चक्र को होना पड़ता है उपलब्ध। तभी आत्मा धीरे-धीरे उच्चावस्था प्राप्त कर सकती है। बहुत से कालञ्जयी साधक हैं। संसार से दूर काल पर नियंत्रण कर एक ही शरीर से ज्यादातर साधना को करते हैं पूर्ण लेकिन भौतिक शरीर की एक सीमा है। वहा कहां तक आपका साथ देती है वह आपके शरीर पर निर्भर करता है। इसलिए साधक मृत्यु को होश में गले लगाते हैं और सांसारिक लोग मूर्च्छा में। यही कारण है कि योगी को अपना पिछला जन्म याद रहता है और उसके आगे की साधना करता है लेकिन साधारण मानव ऐसा नहीं कर पाता। जन्म और मृत्यु के बीच वह फंसा रहता है।

अगले जन्म में वो बताने में होता है असमर्थ। बस यहीं से विज्ञान परेशान है जन्म और मृत्यु के बीच आत्मा कहां रहती है। गुरुजी ने आगे बतलाया कि सभी साधना के मूल में है आत्म साधना। चलो मैं तुम्हे अन्य विधि से समझाता हूँ। भौतिक जगत में हम रहते हैं हमें भौतिक इन्द्रियों के माध्यम से जो ज्ञान होता है या अनुभूति होती है उसी में समाया हुआ एक अति विकसित सौन्दर्य से परिपूर्ण सूक्ष्म जगत है। आज भी संसार में अति ज्ञानी साधक विद्यमान हैं उन्हे इन सूक्ष्म जगत के कार्यों का पूर्ण ज्ञान है। लेकिन जो व्यक्ति पहली बार सुनेगा उसे विश्वास नहीं होगा वह तो इस जगत को ही सब कुछ मानता है। परन्तु जो साधक सिद्ध पुरूषों के सान्निध्य में है और जिन्होने उन जगतों से सम्पर्क स्थापित करने की क्षमता विकसित कर ली है उनके लिए ये बातें सामान्य अनुभव है। जो व्यक्ति भौतिकवादी नहीं वह यह अवश्य विश्वास करते हैं कि मानव अविनाशी है और उसका भौतिक जीवन सूक्ष्म जगत के उसके लम्बे और अविच्छिन्न जीवन का एक अध्याय मात्र है और वे समझते हैं यदि सूक्ष्म जगत है तो उनके सम्बन्ध में ज्ञान होना भी सम्भव है और ऐसे मानव भी होने चाहिए जिन्हे यह ज्ञान प्राप्त है। प्राचीन ग्रन्थों से यह बात स्पष्ट भी होती है उस समय के मानव उन्नत और सुसंस्कृत जीवन के रहस्यों में झांकने तथा रहस्यों को जानने की विधियां विकसित करने का प्रयत्न किये और सफल भी होते रहे। ऐसे भी प्रमाण मिलते हैं प्राचीन काल में जीवन की गहन रहस्यों से सम्बन्धित आत्म साधना की शिक्षा देने के लिए गुप्त विद्याओं की शाखाएं भी थी अथवा गुप्त मठों में दी जाती रही। यह समझ लेना आवश्यक है कि ब्रह्माण्ड में परमेश्वर की चेतना में सम्पूर्ण ज्ञान सदैव रहता है आन्तरिक शक्तियां विकसित होने पर विभिन्न स्तरों पर सम्पर्क में आने की क्षमता

हमें प्राप्त होने लगती है। या कहिए विभिन्न कोशों के माध्यम से हम उसकी चेतना के विभिन्न स्तरों से समस्वरता स्थापित करके सम्बन्धित कोशों की समस्त जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। हम तीन आयामों के जगत में रहते हैं इसलिए स्वाभाविक है कि हम लोकों की सत्यता को समझ न सके। जहां चेतना अधिकाधिक आयामों में कार्य करती है। ईश्वरीय चेतना की आगाध गहरायी में हम जितना डूबेंगे उतना विराट रहस्य खुलता जायेगा। अतः उन रहस्यों को समझने के लिए हमें अपनी स्वयं की आन्तरिक क्षमताओं को विकसित करना अति आवश्यक हो जाता है। यही रहस्य है भगवान तथागत से जब ईश्वर के सम्बन्ध में पूछा गया तो वे मौन हो गये।

कहने का तात्पर्य यह है कि आन्तरिक विकास इसलिए सम्भव है क्योंकि रहस्य विद्या के सिद्ध साधकों को प्रकृति के रहस्यों की ही नहीं वरन आत्म साधना के व्यवहारिक ज्ञान की पूरी जानकारी थी। साधक इस ज्ञान में धीरे-धीरे दक्षता प्राप्त करके अपनी आन्तरिक शक्तियां विकसित कर सकता है और परम चेतना से आत्मसात कर सकता है। अगर आध्यात्मिक पक्ष देखा जाये तो प्रत्येक मानव का आत्म तत्व ईश्वर तत्व ही है जिस समस्त गुणों और शक्तियों की कल्पना हम परमेश्वर में करते हैं वे सब सूक्ष्म रूप में मानव में भी है और साधना से इनका विकास धीरे-धीरे होता है और वह निरन्तर पूर्णता और चैतन्यता की ओर अग्रसर होता रहता है जिसकी कोई सीमा नहीं है।

मानव जीवन में भौतिक नियम ही नहीं अन्य सूक्ष्म जगतों में क्रियाशील नियमों द्वारा भी नियंत्रित होते हैं। कार्य कारण के इस सर्वव्यापी नियम को सामान्यतः कर्म नियम कहते हैं। यह नियम मानव को अपने भाग्य विधाता और अपने सुख दुख का कारण बना देता है।

जीवन का विकास सभी में होता है चाहे वो पशु-पक्षी या पेड़-पौधों का विकास क्रम हो बराबर चलता ही रहता है। लेकिन मनुष्य को पूर्णता प्राप्त करने के बाद भी उसका विकास क्रम ज्ञान की ओर चलता रहता है। जन्म पुनर्जन्म की प्रक्रिया के द्वारा भी होता रहता है। जीवात्मा बार-बार जन्म लेती है और ज्ञान अनुभव प्राप्त कर अथवा उस ज्ञान को आत्मसात कर सूक्ष्म जगत में कुछ समय के लिए विश्राम करता और उसके बाद नये जीवन चक्र के लिए निकल पड़ती है और दूसरी बात यह है कि विकास की यह प्रक्रिया एक निश्चित योजना के अनुसार हो रही है। यह योजना ईश्वरीय चेतना में विद्यमान है। विभिन्न स्तरों पर

अनेक देवता, यक्ष, अपदेवता, सिद्ध साधक, इस प्रक्रिया का नियंत्रण और निर्देशन कर रहे हैं। यही मूल रहस्य है। गुरुजी कुछ देर शान्त रहे और बोले काफी गहन विषय है फिर कभी चर्चा करेंगे। मैंने कहा- आपने तो इतना सूक्ष्म और जटिल बतला दिया कि साधना करना ही कठिन है। गुरुजी हँसते हुए बोले- कोई भी साधना उपासना कठिन नहीं होती बस समझने की आवश्यकता है। सभी साधना फूल की तरह कोमल है। फूल तोड़ेंगे तो कांटे चुभेंगे, कोई बीज को खाद पानी मिट्टी समुचित मात्रा में दोगे तो एक दिन वह विशाल वृक्ष बन जायेगा। उसी तरह साधना है साधना को गहरायी से, श्रद्धा से, निष्ठापूर्वक करोगे तभी तो राह मिलेगी और मिलेगा ज्ञान....समझे।

गुरुजी के साथ मैं बचपन से रहा हर दुख सुख का साक्षी भी रहा। गुरुजी शाक्त साधक थे। मेरी निष्ठा और समर्पण को देखकर ज्योतिष का तो दिया ही ज्ञान और विभिन्न प्रकार की साधना की भी जानकारी करायी और साथ ही एक विशेष पर्व में मुझे दीक्षित भी किया। बोले- माता-पिता का दिया नाम तुम्हारे शरीर का है लेकिन साधना में गुरु प्रदत्त नाम आवश्यक होता है। गुरु प्रदत्त नाम जप, संकल्प, ध्यान, पूजा, बली आदि में आवश्यक है। उन्होने शाक्त परम्परा के अनुसार मेरा नामकरण किया साधक दिव्य दत्त। मैं सदा गुप्त रखता था लेकिन संस्मरण के दौरान उजागार करना आवश्यक है इसलिए कि किसी साधक को साधना में गुरु प्रदत्त नाम आवश्यंक है तभी वह परोक्ष अपरोक्ष रूप से उनकी कृपा और मार्ग निर्देशन प्राप्त करता रहता है। आज भी गुरुजी नहीं हैं लेकिन जब भी कोई कठिनायी आती है उनका स्मरण मात्र से स्वतः दूर हो जाती है। गुरु प्रदत्त नाम का आज मुझे अनुभव और उसका मूल्य समझ में आ रहा है।

प्रसंगवश गुरुजी ने बतलाया- नक्षत्रों के विषय में मैं कालपात्र पुस्तक में लिख चुका हूँ। जब समय मिलेगा प्रकाशित करना। साधना और सिद्धि में भी पाठकों के अनुरोध सरल तरीके से प्रकाशित करने का प्रयास कर रहा हूँ। कौन सी साधना करनी चाहिए और अन्य तथ्यों पर भी लिख रहा हूँ। खैर, यह बात तो पुस्तकों की हो गयी और बोलो क्या जानना चाहते हो। साधना का रहस्य- मैंने कहा। गुरुजी बोले- आत्म साधना ही सारी साधना की शुरूआत है और अन्त भी। तुम जितना जप कर लो, हवन कर लो, पूजा कर लो, आत्म साधना आवश्यक है क्योकि जगत गुरु परमेश्वर और गुरु आत्मा है और सद्गुरु वह है जो मार्ग प्रशस्त करे।

पहले तुम आत्मा को साधो। गुरुजी ने क्रिया बतलायी उसी के आधार पर मैं चलने लगा। शुरू में तो कोई अनुभव नहीं हुआ बाद में धीरे-धीरे होने लगा।

उनका कहना था कि आत्मा निराकार है। ऊर्जा है। जिस तरह ईश्वर निराकार है उसी तरह आत्मा निराकार है। आत्मा के वाहक तुम्हारे सात शरीर हैं और मुख्य पांच प्राण हैं। ध्यान की अवस्था में बैठकर अपनी आत्मा को आत्म ज्योति स्वरूप देखने का प्रयास करो। जब ज्योति प्रखर होने लगे और ज्योति तभी प्रखर होगी जब तुम्हारा मन एकाग्र होगा और होने लगेगा ध्यान में परिवर्तित। प्राण से होगा तादात्म्य। तभी ज्योति हो जायेगी प्रखर। तब तुम अपने मार्ग के लिए प्रार्थना करो तुम्हारे आन्तर मन में धीरे-धीरे निर्देशन मिलने लगेगा। तुम धीरे-धीरे और गहरायी में जाने लगोगे। समय का आभास भी नहीं रहेगा। एक प्रकार से समाधि की अवस्था में पहुंच जाओगे लेकिन संयम और धैर्य आवश्यक है। साधना करते समय काफी समय हो गया। गुरुजी बराबर ध्यान रखते थे। एक दिन मैंने कहा कि मुझे ऐसा लग रहा है कि मेरा शरीर मुझसे अलग हो रहा है मैं अपने शरीर से अलग हो रहा हूँ। डर के कारण साधना बीच में बन्द करनी पड़ जाती है। इसका क्या कारण है? गुरुजी हँसते हुए बोले- यह तो अच्छी बात है। इसका रहस्य जानना चाहते हो। मैंने कहा- क्यों नही। बोले तुम्हारा सूक्ष्म शरीर जाग्रत हो रहा है। उस क्रिया पर ध्यान देना आवश्यक है।

सबसे पहले मैं कुछ और तथ्य पर प्रकाश डालना चाहूंगा। जिससे तुम्हारे मन की शंका को मिल सके समाधान। योग और तंत्र और ज्योतिष यह त्रयी विद्या है। योग में ज्योतिष का महत्व है तो तंत्र में भी है। आजकल कुण्डलिनी जागरण का काफी बोलबाला है। तुम्हे पता है शरीर के अन्तर्गत सात चक्र हैं वो तुम्हारे सात शरीर से जुड़े हैं। सातों चक्रों की साधना सात शरीर की साधना है जो एक जन्म में सम्भव नहीं है ये सात सिद्धियों का भी प्रतीक है। तुमने सुना होगा- अणिमा, लघिमा, महिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाभ्य, वशित्व, ईश्वत्व। इन सिद्धियों का प्रयोग भगवान कृष्ण ने किया और हनुमान जी ने जो सर्वविदित है। शरीरस्थ जो केन्द्र है वह है मूलाधार। मूलाधार की देवी और मंत्र काफी महत्वपूर्ण है। अगर इस जन्म में मूलाधार चक्र की सिद्ध हो जाये तो साधक अपने आसन से दो हाथ ऊपर उठ सकता है। यही इसकी सिद्धी है। महिमा से जगत को सम्मोहित कर सकता है। लघिमा सिद्धी से आकाशगमन कर सकता है और प्राप्ति से कोई चमत्कार कर सकता है। गरिमा से गुरूत्व पर नियंत्रण कर सकता है। प्राप्ति से अन्तरिक्ष की

अनन्य सिद्धियां स्वतः सिद्धि हो जाती है। प्राकाम्य से वह कहीं भी प्रकट हो सकता है। वशित्व चराचर में स्वयं को साध सकता है। जब चाहे वह पानी बरसा सकता है चाहे तो कुछ भी कर सकता है प्रकृति उसके वश में हो जाती है। एक प्रकार से उस पर कृपा हो जाती है। ईश्वरत्व में ईश्वर में एकाकार हो जाना यह सातों चक्रों का रहस्य है। कुछ समझ में आया जरा हँसते हुए गुरुजी आगे बोले और कहना शुरू किया- बहुत से साधक हैं जो एक दो चक्रों का भेदन कर चुके हैं और स्वतः चमत्कार भी दिख जाता है। वो चमत्कार नहीं दिखलाते हैं और वह स्वतः हो जाता है। यह तो रही योग की बात। तंत्र भी योग का आश्रय लेता है। प्राणायाम, आसन और अन्य क्रियाओं के लिए। लेकिन तंत्र की एक अपनी क्रिया है वह भी शरीर को साधता है और अन्य सातों शरीर को भी। वह साधता है ध्यान और मंत्र द्वारा। तंत्र में भी दो धारायें हैं एक है सात्विक और दूसरी है तामसिक। तामसिक मार्ग की पूर्ण जानकारी न होने से तथाकथित साधक उसे निकृष्ट कर देते हैं। एक प्रकार से वह निकृष्ट मार्ग हो जाता है। कभी-कभी समाचार पत्रों में पढ़ता हूँ या टी.वी. में देखता हूँ कि निरीह बच्चों की बलि के बारे में तो आत्मा क्लान्त हो जाती है। मैं सोचता हूँ कि कितने नासमझ हैं ये लोग। मानव बलि से क्या उन्हे सिद्धी मिल जायेगी? वे तो एक प्रकार से उस अबोध बच्चे की हत्या कर रहे हैं बड़ा ही दुख होता है।

मैंने आगे पूछा- बलि का क्या रहस्य है? ऐसा जघन्य अपराध लोग क्यों कर रहे हैं? गुरुजी बोले- लालच, जमीन में गड़ा धन निकालने के लिए और उस बच्चे की आत्मा को वश में करने के लिए और गुलाम बनाकर ऊलजलूल काम लेने के लिए। तुम्हे पता है बलि से इसका कोई लेना देना नहीं है। कोई आत्मा वश में नहीं होती अपितु अदृश्य और घृणित आत्माएं उस तथाकथित साधक को घेर लेती हैं उल्टे वह साधक खुद उनके वश में हो जाता है और स्थिति पागलों से भी बदतर हो जाती है समझे। हाँ उस बच्चे के पितृगण जो उसके माध्यम से पुनः इस जगत में आना चाहते हैं वे भी रूष्ट हो जाते हैं और उस तथाकथित तांत्रिक की भयानक दुर्दशा भी करते हैं। उसके समूल वंश का भी नाश कर देते हैं। इन्ही सब कारणो से तंत्र बदनाम हो जाता है। तंत्र एक प्रकृष्ट विज्ञान है। बिना इसे जाने इस मार्ग में नहीं उलझना चाहिए।

कलयुग में सभी मंत्र, यंत्र, बलि से कीलित है। यहां तक की दुर्गा सप्तसती भी पढ़ो उसमें श्राप विमोचन, कीलित विमोचन कैसे किया जाता है दिया गया है।

बिना विमोचन किये पाठ का फल भी नहीं मिलता है। परमेश्वरी पार्वती बोली हे महादेव! कलयुग में मानव के पास धैर्य की कमी होगी। वह सिद्धियों का दुरूपयोग करेगा। मंहादेव बोले बात सत्य है देवी। उसके बाद जब कलयुग शुरू हुआ तब भगवान द्वारा लीला रचकर सारे मंत्र, तंत्र को कीलित कर दिया। कीलित मतलब कोडवर्ड बना दिया। जैसे तुम्हारे पास कम्प्यूटर है उसमें तुम पासवर्ड डालते हो तभी खुलता है उसी प्रकार कीलक मतलब पासवर्ड है। जो पासवर्ड का रहस्य जानेगा वही इसका उपयोग कर सकता है। गुरुजी बोले- बलि का प्रावधान है तंत्र में कहा गया है **'बलि प्रधाने पूज्यायां'**। बलि का महत्व है, पंचमकार का भी महत्व है। पंचमकार का क्या आध्यात्मिक रूप है योग तांत्रिक साधना प्रसंग में मैंने प्रसंगवश दिया भी है। हाँ कलियुग में बलि के प्रारूप अलग हैं। जो तुम नींबू की बलि देते हो वह एक मुर्गे के बराबर है, जायफल की बलि एक बकरे के बराबर है, और कद्दू की बलि एक भैंसे के बराबर है, नारियल की बलि एक मनुष्य के समान है। इसलिए उपरोक्त निहित बलि की विधिवत् पूजा करना चाहिए और लाल रोली अवश्य डाल देना चाहिए। नारियल पानी मदिरा के निमित्त होता है। सात्विक मार्ग से तंत्र साधना करने से वह सारी शक्ति और आराधना साधना सफल होती है और साधक को अभीष्ट फल की प्राप्ति स्वतः ही हो जाती है। प्रसंगवश मैंने पूछा गुरुजी से आजकल योनि पूजा का काफी प्रचार है। इसका क्या रहस्य है? गुरुजी जरा गम्भीर होकर बोले- योनि पूजा, मातृ पूजा परमेश्वरी की पूजा है। तंत्र में इसकी वृहद व्याख्या है लेकिन इसका अर्थ लोग गलत निकालते हैं और धारणा भी गलत होती है। तंत्र हो या योग इसमें आत्म और शरीर शुद्धि का काफी महत्व है और महत्व है ब्रह्मचर्य का। जो साधक शक्ति पूजा करता है उसे अपनी पत्नी के अलावा किसी अन्य नारी का स्पर्श भी वर्जित है। लेकिन तंत्र में भैरवी और महाभैरवी साधना है उसमें भी ब्रह्मचर्य का कठोर पालन करना पड़ता है साधक को। एक साधक की कथा मैंने लिखी है पुस्तक में पढ़ लेना। खैर, तुम्हे आगे बतलाता हूँ। गर्भ की पीड़ा से और जन्म मृत्यु की पीड़ा से मुक्त होने की क्रिया है। योनि का मतलब त्रिकोण। बायें तरफ ब्राह्मी, दायें तरफ वैष्णवी और नीचे कोण में रौद्री महाशक्ति का वास होता है। यही ब्रह्मा, विष्णु और महेश की शक्ति है जो चराचर जगत को नियंत्रण करती है और जो बीच में बिन्दू है वह है परमब्रह्म का प्रतीक निराकार।

योनि पूजा त्रयी महाशक्ति की पूजा है। प्रत्यक्ष पूजा कापलिक मत में होती

थी लेकिन प्रतीक पूजा का ही महत्व है। इसलिये यह माँ जगज्जननी का निराकार रूप है। तुम्हे ज्ञात है भारत में जितने पीठ हैं सब प्रतीक है कहीं मूर्ति नहीं है। इसका कारण जानते हो कलयुग में पीठ शक्ति पूजा का विधान है मूर्ति पूजा का नहीं। तुम अपने घर में देख लो पीठ पूजा ही तो होती है। गृहस्थ धर्म में देवी या देवता की मूर्ति अंगूठे के आकार की होनी चाहिए उससे बड़ा हुआ तो उस घर में अशान्ति का कारण हो सकता है। स्वर्ण, चांदी या पीतल की प्रतिमा शुभ होती है। ईश्वर को ताम्रपात्र में भोग लगाना शुभ होता है। अगर सांयकाल दीपक जलाया जाये तो वह शुद्ध घी का होना चाहिए। सरसों के तेल का दीपक ग्रहों के लिए और पितृ के लिए होता है। देवताओं को सरसों के तेल का दीपक नहीं जलाना चाहिए। देवी या देवता की फोटो पश्चिम मुख व पितरों की फोटो दक्षिण दिशा में लगाना चाहिए। इतना कह कर गुरुजी शान्त हो गये और फिर बोले- बिना दीपक जलाये पूजा प्रार्थना पूर्ण नहीं होती क्योंकि ज्योति ऊर्जा है। ब्रह्माण्डीय ऊर्जा से सभी देवी-देवता ऊर्जा रूप हैं। दीपक ही साक्षी है आपके पूजापाठ का।

गुरुजी ने आगे कहा- तुम्हे पता है हमारे धर्म शास्त्रों में कहा गया है **'तमसो मा ज्योतिर्गमय'** यानि अंधकार से प्रकाश की ओर चलने से जीवन में आत्मिक तत्वों की प्राप्ति होती है। अंधकार को एक प्रकार से अज्ञानता, भय, रोग शोक का कारक माना गया है। पुराणो के अनुसार अग्नि के सृष्टि में तीन रूप हैं। अन्तरिक्ष में विद्युत, आकाश में सूर्य और पृथ्वी पर अग्नि। पृथ्वी पर अग्नि का एक रूप और है वह अनवरत जलने वाली अग्नि। अबूझ अग्नि संसार में कहीं न कहीं जलती रहती है वह है श्मशान की अग्नि। इसे कालाग्नि कहा जाता है। तुम्हे ज्ञात होना चाहिए कि आज विज्ञान विद्युत कण को तोड़ने का प्रयास कर रहा है। अगर ऐसा होता है तो विज्ञान एक नये युग में कदम रखेगा। एक नयी क्रान्ति होगी विज्ञान जगत में। हम जिन देवी-देवता की पूजा अर्चना करते हैं पृथ्वी पर उनकी उत्पत्ति ऊर्जा रूप में हुई है। माँ दुर्गा की उत्पत्ति सभी देवतागण ने अपनी ऊर्जा से की। जगत जननी को प्रगट किया। भगवान कृष्ण देवकी के गर्भ से नहीं पैदा हुये। भगवान विष्णु ने स्वप्न में पुत्र रूप में पैदा होने की प्रेरणा दी और जब देवकी ने आंखें खोली तो देखा कि उनके बगल में भगवान कृष्ण बालरूप में लेटे हुए थे। उसी तरह दशरथ की चारो रानियों को अग्नि देव द्वारा खीर ग्रहण करने के पश्चात ही भगवान राम और उनके तीनों भाईयों का जन्म हुआ। क्योंकि ईश्वर स्वयं ऊर्जा स्वरूप है निराकार है। जब भी पृथ्वी पर किसी प्रकार का अवतार या

लीला करनी होगी वह ऊर्जा रूप में प्रगट होंगे साधारण मानव की तरह नहीं।

धीरे-धीरे मैं गुरुजी के निर्देशन में साधना करने लगा और गहरायी में भी उतरने लगा। कभी-कभी साधना सम्बन्धित समस्या या उत्सुकता पैदा होती किसी रहस्य के विषय में तो समय देखकर पूछ लेता। वे इतनी सरलता से उत्तर देते जैसे वो ज्ञान के कोई भण्डार हों। सारा कुछ उनके मस्तिष्क में है। कठिन से कठिन प्रश्नों के उत्तर तुरन्त मिल जाता था। ऐसे एक दिन मैंने पूछा-श्री यंत्र का इतना चलन हो गया जिसके यहां देखो श्री यंत्र की पूजा होती है पहले तो ऐसा नहीं था। गुरुजी बोले- पहले के लोग सन्तोषी थे। आज हर कोई धन चाहता है। रूपए पैसों के पीछे भाग रहा है। सोचता है कि श्री यंत्र की पूजा करने से लक्ष्मी का वास होगा। श्री यंत्र एक रहस्यमय यंत्र है। इसकी चर्चा मैं अन्य पुस्तकों में कर चुका हूँ लेकिन एक रहस्य बतला रहा हूँ। श्री यंत्र के जो त्रिकोण खाने हैं और एक दूसरे को काट रहे हैं यह ब्रह्माण्डीय ऊर्जा का प्रतीक एक तरह से ब्रह्माण्डीय ऊर्जा का मानचित्र है। ऊर्जा का सभी कोणों में ३६ मात्रिकाओं और चौंसठ योगिनी का बीजरूप स्थापित है। श्री यंत्र दो प्रकार का होता है। पहला गृहस्थों के लिए वह कछुए के पीठ के आकार का होना चाहिए और बिन्दू के जगह ह्रीं लिखा होता है। दूसरा है संन्यासियों के लिए पिरामिड की तरह हो और ह्रीं की जगह बिन्दू हो। बिन्दू ब्रह्म का प्रतीक है। ऐश्वर्य के साथ मोक्षकारक है। ह्रीं श्रीं यंत्र गृहस्थों के लिए शान्ति और समृद्धि का कारक है। इसे पूजा घर में रखने से वास्तु दोष भी खत्म होता है। बिन्दू स्थित श्री यंत्र संन्यासी के लिए है उसका पूजन अगर गृहस्थ करता है तो उसे कोई फायदा नहीं होगा बल्कि घर में शून्यता आ जायेगी, व्यापार आदि में मन नहीं लगेगा।

एक रहस्य और भी जान लो श्री यंत्र की तरह शिवलिंग का भी रहस्य है। श्याम रंग के शिवलिंग मोक्षकारक हैं। इनका स्थान मन्दिर में है घर में नहीं। श्याम रंग मतलब काले रंग का शिवलिंग। गृहस्थ को घर में रख कर पूजा नहीं करनी चाहिए दोष होता है। शिवलिंग का दूसरा रूप यानि नर्मदेश्वर शिवलिंग ऐश्वर्य के प्रतीक हैं। इनकी पूजा गृहस्थ घर में कर सकता है। गुरुजी बोले तुम्ही देख लो विश्वनाथ मन्दिर में नर्मदेश्वर शिवलिंग है चारो ओर ऐश्वर्य भरा पड़ा है और तुम्हारे घर के पास भगवान शंकर का स्वयंभू शिवलिंग है केदारेश्वर। इनके चारो तरफ साधु संन्यासी भरे पड़े हैं ये मोक्षकारक हैं ज्ञान कारक हैं और विश्वनाथ मंदिर में स्थापित शिवलिंग ऐश्वर्य के कारक हैं समृद्धि के कारक हैं। फर्क तुम खुद

ही देख लो। भगवान शिव एक हैं लेकिन विधान की वजह से ऊर्जा का रहस्य अलग-अलग है। काशी में केदार घाट में स्थित केदारेश्वर लिंग स्वयंभू हैं। जाकर देखो बीच में एक मोटी लकीर है। मेरी उत्सुकता और जागृत हो गयी। मैं तत्काल पूछ बैठा- इसका क्या रहस्य है? यह एक लम्बी कथा है चलो संक्षेप में बतला देता हूँ। द्वापर खत्म होने वाला था कलियुग का होने वाला था आगमन। जहां केदार मन्दिर हैं वहीं पर कुटिया बनाकर एक संन्यासी रहते थे। नाम याद नहीं है। उन्हे आकाश गमन सिद्धी प्राप्त थी। वे भगवान शिव के परम भक्त थे बिना भोग लगाये अन्न ग्रहण नहीं करते थे। प्रतिदिन खिचड़ी बनाते थे और आकाश मार्ग से कैलास जाते भगवान को भोग लगाकर वापस आते तब वही प्रसाद ग्रहण करते। एक दिन क्या हुआ इसे संयोग कहिए या भगवान की लीला उनका ध्यान कहीं और था और वे बिना भोग लगाये खिचड़ी का लगे भक्षण करने। एकाएक जब उनकी तन्द्रा भंग हुई तब काफी देर हो चुकी थी। भगवान से क्षमा मांगने लगे अपनी अंगुली से बीच दो भाग कर दिया और प्रार्थना की कि भगवान क्षमा करें आधी खिचड़ी आपको चढ़ा रहा हूँ। तभी घोर गर्जना के साथ थाली फाड़ते हुए धरती से एक शिवलिंग की तरह पिण्ड बाहर निकला। पिण्ड के ऊपर उसी तरह से निशान बना था जैसे थाली में खिचड़ी को महात्मा ने काटा था। तभी आकाशवाणी होती है कि मैं तुमसे काफी प्रसन्न हूँ तुम्हे कैलास आने की जरूरत नहीं मैं स्वयं तुम्हारे पास आ गया हूँ। तुम यहां एक मन्दिर बनवाओ मैं केदारेश्वर के नाम से कलियुग में जाना जाऊंगा। जो मेरी पूजा करेगा उसकी जो मनोकामना होगी वह पूर्ण होगी। ऐसा मेरा आशीर्वाद है। तब से साक्षात् परमेश्वर शिवशंकर काशी के केदार खण्ड के विराजमान हैं और साक्षात् हैं। काशी दो खण्डों में है दशाश्वमेध के आगे कर्म खण्ड और दशाश्वमेध के पहले ज्ञान खण्ड है। तुम खुद ही देखते हो जितने ज्ञानी साधक हुए सभी ज्ञान खण्ड की तरफ हैं। केदार मन्दिर ज्ञान खण्ड में ही है। अगर तुम साक्षात् शिव का दर्शन करना चाहते हो तो केदार मन्दिर अवश्य जाओ। आगे का मार्ग भी मिलेगा और मिलेगा ज्ञान भी। मैंने ऐसा ही किया।

समय अपनी तेजी से भाग रहा था। गुरुजी अपनी पुस्तक लिखने और अन्य कार्य में अक्सर व्यस्त रहते थे। आखिर वह समय आ ही गया जिसकी भविष्यवाणी गुरुजी बहुत पहले ही कर चुके थे। मैं अपने कार्य और प्रकाशन के अलावा मन लगा कर गुरुजी के बतलाए साधना पर भी ध्यान देता रहा। फरवरी २००० मेरे छोटे भाई अनिल की तबीयत कुछ दिनों से खराब चल रही थी और उसे पीलिया

(ज्वाईंडिस) हो गया था और वह अपने प्रति लापरवाह भी रहता था। वह ज्यादातर घर से बाहर ही रहता था। उस समय गुरुजी काफी परेशान रहने लगे शायद उन्हे कुछ आभास हो चुका था। वे अक्सर चुप रहते थे मैं इसका कारण समझ नहीं पा रहा था। खैर ५ फरवरी को रात्रि में अनिल के पेट में दर्द उठा, हम लोग घबड़ा गये। डॉक्टर चेकअप करने आये और दवा आदि दे दी थोड़ा आराम मिला लेकिन गुरुजी कुछ असहज रहे और रात्रि में सो गया छोटा भाई लेकिन प्रातः फिर दर्द उठा हम लोग हॉस्पिटल ले जाने की तैयारी कर रहे थे कि अचानक उसकी हृदय गति बन्द हो गयी। क्या कारण था पता ही नहीं चला।

माँ का तो रो-रो कर बुरा हाल था। उसे काफी ज्यादा मानती थी। मैं भी काफी दुखी हो गया समझ में नहीं आ रहा था क्या करें। घर के सभी लोग दुखी थे। सारा क्रिया कर्म हो गया। घर में सभी के चेहरे पर उदासी थी गुरुजी शान्त भाव और पहले से ज्यादा गम्भीर हो गये। माँ की तबीयत अचानक फिर खराब हो गयी। उन्हे दो महीने अस्पताल में भर्ती करना पड़ा। धीरे-धीरे वो ठीक होने लगी। एक दिन मैं गुरुजी के पास बैठा था। माँ भी वहां थी। अचानक माँ ने गुरुजी से बोली आप इतने ज्ञानी हैं मेरे बेटे को वापस नहीं बुला सकते....। इतना लोगों का कल्याण करते रहते हैं। गुरुजी चुप रहे फिर कुछ सोच कर बोले- नियती के विधान को तो मैं बदल नहीं सकता इसलिए उसकी शादी में रूचि नहीं दिखलायी। वह अल्पायु था। सोचो अगर उसकी शादी हो गयी होती तो उस बेचारी लड़की का क्या होता। उस कष्ट को सह पाती। खैर, मुझे सोचने दो गुरुजी माँ की तरफ देखते हुए बोले। पहले मैं उससे सम्पर्क तो करूं और माँ से प्रार्थना करूं तभी कुछ हो सकता है। मेरा भी मन काफी उद्विग्न था और मैं भी काफी डिप्रेशन में चला गया था। जब भी समय मिलता गुरुजी से इस विषय पर चर्चा कर ही बैठता।

एक दिन गुरुजी बोले- मैं तो सूक्ष्म शरीर द्वारा उसे देख रहा हूँ लेकिन एक रास्ता है तुम भी सम्पर्क कर सकते हो। प्लेनचिट के माध्यम से। मैंने पूछा- कैसे होगा? यह तो आप जानते ही होंगे। जानता तो हूँ लेकिन वह मेरा पुत्र है और मैं उसका पिता हूँ। मुझसे नहीं होगा। अगर मैं सम्पर्क करता हूँ तुम्हे माध्यम बनाकर तुम्हे भी तकलीफ होगी और उसे भी क्योंकि वह शरीर छोड़ कर काफी दुखी है। अक्सर मेरे पास आ जाता है। सोचो उसे देख कर मुझे अपार कष्ट होता है मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता। इधर काफी दिनों से मुझसे मिला नहीं, सम्पर्क भी नहीं कर रहा है। उससे सम्पर्क करने का एकमात्र साधन प्लेनचिट है।

अचानक बोल पड़े अरे याद आया मेरा एक शिष्य है दिल्ली में रहते हैं उनका नाम गर्गजी है। इस समय वे काफी वृद्ध हो गये हैं। उसे बुलाता हूं। एक दिन फोन नम्बर खोज रहे थे। काफी दिनों से गुरुजी से उनकी मुलाकात नहीं हुयी थी। अचानक एक दिन उन्ही का फोन आया। वे भी अनिल को काफी मानते थे। गुरुजी से सीधे उन्होने अनिल के बारे पूछा। गुरुजी ने सारा वृत्तान्त सुना दिया और मेरी माँ की तकलीफ के बारे में भी। गुरुजी से बोले कि अनिल मुझसे स्वतः ही सम्पर्क करना चाहता था तभी सम्पर्क भंग हो गया। बस इतना ही कहा इस समय मैं काफी दूर अपने दादाजी के पास हूँ। आप मेरे घर जायें। मेरे घर वाले काफी परेशान हैं। आप बनारस जायेंगे तो मैं स्वतः ही सम्पर्क कर लूंगा आपसे।

एक सप्ताह बाद वो आये मेरे ही घर पर ठहरते थे और अपना ज्यादातर समय उनका गुरुजी के साथ ही बीतता था। जब वे बनारस आये तो मैं भी उत्सुकतावश उनके आस पास रहता था। दूसरे दिन रात्रि में गुरुजी के कमरे में धूप जलाकर कागज और पेन लेकर बैठ गये गर्गजी और सामने गुरुजी के पास मेरी माँ बैठी थी और मैं भी। संयोग से गुरुजी के परम शिष्य और मेरे बचपन के मित्र अनूप अग्रवालजी आ गये। शायद गुरुजी ने उन्हे इसकी खबर दे दी थी। गुरुजी का अनूप जी पर विशेष प्रेम शुरू से रहा और काफी ज्यादा मानते भी थे और पुत्रवत् स्नेह भी देते थे।

धीरे-धीरे कमरे का वातावरण काफी भारी हो गया। मुझे अजीब सी बेचैनी और साथ ही उत्सुकता बनी थी। जब प्लेनचिट का कार्य शुरू हुआ तो मेरे भाई अनिल ने वर्णन किया सभी सुनकर हतप्रभ हो गये। बस गुरुजी प्रश्न करते जा रहे थे। इस बात से मुझे काफी बल मिला और साथ ही वैराग्य भी। इस जगत के अलावा एक और संसार है यह बात मेरे भाई ने सिद्ध कर दी थी प्लेनचिट के माध्यम से। संसार विश्वास करे या न करे लेकिन मैं उस अभौतिक जगत को पूर्णरूप से विश्वास करता हूँ। चूंकि उसका प्रत्यक्ष प्रमाण मिला और जानने को मिला वह अभौतिक जगत का रहस्य।

गुरुजी ने पूछा मृत्यु के समय कैसा अनुभव हो रहा था। वह बोला- भोर का समय था मैं बहुत ही गहरी निद्रा में था तभी लगा कि मेरा शरीर शून्य होता जा रहा है, मैं बहुत कोशिश कर रहा हूँ अपना हाथ और शरीर हिलाने का लेकिन सफलता नहीं मिल रही थी। काफी कष्ट भी हो रहा था एक अजीब सी घुटन हो रही थी लेकिन मैं विवश था। जोर से चिल्लाने की कोशिश कर रहा था। आप सभी

को बुला रहा था लेकिन मेरी आवाज आप सब तक नहीं पहुंच रही थी और फिर मेरा शरीर मेरा साथ छोड़ने लगा और मैं शरीर से अपने को अलग पाया एक झटके से। मैं काफी राहत महसूस कर रहा था और देखा कि चौकी पर मेरा शरीर निचेष्ट पड़ा है और उसे ऐसे देख रहा हूं जैसे कोई सपना देख रहा हूं। तभी चारो तरफ से रोने-चिल्लाने की आवाज आने लगी। मेरी माँ, भाई सब मेरे शरीर से लिपट कर रो रहे हैं। आप निश्चेष्ट खड़े हैं। तभी मुझे एहसास हुआ कि मेरा शरीर मुझसे अलग हो गया है लेकिन जिसे आप मृत्यु कहते हैं मुझे तो मृत्यु का जरा सा भी एहसास नहीं हो रहा था। मैं पूरी ताकत से पुनः शरीर में प्रवेश करने की कोशिश करने लगा लेकिन सफलता नहीं मिल रही थी। लगता था कि सारे प्रवेश द्वार किसी अज्ञात शक्ति ने बन्द कर दिये हों। मैं तो आप लोगों के बीच ही रहा। माँ को और आप लोगों को स्पर्श भी करना चाहता था लेकिन कोई अदृश्य दीवार पारदर्शक रूप से सामने-एकाएक आ जाती थी। मैंने बहुत कोशिश की आपसे मानसिक सम्पर्क बनाने की उसमें भी सफलता नहीं मिल रही थी। माँ के पास बैठकर उन्हे समझाना चाह रहा था। मैं बोले जा रहा था कि मैं मरा नहीं हूँ आपके पास हूँ लेकिन मेरी सारी कोशिश बेकार होती जा रही थी। वो सारे दृश्य मैं देख रहा था। मुझे नहलाया गया, मुझे बहुत सारे वस्त्रों से ढका गया लेकिन किसी ने ध्यान ही नहीं दिया मेरे शरीर को पूरब और पश्चिम लेटाया गया और ठंड भी लग रही थी मुझे। तभी एकाएक आपका ध्यान गया। आपके आदेशानुसार मेरे शरीर को उत्तर-दक्षिण लेटाया गया तब जाकर मुझे शान्ति का अनुभव हुआ। शरीर को घाट ले जाया जा रहा था मैं अपने शरीर के साथ ही था मेरी चिता जलने लगी उस समय मुझे अपने शरीर का महत्व समझ में आया। काफी पछतावा हो रहा था कि मेरी थोड़ी सी लापरवाही से मेरा शरीर मुझसे छूट गया।

मुझे बहुत दिनों से पीलिया था। मैंने घर वालों को कभी बताया ही नहीं था सोचा बेकार में घरवाले परेशान हो जायेंगे। मैं दवा आदि ले लूंगा तो ठीक हो जाऊंगा। मैं खानपान पर ध्यान ही नहीं देता था। उसी के रियेक्शन की वजह से अपने शरीर को जलते हुए देख रहा था। तभी एकाएक चारो तरफ भीड़ जुटने लगी। मैं घबरा गया इतनी भीड़ कहां से आ रही है सभी मुझे घेरे हुए थे और सब अपनी ओर खींच रहे थे बहुत तेज घबड़ाहट होने लगी सोचा यह क्या हो रहा है। अभी कितनी शान्ति थी इतने सारे लोग कहां से आ गये और मुझे कहां ले जाना चाहते हैं। मैं कुछ समझता तभी आप लोग दिखना बन्द हो गये और चारो

तरफ हल्का अंधेरा होने लगा। तभी मैं क्या देखता हूँ एक शुभ्र प्रकाश मेरे करीब आता जा रहा है। उस प्रकाश को देखते ही सारी भीड़ गायब ही हो गयी। वह प्रकाश मेरे दादाजी का था। स्वस्थ, सुन्दर, गैरिक वस्त्र पहने, चेहरे पर परम तेज और उन्हे देखते ही मुझे परम शान्ति का होने लगा अनुभव। दादाजी (स्वामी अमरमुनी जी) गम्भीर स्वर में बोले- चलो यहां क्या कर रहे हो। मैंने उनके पैर छुए और वे मेरा हाथ पकड़े आकाश की ओर जाने लगे। एक पल में मैं सब कुछ भूल गया। उनके सान्निध्य में मुझे परम शान्ति का होने लगा अनुभव। रास्ते में मैंने पूछा बाबा ये कैसी भीड़ थी? बोले- वे श्मशान में भटकती आत्माएं हैं। अतृप्त हैं। सही समय पर मैं आ गया नहीं तो वे सब तुम्हे परेशान करती।

हम लोग हतप्रभ हो गए। प्लेनचिट को गुरुजी के शिष्य पढ़ रहे थे और हम सब सुन रहे थे। माँ के आंखों से आंसू बहे जा रहे थे अपने पुत्र का कष्ट सुनकर उनका मन द्रवित होता जा रहा था। चूंकि वो माँ थी उनका कष्ट हम सब से काफी अधिक था। गुरुजी ने दोबारा प्रश्न किया- फिर क्या हुआ और इस समय कहां पर हो मतलब किस जगत में हो? यह तो मुझे पता नहीं बस कुछ पल में दादाजी के साथ में एक ऐसे स्थान पर पहुंच गया जहां चारो ओर रमणीक स्थान है। पहाड़, झरने पशु-पक्षी हैं सारा वातावरण प्रकाशमय है। जैसे सूर्य के उदय होने के पहले जो प्रकाश होता है। हल्का सिन्दूरी रंग का आकाश दिखता है वैसा वातावरण था। लेकिन यहां कोई किसी से बात नहीं करता। सब अपने काम में लगे रहते हैं। जैसा इस जगत में वैसा सब कुछ वहां है। यहां दादाजी का आश्रम गैरिक रंग का है। बहुत सारे साधु-संन्यासी हैं दादाजी के कमरे में बहुत सारी पुस्तकें हैं। वे अक्सर ध्यान करते या पढ़ते हैं और एक समय में वे प्रवचन देते हैं। काफी लोग एकत्र हो जाते हैं वे लोग कहां से आते हैं पता नहीं चलता फिर प्रवचन समाप्त होते ही चले जाते हैं। जाते हुए मैं उनको नहीं देख पाता। मेरे आने से दादाजी काफी खुश हैं। यहां पर कोई बात नहीं करता, मुझे जो पूछना होता है मैं सोचता हूँ अपने मन में तुरन्त दादाजी जवाब दे देते हैं। जो मेरे विचार में आ जाता है। एक दिन दादाजी बोले (ये सारी बातें विचारों के माध्यम से हो रही थी) तुम्हारे छोटे दादाजी का भी समय हो गया वो काफी याद कर रहे हैं मुझे। मुझे जाना ही होगा। मैं कुछ समझा नहीं छोटे दादाजी तो ठीक हैं। वे बोले स्वस्थ हैं कोई बात नहीं। प्लनेचिट मई में हुआ था। उस समय गुरुजी के पिताजी के छोटे भाई मेरे मतलब मेरे छोटे दादाजी त्रिलोकी नाथ शर्मा उम्र तो उनकी हो गयी थी लेकिन

बीमार नहीं थे हां शुगर की समस्या जरूर कई सालों से थी। अचानक १८ अगस्त २००० को हृदय की धड़कन रूक गयी और मृत्यु हो गयी। अभी अनिल के मृत्यु का आघात गुरुजी को सहन नहीं हो पा रहा था कि छोटे दादाजी के जाने से वे काफी टूट गये। जितना हो सके हम लोग उन्हे सम्भालने की कोशिश करते रहे। खैर इस प्रसंग को यहां लिखना आवश्यक था कि उस सूक्ष्म जगत में, इस दृश्य जगत में क्या हो रहा। वहां पहले से पता रहता है। जो कुछ भौतिक जगत में घटने वाला होता है। उसका ज्ञान अभौतिक जगत में पहले से ही रहता है।

खैर, आगे मेरे छोटे भाई ने यह बतलाया कि यहां सभी के निवास स्थान हैं। यहां सब कोई मानसिक रूप से वार्ता करते हैं। पक्षियों का झुण्ड उड़ता रहता है लेकिन कोई आवाज सुनायी देती। जब मैं उनकी ओर देखता हूँ तभी उनकी आवाज आती है। यहां दिन रात कुछ नहीं होता। सारा समय एक समान रहता है। कोई सोता हुआ नहीं दिखता। यहां समय का पता ही नहीं चलता है। जब मैं आप लोगों के सामने हूँ तब मेरी नजर कैलेण्डर पर नजर पड़ी। मुझे आप लोगों से बिछुड़े हुए चार महीने हो गये। यहां का चार महीना वहां का मेरे विचार से चार दिन हुआ होगा। इसलिए कह रहा हूँ कि एक दिन दादाजी से पूछा कि आप यहां कब से हैं तो वे बोले कुछ ही दिन हुआ है। जबकि यहां के समयानुसार छः-सात साल हो गये होंगे। यहां समय इतना तेज भाग रहा है जबकि वहां काल एकदम मन्द गति से चल रहा है।

गुरुजी काफी मनोयोग से प्लेनचिट के माध्यम से ये सारी बातों का मनन कर रहे थे और हम लोग बस सारी क्रिया देख रहे थे मूकवत्। तभी मेरे छोटे भाई ने कहा मेरी प्राण ऊर्जा मन्द पड़ रही है। अगली बार आऊंगा। फिर सब कुछ एक झटके से शान्त हो गया। सभी का मन उदास हो गया। गर्गजी बोले- गुरुजी आत्मा प्लेनचिट पर काफी देर नहीं रूकती है लेकिन अनिल को आप लोगों के प्रति मोह है वह तो समय से ज्यादा ही रूक गया। कोई बात नहीं हम लोग कल फिर कोशिश करेंगे। थोड़ी देर बाद सभी लोग चाय आदि पीने लगे लेकिन माँ काफी शान्त दिखी। सबके लिये चाय बनाकर लायी और शान्त मुद्रा में बैठ गयी। उसी समय मैंने पूछा गुरुजी से कि दादाजी कौन से स्तर में हैं। वे बोले सूक्ष्म जगत में बहुत सारे स्तर हैं। जिस प्रकार सात शरीर, सात आकाश यानि आयाम जोकि यह जगत है। तीन आयाम का इसलिए इसे दृश्य जगत कहते हैं। यहां पृथ्वी तत्व की अधिकता है और शरीर छूटने के बाद पृथ्वी तत्व खत्म हो जाता है केवल

रह जाता है सूक्ष्म जगत और सूक्ष्म शरीर। पृथ्वी तत्व से शरीर की शक्ति की एक सीमा है लेकिन सूक्ष्म शरीर की शक्ति की कोई सीमा नहीं होती है। उस सूक्ष्म शरीर में विचार आने की देर है वह तत्काल जहां चाहेगा वहां पहुंच सकता है। उसके लिए काल-स्थान की कोई बाधा नहीं होती। अगर यह बाधा होती है तो केवल स्थूल शरीर के साथ।

आगे गुरुजी ने बतलाया- श्मशान में अनिल की आत्मा जब पहुंची तभी अतृप्त आत्माएं जिनका पिण्डदान नहीं हुआ या अकाल मृत्यु हुई उनका क्रिया कर्म नहीं हुआ सही ढंग से। वही लोग श्मशान में पागलों की तरह भटकते रहते हैं और जब कोई नयी आत्मा आती है तो उसे घेर लेते हैं। उसके पूजा पाठ या क्रिया कर्म अथवा पिण्डदान या अंश छीनते हैं। वे सोचते हैं कि उसके माध्यम से वो मुक्त हो जायेंगे लेकिन ऐसा नहीं होता यह उनकी भूल होती है। हां एक बात अवश्य है कि अगर कमजोर आत्मा है तो उसे अपनी मण्डली में शामिल कर लेते हैं। तब उस आत्मा की काफी दुर्गति होती है।

यह तो अच्छा हुआ कि दादाजी सही समय पर आ गये चूंकि वे एक सिद्ध पुरूष थे और थे संन्यासी उनके ऊर्जा को देखकर वो सारी आत्माएं गायब हो गयी और वे अनिल को अपने जगत में ले गये। वह जगत विचार जगत है। वहां विचार द्वारा ही सारी बातें होती हैं। वहां समय न्यून है। यहां का एक वर्ष वहां का एक दिन के बराबर है। यही इसका रहस्य है।

अनिल ने मृत्यु के बाद जो अपना अनुभव बतलाया वह एकदम सत्य है। मृत्यु के बाद आत्मा वो सारी क्रिया को देखती है और अपने भाई-बन्धु को भी देखती है। वह कुछ व्यक्त नहीं कर सकती यही उसकी पीड़ा होती है। बहुत सारी आत्मा को काफी समय तक आभास ही नहीं होता कि वे मर चुके हैं। अनिल की आत्मा शुद्ध थी वह वेद पाठ आदि करता था। माँ के प्रति श्रद्धा थी इसलिए वह एक उच्चलोक में पहुंच गया। अन्य आत्मा को उस लोक तक पहुंचने में काफी समय लगता है जबकि उनकी आत्मा निर्मल नहीं हो जाती तब तक निम्नस्तर के लोकों में निवास करती है। दूसरे दिन गर्गजी ने काफी प्रयास किया लेकिन अनिल से सम्पर्क नहीं हो पाया। हम सभी काफी परेशान हो गये। गुरुजी बोले- आज रहने दो कल अमावस्या है कल पथ खुला रहता है। मैं ध्यान लगाऊंगा उसके बाद आप प्रयास करियेगा। खैर, दूसरे दिन अमावस्या थी। रात्रि का दस बज रहा था। सभी लोग अपने-अपने स्थान पर बैठ गये। गुरुजी ने ध्यान लगाया। आधे घण्टे बाद

लगा जैसे कोई कमरे में आया हो। हल्की खुशबू फैल गयी कमरे के अन्दर.... चाय का कप रखा था अपने आप गिर गया। बस गुरुजी ने गर्गजी को इशारा किया वे अपने कार्य में लग गये।

कागज पर द्रुत गति से पेन चलने लगा और गर्गजी ने सुनाना शुरू किया और अनिल ने आगे बतलाया- जब मैं वापस दादाजी के पास पहुंचा मेरी प्राण शक्ति इतनी कमजोर हो गयी थी कि मैं आप लोगों से सम्पर्क करने में अपने आपको असमर्थ पा रहा था। दादाजी मुझे देखकर मुस्कुराये और बोले- मिल आये अपने माता पिता और भाई से। उसके बाद उन्होने सिर पर हाथ फेरा और फिर धीरे-धीरे मेरी प्राण ऊर्जा का होने लगा संचार। दादाजी ने एक रहस्य बतलाया। उन्होने कहा कि तुम्हे फिर वापस जाना है अगली पीढ़ी की आराधना पूजा तुम्ही को करनी है माँ की। उन्ही की प्रेरणा से मैं ही सारा मायाजाल रच कर घरवालों को विचार शक्ति द्वारा प्रेरणा भेज रहा था। क्योंकि मुझे अब अगले स्तर पर जाना है। यहां का समय मेरा पूरा हो गया है। तुम्हारे छोटे दादाजी का इन्तजार कर रहा हूं। वो आयें और यह स्थान उन्हे सौंप कर मैं चला जाऊंगा। तुम्हे वापस जाना है। हम लोग शान्त भाव से सारी बातें सुन रहे थे और मन में दुख हुआ कि छोटे दादाजी का समय आने वाला है। यह बात हम लोगों ने उन्हे नहीं बतलायी। भविष्य का सत्य अगर वर्तमान में पता चल जाये तो कैसी मनःस्थिति होगी यह आप जान ही सकते हैं।

आगे गुरुजी बोले- सारा रहस्य तो सामने है तुम क्या चाहते हो। अनिल बोला- मैं भी आप लोगों के बिना नहीं रह पा रहा हूँ। माँ की काफी याद आती है क्योंकि वो हर समय मेरे ही बारे में सोचती रहती है और मुझे काफी तकलीफ होती है वहां। दादाजी भी यही चाहते हैं और आप लोग भी। मैं भी आना चाहता हूँ। शरीर का क्या महत्व होता है अब मुझे मालूम पड़ गया है। लोग शरीर के मूल्य को नहीं समझते। शरीर जब छूट जाता है तब उसका मूल्य समझ में आता है जैसे मुझे समझ में आ रहा है। फिर गुरुजी बोले कि तुम कैसे जन्म लोगे दादाजी ने कुछ बतलाया है। हाँ मुझे पता है- मेरा छोटा भाई बोला। दादाजी ने कहा कि तुम्हारे पिताजी परम ज्ञानी हैं पिछले तीन जन्मों के साधक हैं उन पर माँ की विशेष कृपा है उन्हे प्राणाकर्षणी विद्या की जानकारी है। आत्मा को किस प्रकार बुलाकर गर्भ में प्रवेश कराना है यह तुम्हारे पिताजी जानते हैं अपने पिताजी को बतला देना वे समझ जायेंगे। मैं ऐसी अवस्था में हूँ कि मेरा जगत में जाना अभी सम्भव नहीं

है। अभी उच्चावस्था प्राप्त करनी है। मन होगा तो मैं भी सम्पर्क साध लूंगा किसी सदस्य द्वारा और वापस आऊंगा लेकिन कब यह मुझे पता नहीं। तुम्हारा दोबारा आना कैसे हुआ गर्गजी पूछे। भाई बोला आज अमावस्या है पथ खाली रहता है। आपने ही तो अपनी प्राण ऊर्जा मुझे दी तभी तो मैं अभी तक इस जगत में ठहरा हूँ। आप ही अपने साथ मुझे लेकर आयें हैं इस जगत में। गुरुजी की ओर इशारा करते हुए बोला।

बाद में यह रहस्य खुला कि गुरुजी ने समाधि लगाकर भाई को अपनी प्राण ऊर्जा दी थी। उन्होने ही उसे दोबारा बुलाया था इस जगत में। भाई बोला- चाय पीने का मन कर रहा है माँ के हाथ का। माँ तुरन्त चाय बनाकर ले आयी और एक स्थान पर रख दी। उस समय हम लोगों ने ध्यान नहीं दिया बाद में देखा तो कप खाली था। बीच में भाई ने एक घटना और बतलायी। वहां जो उसने महसूस किया बोला एक दिन मैं टहलते हुए पहाड़ों के पास चला गया लेकिन कुछ दूरी पर घना अंधेरा जैसा दिख रहा था। वहां से काफी रोने-चिल्लाने की आवाज सुनायी दी मेरे मानस पटल पर। मैं घबड़ाकर दादाजी के पास चला आया और पूछा- ये इतनी विभत्स आवाजें कैसी थी? वे बोले- ये सब निकृष्ट आत्माएं हैं। दण्ड भोग रही हैं आपस में विलाप कर रही हैं। एक दूसरे को मार रही हैं। यही तकलीफ उनके लिए नर्क से कम नहीं है। कहा जाता कि जो लोग दूसरों की हत्या करते हैं, दूसरों को कष्ट पहुंचाते हैं, नाना प्रकार से तंग करते हैं वे लोग उस पीड़ित का श्राप और आह लेते हैं। उस समय तो उन्हे पता नहीं होता जब मर कर आते हैं तो यहीं फंस जाते हैं और कब तक ऐसी स्थिति में रहेंगे कहा नहीं जा सकता। इसलिए किसी का आह और श्राप दोनों से दूर रहना चाहिए। हत्या एक जघन्य अपराध है। ईश्वर जीवन देता है वही उसका अधिकारी होता है मृत्यु देने का भी। मनुष्य जब यह काम खुद करता है अपनी मानवता को छोड़कर तो वह ईश्वर के कार्य में हस्तक्षेप करता है तो उनकी यही गति होती है जो तुमने अभी महसूस किया उधर अब मत जाना।

एक बात उसने और बतलायी हिन्दू धर्म में पिण्डदान का काफी महत्व है और आगे कहा कि अगर आप लोग नारायण बलि और पिण्डदान, पूजापाठ ठीक से न कराते तो शायद दादाजी मुझे इतने समय तक न रख पाते। उस पूजा पाठ की वजह से वहां मुझे स्थान मिला और दादाजी का सान्निध्य भी। यहां पर कोई अदृश्य रूप से सब कुछ संचालन करता है। उनका आदेश मानसिक रूप में सभी

को मिलता रहता है लेकिन उन दिव्य संचालक को किसी ने देखा नहीं है। बस मानसपटल पर उस अदृश्य दिव्य संचालक का आदेश मिल चुका है दादाजी को इसलिए उन्होने कहा कि तुम अब जल्दी वापस जाओ। मुझे उच्चस्तर के लोक में जाना है। उसने आगे बतलाया कि यहां का आनन्दमय वातावरण ऐसा है कि जैसे हम लोग स्वर्ग की कल्पना करते हैं। यहां नर-नारी सभी हैं। सब कषाय वस्त्र पहनते हैं न यहां ठंड है और न ही गर्मी। एक समान मौसम रहता है।

चर्चा के दौरान छोटे भाई ने एक और रहस्य उजागार किया और बोला- एक दिन मैंने सामने कुछ लोगों को सोते हुए देखा तो उत्सुकता हुई। मैं दादाजी से पूछा कि यहां लोग हर समय अपने कार्य में व्यस्त रहते हैं। मैं भी आपके निर्देशानुसार जप पूजा ध्यान करता रहता हूँ। नींद कभी नहीं आती और न तो महसूस होता है। मैं जब से यहां पर हूँ पहली बार किसी को सोते हुए देख रहा हूँ। दादाजी बोले- इनका समय हो गया है। ये लोग स्थूल जगत में जन्म लेंगे इसलिए सो रहे हैं। यह सोना एक प्रकार की गहन मूर्च्छा है। प्रकृति का यही रहस्य है। जन्म-मृत्यु के बीच आत्मा कहां जाती है, कहां निवास करती है यह गुप्त ही रहता है। इसी मूर्च्छा की अवस्था में ये नया जन्म ग्रहण कर लेंगे और उनका नया जीवन और जीवन का नया अध्याय शुरू हो जायेगा। यहां का कोई भी अनुभव दृश्य और जगत याद नहीं रहेगा। जन्म लेते ही यह सूक्ष्म शरीर यहां से गायब हो जायेगा। आत्मा के वाहक के रूप में गर्भ में प्रवेश कर जायेगा। जब तुम्हारा भी नया जन्म होगा स्थूल जगत में अपने आप ही तुम ऐसी मूर्च्छा को हो जाओगे प्राप्त और यहां का अनुभव तुम्हे याद नहीं रहेगा।

मेरा मन काफी दुखी हो गया। एक तरफ दादाजी का स्नेह और अपनत्व दूसरी तरफ आप लोगों का मोह। मैं दादाजी को छोड़ने की इच्छा नहीं हो रही थी। मैं काफी द्रवित था। दादाजी उदास हो गये बोले तुम्हारे आने से मुझे काफी अच्छा लगने लगा था लेकिन आदेश है मुझे यह स्थान तो छोड़ना है आगे जाना है। मेरी साधना और तपस्या पूर्ण हो गयी। अब आगे की साधना करनी है। जब तक तुम यहां हो रूकना ही पड़ेगा। तुम्हे यहां अकेला नहीं छोड़ सकता। काफी देर तक दादाजी और मैं बाते करते रहें। ये सारी वार्ता मनोभाव से हो रही थी। आप लोगों जैसी वार्ता से नहीं। आवाज तो स्थूल जगत में है वहां ऐसा कुछ भी नहीं है और फिर आगे बतलाया कि दादाजी अपने ध्यान और पूजा में लग गये कुछ देर बाद मैंने देखा कि जो लोग मूर्च्छा की अवस्था में थे वे दोबारा नहीं दिखलायी दिये।

दादाजी का कथन सत्य लगने लगा। उन लोगों का कहीं भौतिक जगत में जन्म हो गया होगा और यहां का आनन्द और अनुभव सब विस्मृत हो गया होगा। क्या यही प्रकृति अथवा परमेश्वर की माया है? शायद जन्म और मृत्यु के बीच का रहस्य शायद रहस्य ही रहेगा। मेरे साथ भी ऐसा होगा। यहां का सुख आनन्द और दादाजी का सान्निध्य मैं भी जन्म लेते भूल जाऊंगा। शायद ऐसा ही होगा मेरे साथ भी।

अनिल शायद एक प्रकार से दुखी भी था और प्रसन्न भी था नये जीवन को पाने के लिए। आप लोगों के निवेदन और दादाजी का आदेश तो मुझे पालन करना है। आप पूर्णिमा को प्राणाकर्षणी विद्या का प्रयोग कर दें तब मेरा रास्ता साफ हो जायेगा गर्भ में प्रवेश करने के लिए। गुरुजी ने आगे पूछा किसके माध्यम से आओगे। भाई तत्काल बोला- बड़े भाई के द्वारा कभी ये मेरे बड़े भाई थे अब मेरे पिता होंगे। गुरुजी बोले मनोज तुम्हे काफी मानता था। तुम्हे छोटा भाई नहीं अपना बेटा ही समझता था। बड़ा भाई एक प्रकार से पिता तुल्य होता है। तुम्हारी भावना जान कर मैं माँ से प्रार्थना करूंगा और दादाजी के निर्देशानुसार आत्माकर्षिणी विद्या का प्रयोग करूंगा। मेरा प्रणाम कहना दादाजी को। बस उनका स्नेह और आशीर्वाद हम सभी पर सदा बना रहे। यह अब मेरी अन्तिम मुलाकात है बार-बार आना सम्भव नहीं है। काफी प्राण ऊर्जा का व्यय होता है। बस अब आपके पोते के रूप में मिलूंगा।

इतने कहते ही गर्ग साहब का कलम रूक गया। एक गहरी शान्ति सबके चेहरे पर आ गयी। उस दिन गुरुजी काफी खुश थे। माँ का तो कहना ही क्या बस बेटे को पोते के रूप में देखने के लिए व्याकुल होने लगी। सारा वातावरण शान्त था। सभी लोगों के चेहरे पर प्रसन्नता थी। तभी गुरुजी की आवाज गूंजी बोले इतना बड़ा रहस्य प्रकृति का जाने अनजाने में मेरे ने बेटे खोल दिया जिसके लिए मैं वर्षों से परेशान था। जन्म और मृत्यु के बीच का रहस्य जानकर। काफी हतप्रभ हो गया मैं कि आत्मा जब पुनर्जन्म लेती है उसे पिछला सब विस्मृत हो जाता है। यही सत्य है। यही प्रकृति की लीला है। जिसे जानने में मानव को काफी समय लगेगा।

तभी वातावरण एकाएक बोझिल हो गया। एकाएक गर्गजी की कलम स्वतः चलने लगी। गर्गजी घबड़ा का बोले- कोई अन्य आत्मा सम्पर्क करना चाहती है। क्या करें? गुरुजी गम्भीर होकर बोले- सम्पर्क करिए, देखें कौन सी आत्मा है?

गर्गजी ने पूछा- कौन है? पेपर पर शब्द उभरने लगे। आत्मा बोली- पण्डितजी मैं एक गरीब औरत हूँ। मेरा नाम मालती है मैं वर्षों से श्मशान में घूम रही हूँ। कहां जाऊं रास्ता नहीं दिख रहा। सब लोग काफी तंग करते रहते हैं पास से गुजर रही थी बस आप लोगों को देखा आपसे मिलने चली आयी। गुरुजी ने दोबारा प्रश्न किया- क्या कारण है? क्यों भटक रही हो? आत्मा बोली- ठण्ड लगने से मैं बीमार थी और मेरी मृत्यु अस्पताल में रात के समय हो गयी। मेरा पति मदिरा पिए हुए था। ठण्ड के कारण बिना नहाये ही मेरा दाह संस्कार कर दिया और क्रिया कर्म ठीक से नहीं किया। जिसके कारण मैं यहां फंस गयी। न तो अपने घर जा पा रही हूँ और न तो कहीं और। यहां से निकलने की कोशिश करती हूँ तो सब लोग पकड़ लेते हैं। बस पण्डितजी आपका सहारा है आप ही इस यातना से मुक्ति दिला सकते हैं। गुरुजी बोले- ठीक है मैं तुम्हे मुक्ति दिलवा दूंगा लेकिन कैसे? तुम्हारा गोत्र क्या है? थोड़ी देर बाद शब्द कागज पर उभरे और गोत्र आदि लिखा गया पिण्डदान में गोत्र आवश्यक होता है। गुरुजी गर्गजी की तरफ देखते हुए बोले और स्वतः उस आत्मा की व्यथा लिखती जा रही थी। पण्डितजी बस प्रेत मुक्ति पूजा और किसी ब्राह्मणी को खाना कपड़ा दे देंगे तो मैं मुक्त हो जाऊंगी लेकिन तुम मुक्त हो जाओगी हम लोगों को कैसे पता चलेगा। पण्डितजी ब्राह्मणी जब खाना खा लेगी पानी का कुल्हण अपने आप टूट जायेगा। आप समझ लीजियेगा कि मैं मुक्त हो गयी। आपको काफी पुण्य मिलेगा। मृत्यु का दिन याद है। आत्मा बोली उसने जो दिन और तारीख बतलाया उसके द्वारा तिथि निकाली गयी। गुरुजी ने किसी ब्राह्मण बुलाकर घाट किनारे प्रेत मुक्ति अनुष्ठान करा दिये और ब्राह्मणी का खाना एवं वस्त्र भी दिये ये सब घाट के पास ही हुआ। खाना जैसे समाप्त हुआ तड़ाक से कुल्हण टूट गया। ऐसा लगा जैसे कोई झटके से तोड़ दिया हो सभी लोग घबड़ा गये। गुरुजी मेरी तरफ देख कर मुस्कुरा दिये। गुरुजी और मेरे अलावा यह रहस्य और कोई नहीं जानता था। उस दिन गुरुजी काफी प्रसन्न रहे। बोले- जाने-अनजाने में एक अतृप्त आत्मा को भी मिल गयी मुक्ति। चलो उस आत्मा का आशीर्वाद तो मिला। फिर बोले- देखो बेटा हजारों आत्माएं मनुष्य की छोटी सी गलती से कितनी यातनाएं भोगती रहती हैं वर्षों तक। ऐसे पता नहीं कितनी आत्माएं होंगी जो श्मशान में भटक रही होती हैं। आदमी तो क्रिया कर्म कर भूल जाता है। क्रिया कर्म में एक छोटी सी गलती कितनी भारी पड़ती है आत्माओं को बहुत दुख होता है। ऐसी कितनी आत्माओं का मेरे माध्यम से उद्धार हुआ मैं नहीं

बतला सकता।

मैंने कहा- आपका जीवन भी कैसा है। भौतिक लोगों का भी उद्धार करते हैं और अभौतिक लोगों का भी। गुरुजी हँसते हुए बोले- मुझे तो दोनों जीवन जीना पड़ता है। यहां रहता हूँ तो सारे लोग घेरे रहते हैं और अपना दुखड़ा लेकर बैठ जाते हैं और समाधि की अवस्था में रहता हूँ तो आत्माएं घेरे रहती हैं। शायद नियति का विधान यही है।

गर्गजी एक दो दिन रहे फिर दिल्ली चले गये। पूर्णिमा आने वाली थी। एक दिन गुरुजी बोले बेटा समान आदि की व्यवस्था करो। आत्माकर्षिणी विद्या का प्रयोग करना है नहीं तो समय निकल जायेगा। आखिर वह दिन आ ही गया। पूर्णिमा का भरापूरा चांद आकाश के मध्य में रहा। चारो तरफ घोर शान्ति थी। मध्य रात्रि में गुरुजी सारा सामान लेकर छत पर गये। केवल मुझे मेरी पत्नी को बुलाया और सबको मना कर दिया। कोई छत पर नहीं आयेगा। गुरुजी उत्तर दिशा की ओर मुख कर बैठ गये अपने मृग चर्म पर और मैं एवं मेरी पत्नी रेखा पूर्व दिशा की ओर बैठ गये। गुरुजी बोले- चांद पर आप दोनों ध्यान लगाओ। हम लोग चांद को देख रहे थे काफी देर तक। गुरुजी किसी मंत्र का जप किया मेरी पत्नी के ऊपर से जायफल उतारा उसकी बलि की और पांच लौंग मंत्र पढ़ कर दिये और बोले मेरी पत्नी से इसे खा लो चूंकि उस दिन पत्नी को व्रत रखने को कहा था केवल दूध पीने का आदेश दिया गुरुजी ने सारा अनुष्ठान एक घण्टे चला। खैर, लौंग खाने के बाद पत्नी थोड़ी देर के लिए अचेत हो गयी। मैं घबड़ा गया। गुरुजी इशारे से मुझे शान्त रहने को कहा। अपने आप पत्नी की तन्द्रा भंग हुई और उसके चेहरे पर एक अजीब सी चमक पैदा हो गई कुछ पल के लिए। गुरुजी काफी प्रसन्न हुए और बोले अनुष्ठान सफल रहा। अनिल की आत्मा के लिए रास्ता सुगम हो गया। मैं थक गया हूं चलो आराम किया जाये। बहू भी सुबह से बिना खाये पिये रही जाओ उसे कुछ खिला पिला दो। मैं गुरुजी का हाथ पकड़ कर सीढ़ियों के नीचे ले आया। गुरुजी आसन पर बैठ गये थोड़ा बहुत खाना खाया और फिर बोले जाओ आराम करो। पहली बार गुरुजी के चेहरे पर शान्ति और प्रसन्नता का भाव देखा शायद बेटे की याद तरोताजा हो गयी और पुनर्जन्म लेने का मार्ग हो गया प्रशस्त ऐसा लगा मुझे।

अनिल के पुनर्जन्म लेने के छः माह पहले छोटे दादाजी संसार छोड़ दिये। हम लोगों को तो पहले से ही पता रहा और संतोष भी हो रहा था कि वे अपने

बड़े भाई मतलब बड़े दादाजी के पास चले गये। सारी स्मृति एक बार फिर मानस पटल पर जागृत हो गयी। विधि का क्या रहस्य है, इस परम सत्य को थोड़ा बहुत जान ही गये थे। उसी से संतोष हो रहा था। समय बीतता रहा अपनी गति से अनिल का पुनर्जन्म मेरे बेटे के रूप में हुआ। घर के सभी सदस्य काफी प्रसन्न थे। सबसे ज्यादा मेरी माँ हुई और हर समय बच्चे को अपने पास रखती।

एक साल बाद नामकरण गुरुजी ने किया। नाम रखा योगेश शर्मा और माँ बुलाती अर्पित। खैर, समय चक्र अपनी गति से चलता रहा। प्रकाशन और साधना अनवरत् मेरी चल रही थी। जो अनुभूति होती वह मैं गुरुजी को अवश्य बतलाता। सूक्ष्म शरीर को जानने की उत्सुकता भी थी। एक दिन समय मिला तो मैंने पूछा- सूक्ष्म शरीर का क्या रहस्य है और इसे कैसे साधा जा सकता है? गुरुजी बोले इन सब के चक्कर में मत पड़ो बस माँ की आराधना करो लेकिन मेरे जिद के आगे एक दिन उन्हे मेरी बात माननी पड़ी।

वैसे योग में सूक्ष्म शरीर को साधने की यौगिक क्रिया है और तंत्र में अपनी विशेष क्रिया। तंत्र साधक सूक्ष्म शरीर को न साधकर छाया शरीर को सर्वप्रथम साधने का प्रयास करते हैं। तंत्र में इसे बहुत ही अच्छी साधना नहीं मानी जाती। निम्न साधना के अन्तर्गत आती है यह साधना। तंत्र का एक गहन रहस्य है रूप और प्रतिरूप। हर वस्तु का रूप है तो उसका प्रतिरूप अवश्य होता है। जानते हो सर्वप्रथम ब्रह्माण्डीय ऊर्जा जिसे हम परमात्मा कहते हैं उसका अंश आत्मा है। आत्मा के विकास के पहले सूक्ष्म जगत बना होगा तभी आत्मा का क्रमिक विकास हुआ होगा और सात शरीर बना जो आत्मा का वाहक है। यह भौतिक शरीर भी आत्मा का वाहक है। उसी प्रकार प्राण का प्रतीक है। शरीर का भी प्रतिरूप है। ये भी हो सकता है कि तुम्हारा असली रूप कहीं और जगत में है और यह शरीर तुम्हारा प्रतिरूप हो। यह एक गहन विषय है। तुम्हे मैं एक दर्शन का सूक्त सुनाता हूँ। एक विचारक अपने दरवाजे पर उदास बैठा था कि तभी उसका परम मित्र मिलने आया और पूछा मित्र क्यों उदास हो और वो भी इतनी सुबह-सुबह? विचारक बोला- मैं स्वप्न देख रहा था कि मैं पंक्षी हूँ और आकाश में उड़ रहा हूँ चारो तरफ हरियाली है पेड़ पहाड़ झरने हैं बड़ा ही मनमोहक दृश्य और आनन्द भी आ रहा था कि तभी मेरी नींद खुल गयी बस तभी से ये सोच रहा हूँ कि वह पंक्षी अब सो रहा होगा और स्वप्न देख रहा होगा। मैं यहां क्या कर रहा हूँ यही बात समझ में नहीं आ रही है कि वह जगत सत्य है जिसे मैं सपने में देखा या

यह जगत जहां मैं हूँ।

बतलाओ क्या तुम्हारे पास उत्तर है। कौन सा जगत सत्य है और कौन सा असत्य? यही गम्भीर विषय है योग और तंत्र का। पहले तुम्हे छाया सिद्धि का रहस्य बतलाता हूँ। तंत्र में छाया सिद्धि साधना एक विकट साधना है। एक बार मुझे बड़ा विचित्र अनुभव हुआ। 'परलोक के खुलते रहस्य' में एक संन्यासी की व्यथा शीर्षक लिखा है। उसे पढ़ना तब तुम्हे समझ में आयेगा। खैर, आगे बतलाता हूँ- छाया सिद्धि साधना में अपने शरीर की छाया को सिद्ध करना पड़ता है। ज्यादातर अघोरी, तांत्रिक जो चमत्कार में विश्वास करते हैं वो लोग ज्यादातर छाया सिद्धि ही करते हैं। छाया शरीर एक प्रकार का प्रेत शरीर है। जब आत्मा शरीर छोड़ देती है, पिण्डदान, दसगात्र नहीं हो जाता तब तक आत्मा तेरह दिन तक प्रेत शरीर में रहती है। चूंकि आत्मा को तुरन्त शरीर चाहिए रहता है इसलिए स्वतः एक आकार बनाकर प्रेत शरीर को कर लेती है प्राप्त।

दसगात्र का मतलब दस अंग। दसगात्र अगर शुद्ध तरीके से होता है तो आत्मा तुरन्त प्रेत शरीर त्याग देती है और सूक्ष्म शरीर धारण कर लेती है। एक प्रकार से प्रेत शरीर की मुक्ति हो जाती है। अगर ऐसा नहीं होता तो आत्मा प्रेत शरीर धारण कर वर्षों तक भटकती रहती है। अगर आत्मा सूक्ष्म शरीर को होती है उपलब्ध तो उसे नये जन्म का आधार मिल जाता है। तंत्र साधक लोग क्या पहले छाया शरीर को सिद्ध करने का प्रयास करते हैं और इसकी काफी विकट क्रिया होती है। स्वयं अपने रक्त से तर्पण किया जाता है। जब छाया शरीर सिद्ध हो जाता है तो अपने प्राण द्वारा उसे संधान करना पड़ता है। एक-एक प्राण ऊर्जा को अपने शरीर से छाया में एक प्रकार से प्रत्यारोपित करना पड़ता है। जब वह प्राण द्वारा जाग्रत हो जाता है तब स्व रक्त का तर्पण कर उसे अपने अनुकूल बनाना पड़ता है। वह एक प्रकार से साधक के अदृश्य क्लोन से होता है अर्थात् उप शरीर से। उसे जो आदेश देंगे वह तत्काल करता है लेकिन ऐसे साधक की स्थिति बाद में अत्यन्त विभत्स हो जाती है। गाली-गलौज देना, झगड़ा, अव्यवहारिक काम करना उनके जीवन में शामिल हो जाता है। छाया शरीर द्वारा चमत्कार दिखाना आसान हो जाता है। लोग समझते हैं कि बहुत बड़ा सिद्ध साधक है। लेकिन वही छाया शरीर पहले तो आपके आदेश का करता है पालन और फिर प्राण ऊर्जा का करने लगता है उपयोग। फिर हर समय वह आपके सामने काले छाया के रूप दिखता रहेगा। धीरे-धीरे वही छाया शरीर अपने प्रतिरूप को न समझ कर जाग्रत मानने

लगता है और एक दिन उसी साधक का प्राण हर कर अपने छाया शरीर में प्रवेश कराने की कोशिश करता है। लेकिन ऐसा सम्भव नहीं हो पाता साधक की तो हो जाती है मौत लेकिन वही छाया शरीर, छाया शरीर न होकर एक प्रकार से प्रेत बन जाता है। ऐसे ही लोग लोगों के शरीर में प्रवेश कर नाना प्रकार का करते हैं उपद्रव। लोग कहते हैं कि व्यक्ति को प्रेत छाया पड़ गया है नैसर्गिक प्रेत बहुत ही कम लोगों को तंग करते हैं बस वे माध्यम बना कर अपनी इच्छा पूर्ण कर लेते हैं और फिर हट जाते हैं।

संक्षेप में मैंने तुम्हे बतलाया छाया शरीर और प्रेत के विषय में। योग में एक क्रिया सूक्ष्म शरीर की साधना की है। यह परम यौगिक क्रिया है यह साधक की प्राण ऊर्जा पर करता है निर्भर। जितनी घनीभूत प्राण ऊर्जा होगी उतनी जल्दी साधक सूक्ष्म शरीर को साध सकता है। साधक अगर सूक्ष्म शरीर को साध लेता है तो अपने स्थान पर बैठे-बैठे विभिन्न स्थानों का वर्णन कर सकता है और प्रगट भी हो सकता है कुछ देर के लिए। वह अतीत के गर्भ में जा सकता है और भविष्य की गहरायी में भी तत्काल पहुंच कर सब कुछ जान सकता है।

भारतीय धर्म ग्रन्थों में योगियों और साधकों ने एक साथ कई-कई स्थानों पर उनके भक्तों को दिया दर्शन। उसे लोग योग का चमत्कार कहते हैं लेकिन यह चमत्कार घटता है सूक्ष्म शरीर द्वारा। जहां तक हमें ज्ञात है गुरुजी आगे बोले- भगवान कृष्ण रास लीला के समय राधा के साथ तो मूल रूप से थे लेकिन सत्ताइस गोपिकाओं के साथ उन्होने सूक्ष्म शरीर द्वारा अपना रूप धरा और रासलीला पूर्ण की। जो सत्ताइस गोपिकाओं थीं वो सत्ताइस नक्षत्रों से जुड़ी ऊर्जा थी। जो गोपिकाओं के रूप में रासलीला पूर्ण की सारा ब्रह्माण्ड मुग्ध हो गया था इसलिए इसे महारास लीला भी कहा जाता है। खैर, सूक्ष्म शरीर के चमत्कार का वर्णन अन्य ग्रन्थों में भी मैंने किया है।

सूक्ष्म शरीर को साधना साधक के लिए महत्वपूर्ण है। समाधि की अवस्था में जब साधक हो जाता है लीन तभी वह अन्य अभौतिक स्थानों का भ्रमण कर सकता है। तुमने देखा होगा ज्यादातर साधक एक स्थान पर बैठे ही साधना करते हैं। मगर तुम ये मत सोचो कि वे एक स्थान पर ही बैठे रहते हैं। ऐसी बात नहीं है वे सूक्ष्म शरीर द्वारा विभिन्न धर्म स्थल और सिद्ध मन्दिरों और पीठों का दर्शन करते हैं और विधिवत् पूजा अर्चना भी करते हैं और पर्व के अनुसार उस स्थान पर विशेष अनुष्ठान भी करते हैं। यही रहस्य है सिद्ध साधकों का। उन्हे भौतिक शरीर से

कहीं नहीं जाना पड़ता है उनका भौतिक शरीर यहीं रहता है लेकिन ज्यादातर कार्य ऐसे साधक सूक्ष्म शरीर द्वारा ही करते हैं और अपने भक्तों की रक्षा भी समय-समय पर करते रहते हैं।

कुछ दिनों से गुरुजी अस्वस्थ्य रहने लगे थे। प्रसंग का अवसर नहीं मिला। जाड़े का समय था। गुरुजी की श्वांस की समस्या थी। दवा चली धीरे-धीरे आराम होने लगा। मैं भी अपने कार्य में व्यस्त था लेकिन दिमाग में मन्थन चलता रहा। सूक्ष्म शरीर के क्रिया पक्ष जानने की लेकिन उनकी अस्वस्थता देख कर हिम्मत नहीं हो रही थी। संयोगवश एक दिन गुरुजी के परम शिष्य देवड़ाजी अपने परिवार को साथ आये हुए थे। काफी परेशान दिख रहे थे। गुरुजी अपने बिस्तर पर लेटे हुए थे। मैं भी वहां बैठा था। डॉक्टर ने चेकअप करके दवा दी। उन्होने मुझे इशारे से बैठने को कहा। मैं चुपचाप बैठ गया। देवड़ाजी अपनी समस्या सुनाने लगे। गुरुजी लेटे हुए उनकी सारी बातें सुनते रहें। जब उनकी बातें समाप्त हो गयी तो गुरुजी कुछ पल आंखे बन्द किये रहे ऐसा लग रहा था कि गहन ध्यान अवस्था में हैं उसके बाद उन्होने अक्षरशः सारी बातें और उनके घर का नक्शा जैसे खींच कर रख दिया हो। कौन सी चीज कहां, किस कमरे में है, वहां क्या हो रहा है सारी बातें बतला दीं। देवड़ाजी हतप्रभ रह गये। उनसे रहा नहीं गया बोले- गुरुजी आप तो मेरे घर कभी नहीं गये तो कैसे आपने सारी बातें और घर के विषय में बतला दिया। गुरुजी हँसते हुए बोले- अरे बन्धू! तुम्हारे घर न जाता तो तुम्हारी समस्या का समाधान कैसे करता। कुछ देर गुरुजी गम्भीर चिन्तन में रहे आंखे बन्द किये और फिर बाद में बोले- क्या कुछ दिन पहले कुछ प्राचीन सामान (एन्टिक पीस) खरीदे थे आप। तुरन्त देवड़ाजी ने कहा हाँ गुरुजी। मेरा बेटा कोई पुराना सा एन्टिक पीस ले आया था। उसके कुछ देर तक देवड़ाजी सोचते रहे पर कुछ बोले नहीं। गुरुजी ने कुछ उपाय बतलाया और बोले जितना जल्दी हो सके वह सामान अपने घर से हटा दो। उस सामान मे साथ अशरीरी आत्मा का प्रवेश हो गया है आपके घर में। इतना कह कर गुरुजी चुप हो गये। अगले दिन आने को कहा देवड़ाजी से और वे चले गये। केवल मैं रह गया और रह गये गुरुजी। मैंने धीरे से पूछा- क्या रहस्य है? आपने तो एक पल में सारी कहानी बतला दी देवड़ाजी तो हतप्रभ रह गये। गुरुजी कुछ पल शान्त रहे फिर कुछ सोचते हुए बोले- जो पात्र देवड़ाजी अपने घर में रखे हुए हैं उसमें किसी मध्यकालीन सामन्त की आत्मा का वास है जो हर प्रकार से इन्हे परेशान कर रहा है। धीरे-धीरे इनके

पूरे घर में अपना अधिकार कर लेगा। अभी तो शुरूआत है अच्छा हुआ मुझसे सम्पर्क था चलो सब ठीक हो जायेगा।

दूसरे दिन देवड़ाजी सपरिवार साथ आये। गुरुजी ने पूजा कराया एक तांबे के कलश में कोई यंत्र डालकर उसे पूजा घर में रखने के लिए दिया और आदेश दिया कि जो ऐन्टिक पात्र है उसे आप तत्काल अपने घर से हटा दे। जहां से लाये हैं उसे वापस कर दें। ऐसा ही हुआ गुरुजी द्वारा बतलाये निर्देश का उन्होने पालन किया। धीरे-धीरे सब ठीक हो गया। गुरुजी के परम भक्त हैं और उनका सम्बन्ध अभी तक बना हुआ है। गुरुजी की समाधि के समय भी देवड़ाजी उपस्थित थे। काफी दुखी थे। लेकिन आगे की घटना यह है कि जब देवड़ाजी चले गये तब गुरुजी से पूछा मैंने- आपने बस आंखें बन्द की और दूसरे ही पल सारा वृत्तान्त बतला दिया। आप तो उनके घर भी नहीं गये और अक्षरशः सारी घटना बतला दी जैसे आप सब कुछ देख रहे हों और निवारण भी बतला दिया। इसका क्या रहस्य है? गुरुजी कुछ पल सोचते रहे और फिर लेटे-लेटे ही बहुत ही सहज ढंग से बतलाया- यह तो मेरे सूक्ष्म शरीर का कमाल रहा। बस मैंने आंखें बन्द की दो पल में देवड़ाजी के घर पहुंच गया और कारण का पता लगा लिया। इसमें न कोई मंत्र है न ही तंत्र। यह सूक्ष्म शरीर की सिध्दि है। मुझे और भी उत्सुकता जाग्रत हुई। आपने कब साधा सूक्ष्म शरीर को। गुरुजी जरा हँसते हुए बोले- अरे बेटा मेरा तो सारा जीवन इसी सबके चक्कर में बीत गया। तुम्हे क्या पता कि कितना कष्ट उठाना पड़ा और कितना रखना पड़ा धैर्य। यह सब इतना आसान नहीं है। तुम्हे पता है जो क्रिया को साधता है वही साधक है। उस समय केवल गुरुजी और मैं था। गुरुजी लेटे रहे उस समय स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा था मैं उन्हे ज्यादा परेशान नहीं करना चाहता था। बस मैं कुछ सोच रहा था तभी गुरुजी बोले चलो तुम्हे एक रहस्य दिखलाता हूँ। चाय पिलाओगे। गुरुजी चाय के काफी शौकीन थे। मैंने बोला- अभी पिलाता हूँ। थोड़ी देर बाद बस दो पल के लिए आंखे बन्द किये ही बोले जाओ मेरे अध्ययन कक्ष। उनका अध्ययन कक्ष और बेडरूम जहां वो सोते और अध्ययन करते थे और लिखते थे पुस्तक। मैं तत्काल उठा और अध्ययन कक्ष में गया देखा वहां नाईट बल्ब जल रहा था। एक अजीब सी सुगन्ध कमरे में महसूस हुई। जैसे ही मेरी गुरुजी की कुर्सी पर नजर गयी मैं हतप्रभ हो गया ऐसा लगा जैसे गुरुजी अपने कुर्सी पर बैठे हों। मैं घबड़ा गया और वापस आ गया जहां गुरुजी लेटे हुए थे। वे वैसे ही आंख बन्द किये थे जैसे कुछ

सोच रहे हों। मुझसे रहा नहीं गया दोबारा गया और देखा गुरुजी की छवि एक पारदर्शक रूप में कुर्सी पर बैठी हुई है और तत्काल गायब हो गयी। मैं हतप्रभ कुछ पल खड़ा रहा। एक झटके से वापस आया देखा गुरुजी मुस्कुरा रहे हैं। बोले कहना मत किसी से तुमने जो देखा वह मेरा सूक्ष्म शरीर था। यह बात काफी दिनों तक किसी से नहीं बतलायी लेकिन यह स्मरण आज लिखते समय उजागर करना पड़ रहा है। यह रहस्य उसी समय ज्ञात हो गया था मुझे। जो अदृश्य जगत की आत्माओं से सम्पर्क करते थे उसी सूक्ष्म शरीर द्वारा और इसी के माध्यम से करते थे कल्याण लोगों का।

बस मैं उसी दिन से गुरुजी के पीछे पड़ गया इसका रहस्य और साधना विधि जानने के लिए। काफी समय तक गुरुजी टालते रहे। मैं भी अपने जिद पर अड़ा रहा। संयोगवश एक दिन उनसे रहा नहीं गया बोले- तुम्हारी लगन और जिद देखकर विधि बतला दे रहा हूँ। यह तीन चरण की विधि है। सारी क्रिया, ध्यान और एकाग्रता की परम स्थिति है और है प्राण ऊर्जा की।

सर्वप्रथम अपना समय ठीक करो। जिस समय साधना करनी है तुम कहीं भी रहो साधना का ख्याल रखो। समय काफी महत्वपूर्ण है। मैंने रात्रि का समय चुना। रात्रि दस से ग्यारह बजे। गुरुजी ने बतलाया प्राणशोधन की विधि जो प्राणायाम की विशेष क्रिया थी और थी त्राटक करने की विधि। मैंने कारण पूछा जो गुरुजी बोले कि प्राण ऊर्जा काफी महत्वपूर्ण है। सूक्ष्म शरीर के लिए प्राण ऊर्जा ही वाहक है। सूक्ष्म शरीर को साधने की प्राचीन काल में बलि प्रथा का यही रहस्य है। साधक बलि से निकली प्राण ऊर्जा को माँ के प्रसाद के रूप में विशेष क्रिया द्वारा अपने शरीर में साध लेते थे जिससे उनका सूक्ष्म शरीर काफी ताकतवर हो जाता है लेकिन तुम्हे सात्विक बलि कर उस प्राण ऊर्जा को ग्रहण करना होगा। खैर यह बाद की क्रिया है और त्राटक का क्या रहस्य है? गुरुजी बोले-त्राटक से मन एकाग्र होगा। जब सूक्ष्म शरीर की साधना करोगे उस समय आंखों की पुतलियां घूमनी नहीं चाहिए। आंखें बन्द रहे और पुतलियां स्थिर रहे तभी सफलता मिलेगी। बस मैं अपनी साधना में लग गया। गुरुजी द्वारा बतलायी प्राण शोधन और त्राटक का अनवरत अभ्यास करता रहा। बीच-बीच में जो अनुभव होते जरूर पूछते गुरुजी। मैं भी जो अनुभव प्राप्त करता उसे समय-समय पर बतला देता। जब इस क्रिया से गुरुजी सन्तुष्ट हो गये लगभग पैंतालिस दिन बाद तब गुरुजी ने कहा कि प्राण शोधन ठीकठाक चल रहा है अब कुम्भक का अभ्यास करो। जितना देर

कुम्भक कर सकते हो करो। फिर मैंने श्वांस को रोकने का अभ्यास किया। साथ में यह भी बतलाया था कि जब कुम्भक इतना हो जाये जैसे दम घुटने लगे तो फिर उसे धीरे-धीरे छोड़ो। कुम्भक के साथ-साथ मूल बन्ध, उड्डियान बन्ध और जालन्धर बन्ध का भी अभ्यास बतलाया। इसके अभ्यास के बाद प्राण को रोकने और छोड़ने में सफलता प्राप्त की। सारी क्रिया काफी दिनों तक चलती रही। मैं जानता था कि गुरुजी कुछ बोल नहीं रहे हैं लेकिन उनका ध्यान मेरी क्रिया पर लगा रहता था।

एक दिन गुरुजी ने बतलाया कैसे तुम सूक्ष्म शरीर का करोगे अनुभव? सर्वप्रथम यह क्रिया अपने मन्दिर से शुरू करो। वहां पर सुरक्षा रहेगी क्योंकि सूक्ष्म शरीर की साधना सरल नहीं है। इसे धीरे-धीरे साधा जाता है क्योंकि जब सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से बाहर निकलेगा तब अतृप्त आत्माएं आकर्षित होने लगती है। जब पूर्ण क्रिया कर लोगे तब कोई डर नहीं तुम कहीं भी बैठ कर सूक्ष्म शरीर द्वारा जो जानना चाहोगे, जहां भी जाना चाहोगे जा सकते हो।

गुरुजी के निर्देशानुसार मैंने अभ्यास शुरू किया। अपने आसन के हाथ की दूरी पर उसी रंग मतलब लाल रंग के आसन को लगाया। उन्होने कहा था कि कुम्भक तब तक साधो जब तक ऐसा लगे कि प्राण निकल जायेगा तब धीरे-धीरे श्वांस छोड़ो और अनुभव करो कि तुम्हारे शरीर से तुम्हारा प्रतिरूप सूक्ष्म शरीर धुएं का आकार ले रहा है और वह तुम्हारा हमशक्ल है। उसे अपने पीछे खड़ा होने का अनुभव करो। फिर उसे आदेश दो मानसिक रूप से कि वह जो आसन बगल में लगाया है उस पर बैठे और फिर जिस तरह से तुम माँ की पूजा करते हो उसी तरह से सारी क्रिया सूक्ष्म शरीर को दोहराने दो। बस आंखे बन्द कर उसे देखने की कोशिश करो। मैंने ऐसा ही किया। काफी समय बाद अनुभव होने लगा जैसे मैं पूजा पाठ करता था उसी तरह मेरा सूक्ष्म शरीर करने लगे। मुझे जरा भी आभास नहीं होता कि वह कार्य मैं कर रहा हूँ या मेरा सूक्ष्म शरीर। लेकिन सफलता काफी दिनों बाद मिली। उसके बाद मैं गुरुजी के आदेशानुसार धीरे-धीरे सूक्ष्म शरीर को अपने घर जाने दिया और देखने की कोशिश करने लगा। घर के सदस्य उस समय क्या कर रहे हैं। उसी तरह वापस बुलाकर पुनः प्रवेश करा देता उसी क्रिया द्वारा। गुरुजी का आदेश था कि जिस तरह सूक्ष्म शरीर को बाहर निकालो उसी क्रिया द्वारा शरीर में प्रवेश भी कराओ।

एक दिन गुरुजी बोले इसमें निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता है। जिसको

सूक्ष्म शरीर सध जाता है वह साधक मृत्यु के बाद प्रेत शरीर को नहीं होता उपलब्ध क्योंकि आत्मा बिना शरीर के नहीं रहती वह तत्काल अपने वासना के अनुसार शरीर बना लेती है और जब तक आत्मा की वासना क्षय नहीं हो जाती तब तक वह प्रेतयोनि में काफी समय तक भटकती रहती है। वासना के क्षय के बाद वह सूक्ष्म शरीर में प्रवेश करती है। इसी को प्रेत मुक्ति कहते हैं लेकिन साधक अगर सूक्ष्म शरीर को जीते जी साध लेता है और प्राण ऊर्जा उसमें भरपूर होती है तब स्थूल शरीर छूटते ही वह प्रेत शरीर में न जाकर उसकी आत्मा सीधे सूक्ष्म शरीर को हो जाती है उपलब्ध। अपनी इच्छानुसार अनन्त यात्रा पर निकल जाती है और अपने भक्तों को, इष्ट मित्रों को दर्शन भी देती है और समय-समय पर अपरोक्ष रूप से सहायता भी करती रहती है और जब चाहे अपने लिए योग्य गर्भ की तलाश कर पुनः जन्म ले लेती है आत्मा।

यह जानने के बाद मैं और भी तन मन से लग गया। जो भी पूजा जप करता उसे सूक्ष्म शरीर द्वारा करने लगा। एक दिन गुरुजी बोले- तुम जिसकी साधना करते हो वह महाकाल की शक्ति तारा हैं। उनका निवास स्थान श्मशान है। अब तुम्हारा सूक्ष्म शरीर बाहर जा सकता है। तुम्हारे सूक्ष्म शरीर को और प्राण ऊर्जा चाहिए तभी वह विचरण कर सकता है। अपने मन्दिर में बैठो ध्यान की अवस्था में और जो क्रिया बतलायी उसके अनुसार अपने सूक्ष्म शरीर को माध्यम से श्मशान जाओ वह भी रात्रि में। वहां जाकर माँ का बीज मंत्र जप करो तब देखो कितना आनन्द आता है और कैसा होता है अनुभव......। मैंने पूछा यह कब से शुरू किया जाये। आप तो हैं ही डर की कोई बात तो नहीं है। गुरुजी हँसते हुए बोले कि घबड़ाते क्यों हो। मेरे सूक्ष्म शरीर का अनुभव तो तुम कर ही चुके हो। जाओ मैं तुम्हारे साथ रहूंगा अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा। गुरुजी आगे बोले- अमावस्या का दिन ठीक रहेगा। एक सप्ताह बाद अमावस्या का दिन आया। मैं मन्दिर में बैठ कर क्रिया को दोहराया और अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा श्मशान के नजदीक एक स्थान पर बैठ कर माँ के बीज मंत्र का जप करने लगा। सप्ताह भर तो कोई अनुभव नहीं हुआ और न ही कुछ देख पाया बस चारो तरफ घोर अन्धकार और श्मशान की अनुभूति बस होती रही कि मैं श्मशान में बैठ कर जप कर रहा हूँ। यह अनुभव मुझे बराबर होता रहा। ऐसा अनुभव हो रहा था कि जैसे नेगेटिव फिल्म में होता है। केवल आप उस फिल्म में व्यक्ति का आभास कर सकते हैं। जब वह फिल्म पॉजिटिव बन जाती है तब वही सारी फोटो साफ हो जाती

है। ऐसा लग रहा था कि सारी छाया है चल फिर रही है, चिताएं जल रहीं हैं लौ नीली लग रही है। जब जप समाप्त होता है उसी प्रकार जैसा कि गुरुजी ने निर्देश दिया मैं वापस आ जाता और अनुभूति करता कि मेरा सूक्ष्म शरीर मेरे पार्थिव शरीर में समाहित हो गया। सारे अनुभव का वृत्तान्त मैं गुरुजी के सामने रख देता। लेकिन उनके द्वारा अनुभव और देखे गये स्थान का अक्षरशः वर्णन करना और अपने सूक्ष्म शरीर का एक पल में दर्शन करा देना ऐसा कुछ भी मेरे साथ नहीं हो रहा था। एक दिन मुझे उदास देख कर गुरुजी बोले- देखो मेरा शरीर तो अब कमजोर हो गया है। यह प्रकृति का नियम और शरीर की सीमा है लेकिन प्रकृति का प्रभाव मेरे सूक्ष्म शरीर पर नहीं पड़ता। आज मैं जो कुछ हूँ सूक्ष्म शरीर के कारण। मेरा सूक्ष्म शरीर मेरे भौतिक शरीर से काफी सशक्त है और है क्रियाशील। अगर मैं शरीर छोड़ दूंगा तो मुझे फर्क नहीं पड़ेगा। शरीर त्याग करते ही सूक्ष्म शरीर को मेरी आत्मा उपलब्ध हो जायेगी। अब मेरे लिए दोनों शरीर बराबर है बस कुछ लिखना चाहता हूं इसलिए इस शरीर में हूँ। अब कोई मोह माया नहीं है इस नश्वर शरीर से।

तुम्हारे साथ जो हो रहा है मेरे साथ भी ऐसा अनुभव होता रहा जैसे-जैसे सूक्ष्म शरीर में प्राण ऊर्जा प्रवाहित होगी सारे दृश्य और अनुभूति धीरे-धीरे साफ होते चले जायेंगे। तुम अपने आसन पर बैठे ध्यान की अवस्था में चलचित्र की तरह जो चाहोगे वह दृश्य दिखेगा और होगा अनुभव। लेकिन घबड़ाने से फायदा नहीं है धैर्य रखो। जब तुम सक्षम हो जाओगे दुनिया के किसी भी कोने में किसी महात्मा से अपने पुरखों से सूक्ष्म शरीर द्वारा सम्पर्क कर सकोगे लेकिन इन सब में समय लगेगा। अभी थोड़ी दूर जाने पर ही तुम्हारे सूक्ष्म शरीर की प्राण ऊर्जा कम होने लगती है। अपनी प्राण शक्ति को बढ़ाओ। जो क्रियाएं बतलायी हैं उसे निष्ठापूर्वक करो। माँ जगज्जननी के मंत्र का निरन्तर जप करो। उस मंत्र में असीम प्राण ऊर्जा देने की शक्ति है।

मैं प्रतिदिन अभ्यास करता रहा खासकर रात्रि में। एक दिन मन्दिर में ध्यान की अवस्था में रहा। मध्य रात्रि का समय था चारो तरफ सन्नाटा। माँ के मन्दिर में दीपक जल रहा था। धूपबत्ती की सुगन्ध चारो तरफ फैली हुई थी। मुझे असीम आनन्द की अनुभूति हो रही थी। जिसका वर्णन नहीं कर सकता। तभी मुझे गुरुजी की आवाज सुनायी दी ऐसा लगा जैसे गुरुजी के कमरे काफी लोग बैठे हैं और गुरुजी काफी हँस-हँस कर बातें कर रहे हों। मुझसे रहा नहीं गया। जब मेरी

साधना समाप्त हुई तो मैं गुरुजी के कमरे गया तो देखा कि वे तो गहरी निद्रा में सो रहे हैं। लेकिन चन्दन की गहरी सुगन्ध उनके कमरे में फैली हुई थी। नाईट बल्ब की पीली रोशनी चारो तरफ अन्धकार मिटाने की भरसक कोशिश कर रही थी। गुरुजी शान्त निर्विकार गहरी नींद के आगोश में थे। मैं कुछ बोला नहीं चुपचाप अपने कमरे में आ गया। कुछ देर सोचता रहा कि गुरुजी किससे बातें कर रहे हैं। एकदम साफ आवाज मुझे सुनायी दे रही थी। यही सब सोचते-सोचते मैं कब नींद के आगोश में चला गया पता ही नहीं चला। दूसरे दिन जब गुरुजी से मिला तो उनके चेहरे पर एक अवर्णनीय शान्ति और तेज दिख रहा था। जब मैंने गुरुजी से पूछा कि रात में जब मैं अभ्यास कर रहा था और ध्यान की गहरी अवस्था में पहुंचा तो उसी समय लगा कि आपके कमरे काफी लोग बैठे हैं और आप उनसे प्रसन्न मुद्रा में बातें कर रहे हैं। गुरुजी मुझसे मुस्कुराते हुए सहज भाव में बोले- कुछ सूक्ष्म शरीरधारी आत्माएं इधर आकाश मार्ग से गुजर रहीं थीं बस मुझसे मिलने चली चली आयीं। दिव्य आत्माएं थीं बस थोड़ा सत्संग हो गया लेकिन आप तो सो रहे थे। गुरुजी बोले अरे बेटा मैं सोता कब हूँ केवल दिन में दो घण्टे सोता हूँ। रात्रि तो अपनी होती है। जब सारा जगत सो जाता है तो साधक जागता है। हँसते हुए बोले तुम सूक्ष्म शरीर को साधने का अभ्यास कर रहे हो न और ध्यान की गहरी अवस्था में तुम्हारी आत्मा चली जाती है और सूक्ष्म शरीर हो जाता है सक्रिय। उस समय तुम सूक्ष्म शरीर में थे इसलिए तुम्हे हम लोगों की बातें अकस्मात सुनायी दी होगी। तुम्हे कोई शब्द सुनायी नहीं दिये होंगे। जैसे आम लोग सुनते हैं वैसे सूक्ष्म वाक तुम्हारा सूक्ष्म शरीर ही सुना होगा और तुम्हारी चेतना को लगा होगा कि मैं बातें कर रहा हूँ। गुरुजी कुछ देर रूक कर बोले कि तुम्हारी प्रगति अच्छी है। बस तीसरे चरण की तैयारी करनी है। वह थोड़ा कठिन है। अगर तीसरा चरण सिद्ध हो जायेगा तो मुझे काफी प्रसन्नता होगी। मैं चाहे इस शरीर में रहूं या सूक्ष्म शरीर में तुमसे जब कभी भी चाहूंगा सम्पर्क कर सकता हूँ और तुम भी जब चाहोगे मुझसे सम्पर्क स्थापित कर सकते हो। एक प्रकार से अच्छा भी रहेगा। थोड़ा उदास होकर गुरुजी बोले कि आज नहीं तो कल संसार छूट ही जायेगा। पता नहीं कब भौतिक शरीर मिले यह तो ईश्वर पर निर्भर करता है। हम जैसे लोगों को योग्य गर्भ काफी मुश्किल से मिलता है लेकिन मेरा सम्पर्क बराबर बना रहेगा। बस यही चाहता हूं कि तुम अपनी साधना पूर्ण कर लो। मेरे लिए अच्छा रहेगा और तुम्हारे लिए भी। मेरा मार्गदर्शन और आशीर्वाद तुम्हे समय-समय पर मिलता रहेगा। मैं बीच में बोल पड़ा- अभी ऐसी बातें क्यों करते

हैं। अभी तो आपको इस संसार के लिए जीना है। अभी काफी समय रहना है। जितना जल्दी हो सकेगा मैं अपनी साधना को पूर्ण करने की कोशिश करता हूँ। आप निराशाजनक बातें मन से हटा कर अपनी पुस्तक पूर्ण करने में मन लगायें। लेकिन गुरुजी को पहली बार इतनी निराशाजनक बातें करते हुए सुना शायद किसी आकस्मिक घटना का इन्जार कर रहे हों। वो कुछ कहना चाह रहे थे पर कह नहीं पाये। बस बोले मेरी चिन्ता मत कर अपनी माँ का ध्यान रखो। उनकी खूब सेवा करो। इतना सुनते ही मेरे शरीर में जैसे रक्त ही सूख गया हो। कोई बात खुल कर नहीं बोलते थे। बस उनका इशारा कर देते थे। ऐसा अनुभव मैं पहले भी कर चुका था! एक गहरी और अदृश्य घटना का मिल रहा था आभास। नवरात्र २००१ मेरी माँ पूजा की तैयारी कर रही थी। एकाएक तबीयत खराब को गयी। डॉक्टर आया चेकअप किया बोले तुरन्त इन्हे अस्पताल में भरती करवायें। तबीयत गंभीर है हम लोगों ने पास के अस्पताल में भरती करवा दिया। नवरात्र की पंचमी को माँ को दिल का दौरा पड़ा और देखते ही देखते उनकी श्वांस बन्द हो गयी और उनका शरीर एक पल में निष्प्राण हो गया। गुरुजी भी उस समय मेरी माँ के पास में रहे। बस देखा वह माँ के सिर पर हाथ फेर रहे थे। जैसे उनकी आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना कर रहे हों और उनकी आंखें सजल थीं। मेरी तरफ देखते हुए बोले- घर जा रहा हूँ अपनी माँ के शरीर को लेकर आओ। ऐसा लगा जैसे अन्दर से टूट गये हों। मेरी माँ से उनका काफी लगाव और अपनत्व था क्योंकि माँ अक्सर गुरुजी के पास रहती थी। लेकिन सन्तुष्टि की बात तो यह थी कि अपने पुत्र अनिल का पुनर्जन्म पोते के रूप में देखकर उनकी आत्मा सन्तुष्ट हो चुकी थी। क्योंकि मेरे पुत्र योगेश का जन्म १० जनवरी २००१ को हो चुका था। मृत्यु के बाद मेरी माँ के चेहरे पर असीम शान्ति थी। रात्रि में माँ गुजर गयी थीं उनका क्रिया कर्म अगले दिन किया गया। गुरुजी का आदेश था कि सारा क्रिया कर्म मैं ही करूं और मैंने उनके आदेश का पालन किया विधिवत माँ का क्रिया कर्म हुआ। गुरुजी अपने चिरपरिचित हरिश्चन्द्र घाट के बगल में बने लाली घाट पर बैठ कर सारा क्रिया कर्म चुपचाप देखते रहें। हल्के ठण्ड का समय धीरे-धीरे सायंकाल होने लगी। कार्य समाप्त करते-करते सारा कर्म करने के बाद जब मैं गुरुजी के पास पहुंचा तो घर चलने को कहा उन्होने इशारा किया कि तुम चलो मैं अभी आता हूँ। उनके प्रिय शिष्य अनूप अग्रवाल से मैंने कहा कि आप गुरुजी के साथ रहें और उन्हे अपने साथ लेकर आइयेगा। अनूप जी गुरुजी के साथ ही रहे। रात्रि के नौ बजे गुरुजी घर आये और स्नान कर अपने कमरे में चले गये। चूंकि गुरुजी

का काफी स्नेह रहा माँ के प्रति पहली बार पल-पल टूटते देख रहा था। मेरा मन भी काफी दुखी था लेकिन अपना दुख भूलकर गुरुजी का ख्याल रखना आवश्यक था। गुरुजी बोले- वर्षो से हजारो शव को राख में परिवर्तित होते देखता रहा आज अपनी पत्नी को भी राख में बदलते देखा बस यही सत्य है। शायद मेरा शरीर भी इसी तरह राख में बदल जायेगा। उस अपार दुख को तुम्हे गले लगाना होगा। नितान्त अकेले यही परम सत्य है। संसार चलता रहेगा, लोग आते रहेंगे। अपने को मजबूत करो और तटस्थ बनो। अगले दिन क्या देखता हूँ कि गुरुजी अपने अध्ययन कक्ष में बैठकर बस पुस्तक को पूर्ण करने लगे। मैंने बस उन्हे देखा और शान्त भाव से एक कुर्सी पर बैठ गया। जब उनकी तन्द्रा भंग हुई तो मेरी ओर देखते हुए बोले- दुख तो नैसर्गिक है। समय अमूल्य है वह तो अपनी परम गति से चलता रहेगा। तुम्हारी माँ के कष्ट को भूलने के लिए बस यही सहारा है। अब मुझे बस पुस्तक पूर्ण करनी है। उसके बाद गुरुजी का ज्यादातर समय केवल अध्ययन कक्ष और लिखने में बीतता रहा। घर वीरान हो गया था। मैं अपने साधना पूजा पाठ में लगा रहता और अन्य कार्य को निपटाने में। घर में केवल मेरे दो बच्चे, पत्नी रेखा और गुरुजी। कभीकभार भक्त लोग मिलने चले आते। मैंने गुरुजी की सेवा में पत्नी को लगा दिया। उस समय थोड़ा अस्वस्थ भी थे। श्वांस की बीमारी तो पुरानी थी उनके खाने पीने और सेवा भाव में कोई कसर नहीं छोड़ती थी मेरी पत्नी। लेकिन सबकी अपनी दिनचर्या होती है। अक्सर गुरुजी अकेले हो जाते उनका ज्यादातर समय ध्यान पूजा पाठ और पुस्तक में लगा रहता। पाठकों की मांग की वजह से जल्दी-जल्दी पुस्तकें भी प्रकाशित करनी थी इससे मैं और भी अधिक व्यस्त हो गया। बहुत सारी पाण्डुलिपि थी उसे खोज-खोज कर पुस्तक के लिए गुरुजी के समक्ष रखना होता था। जैसे तैसे पुस्तक पूर्ण हुई। तीसरा नेत्र द्वितीय खण्ड, मरणोत्तर जीवन का रहस्य, अभौतिक सत्ता में प्रवेश, कारण पात्र। उस दुख को भूलकर आगे बढ़ने की कोशिश करने लगे हम सब। एक दिन मेरी पत्नी बोली कि काम बढ़ गया है आप भी व्यस्त रहते है। अक्सर गुरुजी अकेले रहते हैं उनकी उम्र हो गयी है क्या किया जाये। आफिस के काम के लिए कोई स्टाफ रख लेते हैं। गुरुजी का काम हल्का हो जायेगा। मैंने अपनी पत्नी से कहा कि कोई महिला मिल जायेगी तो तुम्हे भी सहारा मिल जायेगा और गुरुजी के आफिस का काम भी संभाल लेगी।

माँ के रहने से मुझे काफी सहारा था उनके जाने के बाद मैं काफी दुखी

रहता था क्योंकि मैं शुरू से ही माँ और पिता दोनों से लगाव कुछ ज्यादा ही रखता था यदि हल्का सा भी माँ या पिताजी को कुछ हो जाता था तो मैं दिन रात एक करके उन्हे ठीक करने में लग जाता था लेकिन काम तो करना था और अपनी साधना भी पूर्ण करनी थी और साथ में पुस्तक का प्रकाशन भी। सारा काम तो हो रहा था लेकिन सूक्ष्म शरीर की साधना पूर्ण नहीं हो पा रही थी। कभी-कभी हिम्मत करके गुरुजी से पूछता तो वे यही कहते कि साधना का बीच में रूकना ठीक नहीं है। तुम्हारी माँ के मृत्यु के बाद तुम्हारा मन भी अस्थिर हो गया है। खैर, पिछली क्रिया को दोहराओ और आगे जो तीसरी क्रिया है सूक्ष्म शरीर द्वारा गमन करना समय आयेगा तो बतला दूंगा। लेकिन वह समय नहीं आया या तो प्रकृति नहीं चाहती थी या हो सकता है नियति नहीं चाह रही थी। हो सकता है माँ जगज्जननी की कोई इच्छा हो। समय अपनी गति से चलता रहा।

समय बालू की तरह हाथ से सरकता जा रहा था। पता नहीं चला समय ने एक ऐसे मोड़ पर ला खड़ा कर दिया जिसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी।

वह साधना आज भी अधूरी है और सूक्ष्म शरीर के तीसरे चरण का रहस्य मतलब सूक्ष्म शरीर के गमन का रहस्य, रहस्य ही रह गया। जिसकी भरपायी शायद कभी भी न हो सकेगी। यह रहस्य गुरुजी के साथ ही चला गया। वे एक परम सिद्ध साधक थे। असीम ज्ञान व सिद्धियां भी थी लोग उन्हे पहचान न सके। जब मैं उन्हे जान पाया और उनकी सिद्धियों का चमत्कार देखा, कुछ सीखने और जानने का समय निकाला कि कुछ और भी जान सकूं और ज्ञान को हो जाऊं उपलब्ध शायद नियति में कुछ और ही लिखा था। सूक्ष्म शरीर के भेदन का रहस्य जान गया होता तो शायद मेरे जीवन की परम उपलब्धि होती।

खैर समय बीतता रहा। स्टाफ के बारे में गुरुजी से चर्चा की। गुरुजी हँसते हुए बोले- तुम कहां से इन्तजाम करोगे माँ जगज्जननी स्वयं कर देंगी। ऐसा ही हुआ। एक दिन एक ब्राह्मण परिवार गुरुजी से मिलने आया शायद कोई समस्या रही होगी। उसी दौरान मेरी पत्नी वहां बैठी थी और मैं कहीं गया हुआ था। बातचीत के दौरान स्टाफ रखने की बात चली तत्काल वह महिला बोली गुरुजी मेरी बेटी है। कम्प्यूटर और ऑफिस का काम जानती है। पढ़ी लिखी है आप बोले तो उसे लेकर कल आ जाऊंगी। वह आपकी और भाभी की सहायता दोनों का काम कर देगी जब तक नौकरी नहीं मिलती आपकी सेवा करेगी।

दूसरे दिन ग्यारह बजे वह महिला अपनी बेटी को लेकर आयी। मैं भी

मिला। काम के बारे में बात हुई। मुझे लगा कि काम कर सकती है। बस फिर क्या था वह लड़की अगले दिन आयी। नाम था नीतू शुक्ला। हँसमुख, मृदु स्वभाव और अपने कार्य में पारंगत। पत्नी भी खुश हो गयी और गुरुजी भी व्यस्त रहने लगे। प्रकाशन का कार्य भी सुचारू रूप से चलने लगा। धीरे-धीरे गुरुजी माँ के दुख से उबरने लगे।

समय अपनी गति से चलता है कुछ वर्षों से गुरुजी अस्वस्थ रहने लगे। इसी बीच उनके देश विदेश के शिष्यों का आना जाना लगा रहता था। उनके परम शिष्य रामदयाल गोयलजी बैंगलोर के निवासी हैं। एक दिन गोयलजी गुरुजी का दर्शन करने वाराणसी आये। गुरुजी का काफी स्नेह मिला। उनके साथ ऐसे ही चर्चा चलने लगी तो गोयलजी बोले कि मेरा विचार है कि गुरुजी की पुस्तकों की साईट बननी चाहिए। बस फिर क्या था गुरुजी ने सहमति दे दी और नेट में गुरुजी के नाम से साईट बनी। गोयलजी का उद्‌देश्य था कि गुरुजी द्वारा लिखित पुस्तक सामान्य जनों के बीच आ जाये और वे लोग भी लाभान्वित हों जो आध्यात्मिक जीवन में हैं या अध्यात्म से लगाव रखते हैं। यह बहुत ही अच्छा कार्य हुआ। साईट बनने से पुस्तकों का काफी प्रचार-प्रसार हुआ और लोग लाभान्वित भी हुए। गुरुजी की कृपा से गोयलजी का जो कष्ट रहा दूर हो गया और वे काफी प्रसन्न हुए और बोले कि मैंने जो साधना और अनुभव प्राप्त किया उसका अन्य लोगों को लाभ मिलेगा। उसी दौरान गुरुजी की पुस्तके पढ़कर दिल्ली से एक सज्जन आये। नाम संजय जैन जी और नम्रता जी है। सप्ताह भर तक काशी में रहे लेकिन उनसे गुरुजी का ऐसा लगाव हो गया कि उन्हे जब अपने काम से फुर्सत मिलती काशी चले आते और गुरुजी को छोड़ने की इच्छा नहीं होती। हम लोगों का भी उनके प्रति घर जैसा लगाव हो गया था। ऐसे ही एक दिन वार्ता चलने लगी तो जैन साहब बोले कि क्यों न गुरुजी की पुस्तकों का अंग्रेजी में ट्रांसलेट किया जाये। क्योंकि अंग्रेजी भाषा का एक विशाल क्षेत्र है। अतः गुरुजी से अनुमति लेकर मारण पात्र पुस्तक अंग्रेजी में ट्रांसलेट होने लगी। लेकिन दुख है कि आज मारण पात्र पुस्तक अंग्रेजी में ट्रांसलेट हो गयी और प्रकाशन की भी तैयारी चल रही है बस गुरुजी नहीं हैं इस पुस्तक को देखने के लिए। मेरी ही तरह दुख जैन साहब और नम्रताजी को भी हो रहा है। उन्होने पिछले वर्षों से काफी मेहनत कर पुस्तक को पूर्ण करने में लगा दिया। जिसके लिए उन्होने इतनी मेहनत की वह अब संसार में नहीं है अपनी कृति को नये रूप में देखने के लिए।

इधर पिछले साल से मैं गुरुजी के हावभाव देख रहा था वे धीरे-धीरे एकान्तवासी होते चले जा रहे थे। कम से कम लोगों से मिलना। ज्यादा समय बस अधूरी पुस्तकों को पूर्ण करने में रहता था। कम से कम बोलना। उनका यह आकस्मिक बदलाव किसी को समझ में नहीं आ रहा था। उस समय आवाहन और तंत्रम् पुस्तक पूर्ण करने में लगे थे। आवाहन पूर्ण हो गयी और प्रकाशित भी हो गयी लेकिन आवाहन में उन्होने त्रैलोक्य मीमांसा का उल्लेख किया है। एक दिन मैंने कहा कि त्रैलोक्य मीमांसा का आपने आवाहन में संक्षेप में वर्णन किया है। मेरी भी उत्सुकता है उसे जानने की। गुरुजी कुछ नहीं बोले बस टाल गये। ऐसा कभी नहीं होता था कि मेरी बातों का जवाब नहीं देते थे। समय देखकर एक दिन पुनः चर्चा छेड़ दी। कुछ उदास होकर बोले- मुझे त्रैलोक्य मीमांशा का वर्णन करना चाहिए था जिस तरह तुम परेशान हो रहे हो अन्य लोग भी होंगे पुस्तक पढ़कर। 'परलोक के खुलते रहस्य' पुस्तक में थोड़ा बहुत जरूर प्रसंगवश चर्चा करूंगा। इतना कहकर शान्त हो फिर आगे बोले- प्रकृति के अपने नियम है। उसे जो उल्लंघन करता है। प्रकृति उसे छोड़ती नहीं है इतना कह उनकी आंखों में उदासी झलकने लगी।

गुरुजी के साथ मैं बचपन से रहा। उनके सुख और दुख काफी करीब से अनुभूति करता रहा। गुरुजी तो कुछ नहीं बोले बस मुझे ऐसा आभास हुआ कि गुरुजी अपने गहन साधना और अनुभव से तथा आत्मा से सम्पर्क कर प्रकृति के उस रहस्य को जान गये थे। जिसका वर्णन खुलकर नहीं करना चाहते थे। मुझे ऐसा लगता था कि गुरुजी के सामने कोई ऐसा रहस्य खुल गया था कि वे हतप्रभ थे लेकिन मेरे सामने भी उस रहस्य को उजागार करने से घबड़ा रहे थे। कोई ऐसा सत्य था जो गुरुजी को धीरे-धीरे सभी से दूर करता चला जा रहा था। सारी बातें होती अन्य विषय पर लेकिन जन्म और मृत्यु के विषय में या महत्वपूर्ण तथ्यों के विषय में नहीं बोलते थे बस टाल देते थे।

जब मैं साधना सम्बन्धित प्रश्न करता बस यही कहते तुम्हारी साधना बीच में खण्डित हो गयी थी उसे पूरा करो। बस अब आगे बतला दूंगा बार-बार यही कहते कि माँ की साधना करो, आराधना करो और अपना कर्तव्य निभाओ ज्यादा मत उलझो इन रहस्यों में नहीं तो मेरी तरह अकेले हो जाओगे। जिस तरह मैं संसार से विरक्त हूँ और संसार मुझसे। तुम्हे तो अभी बहुत से काम करने हैं।

मैं अपने काम और साधना में उलझता जा रहा था कुछ भी समझ नहीं आ

रहा था कि समय किस मोड़ पर मुझे ले जा रहा है। समाधि लेने के दो, तीन महीने पहले अपनी पाण्डुलिपि व पुस्तकें और अन्य जरूरी कागजात मुझे बिना बतलाये सब व्यवस्थित करते जा रहे थे। यह बात केवल अनूपजी और नीतू जानती थी। मुझसे बतलाने के लिए मना करते रहे और बोले कि सब ठीक कर दें नहीं तो मनोज परेशान होंगे। वे लोग भी समझ नहीं पा रहे थे।

एक दिन जब मैंने देखा कि सारी पुस्तकें, पाण्डुलिपियां और अन्य जरूरी कागजात व्यवस्थित करने में लगे हैं तो मैंने पूछा गुरुजी से कि यह सब क्या करवा रहे हैं बाद में सब ठीक हो जायेगा। गुरुजी जरा हँसते हुए बोले- तुम्हे कोई परेशानी न हो आगे चलकर इसलिए व्यवस्थित करवा रहा हूँ और सारी आवश्यक जानकारी मेरी डायरी में मिलेगी। मैंने कहा इसका क्या मतलब है? कहीं आप संन्यास लेने का इरादा तो नहीं कर रहे है हम सब को छोड़ कर या कोई और बात तो नहीं है? गुरुजी आगे बोले कि समय किसके पास है शरीर से तो नहीं संन्यास लिया गुरूदेव का आदेश नहीं था लेकिन आत्मा तो कब की संन्यास ले चुकी है बस महासमाधि लेने का इन्तजार कर रहा हूँ।

मैं इस रहस्य को नहीं समझा वो क्या कह रहे हैं। उन्हे अपने मृत्यु का आभास हो गया था लेकिन किसी को बतलाना नहीं चाहते थे। वो दिन भी आ गया जो मेरे जीवन को काली स्याह की तरह आज भी घेरे हुए है। देखते हैं कि उस काली वीरान स्याहरूपी अन्धकार से कब बाहर निकल पाता हूँ। आज भी गुरुजी चौबीस घण्टे मेरे मानसपटल पर चलचित्र की तरह घूमते रहते हैं और एक पल भी मैं उन्हे अपने ये अलग नहीं कर पा रहा हूँ। संस्मरण लिखते समय मैं असीम पीड़ा से गुजर रहा हूँ लेकिन भाव को तो व्यक्त करना ही है चाहे वह दुख का हो या हो सुख का।

खैर, एक बात लिखना भूल गया था कि चर्चा के दौरान अक्सर कहते थे कि बेटा जिस दिन मेरी लेखनी रूक जायेगी समझना मेरा इस जगत से जाने का समय हो गया है। संयोगवश गुरुजी के शिष्य अनूपजी भी मेरे साथ बैठे थे उस समय लेकिन इधर पिछले एक दो सप्ताह से देख रहा था कि अन्य लोग भी मेरे साथ महसूस कर रहे थे कि गुरुजी का लिखना बन्द हो गया है। आराम करते या पुस्तकें पढ़ने में लगे रहते। धीरे-धीरे लोगों के प्रति निरपेक्ष हो गये। फोन आदि भी नहीं उठाते। ऐसा लग रहा था जैसे कोई यात्री है प्लेटफार्म पर ट्रेन का इन्तजार कर रहा हो बस समय काट रहा हो ऐसा ही गुरुजी के हावभाव से लग रहा था।

उनका मन कहीं लग ही नहीं रहा था। ऐसा लग रहा था कि वे किसी का इन्तजार कर रहें हों। उनका मन सभी जगहों से हट गया था बस शान्त भाव से रहते और ज्यादातर आंखें बन्द किए रहते। बस अक्सर मुझसे कहते कि मेरे पास रहो। पिछले एक सप्ताह से मुझे अपने से अलग नहीं करते, मुझे कुछ भी आभास नहीं हो रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे मेरे सोचने और समझने की शक्ति ही नहीं बल्कि निर्णय लेने की भी शक्ति नहीं रही बस गुरुजी के लिए क्या करूं। उनका हावभाव मेरी समझ के परे था।

शरीर छोड़ने के दो घण्टे पहले मुझसे बस यही बोले- तुम्हे तो पता है कि मेरा दो शरीर है। मैं दोनों शरीर में जीता हूँ। एक यह स्थूल शरीर और दूसरा सूक्ष्म शरीर। इस शरीर की सीमा है मुझे बस यह शरीर छोड़ना है। मैं कुछ बोलता इसके पहले ही उन्होने ने इशारे से मना कर दिया और आगे बोले कि मैं इस नश्वर शरीर में रहूं या न रहूं लेकिन तुम्हारे साथ सूक्ष्म शरीर के माध्यम से रहूंगा और परोक्ष-अपरोक्ष जो भी सहायता होगी करता रहूंगा। मेरे लिए सब कुछ सामान्य है बस थोड़ा सा दुख है। यह शरीर मेरा कितना साथ दिया इसे धन्यवाद तो दे दूं। मैं उनकी बातों का आशय समझ नहीं पा रहा था। बस चुपचाप उनकी बातें सुनता रहा बस बीच में इतना ही बोला अगर आपकी तबीयत अन्दर से ठीक नहीं लग रही है तो डॉक्टर को बुला लेते हैं लेकिन वो बोले मैं अब कहीं नहीं जाने वाला और न ही तुम डॉक्टर को बुलाओ बस मेरे पास रहो। वो बैठे रहे और मैं उनका सिर सहलाता रहा। फिर बोले तुम्हारी साधना पूर्ण नहीं हुई इसका दुख है लेकिन मेरे जाने के बाद अपनी साधना करते रहना। तीसरे चरण का अभ्यास मैं तुम्हे जरूर बतलाऊंगा बस विश्वास और धैर्य के साथ अपनी साधना और माँ जगज्जननी की सेवा करना, पुस्तकें मैं सारी लिख चुका हूँ बस कहीं कोई दिक्कत हो तो स्मरण करना पूर्ण हो जायेगा।

तभी मेरी पत्नी खाना लायी। गुरुजी ने खाना खाया। मैं उनके पास ही रहा लेकिन समझ कुछ भी नहीं पा रहा था। ऐसा लग रहा था सब कुछ स्थिर हो गया। जैसे समय रूक गया हो। तभी मेरे एक परिचित आ गये मैंने बाहर जाकर उनसे कहा गुरुजी की तबीयत लगता है ठीक नहीं है थोड़ी देर आप रूक जायें। वो मेरी बात मानकर रूक गये। २६ जून २०११ रात्रि ११.१५ मास शिवरात्रि जैसे समय चक्र रूक गया हो। देखता क्या हूँ कि एकाएक गुरुजी पद्मासन की मुद्रा में बैठ गये। उनके चेहरे पर हर पल एक अद्भुत तेज बढ़ंता जा रहा था। मैं मूकवत्

और जड़वत् उन्हे देख रहा था बस। गुरुजी आंखें बन्द किये हुए थे। उन्होने इशारा किया कि मैं जा रहा हूँ। मैं दौड़कर उनके पास पहुंचा तबतक उनका शरीर दायें तरफ झुक गया। मैंने जोर से चिल्लाया मेरी पत्नी और बच्चे नीचे आ गये। पत्नी ने डॉक्टर को फोन किया और अन्य लोगों को भी सूचना दी। देखते-देखते सभी शुभ चिन्तक, इष्ट मित्र आ गये। डॉ. मनमोहन श्याम जो गुरुजी के शिष्य थे उन्होने चेकअप किया और बोले- मेरा मेडिकल साइन्स फेल हो गया है। गुरुजी का शरीर सजीव लग रहा है लेकिन अन्दर की क्रिया प्रणाली एकदम शान्त है। मुझे भी सहसा विश्वास नहीं हो रहा था। मैं एकदम पागलों की तरह हो गया था। अभी-अभी तो मुझसे बातें कर रहे थे और एक पल में शरीर त्याग कर अनन्त यात्रा पर निकल गये। किसी तरह अपने को सम्भाला। सभी लोग यही कह रहे थे गुरुजी सो रहे हैं उनके शरीर से मृत्यु का आभास जरा सा भी नहीं हो रहा था। लेकिन हर पल उनके चेहरे का तेज बढ़ता ही जा रहा था। हाथ पैर सामान्य थे सभी को सूचना दी गयी। मेरे भाई साहब उस समय दिल्ली में थे। वो तुरन्त अगले दिन दोपहर में आ गये। मेरी हालत इतनी खराब थी कि मैं स्वयं को सम्भालने में लगा था भाई साहब ने सारी स्थिति को सम्भाला और तभी बैंगलोर से गोयलजी भी आ गये। सभी का फोन आ रहा था कि गुरुजी के अन्तिम दर्शन के लिए। सारे क्रिया कर्म और लोगों के दर्शन करते-करते पन्द्रह घण्टे गुजर गये। सायंकाल गुरुजी का क्रिया कर्म हरिश्चन्द्र घाट पर हुआ। उनका अन्तिम आदेश था कि श्राद्ध और क्रिया कर्म मैं ही करूं। मैंने अक्षरशः पालन किया। समाधि लेने के कुछ समय पहले यह बस अन्तिम आदेश रहा गुरुजी का।

जीवन चल रहा है सब कुछ धीरे-धीरे सामान्य होता जा रहा है। बस एक खाली स्थान खाली है शायद ही कभी भरे। अब तो बस गुरुजी द्वारा दिये गये निर्देश और आदेश का पालन करना, माँ की आराधना और गुरुजी की अधूरी पुस्तकों को पूर्ण करना ही मेरे जीवन का यही दो लक्ष्य है। गुरुजी के शायद सबसे नजदीक मैं ही रहा लेकिन उनका रहस्यमय जीवन अन्तिम समय में भी रहस्यमय ही रहा। आज भी मुझे यही लगता है कि गुरुजी यहीं कहीं आस-पास हैं। मृत्यु तो उनके शरीर की हुई है गुरुजी तो हम सबके बीच में ही हैं बस महसूस करने की देर है।

मनोज कुमार शर्मा

पुस्तक के विषय में

हमारे मानसपटल पर कभी न कभी यह विचार जरूर आता है और यह सवाल भी उठता है और कभी-कभी उलझता भी है कि हम इस दुनिया में क्यों हैं? हमारे लिए जीवन का मूल्य क्या है? जिस विकास क्रम में हम आधुनिक यांत्रिकी युग में हैं उसका लक्ष्य क्या है या जिसने हमारा सृजन किया। क्या उसने हमारे जीवन के लिए पहले से निर्धारित कोई लक्ष्य तय किया है? यदि हाँ तो वह क्या है और यदि नहीं तो क्या इस ब्रह्माण्ड में हमारा जीवन बेहद सामान्य, निरूद्देश्य, आकस्मिक और एक अनियमित घटना मात्र है इसके सिवाय और कुछ नहीं। क्या हमारा अस्तित्व हवा में उड़ते पत्तों की तरह है जिसकी कोई मंजिल नहीं या समुद्र की एक लहर की तरह लक्ष्यरहित यात्रा।

ऐसे सवालों पर विचारक, अध्यात्म पुरुष, मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक, दार्शनिक आदि ने काफी कुछ अपने विचार व्यक्त किये हैं। फिर वे लोग जो भी विचार इस विषय पर व्यक्त करते हैं या समझाने का प्रयास करते हैं उससे कई और प्रश्न पैदा हो जाते हैं।

जीवन का रहस्य अथवा उद्देश्य समझने से पहले उसका अर्थ समझना आवश्यक है। वैज्ञानिक कहते हैं कि हम वैक्टीरिया के वंशज हैं। शरीर विज्ञान के अनुसार मानव का विकास क्रम लगभग दो लाख पहले अफ्रीका में हुआ जो करीब पचास हजार वर्ष पहले व्यवहारिक तौर पर आधुनिक मानव स्तर पर पहुंचा। हमारे ज्यादातर जीन चूहे और अन्य जन्तुओं से मिलते हैं। अपने तमाम गुणों के बावजूद मानव अपने मूल जन्तु के शारीरिक ढांचे की अमिट छाप रखे हुए है। जीव विज्ञान मानव को जीव के तौर पर परिभाषित करता आ रहा है।

इस तरह विज्ञान की नजर से देखा जाये तो विकास क्रम की प्रक्रिया के अन्तर्गत पृथ्वी पर समस्त जीवन का लक्ष्य अपनी प्रतिकृति बनाना है, इसमें मानव भी है। जीवन की इस मूल यांत्रिकता को प्रेरित करने के पीछे जिसका हाथ है वह है जिन्दा रहने की प्रवृत्ति जोकि पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ती रहती है और मूल जड़ें

सुख और दुख के सिद्धान्त में छिपी हैं। मानव सहित अन्य प्राणी वही करता है जो उसके स्वयं के हित में है यानि दुख से बचना और सुख-शान्ति प्राप्त करना। ऐसा इसलिए है क्योंकि विकास क्रम ने अनुवांशिकी तौर पर उसे बनाया ही इस तरह है कि वह आगे बढ़ता रहे और विकास क्रम में प्रगति करता रहे। वह सहजता से अपने को नष्ट नहीं कर सकता क्योंकि जीने की उत्कण्टा, लालसा उसे ऐसा करने से स्वतः रोकती है। जीने की यही इच्छा न सिर्फ मानव को बल्कि समस्त जीवधारियों को अस्तित्व बनाये रखने के लिए बाध्य करती है।

लेकिन इन सबके पश्चात यहां एक महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रकृति या कहें जगत नियन्ता परब्रह्म परमेश्वर ने मानव को विकसित और परिष्कृत मस्तिष्क दिया है और चेतना का एक उच्चस्तर और सोचने-समझने, तर्क करने की क्षमता और दी है भाषा के रूप में अपनी समस्याओं को सुलझाने, भाव को व्यक्त करने की शक्ति। इस जगत में मानव ही एकमात्र ऐसी प्रजाति है जो मानसिक स्तर पर अति विकसित है। जो सोच सकता है कि वह यहां क्यों है? जो कर रहा है और वह क्यों कर रहा है? निर्णय लेने की क्षमता केवल मानव में है। मानव जाति का पहला अविष्कार देखा जाये तो वह है अग्नि की खोज। बस यहीं से विकास प्रारम्भ होता है। मानव जाति ने अपना बेहतर भविष्य गढ़ा धर्म, दर्शन विज्ञान और चिन्तन से। उसने प्रकृति को जगत को समझा और मानव स्वयं को प्राकृतिक शक्तियों के सामने जब असहाय और निर्बल पाया तो एक ऐसी सत्ता की खोज की जो मानव जाति से ऊपर है और है निराकार ईश्वरीय सत्ता। इससे यह जाहिर होता है कि उसकी नियति और स्थिति पशु चेतना से ऊपर है। इसलिए उसे सिर्फ जीव विज्ञान या विज्ञान के पैमाने से परिभाषित नहीं किया जा सकता। मानव का जैविक ही नहीं उसका आध्यात्मिक अस्तित्व भी है।

अब थोड़ा आज के आधुनिक सभ्यता के मानव पर विचार कर लेते हैं। यदि हम आज के सामाजिक परिवेश में लोगों से उनके जीवन के उद्देश्य के बारे में जानना चाहें तो ज्यादातर लोगों को जवाब होगा कि अच्छी पद, प्रतिष्ठा, धन दौलत आदि ऐसे सारे लक्ष्य जब प्राप्त हो जाते हैं तो कुछ समय के लिए सन्तुष्टि और खुशी मिलती है। लेकिन मानव स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि कुछ समय बाद अधूरेपन, अतृप्ति, निरूद्देश्यता का एहसास होने लगता है उसे। कोई लक्ष्य, कोई इच्छा पूरी हुई या नहीं दूसरी इच्छा घर करने लगती है। ज्यादातर लोग अपने जीवन में धन-दौलत, उपलब्धियां, सफलताएं हासिल कर चुके होते हैं। लोग फिर

भी कहीं न कहीं इससे खुश या सन्तुष्ट नहीं होते। जैसा कि हम उनके बारे में विचार रखते हैं। इच्छाओं, प्रयोजन और लक्ष्यों का यह संसार मानव अस्तित्व के केन्द्र का एक ऐसा अदृश्य कूप है जो अर्जित लक्ष्यों को, उपलब्धियों को अपनी ओर खींच लेता है। इसके बाद वह फिर पहले की तरह खाली का खाली रह जाता है।

इसी अपूर्णता के एहसास को मि. हेनरी डेविड ने इसे क्वाइट डेम्पटेशन यानि पूर्ण नैराश्य का नाम दिया है। तो वह फिर क्या है जो मानव को पूर्णता का, सन्तुष्टि का और कराता है तृप्ति का बोध।

यहीं से अध्यात्म शुरू होता है। यहीं अध्यात्म उसे परमेश्वर का नाम देता है। प्राचीन काल से ही मनीषियों ने आत्मा के परमात्मा से मिलन को ही एकमात्र अन्तिम लक्ष्य बतलाया था।

अध्यात्मिक तत्ववेत्ताओं का कहना था कि जिस तरह नदी अनवरत यात्रा कर अन्ततः समुद्र में जाकर अपना अस्तित्व विलीन कर वृहत्तर सत्ता में खो जाती है उसी तरह मानव जीवन की यात्रा का चरम उद्देश्य उस परम सत्ता में समाहित हो जाना है। अध्यात्म जो प्रयोजन बतलाता है वह एकमात्र परमेश्वर की प्राप्ति ही है। वही एकमात्र लक्ष्य हैं। जो ऐसा आनन्द है जिसके सामने समस्त सांसारिक सुख नगण्य है। जहां न तो अपूर्णता का बोध है, न असंतुष्टि का और न तो है अतृप्ति का। तमाम भौतिक सुख-सुविधाएं प्राप्त करने के बाद भी मानव को जो खालीपन का एहसास होता है वास्तव में इसी अध्यात्मिक लक्ष्य को पाने की तड़प है जो अनजाने में वह उसे जान नहीं पाता अपने अधूरे और खालीपन के रहस्य को।

भारतीय दर्शन ही नहीं महान दार्शनिक अरस्तु से लेकर वक्र्ले तक के पश्चिमी दार्शनिक भी मानव के इस आध्यात्मिक पक्ष के समर्थक रहे हैं। अपनी चर्चित पुस्तक 'द परपज ड्राईवन लाइफ' में लेखक रिक वाटेन का कहना है कि ईश्वर को खोजना कठिन ही नहीं असम्भव है। परमेश्वर से ही समस्त प्रकृति और ब्रह्माण्ड गतिशील और क्रियाशील है।

हमारे अस्तित्व को परमेश्वर ही अर्थ और लक्ष्य प्रदान करता है। परमेश्वर की ही योजना है जो हमारे इतिहास से परे फैली हुई है। परमेश्वर का हमारे साथ एक अदृश्य रिश्ता या सम्बन्ध है जो हमें खुद ही जीने का अर्थ और उद्देश्य देता है। जब हम परमेश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं तो हम उस अनजाने रहस्य में घिर जाते हैं और स्वयं से करने लगते हैं प्रश्न। ईश्वर सत्ता को स्वीकार

करने के बाद भी मानव मन कुछ ऐसे रहस्यों की ओर आकर्षित होता है जो उसके समझ के परे है। जो किसी रहस्य से कम नहीं है। रहस्य के प्रति हमारी उत्सुकता स्वाभाविक है। अनेक रहस्यमय प्रश्न मानव मन को आदिकाल से उद्वेलित करते चले आ रहे हैं। क्या हमारे भीतर कोई आत्मा है जो इस असीम ब्रह्माण्ड की किसी शक्ति से सम्पर्क बनाये हुए है? क्या भूत-प्रेत अपदेवता या प्रेतात्मा का अस्तित्व है? क्या पूर्वजन्म होता है या सपनों का ऐसा संसार जिससे हम अपरिचित हैं जिससे सूक्ष्म शरीर द्वारा हम लोक-लोकान्तर की सैर कर सकते हैं? ऐसे प्रश्न मानव मन में आदिकाल से अंकुरित होते रहते हैं और रहस्य बनकर मस्तिष्क को उद्वेलित करते रहते हैं।

आदिकाल से ऋषि-मुनि और विद्वान अपने अनुभवों के आधार पर समय-समय पर इनकी व्याख्या करते रहे हैं। पश्चिम के वैज्ञानिक भी इन गुत्थियों को सुलझाने का भरसक प्रयत्न करते रहते हैं। कुछ लोग सत्य मानते हैं और कुछ लोग असत्य एवं मन का भ्रम मानकर टाल देते हैं।

लेकिन इन रहस्यों को जानने या समझने का हमारा विज्ञान अभी बहुत नया है। अभी पहला कदम ही रखा है। किन्तु यह प्रसन्नता की बात है कि इस दिशा में वैज्ञानिकों की अत्यधिक रूचि जागी है। पश्चिम और पूर्व देशों में इन अनजाने प्रश्नों का वैज्ञानिक उत्तर पाने में जैसे होड़ सी लग गई है।

'परलोक के खुलते रहस्य' पुस्तक अनेक दृष्टि से बहुत ही विलक्षण और उपयोगी, ज्ञानवर्धक सिद्ध होगी इसमें सन्देह नहीं। इस पुस्तक की विशेषता यह है कि परलोक के रहस्य का धार्मिक और वैज्ञानिक विवेचन किया गया है। इसमें मनुष्य की आत्मा और उसके पारलौकिक रहस्य का अद्भुत चित्रण किया गया है। इसमें जीवन के उस परावर्ती अंग पर प्रकाश डाला गया है जो सचमुच परम रहस्यपूर्ण है। इतना रहस्यपूर्ण है कि सहसा उसके विवरणों पर सबको विश्वास नहीं होता है। फिर भी मैं बिना संकोच के यह कह सकता हँ कि इस पुस्तक में आत्मा और परलोक के संबंध में जो बातें कही गयी हैं वह सत्य हैं। इसमें रहस्य के साथ मनोविज्ञान, परामनोविज्ञान, विज्ञान का भी समावेश है तथा वास्तविक घटनाओं के आधार पर स्थित है। इसके अलावा धर्मग्रन्थों का भी आश्रय प्राप्त है। आत्मा और पारलौकिक जीवन के संबंध में भारत में प्राचीन काल से खोज हुई और प्राचीन साहित्य, पुराण आदि ग्रन्थों में जितना विवेचन हुआ उतना शायद ही किसी देश के साहित्य में हुआ होगा।

जबतक भारतवर्ष में इस विषय की (जो अध्यात्म का मूल तत्व है) यथेष्ट चर्चा रही तब तक भारत सभी दृष्टियों से परम उन्नत रहा और सुखी भी। परन्तु ज्यों-ज्यों हम लोग इस विषय से उदासीन होकर भौतिक उन्नति और भौतिक सुखों की ओर आकृष्ट होते गये त्यों-त्यों हम चारित्रिक, सामाजिक और अन्य दृष्टियों से पतित और हीन होते गये। जिस भौतिक उन्नति को आज हम अपने जीवन के सुख-सुविधाओं का साधन मानते हैं वे वस्तुतः हमारे कष्ट, चिन्ताओं और विभिन्न प्रकार की विपत्तियों को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो रही है। दुर्भाग्यवश पश्चिमी देशों की सभ्यता और संस्कृति के प्रकाश में पड़ कर हम और अधिक दयनीय और भ्रमित हो गये हैं या होते जा रहे हैं। पश्चिमी अनुकरण से हमारे सभी प्राचीन नियम आचार व्यवहार पर से विश्वास उठा दिया है। आश्चर्य की बात तो यह है कि आज पश्चिमी सभ्यता ने जो हमें नये-नये मार्ग दिखाये वही मार्ग पश्चिमी लोगों को गलत मालूम होने लगे तब पश्चिमी वैज्ञानिकों का ध्यान भारत के प्राचीन रहस्य व घारलौकिक विषयों पर गया।

आज से ५०-६० वर्ष पहले परलोक एवं आत्मा, परमात्मा से सम्बन्धित चर्चा होती तो सामने वाला हँसी का पात्र बन जाता था। परन्तु बहुत ही कम लोग जानते हैं कि यूरोप, अमेरिका व अन्य पश्चिमी देशों में इस विषय पर शोध और अन्वेषण हो रहा है। वहां बड़ी-बड़ी समितियां व सस्थाएं चल रही हैं जो परम विकट रहस्यों का गहन छानबीन एवं जांच पड़ताल करती रहती है और उनमें पाये जाने वाले तथ्यों को युक्ति संगत विवेचन भी करती है।

सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में इस विषय पर सामान्य चर्चा होती थी। जब वहां के बड़े-बड़े वैज्ञानिकों ने अनेक प्रकार से परिक्षण और प्रयोग करके आत्मा और पारलौकिक जीवन को उजागार किया। उसने कहा कि इस भौतिक जीवन के अलावा भी कोई अभौतिक जीवन है या एक अदृश्य संसार है जो हमारी चर्मचक्षु से परे है। तब अमेरिका के वैज्ञानिकों को उत्सुकता हुई और इस विषय पर वैज्ञानिक खोज शुरू हो गई।

अमेरिका में जो सबसे बड़ी संस्था काम कर रही है उसका नाम साइन्टिफिक अमेरिकन है। इस संस्था में इसी नाम से वैज्ञानिक शोध और अनेक प्रकार के वैज्ञानिक अन्वेषण साहित्य प्रकाशित होते हैं। जो कि पूरे संसार में मान्य समझे जाते हैं। साइन्टिफिक अमेरिकन के प्रधान सम्पादक मि. मालकम को इंग्लैण्ड भेजा गया इस तथ्य की जानकारी के लिए कि परलोकवाद का क्या रहस्य है एवं उसमें कितनी

सत्यता है? जब वे इंग्लैण्ड गये परलोक सम्बन्धित अन्वेषण और तथ्यों को बड़े ही गहरायी से अध्ययन किया तब उन्हे पता चला कि आत्मतत्व का विषय काफी गम्भीर व जटिल है। जब वे वापस अमेरिका गये तो अन्य वैज्ञानिकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। उसके बाद परलोक के रहस्य को जानने के लिए नये-नये परीक्षण व प्रयोग होने लगे। आज तो आत्मतत्व पर बड़े-बड़े केन्द्र और प्रयोगशालाएं स्वतन्त्र रूप से खुल गयी है। इस प्रकार यह विषय आध्यात्मिक क्षेत्र से निकल कर उच्च्व वैज्ञानिक स्तर पर पहुंच गया है।

पहले वैज्ञानिकों के सामने अनेक मनोवैज्ञानिक अनसुलझी गुत्थियां थीं जो ज्यादातर आत्मतत्व के माध्यम से सहज ही सुलझने लगी। जो आगे चलकर हिप्नोटिज्म मैक्समेरिजम के नाम से जाना जाने लगा। अनेक प्रकार के रोगों की चिकित्सा पद्धति में काम आने लगा।

सन् १६३६ यूरोप में आत्मतत्व 'साइकिक्स' के नाम से प्रचलित था। लेकिन अमेरिका ने इसका नाम परामनोविज्ञान (पैरासाइक्लॉजी) रखकर इसका महत्व और क्षेत्र और भी बढ़ा दिया। आज पूरे विश्व में इस विषय पर जबर्दस्त खोज व अन्वेषण हो रहा है। शोध के द्वारा इस बात का पता लगाया जाता है कि मनुष्य की अन्तरात्मा जीवित रहने पर भी और मृत्यु के बाद भी किस प्रकार रहस्यमय तरीके से काम करती है। तात्पर्य यह है कि आत्मा और शरीर का पारलौकिक अस्तित्व भी अब विज्ञान का विषय बन गया है। पश्चिमी देशों के द्वारा आत्मतत्व से सम्बन्धित जिन नयी बातों का पता लगाया तो पता चला कि उनका प्राचीन साहित्य काफी मिलता जुलता है। वर्तमान में पाश्चात्य वैज्ञानिक जिन नये-नये प्रयोगों के आधार पर जो निष्कर्ष निकाल रहे हैं उन निष्कर्षो तक ही नहीं बल्कि उनसे भी और आगे हमारे देश के प्राचीन ऋषि-मुनि हजारों साल पहले निकाल चुके थे और जो आत्मतत्व से सम्बन्धित सिद्धान्त बतलाये हैं वे वैज्ञानिक प्रयोगों के बल पर नहीं केवल अपने आत्म चिन्तन और समाधि की अवस्था से प्राप्त किये थे।

आज हमारा जीवन आधुनिक भौतिकता से इतना ज्यादा कलुषित हो गया है कि आत्मिक और अध्यात्मिक तत्वों का तो महत्व ही नगण्य हो गया है। आपको ज्ञात होना चाहिए कि हमारी आत्मा में असीम शान्ति और सुख का अनन्त दैवी भण्डार भरा है। लेकिन वह भौतिकता के बोझ से दब कर दिन प्रतिदिन नष्ट होता जा रहा है और हम अध्यात्म से दूर होते जा रहे हैं। हम शान्ति चाहते हैं, युद्ध, परमाणु बम से यह कहां सम्भव है। हमारा जीवन उस संकुचित स्वार्थ वृत्ति की ओर

जा रहा है जो अन्त में आत्मघातक सिद्ध होगा इसमें सन्देह नहीं।

हम अपनी समझ से पतन से जितना बचना चाहते हैं उतना ही अधिक पतित होते जा रहे हैं। पतन और विनाश की जो गति है वह दिन प्रतिदिन तीव्र होती जा रही है। हम क्षणभर रूककर यह नहीं सोचते कि हमारा अन्त कैसा होगा? जिसे हम उन्नति मान रहे हैं, विकास मान रहे हैं वह मात्र हमारा भ्रम है। वह अध्यात्मिक दृष्टि से अवनति है। हमारे आत्मिक बल और पुरूषार्थ बल का एवं मनुष्यत्व का ह्रास होता जा रहा है। ऐसे विकट समय में गुरुजी की पुस्तकें हमारे देश की लुप्त होती जा रही अध्यात्मिक ज्ञान को बढ़ाने और आत्म चिन्तन की ओर प्रवृत्त कर सके यही हमारी इच्छा है। इस कड़ी में 'परलोक के खुलते रहस्य' पुस्तक गुरुजी का अध्यात्मिक ज्ञान आपको आत्म चिन्तन की ओर प्रवृत्त कर सके तभी गुरुजी का परिश्रम सफल होगा। आशा करता हूँ कि 'परलोक के खुलते रहस्य' पाठकों व प्रबुद्धजनों के लिए ज्ञानवर्धक, उपादेय सिद्ध होगी।

मनोज कुमार शर्मा

प्रथम अध्याय
मस्तिष्कीय कोशिकाएँ और चेतना

सन् १९४६ ई. से अब तक की कालावधि में प्रच्छन्न-अप्रच्छन्न रूप से निवास करने वाले सन्त महात्मा, योगी और साधकों का सान्निध्य तो प्राप्त हुआ ही उनके अतिरिक्त उच्चकोटि की दिव्य विदेही आत्माओं से भी अगोचर सम्पर्क रहा है। जिनमें कुछ अन्य लोक-लोकान्तरों की भी महान आत्माएं थीं। विदेही हो अथवा लोक-लोकान्तरों की हो आत्माएं उन सबका संबंध यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो मनुष्य की मस्तिष्कीय कोशिकाओं से सम्पर्क बराबर बना रहता है। इस रहस्य से बहुत कम लोग ही परिचित हैं। आगे के विषयों को समझने के लिए मस्तिष्कीय कोशिकाओं के विषय में वैज्ञानिक दृष्टि से जान लेना आवश्यक है। रहस्यों की खोज और रहस्यों के प्रति जिज्ञासा न हो तो किसी भी प्रकार का आविष्कार सम्भव नहीं। जिज्ञासा और खोज की वृत्ति ही नयी-नयी वस्तुओं का आविष्कार करती है भले ही वह वृत्ति लौकिक हो या पारलौकिक।

मानव इतिहास में शोध एवं अन्वेषण सबसे बड़ा विषय रहा है, जीवन का वह तत्व जो पंचतत्वों के साथ मिलकर इनको चेतनता प्रदान करता है। जीवन का वह तत्व क्या है? वह तत्व है 'आत्मतत्व' यानी आत्मा और उसके मूलस्रोत को कहते हैं परमात्मा। आत्मतत्व और पंचतत्व मिलकर चेतनतत्व बनता है जो जड़-चेतन सभी में आवश्यक मात्रा के अनुसार व्याप्त है। जिस आधार पर आत्मतत्व और पंचतत्व का मिलन होता है वह है प्राणतत्व। प्राणतत्व अति महत्वपूर्ण है। इसकी सत्ता स्वतंत्र है। शरीर पांचतत्वों से निर्मित है। प्राणतत्व के माध्यम से आत्मतत्व से उनका संबंध बनता है और शरीर हो जाता है चैतन्य जिसे हम जीवन कहते हैं। पंचतत्वों का क्रमशः क्षय होता है यदि वे एक में मिश्रित है। यदि पाँचो अलग-अलग हैं तो उनके रूपों में बराबर परिवर्तन होता रहता है। पंचतत्व निर्मित शरीर का क्षय होता है, परिवर्तन नहीं। लेकिन प्राणतत्व के बीच से हटते ही आत्मतत्व अलग हो जाता है शरीर से। इसी का नाम मृत्यु है। (पढ़िए : मरणोत्तर जीवन का रहस्य) जैसे-जैसे पंचतत्वों का क्षरण होता जाता है, वैसे ही वैसे आयु

की भी वृद्धि होती जाती है और अपनी सीमा पर जाकर समाप्त हो जाती है। अध्यात्म के इस मत से, कि जीवन व जड़ प्रकृति में भी सामञ्जस्य है विज्ञान सहमत है। चेतना विहीन जीव भी तो उसी जड़ प्रकृति में विलीन होते हैं। अब अध्यात्मवेत्ताओं की तरह वैज्ञानिक भी यह स्वीकार करने लगे हैं कि इस विश्व ब्रह्माण्ड की कोई नियामक सत्ता है। सभी धर्म उस परमसत्ता को किसी न किसी रूप में स्वीकार करते हैं। सभी धर्म उसे सर्वशक्तिमान मानते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

महान जीवशास्त्री डॉर्विन ने प्राणियों, पशुओं और वनस्पतियों का गहन अध्ययन किया और १८५० एवं १८७१ में प्रकाशित अपने ग्रन्थों में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि संसार के सभी जीव एक ही आदि जीव के विकसित और परिवर्तित रूप हैं। संसार में जीवों की जितनी भी जातियाँ और उपजातियाँ हैं उनमें बड़ी विलक्षण समानताएं-असमानताएं हैं। समानता यह कि उन सभी की रचना एक ही प्रकार के तत्व से हुई है और असमानता यह कि उनकी रासायनिक बनावट अलग-अलग है।

आगे चलकर वैज्ञानिक मेंडल, ह्यूगो, डी. ब्रीज, डॉ. जेम्स वॉटसन और डॉ. फ्रांसिस क्रिक ने इस संबंध में और भी शोध किये। उन शोध से डॉर्विन के इस कथन की पुष्टि होती है कि प्रत्येक जीव का आनुवांशिक विकास उसके माता-पिता के सूक्ष्म गुणसूत्रों (क्रोमोजोम) एवं संस्कार सूत्रों (जीन्स) पर आधारित होते हैं। यह गुणसूत्र एवं संस्कार सूत्र प्रत्येक जीव में पाये जाते हैं। प्राणियों की संरचना एवं उनकी विविधता इन्हीं पर आधारित है। 'वीर्य' जिसे तंत्र में शुक्र बिन्दु कहते हैं उसमें 'क्रोमोजोम और जीन्स' ये दोनों उचित मात्रा में रहते हैं। दोनों को किसी भी अवस्था में बदला नहीं जा सकता। हाँ! एक बात अवश्य है कि दोनों में कुछ न कुछ रासायनिक संरचना की विविधता अवश्य पायी जाती है ऐसा ही प्रतिपादन आर्ष ग्रन्थों में भी मिलता है। वेदान्त का **'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति'** यह कथन यहां सटीक उतरता है। वेदान्त का यह प्रतिपादन लाखों वर्ष पूर्व लिखा गया था। जब हम अकेले वेदान्त की कसौटी पर कसते हैं तो उसकी परिपूर्णता व वैज्ञानिकता में कोई सन्देह नहीं रह जाता। वैज्ञानिकों द्वारा जीवकोश से संबंधित, जो अब तक की उपलब्धियां हैं उनमें जरा सा भी अन्तर नहीं है। प्रत्येक जीवकोश का नाभिक (न्यूक्लियस) अविनाशी तत्व है। वह स्वयं नष्ट नहीं होता किन्तु अपनी क्षमता से स्वयं अनेक कोश (सेल्स) बना लेने की शक्ति अवश्य रखता है। इस तरह कोशिका की चेतना को ही 'ब्रह्म' की इकाई कह सकते हैं। 'ब्रह्म' वास्तव में विश्व ब्रह्माण्ड का 'अविनाशी

तत्व' (न्यूक्लियस) है यानि विश्व का नाभिक है। वह एक से अनेक होने की क्षमता रखता है। **एकोऽहं बहुस्याम**। सारी सृष्टि ब्रह्म सृष्टि है, ब्रह्ममयी है। इस तरह कोशिका की चेतना को ही ब्रह्म की इकाई कह सकते हैं इसलिए वह अनेक अणुओं में भी व्याप्त इकाई ही है। इसी स्थिति को 'जीवभाव' कहा गया है। परन्तु फिर भी उसमें पूर्णब्रह्म की सब क्षमताएं उसी प्रकार विद्यमान हैं जैसे समुद्र की एक बूंद में पानी के सब गुण विद्यमान रहते हैं।

डॉर्विन ने सभी जीवों में व्याप्त जिस समानता का वर्णन किया है वही जीवकोशों की चेतना है। वेदान्त के अनुसार भी एक ही ब्रह्म सभी आत्माओं में निवास करता है। इसी चेतना पर अहं भाव अथवा कर्ता भाव का आवरण व्याप्त होता है। वेदान्त कहता है कि चेतना के अहं भाव की जिस प्रकार की वस्तु में रूचि अथवा वासना बनी रहती है। वह वैसे ही पदार्थों द्वारा शरीर का निर्माण किया करता है, नष्ट नहीं होता। वही इच्छाएं, अनुभूति, संवेग, संकल्प और जो भी सचेतन क्रियाएं हैं करता या कराता है। पदार्थों में यह शक्ति नहीं है। जहां तक मेरे अन्वेषण और शोध का प्रश्न है उसके अनुसार डॉर्विन के सभी जीवों रासायनिक असमानता, गुणसूत्र, संस्कार सूत्र, वेदान्त के 'अहं भाव' पर आधारित है। उसी अहं भाव को नष्ट करने के लिए सभी प्रकार की साधनाओं का मायाजाल फैला हुआ है।

विश्व ब्रह्माण्ड-मण्डल और लोक-लोकान्तर- जैसा कि मैंने कहा कि सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड का मूल ब्रह्म है। ब्रह्म, ब्रह्माण्ड का नाभिक (न्यूक्लियस) है। ब्रह्म का विस्तार ब्रह्माण्ड है और ब्रह्माण्ड ३६ भागों में विभक्त है। प्रत्येक भाग का अपना एक स्वतंत्र तत्व है। इस प्रकार कुल ३६ तत्व हैं और उन ३६ तत्वों से पृथ्वी का निर्माण हुआ है। वे ३६ भाग १८ मण्डलों में विभाजित है। प्रत्येक मण्डल में ब्रह्माण्ड के दो भाग अवस्थित हैं।

प्रत्येक मण्डल में कितने लोक-लोकान्तर हैं इसका लेखा-जोखा कहीं नहीं मिलता है। ३६ तत्वों से निर्मित होने के कारण पृथ्वी से सभी भागों और सभी मण्डलों से सम्बन्ध है। यदि संबंध है तो लोक-लोकान्तरों में निवास करने वाले विभिन्न प्रकार के प्राणियों से भी होगा संबंध, यह अनुमान नहीं, परमसत्य है। अब प्रश्न होता है कि वे प्राणी हैं कैसे ? प्राणी का अर्थ है जो प्राण का वाहक हो। जो प्राण द्वारा संचालित हो वह प्राणी है। इससे स्पष्ट होता है कि लोकान्तरों के प्राणी, प्राणवान हैं और जब प्राणवान हैं तो उनमें सूक्ष्म गुणसूत्र (क्रोमोजोन्स) और संस्कार सूत्र (जीन्स) होना चाहिए। होगा ही यहां यह बतला देना आवश्यक है कि प्राण, पांच प्रकार का है और समप्राण भी

पांच प्रकार के होते हैं जोकि एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। मानव शरीर में वे पांचों प्राण एक दूसरे से मिलकर क्रियाशील हैं। उनकी क्रियाशीलता में किञ्चित मात्र व्यतिक्रम होने पर तत्काल इसका विपरीत प्रभाव मन, मस्तिष्क और शरीर पर पड़ता है। विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। जीवन अव्यवस्थित हो जाता है। यही कारण है योग सर्वप्रथम प्राण पर ध्यान देता है।

मानव शरीर की तीन प्रकार से विशेषता है। पहली विशेषता यह है कि उसके पास 'मन' है जबकि विश्व ब्रह्माण्ड में 'मन' किसी भी प्राणी के पास नहीं है। दूसरी विशेषता यह है कि उसमें पाँचों प्रकार के प्राणों का संयोजन है और तीसरी विशेषता यह है कि उसमें कर्म करने की क्षमता है जबकि विश्व ब्रह्माण्ड के किसी भी प्राणी के पास कर्म शरीर नहीं है यदि है तो भोग शरीर है। मानव शरीर यदि कर्म शरीर है तो भोग शरीर भी है। कर्म करता है तो उसका 'फल' अथवा परिणाम भी भोगता है। भले ही उसे भोगने के लिए अगला जन्म लेना पड़े। जैसा कि ऊपर कहा गया है पांचों प्राण मानव शरीर में है जबकि मानवेतर लोक-लोकान्तर के प्राणियों में ऐसा नहीं है। कहीं एक 'प्राण' हैं, कहीं दो प्राण हैं, कहीं तीन प्राण हैं तो कहीं चार प्राण हैं। संयुक्त रूप से पांचों प्राण एक ही स्थान पर है तो वह है मानव शरीर के पास।

मानव के प्रति आकर्षण- इन सारी विशेषताओं के कारण समस्त लोक-लोकान्तरों के प्राणी आदिकाल से मनुष्य के प्रति आकर्षित होते रहे हैं और रहे हैं मानव शरीर प्राप्त करने के लिए इच्छुक। मनुष्य तो जिज्ञासु प्रवृत्ति का है। लोक-लोकान्तरों अथवा पारलौकिक जगत के प्रति सदैव से मनुष्य जिज्ञासु और उत्कण्ठित रहा है और आज भी है। ग्रह नक्षत्रों पर जाने का वैज्ञानिक अभियान इसी प्रवृत्ति की ओर संकेत करता है। परामानसिक जगत पर अध्ययन करते समय मैंने मनुष्य को अपने अन्वेषण के केन्द्र में रखा था। इस दिशा में स्वतंत्र रूप से मुझे उपलब्धियां हुई। उसके अनुसार इस ब्रह्माण्ड में सबसे विचित्र और रहस्यमय प्राणी यदि कोई है तो वह है मनुष्य। वर्तमान युग विज्ञान का युग है। प्राग्काल से ही मनुष्य सम्पूर्ण सृष्टि और ब्रह्माण्ड के रहस्यों की खोज में लगा है। योग-तंत्र ज्योतिष आदि जितने गुह्य शास्त्र हैं उसी के परिणाम हैं। लेकिन इधर जो इस दिशा में वैज्ञानिक दृष्टिकोण खोजें हो रही हैं। उनके परिणामस्वरूप मनुष्य पृथ्वी से अन्तरिक्ष तक बिना किसी रूकावट के भ्रमण कर रहा है। बिना किसी भौतिक माध यम से ही अन्तरिक्ष में भेजे गये उपग्रहों से संकेत ग्रहण कर रहा है। वहां का चित्र भी ले रहा है। यहां तक कि उपग्रहों पर रहने की भी कल्पना करने लगा है। यदि

विचारपूर्वक देखा जाये तो मनुष्य स्वयं एक ऐसी रहस्यमयी शक्ति का स्वामी है जिसे 'चेतना' कह सकते हैं। मानव शरीर में सबसे अधिक महत्वपूर्ण मूल्यवान और रहस्यमय कोई अंग है तो वह है 'मस्तिष्क'। विज्ञान मस्तिष्क के रहस्य को अभी तक दस प्रतिशत ही जान समझ सका है। मस्तिष्क में अरबों कोशिकाएं हैं। जिनमें से बराबर विद्युत चुम्बकीय तरंगे विकीर्ण होती रहती हैं जो ब्रह्माण्डीय विद्युत चुम्बकीय तरंगों में मिलकर पूरे विश्व में फैल जाती हैं।

जब हम ध्यानावस्था में रहते हैं, उस समय वे अदृश्य तरंगे अल्ट्रासॉनिक ध्वनि उत्पन्न करती हैं और अधिक से अधिक मात्रा में विकीर्ण होती हैं। हम ध्यानावस्था में जिस देवी-देवता का ध्यान करते हैं उनके स्वरूप का निर्माण ब्रह्माण्डीय तरंगों की सहायता से करती है ईथर में।

धर्म की ही तरह विज्ञान ने भी मस्तिष्क की रचना और उसकी कार्य प्रणाली पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है और यह भी जानने का प्रयत्न किया है कि मस्तिष्क के पीछे संचालन शक्ति कौन सी है और वह शक्ति है चेतना और वह चेतना एकांकी नहीं है। वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त विराट चेतना का एक लघु अंश है विराट चेतना को ही पराचेतना कहते हैं। मस्तिष्क चेतना का बराबर संबंध बना रहता है पराचेतना से इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो हमारा जो आन्तरिक व्यक्तित्व है वह मस्तिष्क चेतना द्वारा सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड से जुड़ा हुआ है। दूसरी ओर जुड़ा हुआ है कोशिकाओं से विकीर्ण होने वाली विद्युत चुम्बकीय तरंगों द्वारा भी।

यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि मस्तिष्क चेतना ही कोशिकाओं में विद्युत चुम्बकीय तरंगे उत्पन्न करती हैं। वास्तव में कोशिकाएं मानसिक चेतना द्वारा ही क्रियाशील और चैतन्य होती हैं जिनके परिणामस्वरूप में उनमें विद्युत चुम्बकीय तरंगे उत्पन्न होती है। वे तरंगे वास्तव में मस्तिष्कीय ऊर्जा ही हैं।

परामानसिक चेतना का रहस्य– वैसे हमने अपनी पुस्तक 'मरणोत्तर जीवन का रहस्य' में परामानसिक चेतना पर प्रकाश डाला है और वह भी विस्तार से। 'परलोक के खुलते रहस्य' के वास्तविक स्वरूप से परिचित होने के लिए संक्षिप्त में उसके विषय का उल्लेख करना आवश्यक समझा हमने।

अर्वाचीन धर्मों को छोड़कर जो अति प्राचीन धर्म जैसे सनातन धर्म, जिसका पर्याय हिन्दू धर्म है- के अनुसार मानसिक चेतना ही आत्मा है और विराट परामानसिक चेतना 'परमात्मा' है। ब्रह्माण्डीय चेतना (पराचेतना अथवा

विराट चेतना) के तत्व की धारणा विज्ञान ने स्वीकार कर ली है। अब उनके सामने यह विकट प्रश्न है कि मनुष्य की चेतना यानी आत्मा का मूल स्वरूप क्या है और उसका ब्रह्माण्डीय चेतना से क्या संबंध है? एक और जटिल प्रश्न यह है कि क्या प्रकट अथवा व्यक्त चेतना से परे मनुष्य किसी अप्रकट अथवा अव्यक्त चेतना का भी स्वामी है? जो पदार्थ जगत यानी भौतिक जगत के नियमों से ऊपर है तथा जो मनुष्य को प्राकृतिक शक्तियों से परे कहीं अधिक सूक्ष्म पराभौतिक शक्तियाँ प्रदान करती है। जिसके द्वारा वह ब्रह्माण्ड में किसी भी स्थान का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इतना ही नहीं बैठे ही बैठे भूत, भविष्य और वर्तमान काल और उनकी सीमा के परे का भी रहस्य जान समझ सकता है और उसका वर्णन भी कर सकता है।

ये जटिल और दुरूह प्रश्न अभी भले ही वैज्ञानिकों के लिए रहस्यमय बने हुए हों लेकिन भारतीय योग विज्ञान ने हजारों वर्ष पूर्व प्राप्त कर लिया उनका उत्तर और अनावृत्त भी कर दिया था रहस्यों को। 'परलोक के खुलते रहस्य' को केन्द्र मानकर जब हमने खोज की दृष्टि से इस दिशा में (सन् १६५८ ई०) कदम रखा तो स्तब्ध रह गये। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि आपके शरीर में हड्डी, मांस, मज्जा खून आदि के अतिरिक्त और बहुत कुछ है और वह बहुत कुछ है- मनस्तत्व, चेतनतत्व, प्राणतत्व और आत्मतत्व। ये चारों तत्व अपने आपमें स्वतंत्र हैं किन्तु मानव शरीर में आकर चारों एक दूसरे के सहयोग से अपना-अपना कार्य करते हैं। चारों तत्वों के दो-दो रूप हैं- व्यष्टि रूप और समष्टि रूप, चेतना और मन का दूध पानी की तरह संबंध है। इसी संबंध के आधार पर मन के दोनों रूपों को चेतन मन और अवचेतन मन कहते हैं। अवचेतन में असीम शक्ति है। अवचेतन मन को ही परामन, (परासाइकिक तत्व) कहते हैं। मस्तिष्क के पिछले भाग में अवचेतन मन का स्थान है। उसी स्थान को अधोलघु मस्तिष्क कहते हैं और योगी की भाषा में कहते हैं सहस्रार चक्र।

परामानसिक तत्व में कौन सी ऐसी शक्ति नहीं है और कौन सी ऐसी सिद्धि नहीं है जो उसमें न हो। योग-तंत्र से संबंधित जो लौकिक-पारलौकिक और आध्यात्मिक सिद्धियाँ और चमत्कार हैं, वे सब के सब 'परामानसिक तत्व' पर ही आधारित हैं इसमें सन्देह नहीं। अपने तीन सहयोगी तत्वों का आश्रय लेकर परामानसिक तत्व असीम शक्तियों का स्वामी बन जाता है।

परामानसिक तत्व और समाधि : सर्वप्रथम हम आपको यह बतला दें कि शरीर ही काल यानी समय और स्थान से बंधा है। आत्मा इन दोनों बंधनों से सर्वथा मुक्त

है। स्वप्नावस्था में इन्द्रियों के साथ शरीर भी शिथिल हो जाता है। एक प्रकार से मन भी स्थिर हो जाता है। ऐसी अवस्था में अवचेतन मन, चेतन मन में शनैः-शनैः प्रकट होता है और तीनों काल की बात तो बतलाता ही है इसके अतिरिक्त पिछले और अगले जन्म में भी दृश्य रूप में मानस पटल पर प्रकट करता है। सिद्ध योगीगण परामानसिक शक्ति का आश्रय लेकर सूक्ष्म शरीर द्वारा आकाश मार्ग से कुछ ही समय में सैकड़ों हजारों मील की यात्रा कर लेते हैं। इच्छित स्थान पर क्षण मात्र में पहुंच कर वहां का समाचार प्राप्त कर लेते हैं। यदि ब्रह्माण्डीय ऊर्जा भी उपलब्ध है तो सूक्ष्म शरीर द्वारा किसी भी लोक-लोकान्तर में प्रवेश कर वहां का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। परामानसिक तत्व को उपलब्ध योग, स्पर्श मात्र से किसी भी व्यक्ति का भूत, भविष्य और वर्तमान बतला सकने में समर्थ होता है। स्वयं भविष्य के गर्भ में प्रवेश कर घटने वाली घटनाओं की जानकारी भी प्राप्त कर लेते हैं।

अविस्मरणीय घटना- पुस्तक लिखते समय सहसा बाबा अक्षरानन्द मेरे स्मृति पटल पर आ गये। अगर मैं उनका वर्णन यहां न करता तो शायद पुस्तक अधूरी लगती। आज जो भी हूँ बाबा की एहैतुकी कृपा के कारण।

सारी स्मृति एकाएक मेरे सामने आ गयी। तुलसी बुआ का निधन हो चुका था। मन अशान्त था। विरक्ति सी हो गयी थी। सायं काल का समय हल्के जाड़े की शुरूआत संसार से मन विरक्त हो रहा था। पता नहीं कौन सी अदृश्य शक्ति अनजान राह पर ले जाना चाहती थी कुछ समझ में नहीं आ रहा था। हरिश्चन्द्र घाट के पास बने लाली घाट पर धूल से भरी सीढ़ियों पर चुपचात मौन साधे बैठा रहा। जब भी मन क्लान्त होता था बस हरिशचन्द्र घाट के महाश्मशान के पास चला जाता, एक अबूझ सी शान्ति मिलती थी गाल पर हाथ धरे बस सोचता रहा सामने धू-धू कर जलती चिताओं को देखता रहता जो इस संसार का परमसत्य है। क्या एक दिन मैं भी इस सत्य का सामना करूंगा? हाँ यही तो सत्य है। इस संसार में जो भी प्राणी आया है उसे इस आखिरी सत्य का सामना करना ही पड़ता है। लेकिन क्या जीवन का यही आखिरी सत्य है। नहीं...नहीं....इसके बाद भी जीवन है वह कैसा है....

धधकती चिताओं को देखकर विचारों का उथल-पुथल मन को झकझोर रहा था। सत्य के अन्तिम साकार रूप को देखता रहा और सोचता रहा कि जीवन के बाद मृत्यु या मृत्यु के बाद भी जीवन है या यही सत्य है।

नहीं.... न मृत्यु सत्य है न ही जीवन। इन दोनों के आगे भी सत्य है उस

सत्य को जानना है। बस मेरे जीवन का ध्येय मिल गया था और यहीं से एक नया अध्याय जुड़ गया। बस दूसरे ही दिन निकल पड़ा हरिद्वार, गंगोत्री की ओर जहां किसी सन्त महात्मा के सान्निध्य में मेरे प्रश्नों का उत्तर मिल जाये। जब हरिद्वार पहुंचा तो माँ की कृपा से एक मठ में रहने का स्थान मिल गया और पता चला एक साधू मण्डली गंगोत्री की ओर प्रस्थान करेगी... बस अन्धे को क्या चाहिए बस दो आंखे। उसी दिन मण्डली के महन्त से अनुरोध किया तो सहमति मिल गयी। मठ की तरफ से दो ऊनी कम्बल भी मिल गया। बस प्रातःकाल भगवान भास्कर की रक्तिम आभा निकलते ही हरिद्वार में माँ गंगा के अमृत जल से स्नान कर मण्डली के साथ गंगोत्री की ओर निकल पड़ा। गंगोत्री के प्राकृतिक वातावरण में कुहरे की धवल चांदर में लिपटी सांझ की सुरमयी फैली हुई थी। अक्सर मैं साधु मण्डली से अलग-अलग ही रहा करता था। सभी साधू भजन कीर्तन सत्संग करते हुए अपने आप मे मस्त रहते थे। समय बीतता जा रहा था। मेरी जिज्ञासा उसी तरह सर्प के फन की तरह खड़ी हुई थी। उत्तुंग पर्वत, मनोरम छटा को देखता हुआ इतना तल्लीन हो गया जैसे कुछ सूझ ही न रहा हो अजीब सा सम्मोहन था और जब तन्द्रा भंग हुई तो देखा कि मैं नितान्त अकेला और साधु मण्डली गाते बजाते कब चली गयी पता ही नहीं चला। घनघोर पहाड़ी जंगल, कोहरे की घनी चादर बढ़ती ही जा रही थी। मन घबराने लगा, माँ जगज्जननी को याद करने लगा मैं। क्या करूं......इस पहाड़ी पर रात कैसे गुजारूं। दूर-दूर तक कहीं कोई प्राणी नजर नहीं आ रहा था। सांय-सांय करती हवा की गूंज, पत्तियों की खड़खड़ाहट, पक्षियों के चोंच रगड़ने की आवाज से सन्नाटा भंग होता थोड़ी देर के लिए और तभी शंख की ध्वनि उस अबूझ सन्नाटे को चीरती मेरे पास आयी। देखा जहां जंगल की सीमा समाप्त हुई वहीं ऊपर एक पर्वतीय कन्दरा के पास से टिमटिमाती रोशनी दिखी। शायद शंख की ध्वनि उसी ओर से आ रही थी। एकाएक मेरे अन्दर असीम शक्ति का संचार होने लगा और चल दिया मैं उस कन्दरा की ओर और जब वहां पहुंचा तो बड़ा ही रहस्यमय लगा वहां का वातावरण। दूर-दूर तक कहीं कोई नहीं दिख रहा था। काफी देर तक उस गुफा के सामने खड़ा रहा भीतर जाने का साहस ही नहीं जुटा पा रहा था मैं। मन ही मन सोच रहा था संसार, समाज और अपने परिवार से दूर इस निर्जन सुनसान स्थान पर अकस्मात मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई अदृश्य शक्ति भीतर जाने को प्रेरित कर रही है। सम्मोहित सा उस कन्दरा में प्रवेश किया और देखा सामने महाकाल का निराकार रूप यानि शिवलिंग और थोड़ी ही दूरी पर माँ महामाया महाकाली की प्रतिमा जो अट्टाहास करती हुई प्रतीत

हो रही थी। जैसे ही पलटा सामने एक दिव्य पुरूष कषाय वस्त्र को लपेटे जटाजूट, गौरवर्ण साक्षात् भगवान शंकर जैसे प्रतीत हो रहे थे। लाल-लाल गूलर की तरह आंखें लेकिन उन आंखों में करूणा का सागर लहरा रहा था, हाथ में शंख, दोनों बाजू में भगवान शिव का रूद्राक्ष, गले में विभिन्न प्रकार की मालाएं एक अबूझ और कौतूहल मेरे मन में पैदा कर रही थी। लेकिन भय का कहीं नामोनिशान नहीं था। मेरी आत्मा कह रही थी कि तू जिसके लिए भटक रहा था बस यही है तेरी मंजिल।

उस रहस्यमय संन्यासी ने इशारे से कहा- बैठ जा। मैं वहीं जमीन पर बैठ गया। बाहर कड़ाके की ठण्डी थी लेकिन उस गुफा की खाली जमीन पर ठण्ड का नामोनिशान तक नहीं था। गम्भीर स्वर शान्त वातावरण में गूंजा कि कहां से आना हुआ ....। काशी से मैं धीरे से बोला। यहां क्या कर रहा है? इस घने जंगल में? क्यों आया है? मैंने अपना सारा वृत्तांत सुना दिया। बाबा कुछ देर सोचते रहे फिर बोले- भूखा है। हाँ बाबा और प्यास भी लगी है। यहां पात्र आदि नहीं है जा माँ के पास पड़ा खप्पर है उस ले आ। मैं सम्मोहित सा हो उठा और माँ के पास रखे उस खप्पर को उठाया न जाने किस चीज से बना था। उस पात्र को लेकर आज्ञाकारी शिष्य की भांति उस रहस्यमय संन्यासी के पास जाकर खड़ा हो गया। बाबा ने अपने कमण्डल से जल डाला उस खप्पर में। लेकिन यह क्या वह जल तो नहीं लग रहा था एक सफेद तरल पदार्थ जिसमें विभिन्न प्रकार की रश्मियां फूट रहीं थीं। ले पी जा देखता क्या है। तत्काल मैं पी गया उस अनवर्चनीय स्वाद का वर्णन करने का मेरे पास शब्द नहीं हैं। उसके बाद न तो मुझे भूख लगी न ही प्यास और आश्चर्य की बात तो यह थी कि वहां उस कन्दरा में ठण्ड का जरा सा भी अनुभव नहीं हो रहा था। कन्दरा में पता नहीं कहां से हल्की धवल रोशनी व्याप्त थी और वह रोशनी कहां से आ रही थी बतला नहीं सकता मैं। कहने की आवश्यकता नहीं उस अमृत तुल्य जल पीने के बाद जैसे बरसों की थकान,भूख, प्यास सब मिट चुकी थी।

बाबा ने इशारा किया और माँ जगज्जननी के पास पड़े आसन पर बैठ गया और जब तन्द्रा भंग हुई तो देखा प्रातःकाल हो चुका था। पक्षियों की आवाज उस निःशब्द वातावरण को कर रही थी भंग लेकिन आश्चर्य की बात यह थी कि उस स्थान पर समय का ज्ञान नहीं रहता कब रात होती और कब सवेरा....। खैर, प्रातःकाल बाबा अपने नित्यकर्म से निवृत्त होकर बोले- जा माँ का ध्यान कर और सात दिन तक अपने शरीर का शोधन कर। तीन जन्मों का साधक है पता नहीं

कौन सी गलती कर बैठा मेरी तरह जो तुझे पुनः जन्म लेना पड़ा इस मृत्युलोक में। मैं चौंक पड़ा एकबारगी। कौन सी गलती मेरी तरह बाबा की.....बस यही आवाज मेरे मानसपटल पर गूंजती रही। खैर, मैं सात दिन तक माँ और महादेव के स्थान की सफाई करता और ध्यान लगाता। लेकिन समय कब काल के प्रवाह में समाता गया पता ही नहीं चला।

इन सात दिनों में मुझे न भूख लगी न ही प्यास और आश्चर्य की बात यह थी कि मैं हर समय तरोताजा व स्फूर्तिवान महसूस करता रहा। बाबा हर समय समाधि में रहते तथा अपनी किसी विशेष क्रिया में लगे रहते। बाद में पता चला कि बाबा का नाम अक्षरानन्द सरस्वती है। यह गुरु प्रदत्त नाम है बाबा का। कहां से आये थे इस भयानक घनघोर जंगल में वह भी अकेले किसी को इसका पता नहीं था। बाबा रहस्यमय लगे। बाबा के निर्देशानुसार साधना करता रहा समय कैसे बीत गया पता ही न चला। सात दिनों तक आभास ही नहीं हुआ समय का। ऐसा लग रहा था कि जैसे कल की ही बात है लेकिन सात दिनों में मेरे मन प्राण, आत्मा और शरीर में भारी परिवर्तन हो चुका था। फिर भी मेरे मन की जिज्ञासा यथावत् बनी रही।

एक दिन बाबा समाधि में थे। मैं चुपचाप उनके सामने बैठा रहा। जब बाबा की आंखे खुली एवं उनकी तन्द्रा भंग हुई तो उन्होने बोला- काशी छोड़कर क्यों यहां आये हो। वहां तो साक्षात् परमब्रह्म परमेश्वर महादेव विराजमान हैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर तो काशी में ही मिल जाता। जा घर जा अभी पढ़ने लिखने का समय है इतनी कम उम्र में वैराग्य ठीक नहीं है। समय से सब कुछ ठीक हो जायेगा। जा तेरे शरीर का शोधन हो गया है, आत्मा शुद्ध हो गयी है। माँ जगज्जननी की सेवा कर। नहीं बाबा.....बीच में ही मैं बोल पड़ा अब सब कुछ आपकी चरणों में है। मैं वापस जाने नहीं आया हूँ। यह तो माँ की लीला है कि आप यहां मिल गये और आपको छोड़कर कहां जाऊंगा इस बीयावान जंगल में। न जाने क्यों बाबा को मुझ पर दया आ गयी और उस कन्दरा में मुझे कुछ दिन रहने के लिए स्थान दे दिया।

पता नहीं कब रात हो गयी। बाहर काले बादल लहरा रहे थे। तभी आकाश का सीना चीरते हुए बिजली कड़की और घनघोर वर्षा का ताण्डव शुरू हो गया। अन्दर अबूझ सी शान्ति बिखरी हुई थी। तभी मेरे लिए खप्पर में गरमागरम खिचड़ी ले आये और बोले खा ले। आश्चर्य, घोर आश्चर्य हुआ मुझे कि बाबा तो यहीं थे मेरे सामने। यह सोचकर बाबा की ओर कौतुक भरी नजरों से देखता रहा। बाबा

मुस्कुराये और बोले- दिमाग पर ज्यादा जोर मत डाल जा खा ले।

मन ही मन अपनी कुल देवी माँ तारा का स्मरण किया। ऐसा लगा जैसे माँ कह रही हों कि तेरी मंजिल मिल गयी है। बस फिर क्या था मैं बाबा की सेवा में लग गया। बाबा कुछ नहीं बोलते थे और मैं बाबा के दिये गये निर्देशों को ध्यान से पालन करता और वे भी मेरे क्रियाकलापों को बड़े ही मनोयोग से बस देखते रहते थे। एक दिन सांयकाल का समय था। चारो तरफ सिन्दूरी रंग जैसा आकाश और पशु पक्षी की आवाज भंग कर देती थी वहां के शान्त वातावरण को। बाबा बड़े ही प्रसन्न दिख रहे थे। बाबा बोले- तुम्हारे घर वाले परेशान हो रहे होंगे। अब घर जा। क्या करेगा यहां भटकने से क्या लाभ? मुझे देख मैं भी तो बाल्यावस्था से भटक रहा हूँ। ऐसा कौन सा कारण है जो अपने आपको परम वैराग्य को कर दिया उपलब्ध बाबा ने। कुछ देर बाबा शान्त रहे जैसे अतीत में खो गये हों। उनके मुखमण्डल पर एक अजीब सी पीड़ा और वेदना की लहर दौड़ गयी । बाबा बोले कुछ भी नहीं बस उठे और कन्दरा में जाकर पद्मासन की मुद्रा में बैठ गये माँ के सामने। मैं भी बाबा के बतलाये स्थान पर साधना के लिए पास के पेड़ के नीचे बैठ गया। खैर, दूसरे दिन बाबा अपने नित्यकर्म से खाली होकर जब अपने मृगचर्म से बने आसन पर बैठे तो इशारे से उन्होने मुझे बुलाया। मैं डरते-डरते उनके पास पहुंचा तो वे बोले- बैठ, अब तेरे सामने सारा रहस्य उजागर करना ही होगा। पहले मैं तुम्हे एक बालक की कथा सुनाता हूँ। मैं मन ही मन सोचने लगा कि अब तक बाबा ने अपने रहस्य को उजागर क्यों नहीं किया और कौन सा कारण होगा? कौन सा प्रायश्चित है जो इस निर्जन वन में इसे पूरा कर रहे हैं? बाबा रहस्यमय लगे लेकिन उनका अपनत्व मुझे बांधे रहा।

अद्भुत बाल योगी- यह घटना भारत के विभाजन के पूर्व की है। जब अंग्रेजों का शासन पूरे भारत वर्ष में फैला हुआ था। लायलपुर एक छोटा सा कस्बा (वर्तमान में पाकिस्तान में है) था। जिसमें एक ब्राह्मण परिवार रहता था और खेती बाड़ी से भरण पोषण कर रहता था। उसी ब्राह्मण किसान के घर में एक बालक का जन्म हुआ। उस बालक के जन्म से ही घर में खुशियों की बौछार होने लगी और धीरे-धीरे उस गरीब असहाय परिवार में सुख-सुविधा की सारी वस्तुएं उपलब्ध हो गयी। सबसे खुशी कि बात यह हुई कि उस बालक के पिता को नौकरी मिल गयी।

परिवार शान्तिपूर्वक जीवनयापन करने लगा। लेकिन आश्चर्य की बात यह

थी कि वह बालक जन्म के तीन माह तक बिस्तर पर नित्यकर्म नहीं किया बस दूधपान करता था। शुरू में लोगों ने ध्यान नहीं दिया लेकिन बाद में जब ध्यान गया तो घर वालों के साथ-साथ पास पड़ोस के लोग भी हैरान में पड़ गये। नीम हकीम को दिखलाया गया वे भी इसका कारण समझ नहीं पा रहे थे। खैर कोई परेशानी न होने कारण सब कुछ सामान्य चलता रहा। बालक का नाम गोविन्द रखा उसके माता-पिता ने। गोविन्द जब पांच वर्ष का हुआ तो उसे नजदीक के एक संस्कृत पाठशाला में विद्या अध्ययन के लिए भेजा गया। लेकिन उसका मन वहां नहीं लगा। अपने सहपाठियों के साथ खेलना तो दूर मिलता-जुलता भी नहीं था। यह सब देखकर उसके पिता ने घर पर ही संस्कृत शिक्षक की व्यवस्था कर दी। शिक्षक महोदय भगवद्गीता के कुछ श्लोक सुनाया तो बालक तुरन्त ही बोला गुरुजी आपका उच्चारण और अर्थ अशुद्ध है। गुरुजी सकपका गये और बोले- पण्डितजी आपका बालक अद्भुत है। यह तो पूर्व जन्म से ही विद्वान है इसे मैं नहीं पढ़ा सकता हूं। थोड़े दिनों तक वे शिक्षक बदलते रहे फिर थक हार कर शान्त होकर बैठ गये। गोविन्द अक्सर घण्टो ध्यान की अवस्था में कमरे के एक कोने में बैठा रहता। एक दिन पण्डितजी के ससुराल से पत्र आया कि कोई पूजा है पत्नी को मायके भेज दें। पत्नी तो तैयार हो गयी लेकिन माँ के साथ गोविन्द जाने को तैयार न हुआ। एकाएक गोविन्द अपने पिता से बोला कि आप और माँ जिद कर रहें हैं तो मैं कुछ नहीं बोलूंगा लेकिन हो सके तो अच्छी तरह मिल लें दोबारा आपकी और माँ की मुलाकात नहीं होगी। यह सुनकर पिता ने बालक को डाँट कर चुप रहने को कहा और अपनी पत्नी को विदा कर दिया। कुछ दिनों बाद खबर आयी पत्नी अमुक ट्रेन से आ रही है।

पण्डितजी प्रसन्न होकर बालक से बोले कि दो दिन बाद तेरी माँ आ रही है स्टेशन लेने चलना है। गोविन्द उदास होकर बोला- पिताजी बेकार है वे हमें नहीं मिलने वाली हैं। दो दिन बाद पण्डितजी और गोविन्द स्टेशन लेने गये ट्रेन रूकी, पति और पुत्र को देख कर भावावेश में जल्दी से गाड़ी से उतरी और पैर साड़ी में फंस गया जिससे उनका सन्तुलन बिगड़ गया और वह गाड़ी के नीचे गिर कर कुचल गयी। भीड़ इकट्ठा हो गयी। पण्डितजी को जैसे काठ मार दिया वे किसी तरह अपने को सम्भालते हुए लोगों की मदद से पत्नी की लाश लेकर घर आये। लेकिन गोविन्द का चेहरा भावाहीन था। सारे क्रियाकर्म होने के बाद वह बालक अपने पिताजी से बोला कि मैंने तो पहले ही कहा था लेकिन आप और माँ मेरी

बात नहीं माने। समय बीतता रहा बालक उस समय ग्यारह वर्ष का हो गया था।

एक दिन दोपहर का समय था। चारो तरफ सन्नाटा पसरा था। बालक अपने पिता से वार्तालाप कर रहा था तभी एक वृध्द्ध संन्यासी सफेद घनी दाढ़ी बाल कषाय वस्त्र, हाथ में कमण्डल लिए दरवाजे पर खड़ा हो गया। तत्काल वह बालक उठा प्रणाम कर संस्कृत में कुछ बोला और अन्दर पधारने को कहा। कुछ देर तक उस संन्यासी से वार्ता होती रही संस्कृत में। कुछ देर बाद अपने पिताजी के पास जाकर बोला कि पिताजी अब आपसे विदा लेने का समय आ गया है। ये संन्यासी मेरे शिष्य हैं। इन लोगों ने अपने तपोबल से ज्ञात कर लिया कि मेरा जन्म कहां हुआ है। ये लोग मुझे लेने आये हैं। मेरी आत्मा उच्चकोटि की थी। यह मेरा तीसरा जन्म है। अपने पिछले जन्म के गुरु भाई को शास्त्रार्थ में हरा दिया था जिसकी वजह से वह आश्रम छोड़कर चला गया था। बाद में मुझे काफी पश्चाताप हुआ और मैंने प्रायश्चित स्वरूप योगबल से अपना शरीर त्याग कर दिया। उसके बाद मेरा जन्म यहां हुआ। आप मेरे पिता हैं ये शरीर आपका है जिसका ऋण कभी भी चुकाया नहीं जा सकता है। यह सब कह कर बालक ने अपने पिता को प्रणाम किया और संन्यासी के साथ जंगल की ओर चला गया। असहाय पिता आंखों में आंसू लिए बालक को जाते हुए देखता रहा जब तक ओझल नहीं हो गया।

बाबा आकाश की ओर देखकर लम्बी श्वांस लेते हुए बोले- जानते हो वह अद्भुत बालक कौन था? मैं ही हूँ। बाबा....आप हठात् मैं बोल पड़ा। हाँ.... मैं... पिछले जन्म का प्रायश्चित कर रहा हूँ। जागृत अवस्था में शरीर छोड़ने के बाद मैं लोक-लोकान्तर का भ्रमण करता रहा और योग्य गर्भ की तलाश भी। योग्य गर्भ मिला पुनः जन्म ले लिया और आगे की साधना कर पूर्ण कर रहा हूँ। तुम्हे पता है कि जब तुम इस बीयावान में आये थे तब मैंने अपने योग बल से तुम्हे देख लिया और मेरी ही इच्छा से तुम यहां आये हो।

मैं यहीं रहता हूँ लेकिन कोई भी मुझे देख नहीं सकता जब तक की मैं न चाहूं। जहां तक भौतिक-अभौतिक सत्ता का प्रश्न है उसका मैं समाधान कर दूंगा। मैंने जानबूझकर तुम्हे सात दिन के शरीर शोधन की क्रिया बतलायी ताकि तुम उस अनन्त रहस्य को जान सको। शरीर की एक सीमा होती है। सीमा के पार जाने के लिए तुम्हे शरीर शोधन की आवश्यकता है। मैंने जो तुम्हे अद्भुत जल पिलाया था वह इसलिए ताकि अन्दर से शरीर शुद्ध हो जाये और आन्तरिक शक्ति हो प्रबल। मैं अवाक् सा सुनता रहा। बाबा को सब ज्ञात था। मैंने कभी स्वप्न में भी

नहीं सोचा था कि ऐसे महान साधक से सामना होगा और होगा दर्शनलाभ।

खैर, अब सारी बात छोड़, समय कम है बतला क्या जानना चाहता है? बाबा ने एक झटके से सारी बात कह डाली। मैंने अपनी जिज्ञासा प्रकट की और बोला- बाबा इस पार्थिव जगत और सूक्ष्म जगत के बीच निस्सन्देह कोई सीमा होगी? जन्म-मृत्यु का रहस्य क्या है? उस अदृश्य सीमारेखा के पार क्या है? उसे जानने और समझने के लिए मेरी आत्मा हमेशा व्याकुल रहती है। यही व्याकुलता मुझे काशी से यहां खींच लायी है। कुछ देर मौन साधे रहे मेरी बात सुनकर बाबा अक्षरानन्द फिर गम्भीर स्वर में बोले- उस अदृश्य सीमा रेखा को पार करने रहस्यमय पारलौकिक जगत में प्रवेश करने तथा उसमें निवास करने वाले अपरिचित और अज्ञात प्राणियों से सम्पर्क स्थापित करने के लिए वैसे तो कई साधन हैं। यदि कोई पुष्ट, प्रमाणित और साथ ही साथ पूर्ण विश्वसनीय साधन अथवा मार्ग है तो वह है एकमात्र योग-तंत्र। योग तपस्या का मार्ग है जबकि तंत्र साधना का मार्ग है। पहले मार्ग में सफलता कब मिलेगी यह सन्दिग्ध है दूसरा मार्ग कठिन और कंटकाकीर्ण अवश्य है लेकिन जहां तक सफलता का प्रश्न है वह साधक की योग्यता और संस्कार पर निर्भर है। थोड़ा रूककर शून्य में निहारते हुए बाबा ने आगे कहना शुरू किया- तंत्र में बहुत सी ऐसी तामसिक और राजसिक साधनायें हैं जिनमें सफल होने पर उनकी सहायता से एक सीमा तक परलोकगत सभी प्रकार की आत्माओं से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। उनकी मति गति को समझा भी जा सकता है। लेकिन जहां तक उस अदृश्य सीमा रेखा को पार करने और पारलौकिक जगत में प्रवेश करने का सवाल है वह समाधि द्वारा ही सम्भव है।

समाधि द्वारा? हाँ समाधि द्वारा। योग की यह उच्चतम् अवस्था है।

कुछ देर तक न जाने क्या सोचते रहे बाबा फिर आगे बतलाने लगे- उस अदृश्य सीमा रेखा का उल्लंघन मृत्यु में ही सम्भव है। इसलिए मृत्यु से परिचित होना आवश्यक है जो जीते जी सम्भव नहीं है। यदि जीते जी सम्भव है तो एकमात्र समाधि द्वारा ही है। मृत्यु और ध्यान दोनों की स्थिति समान है। मृत्यु की तरह हम ध्यान में भी धीरे-धीरे प्रवेश करते हैं। जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते जाते हैं वैसे ही वैसे एक-एक वस्तु हमसे छूटती चली जाती है। उनके हमारे बीच अन्तर बढ़ता जाता है। अन्त में वह क्षण आ जाता है, वह घड़ी आ जाती है कि लगता है हमसे सब दूर हो गया है, सब अलग हो गया है, शरीर भी। फिर लगेगा कि हम हैं। हमारा अस्तित्व है। उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ है और उसी के साथ

हम अपने आपको सबसे अलग भी अनुभव करते हैं। ऐसा लगता है मानो हमारा अस्तित्व स्वतंत्र है। किसी वस्तु से उसका संबंध नहीं है और जिस समय, जिस क्षण यह प्राप्ति होती है और यह अनुभव होता है उसी क्षण और उसी समय हम मृत्यु के साक्षात्कार को जीते जी उपलब्ध हो जाते हैं और फिर मृत्यु से कोई संबंध नहीं रह जाता है।

हमारी जब मृत्यु आयेगी तो वह हमारी मृत्यु नहीं होगी। वस्त्र की तरह शरीर को बदल कर नया शरीर स्वीकार कर लेंगे हम और आगे की यात्रा पर निकल जायेंगे। जो हमारे नये जन्म और नये जीवन की यात्रा होगी।

मृत्यु के भय का यही एकमात्र कारण है और ध्यान मरने की एक प्रक्रिया है। ध्यान की पूर्णावस्था में हम वहीं पहुंच जाते हैं जहां एक मृत व्यक्ति पहुंचता है। अन्तर मात्र केवल इतना ही होता है कि मृत व्यक्ति वहां बेहोशी की अवस्था में पहुंचता है जबकि हम बिल्कुल जागृत और चैतन्य अवस्था में पहुंचते हैं। हमारे और एक मृत व्यक्ति के विचारों में भी अन्तर होता है। मृत व्यक्ति को पता नहीं होता कि 'क्या हो गया है'? शरीर कैसे छूट गया और वह कैसे मर गया? हम सोचते हैं कि शरीर और हम एक दूसरे से अलग हो गए।

कहने का तात्पर्य यह है कि ध्यान की जो चरमावस्था है और है पूर्णावस्था वह है समाधि। उस अवस्था को दो प्रकार से उपलब्ध हुआ जा सकता है- मर कर या समाधि द्वारा। पहले प्रकार में हम बेहोश रहते हैं, चेतनाशून्य रहते हैं। इसलिए हम उस अदृश्य सीमा रेखा के पार कब चले जाते हैं? इसका कोई ज्ञान नहीं रहता हमें। जबकि दूसरे प्रकार में हम पूर्णरूप से होश में रहते हैं और रहते हैं पूर्ण चैतन्य। इसलिए उस अदृश्य सीमारेखा को पार करने और पारलौकिक जगत में प्रवेश करने का पूरा-पूरा ज्ञान और अनुभव रहता है हमें और जब हम समाधि से वापस लौटते हैं तो वह ज्ञान और वह अनुभव हमारे साथ होता है।

बाबा अक्षरानन्द की बातें सुन कर मन ही मन सोचने लगा- समाधि उपलब्ध होने के लिए 'ध्यान' की लम्बी यात्रा करनी पड़ेगी। अन्त में सफलता मिलेगी या नहीं यह भी कोई निश्चित नहीं। क्योंकि यह तपस्या का कंटकाकीर्ण मार्ग है। फिर..........और इस फिर पर आकर रूक गई मेरी विचारधारा।

शायद मेरे मन की बात समझ गये बाबा अक्षरानन्द। एक बार उन्होने तीक्ष्ण दृष्टि से देखा और फिर बोले- सब कुछ सरल और सहज है। बस अभ्यास करना चाहिए। बाबा के उपरोक्त शब्द एक-एक कर मेरी आत्मा की गहरायी में उतरते

चले गये। फिर रूका नहीं वहां वापस आकर अभ्यास करने लगा मैं। लगभग पन्द्रह दिन के बाद ऐसा लगने लगा कि अदृश्य रूप से मार्गदर्शन कर रहे हैं बाबा। कभी-कभी तो उनके अस्तित्व का बोध भी होने लगा मुझे। ऐसा प्रतीत होता था कि अदृश्य रूप से मुझे निर्देशित कर रहे हैं बाबा।

धीरे-धीरे पूरे चार महीने का समय बीत गया। अब मेरा ध्यान सहज भाव से अपने आप बिना किसी प्रयास के निर्विघ्न लगने लगा और उस अवस्था में मैं अपने को शरीर से अलग होने का अनुभव करता था और अन्त में अपने शरीर को अपने से अलग देखता था। उन दोनों स्थितियों में अपने आप में एक विचित्र सी भारहीनता का बोध करता था और अनुभव करता था एक अवर्णनीय सुख का भी। सबसे आश्चर्यजनक बात यह थी कि मैं अपने अस्तित्व और अपनी आन्तरिक अवस्था में, शरीर के अभाव में भी किसी भी प्रकार के परिवर्तन का अनुभव नहीं करता था। पहली बार मैंने यह जाना कि स्थूल शरीर से जीवन का कोई नाता रिश्ता नहीं। उसके बिना भी जीवन का अस्तित्व है। उसी देहातीत अवस्था में पद्मासन की मुद्रा में बैठे अपने पार्थिव शरीर से कभी-कभी बहुत दूर निकल जाया करता था और बहुत देर तक स्वच्छन्द और निर्विघ्न विचरण करता रहता था। देहहीन होने के कारण लोग मुझे तो नहीं देख पाते थे लेकिन मैं सभी को देख सकने में समर्थ था। इतना ही नहीं लोगों के भावों, विचारों और वृत्तियों से भी तत्काल परिचित हो जाता था। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह थी कि अशरीरी प्राणियों को भी देख लेती थी मेरी दृष्टि। गंगातट पर स्नान करते हुए, मन्दिरों में पूजा पाठ और ध्यान धारणा करते हुए शरीरधारियों से कहीं अधिक अशरीरी लोगों की भीड़ देखी है मैंने। इसी प्रकार निम्नकोटि की निकृष्ट आत्माओं को भी देखा करता था। और फिर एक दिन बाबा ने मेरे सिर पर अपना दाहिना हाथ रखा। एक अजीब सी सनसनाहट का अनुभव किया अपने शरीर के अन्दर।

अचानक न जाने कैसे उस परम अवस्था में भौतिक वातावरण की सीमा का उल्लंघन कर अभौतिक वातावरण में प्रविष्ट हो गया मैं और एक अभूतपूर्व अनवर्चनीय दृश्य देखा मैंने। हे भगवान! कितना मोहक और अविश्वसनीय दृश्य था वह। उस समय मैं अपने अस्तित्व का बोध अन्तरिक्ष के ऐसे वातावरण में कर रहा था- जहां गहन शून्य के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। मेरे चारो ओर स्वच्छ निर्मल आकाश का नीला विस्तार था और उस नीले विस्तार में एक दूसरे से काफी दूर अगणित ग्रह नक्षत्र और तारे झिलमिला रहे थे।

मैं अपने आप में मग्न था। तभी एकाएक ग्रह नक्षत्र और तारा मण्डलों का अस्तित्व लुप्त हो गया मेरे सामने से और उसके स्थान पर सृष्टि हो गयी एक नये वातावरण की। वह वातावरण बड़ा ही मोहक, आकर्षक और अवर्णनीय था। चारो ओर परमशान्ति का साम्राज्य था और उस परमशान्ति के साम्राज्य में प्रवेश करते ही मेरा मन प्रफुल्ल हो उठा और मेरी मानसिक शक्ति भी अधिक बढ़ गयी। साथ ही साथ ऐसा लगा मानो मेरी चेतना जो अब तक बोझिल थी वह हल्की और निर्मल हो गयी और हो गयी प्रखर।

मनोमय जगत का था वह शान्त और रमणीक वातावरण। मुझे आश्चर्य हुआ कि कैसे पहुंच गया मैं उस जगत में? मैंने देखा- जिन लोगों ने संसार और शरीर में रह कर अपने जीवन काल में मानसिक विकास के अतिरिक्त आध्यात्मिक उन्नति की थी वे ही लोग वहां के निवासी थे। मरणोपरान्त संसार और शरीर त्याग कर लोग वहां सर्वप्रथम् तेज पुंज के रूप में प्रकट होते हैं। धीरे-धीरे वह तेज पुंज वैसा ही रूप और आकार-प्रकार ले लेता है जैसा उनका अपना शरीर युवावस्था में था। यही कारण था कि वहां के सभी लोग युवा और तेजस्वी थे। उनके चेहरे पर यौवन की आभा और प्रखरता थी और थी प्रसन्नता। सभी लोग अपने मनोबल और प्रखर इच्छाशक्ति से अपने अनुकूल पृथ्वी जैसे वातावरण की मानसिक सृष्टि कर उसमें निवास कर रहे थे।

मनोमय जगत में मुझे जिस आन्तरिक आनन्द का अनुभव हुआ वह संसार में कहां होगा। वह मोह-माया के जाल में ऐसा फंस जाता है कि उसे इस बात कि सुध ही नहीं रहती कि उसे जीवन में क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। मनोमय जगत में कबतक रहा यह तो नहीं बतलाया जा सकता लेकिन अभी तक जो मनोबल अत्यधिक प्रबल था वह सहसा क्षीण होने लगा और उसी के साथ-साथ क्षीण होने लगी मानसिकशक्ति भी। अब मैं अपने आप में प्राणशक्ति की अधिकता का बोध करने लग गया था। सचमुच बड़ी ही विचित्र स्थिति थी उस समय मेरी और उसी विचित्र स्थिति में सर्वथा नए वातावरण में अनुभव किया मैंने अपने आप को और वह वातावरण था सूक्ष्म जगत का, जिसे प्राण जगत भी कहते हैं। सम्भवतः इसीलिए मेरी प्राणशक्ति अधिक प्रबल और प्रखर हो गयी थी।

सूक्ष्म जगत के वातावरण में विचारों का प्रवाह था। वहां के निवासी सूक्ष्म शरीरधारी थे और उनमें सद्विचारों का बाहुल्य था। मनोमय जगत के लोगों के जैसे ये लोग भी मानसिक सृष्टि करने में समर्थ थे। सूक्ष्म शरीरधारी जगत के लोग

वैचारिक सृष्टि करने में सक्षम थे। अपने सद्-असद् विचारों के अनुरूप अपने लिए घर मकान, बाग बगीचे और मन्दिर मठ की सृष्टि कर उसमें मग्न रहते थे।

मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि अपने जीवन काल में जिसने जिस प्रकार के विचारों को प्रमुखता दी थी और जिस विचार को लेकर पूरा जीवन जिया था। मरने के बाद वहां पहुंच कर उसी विचार को साकार कर दिया था और उसी में जी भी रहा था। मनोमय जगत की तरह यहां के निवासी भी व्यक्तियों से अपने वैचारिक संबंध जोड़े हुए थे और अपने अच्छे-बुरे विचारों के अनुरूप उनसे काम ले रहे थे।

अब मेरी प्राणशक्ति भी क्षीण होने लगी थी और भाव प्रबल होने लगा था और उसी के साथ मेरा अस्तित्व 'भाव जगत' में प्रवेश कर रहा था। 'भाव जगत' के वातावरण में चारो ओर कुहरे जैसा धुन्ध छाया हुआ था और वहां के वातावरण में न मन की शक्ति थी न विचार की शक्ति थी। यदि कुछ था तो मात्र केवल 'भाव' अथवा 'भावना'। वातावरण में भी भावना का ही तरल प्रवाह था। यहां के लोग भी अपनी अच्छी बुरी भावना के अनुरूप सृष्टि कर उसमें निवास कर रहे थे।

सहसा भाव जगत का वातावरण लुप्त हो गया मेरे सामने से और दूसरे ही क्षण अपने भौतिक अस्तित्व का आभास हुआ मुझे। मेरी चेतना लौट आयी थी पार्थिवकाया में अपने आप आंखे खुल गयी। देखा पद्मासन की मुद्रा में बैठा था मैं पाषाणवत्। सवेरा हो चुका था, पक्षी कलरव कर रहे थे। पूरे सात घण्टे की अवधि में मन की सर्वोच्च अवस्था को उपलब्ध होकर जो कुछ देखा, सुना, और अनुभव किया था निस्संदेह उसने आविर्भूत कर दिया था मेरी चेतना को, झकझोर दिया था मेरे मन प्राण को और स्तब्ध कर दिया था मेरी आत्मा को एकबारगी।

बाबा का कथन सत्य था- समाधि मृत्यु का साक्षात्कार है और है प्रत्यक्ष अनुभव। मैंने कर लिया था साक्षात्कार और वह अवर्णनीय अनुभव भी। जीवन आत्मा से जुड़ा है। यदि आत्मा का अस्तित्व शाश्वत है तो जीवन का भी अस्तित्व शाश्वत है। मृत्यु जैसा संसार में दूसरा कोई असत्य नहीं है। मृत्यु एक घटना है जो जीवन की धारा को मोड़ देती है और देती है नया रूप। मृत्यु को यदि हम यह मान ले कि वह स्वप्नरहित एक गहरी नींद है और इसके अलावा और कुछ नहीं तो यह अतिश्योक्ति न होगी। उस नींद से उठने के बाद सारे मोह-माया के बंधन टूट गये प्रतीत होने लगते हैं और अपने पराये का बोध समाप्त हो गया होता है। अपने आप में एक हल्कापन और स्वतंत्रता का अनुभव होता है और इस बात

का भी ज्ञान होता है कि हमने संसार में क्यों जन्म लिया था? किसलिए शरीर धारण किया था और किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जीवन मिला था हमें? इस सन्दर्भ में एक बात बतला देना आवश्यक है कि मनोमय जगत, प्राणमय जगत और भावमय जगत तीनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। उनका अस्तित्व इस भौतिक जगत से परे नहीं है। आत्मा के लिए एक जगत से दूसरे जगत में जाना वैसे ही है जैसे एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान में जाना या एक शहर को छोड़कर दूसरे शहर में जाना। यह जान लेना आवश्यक है कि सभी जगत आपस में मिलकर सात स्तरों में विभक्त हैं। नीचे का पहला और दूसरा स्तर अत्यन्त घृणित है। बुरे कर्म करने वाले लोगों के लिए वे दोनो स्तर हैं। वहां घोर अन्धकार का साम्राज्य है। सम्भवतः इसीलिए उन दोनों स्तरों को नर्क की संज्ञा दी गयी है। तीसरा और चौथा स्तर मध्यम श्रेणी की आत्माओं के लिए है। इसी प्रकार पांचवे और छठे स्तर में उच्च कोटि की आत्माएं निवास करती हैं और इसीलिए उन दोनों स्तरों को स्वर्ग की संज्ञा दी गयी है।

अन्तिम सातवां स्तर सबसे भिन्न है और उन विशिष्ट आत्माओं के लिए है जिन्होने जीवनकाल में आत्म साक्षात्कार अथवा आत्मानुभव कर लिया है। सभी स्तरों में मृतात्मा को धरती पर किये गये कर्मो के अनुसार भेजा जाता है। प्रायः निचले स्तर की जीवात्मा को सत्कर्म करते हुये सातवें स्तर तक पहुंचने के लक्ष्य हेतु मनुष्य जीवन देकर धरती पर भेजा जाता है। लेकिन प्रायः ऐसा नहीं होता है। वह ऐसे कार्य करता है कि एक स्तर या एक लोक नीचे ही चला जाता है। सातवें स्तर पर पहुंचने पर आत्मा दिवात्मा कहलाने लग जाती है और उन्हे फिर मानव जीवन के लिए विवश नहीं होना पड़ता। सम्भवतः इसी अवस्था को मोक्ष कहते हैं या कहते हैं मुक्ति। बाबा अलौकिक पुरूष थे। उन्होने योग बल से मुझे वो सारा अनुभव करा दिया जो सम्भव नहीं था। इतना सब कुछ जानने समझने के बाद न जाने कैसी हो गयी मेरी मानसिक स्थिति और उसी विचित्र मानसिक स्थिति में वहीं अपने आप न जाने कैसे आत्म ऊर्जा की मात्रा अत्यधिक बढ़ गयी मेरे शरीर में। आत्म ऊर्जा एक ऐसी विलक्षण नैसर्गिक ऊर्जा है जो एक निश्चित मात्रा में प्राण ऊर्जा के साथ मिल कर शरीर में जीवनी शक्ति यानि चेतना के रूप में काम करती है और जिसका एकमात्र केन्द्र है हृदय। शरीर में रक्त का प्रवाह, हृदय की धड़कन और श्वांस-प्रश्वांस क्रिया उसी पर निर्भर है। विचार करने की शक्ति, चेतना के ही विभिन्न रूप हैं। इच्छा, कामना, वासना, भावना आदि एकमात्र उसी के उल्लास हैं।

आत्म ऊर्जा की अचानक वृद्धि का प्रभाव इन सब पर जितना पड़ना चाहिए वह तो पड़ा ही लेकिन उसका सर्वाधिक प्रभाव पड़ा मेरे विचारों पर और इसका परिणाम यह हुआ कि मेरे विचारों की सूक्ष्म तरंगें सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं को आकृष्ट करने लगीं। अनजाने में इस महत्वपूर्ण उपलब्धि का परिणाम यह हुआ कि परलोकगत सूक्ष्म शरीरधारी विभिन्न प्रकार की आत्माओं से मेरा वैचारिक सम्बन्ध अपने आप जुड़ने लग गया। जिसके फलस्वरूप अनजाने लोक के अनजाने लोगों द्वारा धीरे-धीरे पारलौकिक ज्ञान का भण्डार भरने लगा मेरा। बाबा के सान्निध्य में जो मुझे लौकिक और पारलौकिक ज्ञान और अनुभव प्राप्त हुआ उस अल्पावस्था में वह अमूल्य धरोहर से कम नहीं है मेरे लिए। अगर देखा जाये तो मेरे जीवन को आध्यात्मिक मार्ग में चलने की प्रेरणा और मार्ग बाबा ने दी और मेरे पहले मार्गदर्शक और गुरु भी बाबा ही थे।

बाबा ने पूर्वजन्म के रहस्य को बतलाया। उनका कहना था कि मैं पिछले जन्म में योग सिद्ध साधक था। माँ की अनुकम्पा से आलौकिक सिद्धी का लाभ भी हुआ था। लेकिन रोहणी के मोह और पश्चाताप में बिना समझे मैंने अपना शरीर त्याग दिया। जिसके कारण इस जन्म में मुझे अपना पिछला जन्म स्मरण नहीं रहा। बाबा का कहना था कि पूर्वजन्म और वर्तमान जन्म के बीच जो गांठ थी मैंने अपने साधना बल से खोल दिया। वो सिद्धियां आज भी तुम्हारे पास हैं अदृश्य रूप से सहायता करती रहेगी। तुम्हारी अपरोक्ष रूप से वही सिद्धियां तुम्हे मेरे पास ले आयी इसमें कोई शंका नहीं है।

अब आगे का मार्ग तुम्हे अकेले चलना है। समय-समय पर पूर्व जन्म के तुम्हारे गुरु तुम्हारी सहायता करते रहेंगे। क्योंकि अब मार्ग खुल गया है। तुम मुझे जब भी स्मरण करोगे मैं भी सूक्ष्म शरीर से मार्गदर्शन करता रहूंगा। (विशेष जानकारी के लिए पढ़ें 'आवाहन')। अब बाबा से बिछड़ने का समय आ गया था। मन काफी उदास हो रहा था। बाबा बोले- बर्फ गिरने वाली है। मैं अब तुम्हारा ठहरना उचित नहीं समझता हूँ। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। जब भी तुम स्मरण करोगे मेरी उपस्थिति का होगा अनुभव। मन बड़ा उद्विग्न था बाबा से बिछुड़ने का समय आ गया पता ही नहीं चला। कब दोबारा दर्शन होंगे बाबा के यही सोचकर मन भारी हो रहा था। बाबा का पैर जैसे ही छुआ तो अकस्मात आंखों से आंसू की अविरल धारा बहने लगी। उनका पैर पकड़कर काफी देर तक रोता रहा। बाबा का मन भी द्रवित हो गया। बोले- बेटा अभी तो जीवन का लम्बा सफर तय करना

है। तुम साधक हो इतनी मोह माया ठीक नहीं है। निरपेक्ष रहो। कहते हुए उन्होने मुझे गले लगा लिया। जब मन थोड़ा शान्त हुआ तो मैंने कहा- बाबा अब शायद ही आपसे मुलाकात हो। आप कोई अपनी निशानी दे दें। जो आपका स्मरण कराती रहे। बाबा ने झट से अपने गले से रूद्राक्ष की माला उतारी और मेरे गले में डाल दी। आज भी वह माला मेरे गले में पड़ी है उसे कभी अलग नहीं किया। असीम ऊर्जा का अनुभव हुआ माला पहनते ही उस समय।

जब जाने का समय हुआ तो हल्का-हल्का अन्धकार होने लगा था। आगे कुछ बोलने की मेरी हिम्मत नहीं हो रही थी बस यही सोच रहा था कि इस बीयावान जंगल से कैसे अकेले जाऊंगा। मेरे मनोभाव को बाबा तत्काल समझ गये। बोले- जाओ अन्दर से मृगचर्म पड़ा है उठा लाओ। मैं अन्दर गया और मन्दिर के कोने लपेटा हुआ मृगचर्म पड़ा था तत्काल उठा लाया। बाबा बोले- उस पर बैठो और अपना कम्बल लाये हो उसे सिर के ऊपर ढक लो और ध्यान करो। आंखें मत खोलना। मैं कुछ समझा नहीं बस बाबा के आदेश का अनुसरण करने लगा।

बाबा ने सिर पर ढके कम्बल पर हाथ रखा। एक पल में ऐसा लगा जैसे मैं चेतना शून्य हो गया। कुछ देर बाद ऐसा लगा जैसे बाबा ने मेरे सिर के ऊपर से हाथ हटा दिया। चारो ओर कोलाहल की आवाज आ रही थी। मैंने जब अपने ऊपर से कम्बल हटाया तो देखा कि मैं हरिद्वार के घाट की सीढ़ी पर बैठा हूँ और मृगचर्म भी था। आज भी वह मृगचर्म मेरे मन्दिर में सुरक्षित है। उसी पर बैठ कर आज भी साधना करता हूँ। लेकिन आज अस्सी की उम्र पार कर रहा हूँ। वह घटना आज भी मेरे मानसपटल पर अंकित है। ऐसी कौन सी विद्या अथवा शक्ति थी कि जिस पहाड़ी में पहुंचने तक मुझे सात दिन लगे थे उसी पहाड़ी से पल भर में जिस स्थान से चला था वहीं आ गया। आज भी यह रहस्य मेरे लिए अबूझ बना हुआ है। इसका उत्तर शायद ही मिल पाये।

खैर, जीवन चक्र चलता रहा। सन्त महात्माओं से सत्संग होता रहा। बहुत सारे चमत्कार देखने को मिले और हुआ अनुभव भी। लेकिन ऐसा चमत्कार मेरे जीवन में पहला और आखिरी रहा। इसका वर्णन करने के लिए मेरे पास शब्द ही नहीं है। जब भी बाबा का ध्यान करता। बाबा की उपस्थिति का आभास होता और मिलता मार्गदर्शन। आज भी बाबा की अहैतुकी कृपा बनी हुई है मुझ पर।

आत्मतत्व - आत्मा ही एक ऐसी है जो निरन्तर ज्ञान की ओर बढ़ती रहती है। यदि हम उसके मूक संकेत या निर्देश को समझे तो जीवन का मार्ग स्वतः मिलता

जायेगा। इसलिए हिन्दू धर्म में कहा गया है कि आत्मा ही प्रथम गुरु है। वह हर समय सही मार्ग की ओर अग्रसर करती है लेकिन हम माया के जाल में फंसने के कारण उसके मूक संकेत को नहीं समझ पाते। आत्मा ही एकमात्र सत्य है और सब असत्य है। अगर आत्मा सत्य है तो परमात्मा परमसत्य है। हम दुखी इसलिए हैं कि हम न तो सत्य से पूरी तरह परिचित हैं न तो परमसत्य से। हमारे जीवन के दो भाग हैं। जैसे नदी के दो छोर हैं। पहला है अन्तर्मुखी जीवन और दूसरा है बहिर्मुखी जीवन। अन्तर्मुखी जीवन अन्दर है जहां घोर अन्धकार है। आंखे बन्द करते ही अन्धकार का अनुभव होता है और बाहर है प्रकाश। हमारी सारी इन्द्रियां बहिर्मुखी हैं, हमारा मन भी बाहर ही भटकता है। हमारी इन्द्रियां और मन बाहर सत्य को खोजने का प्रयास करते हैं लेकिन जो भीतर का जीवन है वहां न तो इन्द्रियां ही काम करती हैं न तो मन।

इन्द्रियां और मन की सीमा खोज की सीमा है और जहां सीमा समाप्त होती है और वहां से लौट आती हैं। हमारी सारी इन्द्रियां और मन जहां घोर अन्धकार है उसी घोर अन्धकार में डूबा हुआ है महाशून्य। जहां शून्य होगा वहां शक्ति होगी। शून्य का तात्पर्य शक्ति से है। शक्ति का केन्द्र यानि शक्ति पीठ। वहीं शक्ति का केन्द्र है यानि आत्मशक्ति का केन्द्र। आत्मा ही सत्य है और है परमसत्य। परम आत्मा की शक्ति ही परमाशक्ति है। जो प्रकृति के रूप में सम्पूर्ण चराचर जगत में व्याप्त है।

आत्मा ही परम तत्व का अंश है, परमात्मा ही परम शक्ति है और पूरे विश्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। आत्मा की सत्ता को सभी धर्मों ने स्वीकार किया है। शरीर मरणशील है आत्मा अमर है। मृत्यु के बाद हम शरीर को जला देते हैं, प्रवाह कर देते हैं नदी में और जमीन में दफन कर देते हैं। लेकिन आत्मा कहां जाती है? उसका क्या होता है? शरीर छूटने के बाद वह कहां जाती है? कहां रहती है? उसका निवास कहां होता है? क्या मृत्यु के बाद भी आत्मा का संबंध बना रहता है इस संसार से? ऐसे और न जाने ऐसे कितने प्रश्न स्वाभाविक ही मानव मन में उठने लगते हैं। इन प्रश्न का आज वैज्ञानिकगण गम्भीरता से खोज कर रहे हैं लेकिन तर्क संगत उत्तर नहीं मिल पा रहा है। इसलिए मानव मन दुविधा में पड़ा हुआ है। हमारे शास्त्रों पुराणों में आत्मतत्व का बड़ा ही विशद और संशय रहित विवरण मिलता है लेकिन आज के वैज्ञानिक युग तर्क का युग है। यही कारण है मानव मन में विश्वास और अविश्वास का संशय बना हुआ है अभी तक। लेकिन मृत्यु के बाद भी जीवन

है और उसके अपने अनुभव भी हैं। पूर्णरूप से अस्वीकार नहीं किया जा सकता है लेकिन यह सत्य है कि मृत्यु के बाद मनुष्य पुनः जीवित नहीं होता लेकिन ऐसी बहुत सी घटनायें हैं कि मृत्यु के बाद भी जीवित हो उठे और मरणोपरान्त जीवन का वर्णन भी किया है।

क्या मरणोपरान्त जीवन सम्भव है? परामनोवैज्ञानिक 'एलिजा-बेथ कुबलेर रौस' जिनका जीवन निकट मृत्यु अनुभव और मृत्योपरान्त जीवन पर शोध कार्य करके व्यतीत हुआ है। अपने अनुभवों से तथा घटनाओं पर शोध कार्य के परिणामों से यह सिद्ध कर दिखाया है कि लोग मरने के बाद पुनः जीवित हो जाते हैं। वह सचमुच मौत के बाद की झलकियां देख आते हैं। परन्तु उस आनन्द की व्याख्या नहीं कर पाते हैं क्योंकि उसे बताने के लिए यहां की भाषा में शब्द नहीं हैं। एडम बिलमोर्न की विचित्र घटना जो तीन घंटे मृत रहने के बाद पुनः जीवित हो गये। जी कर तो सभी मरते हैं लेकिन ऐसे बहुत ही कम लोग हैं जो मरकर जी उठते हैं। इस संदर्भ में मेडीसिन की एक प्रसिद्ध पत्रिका 'पल्स' के मेडिकल एडवाइजर डॉ. टाम स्मिथ ने अपने सामने घटी घटनाओं का जिक्र करते हुए कहा है कि इस प्रकार की अविश्वसनीय घटनाओं की व्याख्या विज्ञान नहीं कर सकता है परन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि इस प्रकार की घटनायें होती हैं और हो रही है।

ऐसे रोगी जिनकी हृदय गति एकाएक रूक जाती है और सांस का आना जाना बन्द हो जाता है। शरीर का तापमान ठंडा पड़ जाता है, उन्हे मृत घोषित कर दिया जाता है परन्तु कुछ समय बाद जीवित हो उठते हैं। ऐसे रोगियों ने बड़ी विचित्र घटनाओं को बतलाया है। मृत्यु जिसे भयानक समझा जाता है वास्तव में ऐसा नहीं है और उन्होने बाकी जीवन बिना भय के बिताया है क्योंकि उनका यही कहना है कि उन्हे कहां जाना है अब वह जानते हैं इसलिए उन्हे मृत्यु का कोई भय नहीं है। ऐसे ही पुनर्जीवित रोगियों ने बतलाया कि मृत्यु के बाद उनकी आत्मा शरीर से अलग होकर आकाश में पहुंची, वहां उनको उन्ही के प्रियजनों से मुलाकात का अवसर मिला। जिन्होने उनका उस लोक में स्वागत तथा मार्गदर्शन किया और बतलाया कि अभी उनका समय पूरा नहीं हुआ है उन्हे वापस लौट जाना चाहिए। निकट मृत्यु पर सर्वप्रथम खोज करने वाले सुप्रसिद्ध परामनोवैज्ञानिक रेमण्ड मूडी जिनकी इस विषय एक अद्भुत शोध पुस्तक प्रकाशित हुई 'लाइफ आफ्टर लाइफ'। फिर आगे डॉ. मैरलिन मौर्स तथा मृत्योपरान्त जीवन पर खोज कर रही परामनोवैज्ञानिक 'ऐलिजा बेथ कुबलेर रास' जिन्होने सैकड़ों ऐसे मामलों पर शोध

कार्य किया है तथा प्रमाणित कर दिखाया है कि मृत्यु को प्राप्त हुए कई लोग जिन्हे मृत घोषित कर दिया गया वे पुनः जीवित हो उठे और जितना भी समय उन्होने मृतावस्था मे गुजारा उतने समय में जो घटनायें हुईं उन्होने अपने शरीर से बाहर रहकर देखीं तथा पुनः शरीर में प्रवेश करने के पश्चात उन्होने जो भी बात बतलायी वह पूर्णतया सत्य थी इसमें कोई सन्देह नहीं। सन् १६४० की घटना चर्च के कैप्टन विलमोर्न ने अपनी इच्छाशक्ति से मृत्यु को टालने का प्रयत्न किया लेकिन अन्त में मृत्यु हो ही गयी परन्तु मृत्यु के कुछ घण्टे बाद ही वह पुनर्जीवित हो उठा और अपनी इच्छाशक्ति के कारण आज भी जीवित है और आज भी अपने जीवन में घटी आश्चर्यजनक घटना को बड़े ही उत्साह के साथ सुनाते हैं। लंदन निवासी एडमंड बिलमोर्न और उनकी पत्नी जोन ऐरथ चर्च में रहकर सेवा कर रहे हैं। बिलमोर्न ने कहा कि इसमें सन्देह नहीं कि वह मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे और अपने शरीर से आत्मा को निकलते हुए भी देखा। मुझे बड़ा आश्चर्यजनक लगा। मैं अपने शरीर से बाहर हवा में इधर-उधर लहरा रहा था और अपने अन्तःचक्षुओं से अस्पताल में हो रही घटनाओं को देख रहा था। नीचे ऑपरेशन टेबल पर मेरा निर्जीव शरीर पड़ा था। मैंने देखा उस पर एक कपड़ा डाल दिया गया था और नर्स मेरे मृत शरीर को मुर्दाखाने भिजवाने की चर्चा कर रही थी। भले ही मैं अपने शरीर से बाहर था परन्तु अपने शरीर के बन्धन से पूरी तरह स्वतंत्र नहीं था। मेरी आत्मा अभी भी मेरे शरीर से जुड़ी हुई थी। यह घटना तब घटित हुई थी जब बिलमोर्न की आयु २३ वर्ष की थी। बिलमोर्न को निमोनिया का अटैक हुआ था। निमोनिया के कारण उसकी मृत्यु हो गयी। यह घटना सुनाते हुए बिलमोर्न जोर से हँसा जैसे उसे अचानक से कुछ विलक्षण तथ्य तथा दृश्य याद आये हों। उसने आगे कहना शुरू किया- अपने मृत शरीर से बंधी वह डोर टूटते ही मैं इतनी तीव्र गति से न जाने किस लोक की ओर खिंचता चला गया कल्पना करना भी मेरे लिए कठिन है। वहां मुझे अद्भुत आलौकिक आनन्द तथा प्रसन्नता का अहसास हुआ। चारो ओर प्रकाश ही प्रकाश। ऐसा प्रकाश जो शान्ति प्रदान करे तथा उसी प्रकाश में फैला प्रेम जैसे पूरे विश्व का प्रत्येक कण उसी प्रेम की डोर में परस्पर बंधा है। उस अप्रतिम रंग की अपनी ही छटा थी। प्रकाश का रंग अद्भुत था। वहां शान्ति, कोमलता और पवित्रता की अद्भुत अनुभूति थी। जिसने मेरे सम्पूर्ण अस्तित्व को मातृ तुल्य आंचल में समेट लिया था। अलौकिक संगीत की स्वरलहरियां गुंजायमान हो रही थीं। सम्पूर्ण वातावरण आनन्दमग्न हो रहा था। शायद इसे ही स्वर्ग कहा

गया होगा। मैं इस आलौकिक वातावरण में आनन्द विभोर हो रहा था परन्तु न जाने क्या कारण था कि मैं अभी भी अपने को कहीं बंधा हुआ महसूस कर रहा था। मेरे अन्तर्मन में एक आवाज थी जो गूंज रही थी और यह आवाज मुझे बांधे हुए थी। वह आवाज मुझे निरन्तर सुनायी दे रही थी। कंठ से निकली यह आवाज अनजानी नहीं बल्कि जानी पहचानी लग रही थी। मेरी आत्मा में समायी यह आवाज कहीं भीतर से तो नहीं आ रही थी नहीं वह आवाज मेरी मालकिन एडम की थी। वह बार-बार प्रार्थना कर रही थी कि अभी उसे बहुत काम करना है। वह मेरे पलंग की पट्टी के साथ लगी मेरे वापस आने की प्रार्थना कर रही थी जबकि उधर मेरे शरीर को दफनाने की तैयारी चल रही थी। मेरी मालकिन अभी भी उसी पलंग के पास बैठी थी जिस पर मेरी मृत्यु हुई थी।

एडम का शरीर अस्पताल के मुर्दाघर में एक पत्थर की सिल पर पड़ा हुआ था कि उसके शरीर में हरकत होने लगी। तीन घण्टे बीत चुके थे जब अस्पताल के कर्मचारी उसके शरीर को वहां छोड़ कर गये थे और फिर अचानक उसने अपनी आंखें खोल दीं। अपने को मुर्दाघर में पड़े देखकर वह कुछ हँसा और उसके मन को दुख भी हुआ क्योंकि उसके मस्तिष्क पर अभी भी अलौकिक आनन्ददायक वातावरण छाया हुआ था। उसे वापस क्यों बुला लिया गया था?

एडम का कहना था कि मेरे ख्याल से मेरी मकान मालकिन की प्रार्थनाओं का यह फल था कि मुझे दुबारा जीवनदान मिला अथवा अभी मेरे इस धरती पर और काम शेष थे शायद इसीलिए मुझे अपने शरीर में वापस आना पड़ा।

अमेरिका के 'जीवन वर्धन संस्था' के वैज्ञानिक जी जान से लगे हुए हैं। कई वैज्ञानिक काफी हद तक सफलता प्राप्त कर चुके हैं और उनका विचार है कि मरणोपरान्त जीवन असम्भव नहीं है एक न एक दिन इसे प्रमाणित भी कर देगें। उदाहरणस्वरूप मैं एक घटना का वर्णन यहां कर रहा हूँ। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के प्राध्यापक डॉक्टर जेम्स बेडफोर्ड की मृत्यु ७३ वर्ष की आयु में कैन्सर से हो गयी थी। परन्तु उनके मर जाने से सम्पूर्ण आशा नहीं चली गयी क्योंकि उन्होने अपनी कमाई के ४००० डॉलर अपनी मृत्यु के बाद एक सम्पूर्ण रूप से अविश्वसनीय प्रयोगों के लिए निर्धारित कर दी थी। इसी धनराशि की वजह से उनके मृत शरीर पर अनेक प्रयोग किये गये।

मृत्यु के तुरन्त बाद कृत्रिम प्रश्वासों द्वारा मस्तिष्क तथा मालिश द्वारा हृदय को जीवित रखा गया। उनके शरीर को नाइट्रोजन के घोल में जम जाने के लिए

रखा गया। इस समय उनका शरीर एक कैप्सूल में जिसका तापमान २२० डिग्री है उसमें रखा गया है। जब कैन्सर की सफल चिकित्सा पद्धति अविष्कृत हो चुकेगी तब उनके शरीर को पूर्णतया सुखा लिया जायेगा और उनके रोग का इलाज कराके उन्हे पुनर्जीवन का दान किया जायेगा। इस प्रकार डॉक्टर जेम्सबोर्ड को पुनर्जीवन प्राप्त हो जायेगा। परन्तु प्रश्न यह है कि 'जीवन वर्धन संस्था' के इस विश्वास का क्या कारण है। इसका कारण यह है कि उन्होने कुछ महत्वपूर्ण प्रयोग किये हैं। वैज्ञानिकों ने कुछ जीवों तथा शरीर के अवयवों को नाइट्रोजन के हिमशीतल घोल में सुरक्षित रख पाने में सफलता प्राप्त की है। उनका अन्तिम लक्ष्य मनुष्यों को जीवन दान देना है जोकि निस्सन्देह अभी तक अप्राप्य होने के कारण अविश्वसनीय और काल्पनिक लग सकता है। शरीर के अवयवों के विघटन का नाम ही मृत्यु है। शरीर के अवयवों का विघटन ही होता है विनिर्माण नहीं। कोषों का विनाश तथा पुनर्रचना की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है तब मृत्यु घटित हो जाती है।

कुछ साल पहले एक समाचार पत्र मे छपा था कि एक व्यक्ति मरने के डेढ़ घण्टे बाद पुनः जीवित हो उठा। इस प्रकार की अनेक घटनायें सुनने व पढ़ने को मिलती रहती हैं। आज के इस वैज्ञानिक युग में तो यह काफी हद तक सच भी साबित हो रहा है। यूरी गागरिन की अन्तरिक्ष यात्रा के दो तीन वर्ष पूर्व तक न केवल सर्वसाधारण वरन् वैज्ञानिकों के लिए भी अन्तरिक्ष भ्रमण की बात तर्कहीन, असम्भव और दिवास्वप्न की वस्तु मानी जाती थी। जो कि आज वैज्ञानिकों के अथक प्रयास से सम्भव हो सका है। स्वप्न नहीं हकीकत बन गया है। इसी प्रकार मरणोपरान्त जीवन का भी रहस्य खोजने में 'जीवन वर्धन संस्थान' प्रयासरत है जिसे आज का जनसमुदाय असम्भव मान रहा है लेकिन संस्था के वैज्ञानिक अपने उद्देश्य 'मृत शरीर को जमाना, प्रतीक्षा करना तथा पुनर्जीवन लाभ' पर डटे हुए हैं। उनका मानना है कि यदि मनुष्य की मृत्यु के तुरन्त बाद ही शरीर को २२० डिग्री के तापमान पर जमा दे जिससे की कोषाणुओं का विघटन न हो सके। यह अवस्था उस समय तक बनाये रखी जाती है जबतक कि रोग की या उस शारीरिक क्षति की जो मृत्यु कारक है का निदान तथा चिकित्सा अविष्कृत नहीं हो जाती है। चिकित्सा द्वारा शरीर को रोग मुक्त कर धीरे-धीरे शरीर का सामान्य तापमान लौटाया जाता है। यह जिज्ञासा होनी स्वाभाविक है कि आखिर वे कौन से तथ्य थे जिन्होने 'जीवन वर्धन संस्थान' के वैज्ञानिकों को इस दिशा में सोचने के लिए प्रेरित किया? यह प्रामाणित हो चुका है कि कोषाणु संरक्षक तत्वों की चिकित्सा से एवं मृत जीवों के

शरीर को अति निम्न तापमान पर जमाने से शरीर को पर्याप्त समय तक कोषाणु विघटन प्रक्रिया से बचाकर रखा जा सकता है तथा पुनः जीवन दान दिया जा सकता है। इस प्रकार के अन्य जीवों पर किये गये सफल प्रयोगों 'जीवन वर्धन संस्थान' के वैज्ञानिकों ने जिनके अध्यक्ष डॉ. कपूर हैं ने प्रस्तुत किया है। इस प्रक्रिया में बीजाणुओं की उच्चकोटि की प्रजनन क्षमता आवश्यक होने पर कृत्रिम गर्भाधान द्वारा वर्धित होकर बहुत समय तक अक्षुण्ण रखी जाती है। संस्थान के एक प्रयोग में हैमस्टर चूहों को ५ डिग्री सेन्टीग्रेड के तापमान पर जमा दिया गया था। जमाने से उनका शरीर जब इतना कड़ा हो गया कि जरा सा मोड़ देने से उनके कान आदि टूट जाने लगे तब भी उनको पुनर्जीवन दिया जा सका। इस प्रकार के अनेक उच्च प्रजाति के जीवों पर प्रयोग करने के बाद मिली सफलता से वैज्ञानिकों ने अपना लक्ष्य मानव को पुनर्जीवन दान बनाया और इस दिशा में अभी भी प्रयत्नशील हैं।

उच्चजातीय जीवों के शरीर से पूर्णरूपेण अलग किये हुये अवयवों विशेष रूप से मस्तिष्क पर किये गये सफल प्रयोगों ने निस्सन्देह चिन्तन की दिशा में अधिक सहयोग प्रदान किया। मानवीय अवयवों तथा टिश्यू भी निम्न तापक्रम में रखने पर सुरक्षित तथा संरक्षित रखे गये हैं लेकिन मानव मस्तिष्क को सुरक्षित रखने में सबसे बड़ी कठिनाई आती है। इसकी कोशिकायें ऑक्सीजन के अभाव में अतिशीघ्र नष्ट होने लग जाती हैं। इस कठिनाई से निजात पाने का एक उपाय खोज निकाला गया है। अब मृत्यु के साथ-साथ पहले से ही तापक्रम घटाकर मस्तिष्क में संरक्षक एजेन्ट्स नियुक्त करके कोशिकाओं का विघटन रोका जाता है। बिल्लियों तथा कुत्तों के मस्तिष्क के साथ इस प्रकार के प्रयोग सफलता के साथ किये गये हैं। पूर्णरूप से निम्न तापक्रम के घोल में जमाये हुए एक बिल्ली के मस्तिष्क को वैद्युतिक प्रक्रियाओं द्वारा छह मास का समय बीत जाने के बाद भी पुनर्जीवन का दान दिया जा सका। इसी प्रकार कुत्ते के मस्तिष्क को निम्न तापक्रम में रखने के बाद शरीर के रक्त का इंजेक्शन देकर पुनर्जीवन दान दिया जा सका। उपरोक्त विवरण से यह प्रामाणित हो जाता है कि मर जाने के बाद भी कुत्तों तथा बिल्लियों के मस्तिष्क को सुरक्षित रखकर उन्हे पुनर्जीवित किया जा सकता है। एरिजोना राज्य के फोनिक्स नगर के एक महाशय (जिनका नाम उनके परिवार की अनिच्छा के कारण गुप्त रखा गया है) पर सर्वप्रथम मनुष्यों पर किये गये प्रयोगों को आरम्भ किया गया है। परन्तु इनके पुनर्जीवन प्राप्त करने की आशा कम है क्योंकि मृत्यु तथा घोल में जमाये जाने के बीच के समय में व्यवधान आ गया था लेकिन डॉ. जेम्स बेडफोर्ड जिनको मरने

के तुरन्त बाद ही घोल में डुबा दिया गया था, की पुनर्जीवन की आशा अधिक विश्वसनीय है। वैज्ञानिकों को विश्वास है कि २१वीं शती के प्रारम्भ में या वर्तमान शती के अन्त में उन्हे पुनर्जीवित किया जा सकेगा।

परामानसिक जगत- डॉ. ए. डब्ल्यू गेस्टन के अनुसार आत्माओं की गतिविधि और उनके क्रियाकलापों को समझने के लिए परामनोविज्ञान का अध्ययन आवश्यक है। तभी हम परामानसिक जगत के रहस्यों को जान पायेंगे। सन् ५० से ५४ के मैंने परामानसिक जगत का सूक्ष्म अध्ययन किया। अन्य प्रच्छन्न-अप्रच्छन्न साधकों से सम्पर्क किया। कुछ ऐसे विचित्र अनुभव हुए जिससे मेरी आत्मा चमत्कृत हो गई। सूक्ष्म अध्ययन से ज्ञात हुआ कि हम सभी कभी न कभी कुछ ऐसे रहस्यों से गुजरते हैं अथवा रहस्यमय बातों का जीवन में अनुभव होता है जो हमें ज्ञात नहीं रहता है। जैसे कोई नये स्थान पर जाने से ऐसा लगता है कि मैं यहां पहले आ चुका हूँ जाना पहचाना लग रहा है। कई लोग तो सपनों में भविष्य में होने वाली घटनाओं को देख लेते हैं और वह समय आने पर घटती भी है। ऐसे बहुत सारे रहस्य हैं जो हमारे जीवन में प्रकट भी होते हैं। आज का युग विज्ञान का युग है। आज के वैज्ञानिक सृष्टि और ब्रह्माण्ड की खोज में लगे हैं तथा प्रकृति के मूलतत्व और उसकी शक्तियों की खोज में लगे हुए हैं। नये-नये आविष्कार करने में लगे हुए हैं। लेकिन मानव स्वयं अपने आप में रहस्य है। व्यवहार ज्ञान के अलावा उसकी शारीरिक क्रियायें और उनसे भी बड़ा आश्चर्य मानव का दिमाग है। मानव का दिमाग इस सृष्टि का सबसे बड़ा रहस्य है। मस्तिष्क के पीछे ऐसी कौन सी शक्ति है जो संचालन करती है। वैज्ञानिकों ने उसका नाम दिया चेतना लेकिन हजारो वर्ष पहले हमारे ऋषि-महर्षियों ने कहा है कि मस्तिष्क के अन्दर बन्द वह एकाकी चेतना सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में फैली विराट चेतना का ही अंग है और वह हर अवस्था में मस्तिष्कीय चेतना से संबंध बनाये रखती है। यही कारण है कि मनुष्यों के अलावा अन्य प्राणियों में तथा सम्पूर्ण जड़ चेतन जगत में व्याप्त चेतनायें एक दूसरे के साथ जुड़ी है और रहती है और एक दूसरे पर प्रभाव डालती है और प्रभावित भी होती है। मनुष्य के इसी चेतना का नाम है आत्मा और ब्रह्माण्ड की विराटचेतना को परमचेतना या परमात्मा कहा गया है। तंत्र में चेतना को पराशक्ति और परमचेतना को परमशिव की संज्ञा दी गयी है।

भारतीय मनीषियों ने जिसे पराचेतना कहा है वह सत्य है तथा मनुष्य का जागृत मन उसी विराट मन का एक छोटा सा अंश है जिसका एक बड़ा अंश एक

रहस्यमय आवरण के पीछे है। उस आवरण के पीछे जो शक्ति है वह हमारे चेतन मन को लुभाती है। वैज्ञानिकों ने उस अवचेतन मन को परासाइकिक का नाम दिया है। परमात्मा को भले ही आज के वैज्ञानिक न स्वीकार करें लेकिन ब्रह्माण्ड में फैली ब्रह्माण्डीय ऊर्जा को वैज्ञानिकों ने अवश्य स्वीकार कर लिया है। ब्रह्माण्ड की अनेक गुत्थियों में वैज्ञानिकों के पास एक यह भी गुत्थी है कि मनुष्य के चेतना का आखिर रहस्य क्या है? इसका मूल स्वरूप क्या है? मनुष्य का ब्रह्माण्डीय चेतना से क्या सम्बन्ध है? एक प्रश्न यह भी है कि क्या मानव व्यक्त चेतना से परे किसी अव्यक्त चेतना से जुड़ा है जो इस पदार्थ जगत के नियमों से ऊपर है और जो मनुष्य के प्राकृतिक शक्तियों से परे कहीं अधिक सूक्ष्म और पराभौतिक है।

इस विश्व ब्रह्माण्ड में क्रियाशील और सर्वव्यापक परमचेतना है जिसे हम परमात्मा कहते हैं। उसी का लघु अंश है आत्मा। 'आत्मा' जब शरीर धारण करती है, आत्मा का एक सूक्ष्म तत्व है चेतन तत्व जिसे मन कहते हैं। जब चेतन तत्व अर्थात मन जब जड़ तत्व यानि भौतिक तत्व के सम्पर्क में आता है तो उसमें विकार उत्पन्न हो जाता है। इस विश्व ब्रह्माण्ड में एक और तत्व क्रियाशील है जिसमें गति उत्पन्न होती है उसे प्राण तत्व कहते हैं। जीवात्मा भौतिक जगत में प्रवेश करने के पहले प्राण तत्व का आवरण धारण करती है। उसी आवरण को सूक्ष्म शरीर कहते हैं। मृत्यु के बाद वासना शरीर यानि प्रेत शरीर आत्मा कुछ समय तक प्रेतयोनि में रहती है। संस्कार का क्षय होने के बाद मृतात्मा सूक्ष्म शरीर धारण कर अनन्त की गहरायी में चली जाती है और स्थूल जगत में पुनः आने के लिए नये जन्म की प्रतीक्षा करती है।

आत्मा और शरीर का सम्बन्ध बहुत ही गहरा है बिना शरीर के आत्मा नहीं रह सकती एक क्षण भी। जैसे परमात्मा का महत्वपूर्ण तत्व आत्मा है उसी प्रकार आत्मा का भी एक महत्वपूर्ण तत्व है 'मन'। मन के भी तत्व हैं। पहला है बुद्धि तत्व और दूसरा है अहं तत्व। मन, बुद्धि, अहंकार ये तीनों मिल कर वासना को देते हैं जन्म और उसी के अनुसार मन करता है सृष्टि। वासना से आविर्भूत होकर मन सृष्टि करता है मगर उस सृष्टि का संस्कार आत्मा पर पड़ता है। जन्म-जन्मान्तर के तमाम संस्कारों को आत्मा अपने आपको समेटे काल के प्रवाह में बहती रहती है।

आपको ज्ञात होना चाहिए स्थूल शरीर ही सब कुछ नहीं है इसके अलावा भी पांच और शरीर है। ये पांचों शरीर अति सूक्ष्म हैं। यही पांचों शरीर आत्मा के

वाहक हैं। एक समय में और एक ही अवस्था में आत्मा एक ही शरीर में रहती है। स्थूल शरीर का अपना एक अलग महत्व है। स्थूल शरीर आत्मा का सबसे प्रिय और महत्वपूर्ण वाहक है। इसलिए आत्मा अधिक से अधिक स्थूल शरीर में रहना चाहती है इसीलिए योगी साधकों ने साधना के लिए स्थूल शरीर को महत्व दिया। स्थूल शरीर की अपनी एक सीमा और मर्यादा है। अपनी मर्यादा का पालन करते-करते जब स्थूल शरीर अपनी अन्तिम सीमा तक पहुंच जाता है तब आत्मा को विवश होकर शरीर का त्याग करना पड़ता है। इसी का नाम मृत्यु है। मृत्यु के बाद आत्मा अपने वासना के अनुसार कुछ समय के लिए एक ऐसे शरीर का निर्माण कर लेती है जिसे हम वासना शरीर कहते हैं या कहते हैं प्रेत शरीर। इस शरीर रचना के मूल में आकाश तत्व रहता है। वास्तव में यह एक ऐसा शरीर है जिसका निर्माण स्वतंत्र रूप से जीवात्मा ही करती है। उसे धारण करने के बाद उस जीवात्मा की संज्ञा बदल जाती है। तब हम उसे प्रेतात्मा कहते हैं। जीवात्मा तबतक एक प्रेत शरीर में रहती है जब तक उसकी वासना का क्षय नहीं हो जाता है और वासना के क्षीण होते ही प्रेतात्मा सूक्ष्म शरीर धारण कर लेती है। एक बार फिर नये जीवन का चक्र शुरू हो जाता है और अपने संस्कार के अनुरूप वह नया शरीर धारण कर लेती है। जितने प्रकार के शरीर हैं उनमें केवल स्थूल शरीर ही एकमात्र ऐसा शरीर है जिसमें कर्म प्रधान है। अन्य शरीर भोग शरीर है। देवताओं का भी शरीर भोग शरीर है। जिस प्रकार प्रेतात्मायें वासना और इच्छा की पूर्ति के लिए व्याकुल रहती है उसी प्रकार देवता भी सुखों से ऊबे रहते हैं। दुख में व्याकुलता, घबड़ाहट है और सुख में ऊबन है। इसी ऊंबन के कारण देवता भी मानव तन प्राप्त करने की चेष्टा करते रहते हैं।

सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड में मानव योनि काफी महत्वपूर्ण है। दृश्यमान जगत में चौरासी लाख योनियां हैं। जिनमें भटकने के बाद चौरासी अंगुल का मानव तन प्राप्त होता है। प्रत्येक अंगुल में एक लाख योनियों के संस्कार केन्द्रीभूत होते हैं। इसी चौरासी लाख योनियों के संस्कार को लेकर आत्मा मानव शरीर धारण करती है। जब तक संस्कार पूर्णरूप से समाप्त नहीं हो जाते तबतक आत्मा का मानव योनि में आवागमन लगा रहता है। इन तमाम संस्कारों को समाप्त करने के लिए जन्म-मरण से मुक्त होने के लिए हमारे मनीषियों ने चौरासी योगासन और चौरासी मुद्राओं की व्यवस्था की है। प्रत्येक आसन के साथ एक विशेष मुद्रा का महत्व है। आसन और मुद्रा के संयोजन से एक विशेष प्रकार की ऊर्जा का जन्म होता है।

प्रत्येक आसन और मुद्रा तथा उससे उत्पन्न ऊर्जा का संयोग अलग-अलग होता है और होता है भिन्न भी। इनके प्रभाव से एक लाख योनियों के संस्कार नष्ट होते हैं। उन ऊर्जाओं को प्राप्त करना ही योगसिद्धि है।

चेतन तत्व आत्मा है और परम चेतन तत्व परमात्मा है। इस आधार पर मन के भी दो रूप हैं। चेतन मन और अवचेतन मन। चेतन मन को ही जागृत मन कहते हैं। चेतन मन का एक बहुत बड़ा भाग किसी अज्ञात रहस्यमय आवरण में छिपा हुआ है। चेतन मन के इस छिपे भाग को ही अवचेतन मन कहते हैं। अवचेतन मन का केन्द्र मस्तिष्क है। उस भाग को अधोलघु मस्तिष्क कहते हैं। इस मस्तिष्क में एक अज्ञात तरल पदार्थ भरा है। वैज्ञानिक आज भी उस तरल पदार्थ के प्रति कोई भी निष्कर्ष नहीं निकाल पाये हैं। उस तरल पदार्थ में ज्ञान तन्तुओं का एक समूह तैरता रहता है और बाल से भी सूक्ष्म तथा छल्ले के आकार के एक दूसरे से गुथे हुए हैं आपस में। उनका एक शिरा मेरूदण्ड से आने वाली सुषुम्ना नाड़ी से मिला रहता है और दूसरा शिरा ब्रह्मरन्ध्र से। अधोलघु मस्तिष्क रहस्यमय तरल पदार्थ के भीतर तैरते ज्ञान तन्तु समूह में अवचेतन मन और उसके रहस्यमय शक्ति का अस्तित्व है। जो धनञ्जय प्राण द्वारा संचालित होता है। धनञ्जय प्राण द्वारा संचालित अवचेतन मन का सम्बन्ध अखिल विश्वब्रह्माण्ड और उसमें विद्यमान समस्त लोक-लोकान्तर और दृश्य जगत से, रहस्यमय अदृश्य जगत से सम्बन्ध बराबर बना रहता है।

अवचेतन मन की रहस्यमय शक्ति के माध्यम से अन्य अदृश्य लोकों में निवास करने वाली आत्माओं के द्वारा विचारों, भावनाओं और इच्छाओं आदि को मानव मस्तिष्क में संप्रेषित करते रहते हैं। जोकि मानवीय विचारों, भावनाओं इच्छाओं आदि में परिवर्तित होकर भौतिक सुख प्राप्त करते हैं।

प्रेतात्माओं का रहस्य- सत्व, रज, तम इन गुणत्रय का मिश्रित रूप प्रकृति है। सम्पूर्ण सृष्टि गुणत्रय से पूर्ण है किन्तु वे तीनों गुण जहां सृष्टि में अपने मिश्रित रूप में व्याप्त हैं वहीं एक सीमा विशेष तक अलग-अलग रूप में भी व्याप्त है। सम्पूर्ण चराचर जगत भूमण्डल, चन्द्रमण्डल और सूर्यमण्डल इन तीनों मण्डलों में विभाजित है। ये तीनों मण्डल क्रमशः तामसिक, सात्विक और राजसिक हैं।

भूमण्डल से चन्द्रमण्डल पर्यन्त जगत के बायीं ओर तमोगुण और दायीं ओर रजोगुण की सीमा है। मध्य में जहां दोनो सीमाएं मिलती हैं वह है सन्धि प्रदेश। उच्च कोटि के योगी, महात्माओं के उर्ध्वगमन का मार्ग यही सन्धि प्रदेश है। जिसे तंत्र में

शून्य मार्ग कहते हैं और योग में गुह्य मार्ग कहते हैं। राजयोग में इसे राजपथ भी कहा जाता है। इसी मार्ग से बड़े-बड़े सन्त महात्माओं का गमन, उर्ध्वगमन और अवतरण भी होता है। चन्द्रमण्डल के बायीं ओर स्थित तमोगुण राज्य में तमोगुणी प्रधान तामसिक आत्माओं का निवास है। यही तामसिक आत्माएं स्थूल जगत में प्रेत, पिशाच, बेताल, यक्ष-गन्धर्व किन्नर आदि नामों से जानी जाती हैं।

गुह्य मार्ग के समानान्तर एक और पथ है जिसे महाडामरी पथ कहते हैं। यह महाडामरी पथ प्रेत, पिशाच और बेतालों का पथ है। वे इसी पथ से पृथ्वी पर आते हैं। तमोगुण राज्य के मध्य से एक वर्गाकार पथ भूमण्डल की ओर आता है जिसे दिव्यौध पथ कहते हैं। दिव्यौध पथ का संगम महाडामरी पथ से भूमण्डल के केन्द्र में होता है। महाडामरी पथ पिशाच और बेताल जैसे तामसिक ताकतवर आत्माओं का है। उसी प्रकार महादिव्यौध पथ किञ्चित राजसी गुणसम्पन्न यक्ष-यक्षिणी, गन्धर्व, किन्नरों के आवागमन का पथ है।

प्रेत लोक कहां है : प्रेत लोक का स्थान पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण की सीमा में स्थित अत्यन्त निम्नश्रेणी का लोक है। मनुष्य का इस लोक से निकटतम् सम्बन्ध है। परामानसिक जगत के अनुसार आत्माओं के भी तीन प्रकार हैं। देवात्मा, दिव्यात्मा और मनुष्यात्मा। जिस प्रकार आत्मा के तीन प्रकार हैं उसी प्रकार मनुष्यात्मा के भी तीन प्रकार हैं। जीवात्मा, प्रेतात्मा और सूक्ष्मात्मा।

प्रेतात्मा जिस वातावरण में रहती है उसे वासना लोक कहते हैं। मनुष्य का जन्म भी वासना के कारण होता है। उसके शरीर की रचना भी वासना के सूक्ष्म तत्वों से होती है और उसका सारा जीवन वासना में ही डूबा रहता है। वासना लोक में प्रेतात्माएं अपने पूर्ण शरीर की रचना अपने वासना के अनुसार करती है और उसी प्रकार के वातावरण का करती हैं निर्माण। आपको ज्ञात होना चाहिए कि मृत्यु के बाद कुछ समय के लिए या सूक्ष्म शरीर न मिलने की स्थिति में मृत व्यक्ति को प्रेतयोनि स्वीकार करनी पड़ती है। जैसा कि ऊपर बतलाया गया है कि वासना जितनी अधिक घनीभूत होगी उतनी ही देर लगेगी सूक्ष्म शरीर प्राप्त करने में। सूक्ष्म शरीर प्राप्त करते ही वासना का क्षय ही प्रेतमुक्ति का साधन है। अब कुछ और तथ्यों पर विचार कर लेते हैं।

ब्रह्म और माया- सबसे अधिक और सारगार्भित प्रश्न किये गये हैं तो वे हैं हमारे देश के उपनिषद में। हमारा अस्तित्व क्या है? क्यों है और किसने शुरूआत की? ऐसे आदि अनेक प्रश्न जिन पर आज का विज्ञान शोधरत है। भारत

में लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व यह प्रश्न पूछे गये थे। उदाहरण स्वरूप श्वेताम्बर उपनिषद को ही लीजिए। श्वेताम्बर उपनिषद में कहा गया है कि मन चंचल क्यों है? इसी प्रकार बृहदारण्यक उपनिषद का यह प्रश्न कि मनुष्य जब निद्रा में रहता है तो इन्द्रियां कहां चली जाती हैं? केनोपनिषद का यह प्रश्न कि मनुष्य किसकी इच्छा से बोलता है? कुछ इसी तरह के प्रश्न हमारे और भी उपनिषदों में पूछे गये हैं। देहान्त के बाद भी क्या कुछ ऐसा है जो बच जाता है? उपनिषदों से उपजी यह भारतीय पद्धति कालान्तर में अद्वैत वेदान्त तक आते-आते एक व्यापक स्थापना के रूप में हमारे सामने आयी।

अद्वैत वेदान्त के अनुसार ब्रह्म का अर्थ है जो निरन्तर क्रियाशील है और है बृहद विस्तार। आधुनिक युग में पहली बार इस स्थापना की पुष्टि हुई आइंस्टीन के इस कथन द्वारा कि ब्रह्माण्ड लगातार बढ़ रहा है उसका बड़ी ही तेजी से विस्तार हो रहा है। अद्वैत वेदान्त ने इसे दो भागों में बांटा- ब्रह्म और माया। अद्वैत वेदान्त ने इस जगत को निर्माण और उपादान दोनों का कारण बतलाया और कहा कि इस सृष्टि रचना के लिए ईश्वर माया को माध्यम बनाता है। माया उस परमसत्ता का आदिबीज शक्ति है और उसके अनेकों रूप और नाम हैं। अद्वैतवाद ने पूरे विषय को दो खण्डो में बांटा है मगर साथ ही यह भी कहा है कि जिस प्रकार अग्नि की ताप को अग्नि से अलग नहीं किया जा सकता है उसी प्रकार माया की सरल परिभाषा यह है कि जो दिखे मगर हाथ न आये उसी का नाम माया है। माया दूर रेगिस्तान में फैली पर्त का नाम है। माया इस लगातार क्षय होती दुनिया को अपने में समेत ठोस और ठहरा हुआ मान लेना जैसी नादानी का नाम माया है। माया इसी गलतफहमी का नाम है जिनकी वजह से मनुष्य लगातार पीछे पड़ा है। कभी धन,कभी ओहदा, कभी यश कीर्ति, कभी जमीन-जायदाद, कभी नारी तो कभी खुद अपने आपके। इसी माया को अद्वैतवाद ने मानसिक क्रिया कहा है और ब्रह्म को कहा है अपरिणामी, नित्य और चैतन्य।

माया सत्, रज और तम इन तीनों गुणो वाली है। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी से उत्पन्न होने तक की क्रिया में यही तीन गुण माया द्वारा क्रियाशील होते हैं। वेदान्त इन पंच महाभूतों को सूक्ष्म तत्व या तन्मात्रा कहता है। इन पंच तन्मात्राओं में जब सात्विक अंश की प्रधानता होती है तब आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी से क्रमशः स्पर्श (छूने की क्रिया) चक्षु (देखने की क्रिया), जिह्वा (स्वाद लेने की क्रिया), घ्राण (सूंघने की क्रिया), घ्रष्ण (सुनने की क्रिया) ये नाम वाली पांच

ज्ञानेन्द्रियां पैदा होती हैं। इन्ही के कारण क्रमशः शब्द, स्पर्श, दर्शन,रस और गन्ध का बोध होता है। पंच तन्मात्राओं के सात्विक अंश द्वारा बुद्धि, मन, चित्त और अहंकार जैसी आन्तरिक वृत्तियां बनती हैं जिनमें ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का प्रेरक बनता है मन। पंच महाभूतों से निर्मित हुआ स्थूल शरीर का नाम है अन्नमय कोश। जो शरीर के साथ ही नष्ट होता है। शरीर में स्थित पांच वायु (प्राण) और पांच कर्मेन्द्रियों के योग का नाम है प्राणमय कोश। यह कोश भी आत्मा से उत्पन्न है। पांच ज्ञानेन्द्रियों के योग को मनोमय कोश कहा गया है। जबकि बुद्धि तत्व युक्त पांच ज्ञानेन्द्रियों को विज्ञानमय कोश कहा गया है। अन्तिम कोश सत् गुणोवाली आनन्दमय कोश है। भारतीय प्रज्ञा के अनुसार मृत्यु के बाद भी न मरने वाला सूक्ष्म शरीर पांच ज्ञानेन्द्रियों, पांच कर्मेन्द्रियों और पांच प्राण और एक बुद्धि और एक मन के योग से बना है। यह वह सूक्ष्म शरीर है जो प्रारब्ध और संचित कर्मों के कारण मृत्यु के बाद फिर जन्म लेता है।

पुनर्जन्म- मृत्यु के बाद क्या फिर जन्म होता है या नहीं यह आज से नहीं युगों से विवाद का विषय बना हुआ है। संसार के बहुत से धर्म पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते हैं। परन्तु बहुत से ऐसे धर्म भी हैं जिनका पूर्ण विश्वास है कि किसी प्राणी के मरने के बाद आत्मा नया रूप अथवा शरीर धारण करती है। भगवद्गीता में इस बात को स्पष्ट किया है कि जिस प्रकार हम पुराना वस्त्र त्याग कर नवीन वस्त्र धारण करते हैं उसी प्रकार आत्मा भी पुराना शरीर त्याग कर नया शरीर धारण करती है। पूर्वजन्म में विश्वास करने वालों में हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म प्रमुख हैं। लेकिन अतिश्योक्ति होगी वर्तमान में अन्य धर्मों में भी गुप्त रूप से पुनर्जन्म पर विश्वास करने वालों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। ए.जे. स्टीवर्ट आधुनिक लेखकों में अपना एक स्थान रखती है और ईसाई होते हुए भी वह इस सिद्धान्त में पूर्ण विश्वास रखती है कि मृत्यु के बाद भी जीव की आत्मा कुछ अवधि तक परलोक में रहने के बाद पुनः मृत्युलोक में अपना अपने पूर्वजन्मकृत शरीर पाया है। पाप-पुण्य के आधार पर फिर जन्म लेती है। लोगों का ऐसा मानना है कि मनुष्य की आत्मा अनन्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त ईश्वर का अंश है। अतः अपने दैवी स्त्रोत में वापस चली जाती है फिर भी अपने विकास क्रम के लिए अति आवश्यक है कि वह उन सारे अनुभवों का आनन्द ले जो जीवन उसे प्रदान करता है। वह अच्छे बुरे में भेद करना सीखे नित्य और अनित्य में अन्तर समझे। लेकिन ये सारी बातें तो मनुष्य एक जन्म में पूर्णरूप से नहीं जान सकता। यही कारण है कि उसे

बारम्बार जन्म लेना पड़ता है। बहरहाल अनेकों जन्मों से होकर गुजरने के क्रम में आत्मा संग्रहित अशुद्धताओं से छुटकारा पाती चलती है और मुक्ति अथवा मोक्ष के लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ती रहती है। पूर्वजन्म में गहरी रूचि रखने वाले प्रसिद्ध उपन्यासकार सर हेनरी राईडर का कहना है कि हममें से प्रत्येक के भीतर जो व्यक्तित्व है अनुप्राणित होता है। वह अनन्त रूप से प्राचीन है वह अनेक बार तप्त होकर इस रूप को ढाला है। पुनर्जन्म में विश्वास आज का नहीं है। यह अति प्राचीन है बिखरे हुए आदिम सम्प्रदायों में हिन्दुओं और बौद्धों की तो गहरी आस्था है।

रोमन लेखकों के अनुसार गौल, ड्रूइस, आरार्फक्स, पाइथागोरियन भी इसमें बहुत गहरा विश्वास करते हैं। बाद के युगों में यहूदियों के अनेक धार्मिक सम्प्रदाय भी इसमें विश्वास करने लगे। सन्त जेरोमो का कहना है कि पूर्वजन्म का सिद्धान्त अपने विशेष अर्थों में प्रारम्भिक ईसाईयों में भी प्रचलित था।

इस्लाम धर्म इस बात में विश्वास नहीं करता कि मरने के बाद फिर जन्म होता है तथा जन्म-मृत्यु का क्रम बराबर चलता रहता है।

यह प्रश्न बड़ा ही रहस्यमय और गूढ़ है कि मृत्यु और पुनर्जन्म के बीच कितनी अवधि तक आत्मा परलोक में रहती है। पुनर्जन्म पर विश्वास करने वालों के अनुसार यह अवधि कितनी होगी आत्मा की अवस्था पर निर्भर करता है। कुछ मामलों में तो आत्मा तत्काल पुनर्जन्म ले लेती है। कुछ मामलों में तो वर्षों बाद और कुछ में तो शताब्दियों बाद वापस लौटती है और कुछ तो पूर्णता कि स्थिति की ओर बढ़ने वाली विशुद्ध आत्माएं पृथ्वी पर पुनः जन्म नहीं लेती वे अगर जन्म लेती भी हैं तो वे स्वेच्छा से और वह भी उस स्थिति में जब किसी साधक, दिव्य प्राणी को उसकी पूर्णता की ओर बढ़ने के लिए कोशिश में सहायता प्रदान करती है।

बौद्ध धर्म में ऐसी विकसित आत्माओं को बोधिसत्व कहा गया है। बौद्धों का ऐसा विश्वास है कि बोधिसत्व में कोई न कोई अवतार अपने शुभ समय पर होता ही रहता है। उनके अवतार लेने का क्रम तबतक चलता रहेगा जब तक सारे मनुष्यों का आध्यात्मिक उद्धार नहीं हो जाता। बड़ी रोचक बात है कि तिब्बतियों का ऐसा विश्वास है कि वह बोधिसत्व जिनका नाम अवलोकितेश्वर है। हर दलाई लामा अवलोकितेश्वर का ही अवतार होता है। जब कोई दलाई लामा समाधि लेता है तब उसकी आत्मा परलोक में पुनर्जन्म की प्रतीक्षा नहीं करती वह तुरन्त जन्म लेने वाले संस्कार युक्त किसी तिब्बती शिशु की काया में प्रवेश कर जाती है। दलाई

लामा के रूप में बच्चे की खोज करना और उसे पहचानना लामाओं की विशेष समिति का कार्य होता है। पिछले दशक में भारत, अमेरिका, कनाडा और ब्रिटेन में पुनर्जन्म के इतने उदाहरण सामने आये कि वैज्ञानिक और परामनोवैज्ञानिक लगभग इस मत से एकरूप और सहमत हैं कि पिछले जन्मों की घटनाओं का विवरण देने वाले तमाम व्यक्ति कहीं न कहीं सही हैं। परामनोवैज्ञानिक ऐलैन कारडेक कई माध्यमों से भेंट करके तथा उनके द्वारा मृतात्माओं ने जो मृत्यु और पुनर्जन्म के बारे में सम्बन्ध प्रगट किये गये रहस्य तथा विचारों और तथ्यों को संकलित किया है। उनके अनुसार जब कोई दिव्य आत्मा माध्यम के प्रश्नों के उत्तर दे देती है तो वह अपने ज्ञान के अनुसार पारलौकिक तथा मृत्युपरान्त सूक्ष्म लोकों के विवरण तथा पुनर्जन्म के सम्बन्ध में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देने में सक्षम होती है। कारडेक द्वारा लिखी गयी पुस्तक 'द स्पिरिट' में विस्तार से लिखा है। पुस्तक के अनुसार मृतात्माओं द्वारा एक बड़ी ही दिलचस्प बातें बतलायी गयीं हैं। एक प्रश्न के उत्तर में एक दिव्य आत्मा ने बतलाया कि मानव आत्मायें पशु-पक्षियों के शरीर में बार-बार जन्म लेकर प्रत्येक जन्म में उन्नति करते हुए मनुष्य के रूप में जन्म लेती है। एक बार मानव देह धारण करने के बाद वे दोबारा पशुयोनि में जन्म नहीं लेती है जबतक कि वह पुनः आत्मिक पतन की ओर उन्मुख नहीं होती। यदि मनुष्य का जन्म लेकर भी पाशविक प्रवृत्तियां उस पर हावी रहती है और वह निकृष्ट कर्मों में लीन हो जाता है और निम्नकोटि के मनुष्य योनि में जन्म लेता है। जीवनभर हीन-दीन बना रहता है। उसका बार-बार पुनर्जन्म आत्मा की उन्नति करने तथा अच्छी शिक्षा ग्रहण करने के लिए होता है।

मन की दुष्प्रवृत्तियों का शमन कर आत्मा की पवित्रता तथा त्याग की भावना जीवन में निष्काम कर्मों में लीन रहना ही उन्नति है। तभी उस परम आत्मा में लीन हो सकते हैं जिसे कहते हैं परमात्मा। जहां तक प्रश्न है आत्मा के नर-नारी शरीर में जन्म लेने का तो आत्मा लिंगहीन है वह नर के शरीर में भी जन्म ले सकती है और नारी के शरीर में भी। कभी-कभी देखा गया है कि मृत्यु के बाद आत्मा उसी समय पुनः जन्म ले लेती है। ऐसी आत्माएं कभी-कभी अपने पिछले जन्म का वर्णन नहीं करती हैं।

मृत्यु और जन्म लेने के मध्य के समय में आत्मा सूक्ष्म लोकों तथा अपने कर्म के अनुसार निम्न लोकों में व्यतीत करती है। अपनी रूचि के अनुसार या इच्छानुसार यदि वह और उन्नति की आकांक्षा करती है तो वह सूक्ष्म लोक में अपना

समय पूरा कर पुनः भौतिक संसार में जन्म लेकर उन्नति करती है। यदि थोड़े से उदाहरण से यह मान लें कि पुनर्जन्म एक सारगार्भिक सिद्धान्त है या प्रकृति की अबतक न समझ पायी गयी कार्यविधि का हिस्सा है। पशु-पक्षियों में पाये जाने वाले पूर्वाभास ज्ञान के आधार पर मि. एलिस्टर हार्डी लगभग दो दशक पूर्व इस नतीजे पर पहुंचे थे कि कुछ घटनाएं ऐसी हैं जो अतिशय बुद्धिवादिता के कारण मानव ने खो दिया है मगर उन्होने यह भी कहा कि प्रकृति में जो कुछ घटित हो रहा है वह पूरे ब्रह्माण्ड का कार्यविधि का ही हिस्सा होना चाहिए।

अगर सूर्य न रहे तो पृथ्वी पर किसी भी प्रकार का जीवन ही न रहेगा। प्रमात्रा भौतिकी के सिद्धान्त के खोज तक हर कोई यही मानता था कि जड़ और चेतन अलग-अलग है। जबकि आज का तरंग विज्ञान यह सिद्ध कर चुका है कि पृथ्वी पर पहाड़ जड़ नहीं हैं वे तरंग हैं और हैं स्पन्दन।

हमारे देश में यह सत्य आज से हजारों वर्ष पूर्व सबसे पहले महावीर की वाणी से फूटा था जिन्होने संसार को प्रवाह कहा। जहां कुछ भी स्थिर नहीं है। आज से चार दशक पूर्व महान मनोवैज्ञानिक कार्लजुंग ने यही स्थापना की थी कि मनुष्य के चेतना के भीतरी तह में एक तरह की समझ है जो सब जीवों के समान है। कार्लजुंग ने इस भीतरी आभास को आदव बिम्ब कहा और यह भी कहा कि आदव बिम्ब मनुष्य के पिछले जन्मों के अनुभवों का सिलसिला भी हो सकता है। मार्डन मैन इन सर्च ऑफ शोल के लेखक कार्लजुंग की इस बात की पुष्टि में और वेदान्तवादी शंकर की बारह सौ वर्ष पूर्व की गयी बात में केवल शब्दावली का भेद है।

शंकराचार्य कहते हैं कि पशु-पक्षी, फूल-वृक्ष और मनुष्यों में एक ही आत्मा है तो वह उसी अक्षय तत्व की बात कह रहे हैं जो देहान्त के बाद भी नष्ट नहीं होता है। सूक्ष्म शरीर की अवधारणा केवल भारतीय है ऐसा नहीं है। 'द इजिप्सियन बुक ऑफ डेड' और 'द तिब्बेतियन बुक ऑफ डेड' में भी सूक्ष्म शरीर की चर्चा मिलती है। स्थूल शरीर से अलग लोगों के अनुभवों के कुछ आंकड़े अभी हाल ही में अमेरिकी साईन्टिफिक फार सायकिकल रिसर्च ने एकत्रित किये हैं। मनोविज्ञान में इसे आवएक्सपिरियन्स कहा जाता है। डॉ. सोसिल ग्रीन जो आक्सफोर्ड के सायक्लॉजिकल इन्सीटीट्यूट के डायरेक्टर हैं अपनी खोजों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि स्थूल शरीर के सामान्तर कोई एक सूक्ष्म सत्ता है जो तमाम सांसारिक अथवा दैहिक बन्धनों के बावजूद कभी-कभी शरीर से दूर चली जाती है। हांलाकि वह स्थूल शरीर की नाभी से एक रूपहले तार के माध्यम से हर हालत

में जुड़ी रहती है। जब कभी वह रूपहला तार टूट जाता है तो अक्सर आदमी की असामयिक मृत्यु हो जाती है। जिसे सेन्सिल ग्रीन यानि छद्‌म मृत्यु की संज्ञा दे दी जाती है। जिन व्यक्तियों ने अपने 'ओवे' (आऊट ऑफ द बॉडी एक्सपिरियन्स) या अनुभव का विवरण दिया है उन सबके वक्तव्यों में एक समानता थी और वह यह कि वे सभी बौद्धिक रूप से सजग थे और उनके द्वारा छुई गयी वस्तुएं या देखे गये दृश्य पूरी तरह याद थे। अमेरिका के प्रसिद्ध परामनोवैज्ञानिक राबर्ट मुनरो जब ध्यान की गहन अवस्था को होती थी प्राप्त तो 'ओवे' के अनुभव में चली जाती थी उनकी सूक्ष्म शरीर की यात्रा घण्टो चलती थी।

हाल ही खोजों से पता चला है कि अणु के भीतरी भाग में शून्य है। कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि हो सकता है कि अणु के भीतर इस शून्य से ही सूक्ष्म शरीर की रचना होती हो मगर सूक्ष्म शरीर का एक झटके के साथ स्थूल शरीर से अलग हो जाना और फिर जन्म के साथ स्थूल शरीर में लौट आना वैज्ञानिकों के लिए अब भी पहेली है। फिर भी परामनोवैज्ञानिकों ने तरंग और परादेह ज्ञानियों में करीब-करीब इस विचार को लेकर सहमति है कि सूक्ष्म शरीर जो स्थूल शरीर की नाभि से जुड़े रूपहले तार से एक प्रकार से जुड़ा हुआ है।

जब मृत्यु के समय या समाधि की अवस्था या किसी अन्य कारण से यह रूपहली डोर टूट जाती है तब एक झटके से सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से अलग होकर अज्ञात में विलीन हो जाता है। पूर्वजन्म की स्मृतियों का विवरण देने वालों की संख्या सैकड़ों में हो गयी है यानि पुनर्जन्म होता है। आज विज्ञान ने लुप्त हुई आवाज पकड़ने का यंत्र अविष्कार कर लिया है। वह समय बहुत दूर नहीं है जब हम सूक्ष्मात्माओं की भी आवाज सुनने में सक्षम हो जायेंगे और उनके आभास का करेंगे अनुभव।

प्राणतत्व- आपको ज्ञात होना चाहिए आत्मा और शरीर के बीच एक रहस्यमय वस्तु है वह है प्राण। जो कि आत्मा और शरीर को जोड़े रखता है। प्राण का दूसरा नाम है श्वांस। जबतक श्वांस है तबतक आत्मा और शरीर का सम्बन्ध बना रहेगा। इसलिए हमारे महर्षियों ने श्वांस पर गहरा शोध किया और जाना कि लयबद्ध तरीके से श्वांस लेना एक कला है। शान्ति के साथ धीरे-धीरे श्वांस लेते रहने पर प्राण शक्ति का व्यय कम होता है और मनुष्य दीर्घायु होता है इसलिए योग में प्राणायाम के विविध तरीके बतलाये गये हैं। योगी लोगों की दीर्घायु का एकमात्र कारण है श्वांस पर नियंत्रण। निर्धारित श्वांस लेने पर मन और

मस्तिष्क दोनों स्वस्थ रहते हैं। सबसे कम श्वांस कछुआ लेता है और सबसे तेज श्वांस खरगोश लेता है इसलिए कछुए की आयु लम्बी होती है और खरगोश की आयु कम होती है। उत्तेजना, क्रोध, अपराध के समय हमारी श्वांस क्रिया अनियंत्रित हो जाती है। प्राचीन काल में ऋषि मुनि क्रोध आदि पर नियंत्रण रखते थे। ऋषि, महर्षि लम्बे समय तक बिना आहार लिए जीवित और स्वस्थ रहते थे। इसका कारण यह है कि विभिन्न प्रकार के आहार में प्राणाहार भी है क्योंकि प्राणाहार की साध ना सबके वश की बात नहीं है। यह एक योग की उच्चतम् अवस्था है। प्राचीन काल के योग में बड़े ही अद्भुत क्रिया का वर्णन मिलता है। अगर मनुष्य उसे अपने नित्य जीवन का अंग बना ले तो जीवन में आनन्द आ जायेगा। आपको ज्ञात होना चाहिए कि नवजात शिशु पूर्ण श्वांस लेता है। उसे ध्यान से देखे तो पायेंगे की उसके श्वांस लेने की क्रिया नाभि तक होती है और उसका पेट अन्दर और बाहर होता रहता है। नाभि ही हमारे शरीर का शक्ति केन्द्र है लेकिन जैसे-जैसे हमारी उम्र बढ़ती जाती है श्वांस लेने की क्रिया बदलती जाती है और हम नाभि तक श्वांस न लेकर सीने तक ही श्वांस लेने लगते हैं यानि आधी श्वांस। मन को शान्त कर सुखासन की मुद्रा में बैठे और नाभि तक श्वांस लें, कम से कम दस मिनट तक इस क्रिया को दोहरायें और जब प्राण वायु समभाव से पेट तक पहुंचेगी और समभाव से बाहर निकले तो अभ्यास को बढ़ाते जायें। यह एक दिन की क्रिया नहीं है। इसे धीरे-धीरे साधिये। जब श्वांस का उतार चढ़ाव सम होने लग जायेगा तब आपका मन शान्त होने लगेगा। प्राण वायु धीरे-धीरे सारे शरीर में व्याप्त होने लगेगी। शरीर स्वस्थ होगा, आप खुद अपने मन में एक अलग अनुभूति का अनुभव करने लग जायेंगे। प्राण ही शरीर को चैतन्य बनाये रखने वाली और शरीर को धारण करने वाली सूक्ष्मशक्ति है। जिसे आत्मशक्ति भी कहा जा सकता है। उसी को इस पार्थिव जगत में स्थूल शरीर भी कहते हैं। जिसकी अभिव्यक्ति प्राण है जिसे हम श्वांस कह सकते हैं। जब वह सूक्ष्मतम् शक्ति मानव शरीर से बाहर निकल जाती है यानि श्वांस रूक जाती है उस अवस्था को हम मृत्यु कहते हैं। मृत्यु का सीधा सम्बन्ध श्वांस से है। श्वांस के कारण ही सूक्ष्मशक्ति पूरे शरीर में व्याप्त है। जब श्वांस की गति समाप्त हो जाती है या शरीर से अलग हो जाती है तो प्राण निकल जाता है। इसलिए योगीगण सर्वाधिक साधना प्राण की करते हैं। आपको ज्ञात होना चाहिए कि श्वांस ही प्राण की एकमात्र अभिव्यक्ति है। शरीर में पांच कोश हैं। जिनमें से एक प्राणमय कोश है। शरीर में अन्न की रासायनिक क्रिया से एक तत्व निकलता है

उसी से प्राण की उत्पत्ति होती है यानि एक विशेष ऊर्जा की और उस उत्पत्ति का एकमात्र केन्द्र है प्राणमय कोश। आयु के अनुसार प्राण का निर्माण धीरे-धीरे मन्द होने लग जाता है और उसी के साथ श्वांस की गति भी मन्द पड़ने लग जाती है। जिसके फलस्वरूप शरीर और मस्तिष्क दोनों शिथिल पड़ जाते हैं और वह शिथिलता जब अपने चरमसीमा तक पहुंच जाती है वह सूक्ष्मशक्ति विवश होकर शरीर को त्याग देती है उसी का नाम मृत्यु है।

प्राण का रहस्य- सत्तर के दशक में अपने शोध और अन्वेषण के दौरान काशी के उद्भट विद्वान गोपाल शास्त्री से मिला। इस विषय पर चर्चा की। उनका कहना था कि प्राण तो साक्षात् गायत्री है। उन्ही का दूसरा रूप है प्राण। शास्त्री जी ने कहा कि शर्माजी आपको ज्ञात होना चाहिए कि साधारणतया मनुष्य प्रति मिनट १६ बार श्वांस लेता है और छोड़ता है। योग शास्त्र के अनुसार एक साधारण मनुष्य २१६०० बार श्वांस प्रतिदिन लेता है। यह गणना प्राचीन है। आज के वर्तमान युग में मनुष्यों की शक्ति काफी घट गयी है। दुर्बल मनुष्यों की श्वांस क्रिया द्रुत गति से चलती है। इस कारण से २१६०० के स्थान पर २४००० से २५००० भी चल सकती है। एक मिनट में पन्द्रह या सोलह बार श्वांस लेना तो प्रत्यक्ष सिद्ध है कोई भी घड़ी देखकर इसका निश्चय कर सकता है। अगर किसी व्यक्ति का श्वांस बीस से पच्चीस बार चले तो समझना चाहिए कि उस व्यक्ति का शरीर दुर्बल है। दौड़ने, व्यायाम करने, स्त्री प्रसंग करने तथा काम, क्रोध या उत्तेजना से श्वांस बहुत ही जल्दी-जल्दी चलने लगती है। इससे आयु का क्षय होता है। नियमित योग करने, प्राणायाम करने से श्वांस की गति घटा सकने से आयु बढ़ सकती है। योग शास्त्र का कहना है कि मनुष्य आहार-विहार पर संयम रखे, श्वांस की गति पर ध्यान दे और वह गति स्वाभाविक रूप से न बढ़े बल्कि प्रतिदिन सुबह, दोपहर और सायं कम से कम पांच मिनट तक धीरे-धीरे श्वांस लें भीतर रोक कर थोड़े अन्तराल में श्वांस को छोड़ें इससे पूर्ण श्वांस नाभि तक जाता है। सुखासन की मुद्रा में बैठे पूर्व दिशा की ओर मुख करके शान्त मन से। उसके बाद पांच मिनट तक ध्यान करें, ध्यान भी आपके श्वांस के आने जाने पर रहे और फिर धीरे-धीरे आप एक असीम ऊर्जा का प्रवाह महसूस करेंगे। शरीर भी निरोग होगा और दीर्घायु प्राप्त होगी। शास्त्रीजी ने आगे कहा- **भोग रोगमयम्** अर्थात् जितना भोग उतना रोग। संयमी व्यक्ति को रोग नहीं होता और उसकी आयु भी नहीं घटती है।

मनुष्य के हृदय में ऐसी शक्ति है कि अगर रोग हो जाये या एक कांटा शरीर

में धंस जाये तब हृदय का रक्त प्रवाह उसी ओर बढ़ जाता है और रोग से लड़ने की ताकत देता है। कांटे के आस-पास मवाद बनाकर उसे निकाल बाहर करता है। औषधि आदि का कार्य रक्त की गति को बढ़ा देना है और रोगादि को दूर करने में सहायता करना है वरन् मनुष्य को सदा प्रयत्न करना चाहिए कि हृदय दुर्बल न होने दे। असंमित आहार-विहार से हृदय पर बुरा प्रभाव पड़ता है और नाना प्रकार के रोग आदि शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं इसलिए निरोग रहने और दीर्घायु प्राप्त करने के लिए संयम ही सर्वोत्तम साधना है। बातचीत के दौरान कब समय खत्म हो गया पता ही न चला। सायंकाल हो रहा था। ध्यान पूजा-पाठ का समय हो गया था शास्त्रीजी उठ खड़े हुए और मैं भी नमस्कार कर पुनः मिलने की बात कह कर गंगा की शान्त अविरल धारा देखने गंगा घाट की ओर चल पड़ा। उत्सुकता शान्त नहीं हुई थी। संयोगवश कुछ दिनों बाद जाना हुआ शास्त्रीजी के पास वे निर्विकार भाव से अपने तख्त पर बैठे थे किसी पुस्तक को उलट-पुलट रहे थे मुझे देखते ही सहसा प्रसन्न भाव से बोले- मुझे पता था कि तुम्हारी उत्सुकता शान्त नहीं हुई है आओगे जरूर, चल बैठ जा और आगे बोले कि मुझे भी तुम्हारे साथ सत्संग करना अच्छा लगता है।

प्राणशक्ति का महामंत्र गायत्री- प्रसंगवश शास्त्रीजी ने आगे बतलाया कि विश्व और जीवन दोनों प्राण है और प्राण की त्रेधा शक्ति यानि स्पन्दित शक्ति से सारा विश्व ब्रह्माण्ड ही गायत्री छन्द है। सारे विश्व ब्रह्माण्ड के मूल में जो छन्दित गति है यानि ईथर है वही गायत्र प्राण है। विश्व जगत की रचना में दो ही तत्व प्रधान हैं। एक देव यानि प्राण और दूसरा भूत यानि स्पन्दनहीन। अतः प्रत्येक भौतिक तत्व की ऊर्जा प्राण है। इसी को गायत्र कहते हैं और इस गायत्र की महाशक्ति हैं माँ गायत्री।

गायत्री एक छन्द है इसमें तीन चरण होते हैं इसलिए इसे त्रिपाद गायत्री भी कहा जाता है। ऋग्वेद में त्रिपाद का गम्भीर रहस्य है। त्रिपाद यानि तीन चरण यानि तीन वेद, तीन लोक, तीन देव ब्रह्मा, विष्णु, महेश, यज्ञ की तीन अग्नियां, तीन गुण ये सब त्रिपाद के ही रूप हैं। विष्णु के तीन पग में सब भुवनों का आन्तरभाव है। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यौः ये तीन लोक ही विश्व भुवन है। ये ही समस्त ब्रह्माण्ड को नापने वाले विष्णु के चरण हैं। ये तीन विश्व रूप हैं। सृष्टि के मूलभूत चक्र को इसी नाम से जाना जाता है। जो तीन स्कन्दों में व्याप्त होने वाला एक छन्द है। मानव जीवन का भी यही रहस्य है। जैसा जगत वैसा ही जीवन। दोनों में प्राण की

त्रेधा स्पन्दित गति है अतः सारा विश्व ही गायत्री छन्द है। स्पन्दन के कारण ही इसे महासुपर्ण भी कहा जाता है। पंचभूतों से बना यह मानव शरीर नितान्त प्राकृट है। मर्त्य गायत्री के मन, प्राण और वायु तीन चरण हैं। जैसे मुख से उच्चारित होने वाले चौबीस अक्षर मर्त्य गायत्री है अर्थात शब्द उत्पन्न होकर पुनः विलीन हो जाते हैं वैसे ही यह शरीर है इसका एक चरण पंच महाभूतों से बना हुआ है अतः पंचभूतमय या वाङ्मय है क्योंकि पंचभूतों की एकत्र संज्ञा वाक्य है। दूसरा चरण पंच प्राणमय है, यह भौतिक प्राण है और इसका तीसरा चरण मनोमय है। इन तीनों के मिलने से जो संस्थान यानि पिण्ड बनता है उसे अपरा प्रकृति या प्राकृत अण्ड यानि भौतिक शरीर कहते हैं। बिना चैतन्य तत्व के इसमें स्पन्दन नहीं होता है। यही चैतन्य तत्व गायत्र प्राण या त्रिकृशक्ति का समस्त रूप कहलाता है। उपनिषद में इसे देवशक्ति कहा गया है (**देवात्म शक्ति स्वगुणो निगूणः।**)

शास्त्रीजी ने आगे कहा- अगर इसे हम दूसरे शब्दों में कहें तो इसे ही देवमाया यानि माया भी कहते हैं। माया का अर्थ है देव की सत्तात्मक शक्ति जिसके द्वारा विश्व रूपों का विकास हुआ। देव अपनी मायाशक्ति से अनेक रूप धारण करता है उसी को सहस्त्र अश्व कहते हैं। सूर्य ही वह देव हैं जिनकी सहस्त्र किरणे ही सहस्त्र अश्व कही जाती हैं। एक-एक रश्मियां देव की एक-एक शक्ति का ही रूप है। सूर्य की रश्मियों में अनन्त प्राणशक्ति है और वह अनन्त प्राणशक्ति ही उसका गायत्र रूप है। जैसे गायत्री के तीन चरण हैं वैसे ही सूर्य के भी तीन चरण हैं इसलिए ऋषियों ने सूर्य को ही त्रयी विद्या कहा है।

मैं बीच में थोड़ा झिझकते हुए बोला- शास्त्रीजी सूर्य क्या है? यह प्रश्न बड़ा ही हास्यापद है लेकिन आध्यात्मिक और व्यवहारिक भाषा में अगर आप बतलाये तो अच्छा होगा। शास्त्रीजी हँसते हुए बोले- चाय तो पी लो! कुछ देर बाद शास्त्रीजी ने आगे कहना शुरू किया- स्थूलरूप से सूर्य एक आग का गोला है इसका ताप अत्यधिक है इसमें प्रकाश की व्यवस्था भी वैसी ही है। सूर्य की रश्मि एक ओर नीली है और दूसरी ओर लाल है। रश्मियों की प्रभा है मध्य में जहां दोनों की सन्धि होती है। जिसकी आभा पीली है। भौतिक दृष्टि से सूर्य का यह त्रयी रूप है।

स्थूल सूर्य से कहीं अधिक शक्तिशाली सूर्य का प्राणात्मक रूप है जो अमृत है वही सूर्य का ब्रह्म तत्व ही है और इसका भौतिक रूप ही सूर्य है (**ब्रह्म सूर्य समं ज्योतिः**। यजुर्वेद २३-४८)। आप इसे किसी भी रूप में देखे शर्माजी इसका मूलतत्व एक ही रहता है। जिस प्रकार मूलभूत प्राण है सृष्टि के लिए प्राण, अपान, और

व्यान इन तीनों रूपों में प्रगट होता है। ऋग्वेद में गायत्र प्राण पर विचार करते हुए यह बात कही गयी हैं प्रत्येक प्राण या स्पन्दन की तीन समिधाएं हैं। उन्ही की निज शक्ति और बाहरी महिमा से जीवन का विकास हो रहा है। मैंने पूछा- गायत्र प्राण अथवा स्पन्दन की ये तीन समिधायें क्या हैं? कुछ देर गम्भीर मुद्रा में सोचते हुए बोले- बाल, यौवन और जरा यानि वृद्धावस्था। ये तीन समिधाएं हैं। इन्ही तीन खण्डों का समिन्धन यानि जलन, शीत, ताप और प्रकाश यानि आयुष्य का क्रम है। लम्बी सांस लेते हुए शास्त्रीजी ने आगे कहा- प्रकृति का कैसा विचित्र विधान है कि एक के बाद दूसरी समिधा अपनी विशेषता प्रगट करने के लिए स्वयं ही इस प्रकृति यज्ञ में जल उठती है। बाल अवस्था में यही गायत्र प्राण जिसका पहला स्पन्दन शिशु रूप में होता है क्रमशः काल का प्रवाह यौवन उस ललाभ भाव को कर देता है प्रगट। जिसका अनुभव मानव के लिए पृथ्वी पर साक्षात् स्वर्ग का अनुभव प्रतीत होता है और जिसके लिए देवता भी लालायित रहते हैं। इस गायत्र प्राण की दूसरी समिधा के भीतर अन्तर्निहित वह रसवर्षा है फिर इसके अन्दर गायत्र प्राण की तीसरी समिधा का अनुभव होता है। प्राण वेग वाली रस मन्द पड़ने लगती है और धीरे-धीरे न्यूनता आ जाती है। शिव के तीन नेत्र हैं। शिव के नेत्र शक्ति की परिधि में गायत्र प्राण के तीन भाग समाये हुए हैं। यही त्र्यम्बक देव का यजन है जिसके लिए कहा गया है **'त्र्यम्बकं यजामहे सुगंधिम् पुष्टिवर्धनं'**। 'ॐ' आध्यात्मिक जागरण का मूल मंत्र है। जिसके उच्चारण के बिना कोई भी साधना सफल नहीं मानी जाती। 'भूः' अर्थात पृथ्वी लोक से निकट सुक्ष्मतम् तत्वों से निर्मित लोक तथा 'स्वः' अर्थात स्वर्ग लोक। चौदह लोक बताये गये हैं जिनमें सात उच्चतर लोक और सात निम्नतर लोक हैं। ये महःलोक, जनलोक, तपःलोक, सत्यलोक, इन्द्रलोक, सूर्यलोक, पितृलोक तथा पाताल तल,महातल, रसातल, सुतल, वितल, अतल कहे जाते हैं।

गायत्री महामंत्र में उक्त समस्त लोकों का सार सन्निहित है। यह प्राचीनतम् दैवी स्त्रोतों में एक है जिसकी साधना में साधक तन्मय होकर असीम सुख-समृद्धि की अनुभूति करता है। इसे सावित्री मंत्र भी कहा गया है क्योंकि इसमें सूर्य की उपासना है। वैदिक वाङ्मय में गायत्री छन्द भी है जिसमें देवताओं की स्तुतियां की गयी हैं। गायत्री मंत्र प्राचीनतम् है अतः इसे गायत्री मंत्र का नाम दिया गया है। गायत्री मंत्र तीन चरणों का होता है। यथा-

'ओमतत्-सवितुर-वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात्।'

गायत्री महामंत्र ऋग्वेद के तीसरे मंडल के सातवें सूक्त का दसवां मंत्र है। राजर्षि विश्वामित्र इस मंत्र के द्रष्टा हैं। शुक्ल यजुर्वेद व कृष्ण यजुर्वेद में भी यह मंत्र है। भगवान सूर्य की स्तुति में यह मंत्र कहा गया है क्योंकि सूर्य ही प्रकाश के देवता हैं जो सृष्टि को आलोकित करते हैं। गायत्री का जाप प्रातःकाल एवं सायंकाल में किया जाता है। ऐसी मान्यता है कि प्रातः का पाठ रात्रि के और सायंकाल का पाठ दिन के विकारों, पापों, बुराइयों जो भी जाने अनजाने में मनुष्य से हो जाती है उसके शमन के लिए किया जाता है। मन में अनेक विकार रहते हैं इन सबके शमन के लिए गायत्री का जाप किया जाता है।

गायत्री अनन्त शक्तिशाली भगवती देवी व वेदमाता हैं। गायत्री का जप कर लेने से वेदपाठ के पुण्य का लाभ होता है अर्थात वेदाध्ययन, वेदपाठ का जितना पुण्य मिलता है उतना गायत्री के मंत्र का जप करने से मिलता है।

'गायन्तं त्रायते इति गायत्री' अर्थात संसार की प्राणशक्ति ही गायत्री है या जो प्राण की स्पन्दित गति है वही गायत्री है। **'सावित्री त्वं देवी जननी परा'** अर्थात गायत्री साक्षात् ब्रह्मरूपिणी जगन्माता हैं। सामवेद, उत्तरार्चिक, यजुर्वेद, तैत्तिरीय आरण्यक तथा छंदग्योपनिषद में कहा गया है कि **'गायत्री व इदं सर्वम्'** अर्थात ब्रह्माण्ड में जो कुछ कहा गया है वह गायत्री ही है। श्वेताश्वैतरोपनिषद् में कहा गया है-'हे सविता देवता हमारे मन और बुद्धि को तेज प्रदान करो.....कि जगत का रहस्य समझने के लिए हम पृथ्वी से ऊपर उठें।' तात्पर्य यह कि मनुष्य को सदैव ऊर्ध्वगामी होना चाहिए जिसमें गायत्री का जप एक अलौकिक भूमिका निभाता है। गायत्री मंत्र का गहरा दार्शनिक रहस्य है। भगवान सूर्य की उपासना करना गायत्री मंत्र की विशेष महिमा है जिसमें साधक सूर्य से बौद्धिक एवं आत्मिक आलोक की कामना करता है। देखा जाये तो बिना सूर्य के संसार में जीवन असम्भव है।

ऋग्वेद की ऋचा है-**'आदित्यादेव भूतानि जायन्ते**।' सूर्य को ही सृष्टि का सर्जनकर्ता मानकर पूजा-उपासना का प्रावधान किया गया है। उपनिषदों में भी सविता देवता की उपासना इस प्रकार की गयी है।

'युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्वाय सविता धियः।

अग्ने ज्योतिर्निचाप्य पृथिव्या अध्याभरत।।

सविता से तात्पर्य है उत्पन्न करने वाला, प्रेरणा देने वाला। सर्वप्रथम प्रकृति थी और प्रकृति से महत् तत्व हुआ। यथा-**'प्रकृतेर्महान्'** अर्थात यह महत् तत्व नाम ही बुद्धि है अर्थात प्रकृति से 'धी' बुद्धि या चेतना की उत्पत्ति हुई और बुद्धि से

ही मनस तत्व हुआ उसमें प्रकाश देने के लिए अग्नि हुई और यह उत्पत्ति क्रम पृथ्वी तक पहुंच गया अर्थात धीः, मनस् अग्नि, पृथ्वी पर इसी क्रम में सृष्टि का विकास हुआ। आधिभौतिक दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट होता है कि पृथ्वी से जीव या प्राण, प्राण से मन, मन से बुद्धि उत्पन्न हुई। इसी क्रम से सृष्टि का विकास हुआ। अतः गायत्री का जाप, सृष्टि विकास एवं सृष्टि कल्याण के लिए किया जाता है। गायत्री महामंत्र के प्रत्येक अक्षर में अद्‍भुत शक्ति समाहित है। एकाग्रता से जाप करने वाला असीम उपलब्धियों से अलंकृत हो सकता है। गायत्री मंत्र के जाप से लोक-परलोक दोनों को सुधारा जा सकता है। गायत्री महामंत्र का एकाग्रता से किया गया जाप सभी मनोकामनाओं को पूरा करता है। कहा गया है-

अभीष्टं लोकमाप्रोति प्राप्नुयात्काममभीप्सितम्।

गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशनी।।

अर्थात गायत्री मंत्र का जप करने से अभीष्ट लोकों की प्राप्ति होती है तथा साधक की कामनाएं पूरी होती हैं। क्योंकि गायत्री वेदमाता हैं और पापों का नाश करने वाली हैं। वेद मंत्रों का भंडार है और गायत्र वेदों की सारस्वरूप हैं जो ब्रह्माजी के मुख से उद्‍भूत है।

सर्वेषामेव वेदानां गुह्योपनिषदां तथा।

सारभूता तु गायत्री निर्गता ब्रह्मामुखात्।।

अर्थात सब वेदों और गुह्य, उपनिषदों का सार रूप ब्रह्माजी के मुख से महामंत्र गायत्री उद्‍भूत हुई। अतः इस महामंत्र की पावनता, प्रभावोत्पादकता, व्यापकता, क्षमता, अद्वितीयता असीम है, अनंत है, अमोघ है जो अनिवर्चनीय है तभी तो यह महामंत्र अपने साधक की रक्षा करता है।

गातारं त्रायते यस्माद् गायत्री तेन गीयते। (स्कन्दपुराण)

जो गायत्री को गाता है अर्थात जपता है गायत्री महामंत्र उसकी रक्षा करता है तथा सब प्रकार से सुख शान्ति प्रदान करता है।

परमपिता परमेश्वर ने भी सर्वप्रथम गायत्री का गान किया था। यथा-

गायतो मुखाद उदपवदिति गायत्री। (निरूक्त)

गायत्री मंत्र के जप से शरीर की समस्त ग्रन्थियां झंकृत होकर ऐसा स्पन्दन पैदा करती हैं कि उसका रोम-रोम पुलकित हो उठता है तथा सत्य, शील, उदारता, सहिष्णुता, दया, क्षमा आदि गुण विकसित होने लगते हैं। इन सब सद्‍गुणों की

समष्टि से यह सांसारिक कल्याण की भावना से अभिभूत हो उसी क्षेत्र में प्रवृत्त हो जाता है और '**सर्वेपि सन्तु सुखिनः**' की साकारता में संलग्न हो जाता है।

'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं।

भर्गोदेवस्यधीमहि धियो योनः प्रचोदयात्।'

आज बस इतना कहकर शास्त्रीजी उठ खड़े हुए और अगले दिन का समय लेकर मैं भी उठ खड़ा हुआ।

पंचप्राण- अगले दिन सायंकाल के समय पहुंचा शास्त्रीजी अपने नित्यकर्म से खाली होकर बैठ गये थे। ऐसा लगा जैसे उन्हे मेरा ही इन्तजार रहा हो। जैसे ही मैं उनके कमरे में गया उन्होने बैठने का इशारा किया मैं भी आज्ञाकारी बालक की तरह एक कोने में बैठ गया। बोले- प्राण के सूक्ष्म रहस्य के बारे में बतलाता हूँ। प्राण का रहस्य है। लेकिन जीवन के बिना अध्यात्म ज्ञान अधूरा है शर्माजी। आपको ज्ञात होना चाहिए कि प्राचीन ऋषि मुनि ने अपने अध्यात्म बल से जाना कि मनुष्य के शरीर में पांच तत्व हैं इन्हे आप पंचकोश भी कह सकते हैं। यह पंचकोश सूक्ष्म चेतना से बना है। पांचों पृथक-पृथक होते हुए भी एक ही मूल केन्द्र से जुड़े हुए हैं। पांचों कोशों को मनुष्य की पंचधा प्रकृति कहते हैं। इन्ही पांचों चेतनाओं को ही अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, आनन्दमय कोश, विज्ञानमय कोश कहा जाता है। अगर इसे दूसरे शब्दों में व्याख्या की जाये तो अन्नमय कोश शरीर, प्राणमय कोश गुण, मनोमय कोश विचार, विज्ञानमय कोश को सत् और आनन्दमय कोश को ज्ञान कह सकते हैं। आध्यात्मिक साधना ही मानव की पांच महाशक्तियों को पतन के मार्ग पर जाने से रोकती है। कोशों को असन्तुलित, अनियंत्रित रहने से मानव के अन्तःकरण की विषम स्थिति रहती है।

आध्यात्मिक साधना का सबसे बड़ा लाभ यह है कि मानसिक स्थिति का परिमार्जित हो जाना है। परिमार्जित मनोभूमि एक प्रकार का कल्प वृक्ष है। जो मानव जीवन के लिए उपयोगी और ज्ञानवर्धक है। जिससे आन्तरिक शक्ति अत्यधिक बढ़ जाती है। चूंकि आध्यात्मिक केन्द्रीकरण सतोगुण के आधार पर किया जाता है इसलिए सात्विक आत्मबल या कहें आध्यात्मिक आत्मबल जिससे पुरूष को महापुरूष, मानव को महामानव, आत्मा को महान आत्मा बना देता है।

आहार निद्रा कामेच्छामय आवेश क्रोध जैसी इच्छाओं में रत् रहकर अपनी श्वांस कम कर लेना कोई नयी बात नहीं है। इस प्रकार तो पशु-पक्षी भी जी लेते हैं। अगर देखा जाये तो अन्य जीव मनुष्य से कहीं अधिक अच्छे हैं। ईर्ष्या, द्वेष,

छल कपट, काम क्रोध, असन्तोष, शोक-वियोग आदि को आन्तरिक में हर समय जलते रहना तो नहीं पड़ता मानव की तरह। मृत्यु के समय जो कष्ट होता है या मृत्योपरान्त जो कष्ट होता है वह यही है। ईर्ष्या द्वेष काम क्रोध शोक नामक बोझ अपने ऊपर साथ लिए रहते हैं लेकिन मरते समय अन्य जीव के साथ ऐसा नहीं होता। मनुष्य तो घाटे में रहता है पशुओं की अपेक्षा। अन्य जीव मनुष्य की तरह पाप का बोझ लिए नहीं मरते और मरने के बाद उनका शरीर किसी के काम आ जाता है लेकिन मनुष्य के साथ ऐसा नहीं होता है। मानव जीवन का जो महत्व है उसकी आध्यात्मिक विशेषताओं की वजह से है। आत्मिक उन्नति ही मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य है जो पशु से अलग करता है। तंत्र का कहता- बलि का मतलब यह है कि पशु बलि से अच्छा है कि साधक अपने कुविचारों का बलि दे और उस अनन्त प्रकाशमयी जगतजननी के प्रति पूर्ण समर्पित हो जाये। सच्चे अर्थों में बलि का यही रहस्य है। मानव जीवन का महत्व उसकी आत्मिक विशेषता है। यदि आध्यात्मिक विशेषता अपने स्वस्थ रूप से विकसित हो तो ही मानव सच्चे अर्थों में मानव जीवन का पूर्ण लाभ प्राप्त कर सकता है अन्यथा नहीं। आध्यात्मिक साधना का उद्देश्य मानव का पूर्ण विकास करना है। उसके भीतर जो अदृश्य शक्तियां सुप्त पड़ी हैं उसे आध्यात्मिक साधना द्वारा जागृत करना है।

हमारे देश में आध्यात्मिक जीवन की आदिकाल से यही विशेषता रही है। उसमें आदर्शयुक्त पारमार्थिक जीवन की प्रधानता दी गयी है। भारतीय जीवन में उस व्यक्ति को आदर्श माना जाता रहा है जो उद्देश्यपूर्ण आदर्श जीवन जीता है।

अज्ञान, आशक्ति और अभाव से संघर्ष करने वाले को द्विज कहा जाता है। द्विज का अर्थ है जो पारमार्थिक जीवन को जीने का संकल्प नहीं लेता है उस विषयी मनुष्य को योग-तंत्र में शूद्र कहा जाता है। वर्तमान में देखा जाये तो शूद्रता तो चारो तरफ फैली है हर जाति के प्राणी अपने कर्मो से च्युत होकर शुद्रवत् जीवन जी रहे हैं। आज घोर अशान्ति का कारण यह भी है।

भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति की यही महानता है कि वह हर मनुष्य को यही प्रेरणा देती है कि पशुवत् व तुच्छ जीवन न जीये अपना प्रत्येक पल महान आदर्शों में लगाये इस अमूल्य जीवन व्यर्थ न जाने दें। ईश्वर ने आपको एक सुन्दर स्वस्थ शरीर दिया है तो उसे निरउद्देश्य न जाने दे। अपने व्यक्तिगत आवश्यकताओं का विस्तार न करें। अपने बुद्धि, बल को सद्मार्ग में लगावें। योग में बुद्धि को ऋतम्भरा, प्रज्ञा और सद्बुद्धि कहा गया है जो गायत्री रूप में विद्यमान है। इसीलिए

भारतवर्ष को पूण्यभूमि और तपोभूमि कहा गया है। अगर कहीं स्वर्ग की कल्पना की गयी है तो वह है भारत। जहां देवता भी बार-बार अवतार लेना चाहते हैं। विशुद्ध आत्माएं भी मानव जीवन को प्राप्त करने के लिए लालायित रहती है। विद्या, बल, पराक्रम, सम्पदा से, स्वस्थ सौन्दर्य से हमारा देश भरा है। यही कारण है कि आध्यात्मिक शक्ति ने भारतीय मानव की अन्तःभूमि को ऐसा पारमार्जित कर दिया है कि उसमें भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियों का असीम भण्डार होना स्वाभाविक है।

सद्बुद्धि- नमस्तयै नमस्तयै नमस्तयै नमो नमः।
या देवी सर्वभुतेषु बुद्धिरूपेण स्थंतिता।

माँ जगज्जननी गायत्रीरूपा सद्बुद्धि रूप में हमारे शरीर में विद्यमान सद्बुद्धि मानव को उन कठिनाइयों को नष्ट करती है जो हमारे सामाजिक, आध्यात्मिक उन्नति के बाधक हैं। सद्बुद्धि उन सुविधाओं को बढ़ाती है जो हमें आत्मिक सम्पन्नता को सुदृढ़ करते हैं। मैं तो बस उनके ज्ञान के भण्डार शब्दरूपी अमृत वर्षा को ग्रहण कर रहा था। शास्त्रीजी ने कुछ सोचते हुए शान्त भाव से बोले- सद्बुद्धि का एक अद्भुत और रहस्यमय आधार है महामंत्र गायत्री। गायत्री मंत्र के एक-एक अक्षर में जो गूढ़ ज्ञान भरा है उसे शब्दों में व्यक्त करना सम्भव नहीं है। चौबीस अक्षरों में एक ऐसा अदृश्य ऊर्जा का भण्डार है जो प्रकृति की दृश्य-अदृश्य अवस्थाओं में व्याप्त है। इस महामंत्र में असीम ऊर्जा तो है ही इसके अलावा अक्षरों की रचना भी ऐसे अद्भुत ढंग से हुई है कि उसके उच्चारण मात्र से शरीर और मन में छुपी हुई अत्यन्त महत्वपूर्ण शक्तियां जाग्रत होने लगती हैं। जो साधक गायत्री की साधना उपासना करता है वह अनुभव करता है कि कोई अज्ञात शक्ति रहस्यमय ढंग से उनके आन्तरमन की शक्ति को आश्चर्यजनक रूप से बढ़ा रही है। गायत्री मंत्र के चौबीस अक्षरों में समस्त चराचर जगत का ज्ञान मौजूद है। स्वस्थ शरीर, धन वैभव, विद्या, सद्बद्धि, सहयोग और कार्य कुशलता यह पांच नैसर्गिक सम्पत्ति संसार में रहती है। इन्ही पांचों के अन्तर्गत समस्त वैभव आ जाते हैं। इसी प्रकार पांच कोशों में पारमार्जित, आध्यात्मिक सम्पदायें हैं वे आत्म अनुभव, आत्म ज्ञान द्वारा प्राप्त होते हैं।

वर्तमान में विज्ञान नयी-नयी खोजें कर और नित नये अविष्कार कर रहा है और सुविधाओं के साधन बढ़ाता जा रहा है ।जिसके फलस्वरूप आज का मानव विलासी, दुर्बल, रोगी, कायर और अल्पजीवी होता जा रहा है। आज पश्चिम में

विभिन्न प्रकार के नये-नये रोग पैदा हो रहे हैं और संसार में अशान्ति से हर पांचवां व्यक्ति मानसिक रोग से ग्रस्त है। आज सारा संसार शान्ति के लिए भारत के प्राचीन अध्यात्म शक्ति का सहारा ले रहा है और शान्ति लाभ कर रहा है। आज पश्चिम की भारी भीड़ भारत की ओर आ रही है। इसलिए परम आवश्यक है कि भौतिक उर्पाजन के साथ-साथ आत्मिक उन्नति का भी ध्यान रखा जाये तो दो दिशाओं का सन्तुलित विकास होगा तभी स्वस्थ उन्नति होगी। हाल ही में अमेरिका के एक शोध का प्रकाशन हुआ जिससे यह बात सिद्ध हुई कि भारतीय संत, महात्मा जो सदियों से कहते आ रहें हैं। वह बात एक शोध से प्रकाश में आयी। जिसमें कहा गया है कि गम्भीर और पुराने रोग का सामना कर रहे लोगों के स्वस्थ नतीजे बेहतर बनाने में आध्यात्मिकता मददगार साबित होती है।

अमेरिका के मिसौरी विश्वविद्यालय के शोधकर्त्ता ने यह पाया है कि धार्मिक या आध्यात्मिक गतिविधियों में सम्मलित होने से महिलाओं का मानसिक स्वास्थ बेहतर होता है इसी प्रकार पुरूषों का भी शारीरिक और मानसिक स्वास्थ उत्तरोत्तर बेहतर होता है।

शोध के अध्ययनों में इस विचार को बल दिया है कि आध्यात्मिकता, स्वास्थ्य सम्बन्धी पुराने रोंगों के नकारात्मक प्रभावों का मुकाबला करने में काफी प्रभावी और मददगार साबित होती है। इसके पहले भी अनेक अध्ययनों से इस बात के प्रमाण मिले कि आध्यात्म और धर्म का आश्चर्यजनक रूप से सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अध्यात्म और स्वास्थ्य के बीच का सूक्ष्म सम्बन्ध का पता लगाने के लिए रीड आन्डर्ट और उनके सहयोगियों ने एकेडमिक हेल्थ सेण्टर से १६८ ऐसे लोगों का चयन किया जिनमें ६१ के मस्तिष्क पर गम्भीर चोट, ३२ स्ट्रोक पीड़ित, २५ स्पाइनल कॉर्ड और २२ कैंसर जैसे गम्भीर बीमारी से पीड़ित थे। प्रत्येक मरीज की धार्मिक और आध्यात्मिक स्तर पर की जांच की और उन्हे कुछ सुझाव दिये गये तथा एक प्रश्नावली भरने को कहा गया। उसके एक माह बाद उनके मानसिक और शारीरिक स्वास्थ की जांच की हांलाकि महिलाओं को पुरूषों की तुलना में ज्यादा धार्मिक या आध्यात्मिक माना जाता है लेकिन शोधकर्त्ताओं ने आध्यात्मिक या धार्मिक स्तर पर दोनों में कोई अन्तर नहीं पाया। शोधकर्त्ताओं ने पाया कि आध्यात्मिकता से दोनों को अलग-अलग फायदा हुआ। महिलाओं को आध्यात्मिक अनुभवों से मानसिक स्वास्थ्य का ज्यादा फायदा हुआ और पुरूषों को मानसिक स्वास्थ्य से ज्यादा फायदा शारीरिक तौर पर हुआ।

इससे सिद्ध होता है कि आध्यात्मिक जीवन का सकारात्मक प्रभाव हमारे सूक्ष्म तन्तुओं पर पड़ता है और एक विशेष ऊर्जा द्वारा मानसिक और शारीरिक रोगों से लड़ने की शक्ति भी प्रदान करता है। जिसका हम सूक्ष्म अनुभव कर सकते हैं जो दृश्य जगत में सम्भव नहीं है।

आज नये-नयें शोधों से यह सिद्ध हो रहा है कि भारतीय आध्यात्मिक ज्ञान कितना गूढ़ और गम्भीर है।

•••

कभी-कभी मेरे पास ऐसे लोग भी आते हैं जो संन्यासी बनना चाहते हैं। उनका कहना है कि गृहस्थ बन कर साधना सम्भव नहीं है। सबसे पहले मैं उनसे यही कहना चाहता हूँ मैं तो गेरूआ वस्त्र नहीं पहनता और चाहता भी नहीं। अगर चाहता तो कब का संन्यासी बन कर किसी मठ का मठाधीश होता। मैं गृहस्थ संन्यासी को सबसे बड़ा संन्यासी मानता हूँ। आप गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए संन्यासी हैं तो उन संन्यासियों से अच्छे हैं जो अपना कर्तव्य छोड़कर जंगल पहाड़ चले गये हैं। आपको यह जानना आवश्यक है कि आदिकाल में ऋषि-मुनि अविवाहित रहते थे यह मान्यता ठीक नहीं है।

सच बात तो यह है कि ऋषि-मुनियों में कुछ ऐसे भी थे जो तपस्या के लिए एकान्त में रहते थे या ब्रह्मचर्य का कठोर पालन करते हुए गृहस्थ जीवन से दूर रहे परन्तु अधिकांश ऋषि, तपस्वी गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए आत्मोन्नति में रत रहते थे और पुराणों में हर पग में इस बात के प्रमाण मिलते हैं। भारतीय ऋषि योगी साधक संन्यासी अन्वेषक वक्ता रचयिता पारिवारिक जीवन का निर्वाह करते हुए योग, वेद, पुराण आदि की रचना भी की और अपार सिद्धि भी प्राप्त की और आज अमर हैं। जैसे व्यास, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, याज्ञवलक्य, भारद्वाज और च्यवन आदि ऋषि से तो गोत्र परम्परा भी शुरू हुई। उसी प्रकार ऋषि पुत्र श्रृंगी ऋषि, नचिकेता, अश्वस्थाना, अरूणि, उद्दालक, शुकदेव, परशुराम आदि जगत में ऋषि कुमार के नाम से जाने जाते हैं जबकि उनके पिता एक ऋषि ही तो थे। ऐसे प्रमाणो से पुराण भरा पड़ा है। जिससे प्रतीत होता है कि पूर्वकाल के साधु-संन्यासी, ऋषि-योगी गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए भी संन्यास धर्म का पालन भी किया।

साधना मन से होती है न की वेशभूषा से। मैं अपने अन्वेषण काल के दौरान ऐसे साधकों से मिला उन्हे देखकर आप कह ही नहीं सकते कि यह साधारण सा

व्यक्ति दुर्धर्ष साधक होगा। वेशभूषा देखकर मैं भी कभी-कभी धोखा खा जाता था। जो सच्चा साधक होगा वह आडम्बर में नहीं पड़ेगा उसे केवल अपना उद्‌देश्य याद रहेगा और रहेगा याद अपना लक्ष्य। मन तो भारी भीड़ में शान्त रहेगा और यही मन एकान्त वन में भी विकारग्रस्त हो सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं जो संसार से भागकर एकान्त सेवी होते हैं उनकी इन्द्रिय विजय भी कच्ची होती है। किसी भी प्रकार की साधना के लिए आवश्यक नहीं है कि आप विचित्र वेश बनाये लेकिन सच बात यह है कि कुछ विशिष्ट आत्माएं ही संन्यास लेने की अधिकारी होती है। ईश्वर यह अधिकार तभी देता है। जब साधक की साधना पूर्ण परिपक्व हो जाये तभी वह संसार का आध्यात्मिक पथ प्रदर्शन कर सके। जैसे शंकराचार्य, योगानन्द, विवेकानन्द आदि।

संन्यास का अर्थ 'त्याग' नहीं : प्रसंगवश शास्त्रीजी से संन्यास पर भी चर्चा चली। शास्त्रीजी का कहना था-संन्यास का मतलब 'त्याग' नहीं है। वस्तुतः संन्यास इस बात की कोशिश है कि एक व्यक्ति सर्वस्व त्याग कर यह देखता है कि फिर भी मैं बचता हूँ कि़ नहीं। प्रश्न यह नहीं है कि संसार बुरा है, इसलिए उसका त्याग किया जाये। और प्रश्न यह भी नहीं है कि घर बुरा है इसलिए त्याग कर दिया जाये और प्रश्न यह नहीं है कि पत्नी पाप है, इसलिए उसका त्याग कर दिया जाये। संन्यास एक अनूठा प्रयोग है। संन्यास एक चेष्टा है। एक प्रयत्न है एक प्रयास है। क्या 'मैं' सब छोड़कर और सर्वस्व का त्याग कर बचता हूँ? अगर नहीं बचता तो मैं नहीं ही था। धोखे में था। अगर सब कुछ छोड़कर भी बच सकता हूँ तो पत्नी मेरी नहीं, पुत्र मेरा नहीं, मित्र मेरे नहीं, घर मेरा नहीं, धन मेरा नहीं। इस संसार में कुछ भी मेरा नहीं। निपट नंगा खड़ा हूँ राह पर। फिर मैं क्या बचता हूँ? अगर बच सकता हूँ तो तभी जब मेरे पास आत्मा नाम की वस्तु है। अगर नहीं बचता हूँ तो मुझे आत्मा की खोज करनी चाहिए। संसार की सारी वस्तुएं इसलिए नहीं छोड़नी है कि वे बुरी है। उन्हें इसलिए छोड़ना है, उनका इसलिए त्याग करना है कि उनके साथ रहने पर यह ख्याल आना मुश्किल होता है कि 'मैं भी हूँ' या केवल तमाम वस्तुओं का जोड़ ही है। एक साधक, एक योगी और एक संन्यासी जंगल में इसलिए आता है कि नगर बुरा है। इसलिए नहीं कि नगर में सत्य नहीं मिल सकता है। एक संन्यासी को, एक साधक को और एक योगी को सब कुछ छोड़कर जंगल में, एकान्त में जाने का मतलब केवल यही है कि क्या वहां अकेले में होश रहता है या खो जाता है। जब मैं सब कुछ छोड़ देता हूँ, फिर भी 'मैं' होता हूँ या नहीं होता हूँ, बस जंगल में जाने का यही प्रयोजन है।

अगर वहां भी होता हूँ- तभी समझना चाहिए कि आत्मा नाम की सम्पदा है, मेरे पास। अन्यथा नहीं है। अगर नहीं है तो तुरन्त उसकी खोज में मुझे निकल पड़ना चाहिए।

शास्त्रीजी ने कहा- इसीलिए बुद्ध, महावीर जैसे लोग अपनी आत्मा से साक्षात्कार हो जाने के बाद और 'मैं कौन हूँ' का उत्तर मिल जाने के बाद अपने गांव और अपने घर वापस लौट आते है। अब उनको न कोई भय रहता है और न तो चिन्ता रहती है। अब वे वह जानते है कि 'वे कौन है?'

'हम बिल्कुल नहीं है' इसीलिए हमें वस्तुओं से इतना मोह होता है। वे वस्तुएं केवल वस्तुएं ही होती तो उसके प्रति आसक्ति और मोह न होता। ये तो हमारी आत्मा में जुड़ी हुई होती हैं। एक प्रकार से वे मेरी आत्मा ही होती है।

आपसे आपकी प्रिय वस्तु कोई छीनता है, तो वह प्रियवस्तु नहीं बल्कि आपका प्राण छीन रहा होता है। आपकी आत्मा छीन रहा होता है। वास्तव में आपकी स्थिति अत्यन्त दयनीय है कि आप एक मिनट के लिए भी वह बात नहीं रख पाते कि- 'मैं हूँ'। और इसका कारण बस इतना ही है कि आप गहरे नींद में सोये हुए हैं और वह सुषुप्ति भंग होती है, तभी चैतन्य का ज्ञान होता है।

'आपका चैतन्य से क्या तात्पर्य है'- मैंने पूछा? चैतन्य ही तुरीय है। मतलब यह कि जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति- इन तीनों अवस्थाओं की उत्पत्ति और लय को जानने वाला लेकिन फिर भी उनसे परे है ऐसा जो नित्य साक्षी चैतन्य है वही तुरीय है। किसकी हैं वे तीनों अवस्थाएं? कौन उन तीनों अवस्थाओं में उपस्थित रहता है? कौन जागता है? कौन स्वप्न देखता है? और कौन सोता है। निश्चय ही यह अलग होगा। निश्चय ही उनका अस्तित्व भिन्न होगा। थोड़ा रुककर शास्त्रीजी आगे कहने लगे- एक आदमी को आप सोते हुए देखें। तब आपको पता चलेगा कि दिनभर जितनी मेहनत नहीं की, परिश्रम नहीं किया उतना वह नींद में कर रहा है। हाथ पटक रहा है, पैर पटक रहा है, सिर पटक रहा है, मुँह बना रहा है, पता नहीं क्या-क्या कर रहा है? नींद में भी इतना उपद्रव! उधर भी चैन नहीं। हमारी नींद भी एक श्रम है और ऐसे लोगों का जागना भी एक विश्राम है।

हम नींद के बाद भी थके हुए ही उठते हैं। क्योंकि रात भर इतना परिश्रम हो जाता है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। वह रोज का सिलसिला है। दिन भर के थके रात को सो जाते हैं और रात भर के थके सवेरे उठ जाते है। हमारी पूरी जिन्दगी एक लम्बी थकान है। एक बोझ है जिसको हम बराबर ढोये ही चले जाते हैं। अगर मौत न आये तो इस बोझ से हमारा छुटकारा ही न हो। मौत आ जाती है और

जबरदस्ती हम से बोझ छीन लिया जाता है। मगर हम वासना में इतने भरे हुए हैं कि हम मर भी नहीं पाते। मरने के बाद भी नये जन्म की यात्रा पर हमारी चेतना निकल जाती है नये बोझ की तलाश में।

योग में जितने भी लक्ष्य हैं- उनमें एक यह भी है कि हमारी सुषुप्ति भंग हो। वास्तविक योगी वही है, जो सुषुप्ति से निकल कर अथवा प्रगाढ़ निद्रा को पार कर तुरीय में पहुंच जाता है। फिर निद्रा शरीर का विश्वास बन जाती है। श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि योगी सोया हुआ भी सोता नहीं है।

श्रीकृष्ण के कहने का मतलब है जो सोकर के भी नहीं सोता। योगी का शरीर सोता है। तन्तु सो जाते हैं। स्नायु सो जाते हैं। मगर भीतर चेतना की ज्योति जलती रहती है। यही आत्मा की तुरीय स्थिति है। इसी तुरीय स्थिति से तीन का जन्म होता है, निद्रा घनी होती है, स्वप्न बनते हैं, जाग्रति होती है, फिर ये तीनों वापस उसी में लीन हो जाते हैं। तुरीय स्थिति का न किसी से जन्म होता है और न तो किसी में उसका विलय ही होता है। यह शाश्वत सिद्धान्त है जीवन का। वह जीवन का आधार है। प्रारम्भ भी वहीं और अन्त भी वहीं। जिसने इसे नहीं जाना वह केवल बीच के परिभ्रमणों में भी भटकता रहता।

आत्मा की दूसरी स्थिति क्या है?

दूसरी स्थिति 'तुरीयातीत' है। जैसे तुरीय में 'मैं कौन हूँ' का उत्तर मिलता है और आत्मबोध होता है, वैसे ही तुरीयातीत में 'कौन है' का उत्तर मिलता है और परमात्म बोध होता है। अबतक मैंने जिन गूढ़ विषयों की चर्चा की है वे भारतीय अध्यात्म विद्या के सारतत्व तो हैं हीं- इसके अतिरिक्त योग-तंत्र की समस्त साधनाओं की मूलभित्ति भी हैं। शास्त्रीजी बोले- शर्मा अब अपने मूल विषय पर कुछ चर्चा कर लें। शास्त्रीजी ने आगे कहना शुरू किया। ऊँ (अ,उ,म) प्रणव की तीन मात्राएं सृष्टि के त्रिक का प्रतीक है जैसा कि वह अव्यक्त विज्ञान मनोमय जगत क्षेत्र में विद्यमान है। इस मानसी शक्ति का क्रमशः अवतार प्राण रूप में होता है। जिसकी प्रतीक तीन व्यहृतियां हैं। स्पन्दन ही व्याहरण है। व्याहरण का उल्टा समाहरण है। समष्टि के भीतर से ही व्यष्टि भाव उत्पन्न होता है। ऐसे ही प्रजापति (ब्रह्मा) की मानस समाधि विश्व के लिए व्याहृतियां के रूप में प्रकट होती है।

भूर्भुवः स्वः इन तीनों के उच्चारण से क्रमशः भूलोक, भुवलोक और स्वलोक बन जाते हैं। इन्ही की संज्ञा पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौलोक है। प्रजापति के विज्ञान में इसी से ऋक का दर्शन लाभ होता है। इन व्याहृतियों से विरचित जो प्राणात्मक

संस्थान है त्रेधागति जिसका स्वरूप है। उसका जब भूत के धरातल पर अवतार होता है तो प्राण और भूत के उस सम्मिलित रूप का वर्णन गायत्री के तीन चरणो में पाया जाता है। इसके प्रथम भाग में सविता मनःशक्ति, दूसरे भाग में देव के भर्ग यानि प्राण का वर्णनीय• संकेत है जो अपनी प्रेरणा या जागरण के लिए निरन्तर सविता शक्ति पर निर्भर रहता है। समस्त जीवन प्राण के द्वारा मनरूपी सविता देव का ध्यान करता है। सविता को छोड़कर जीवन का कोई भी स्वरूप नहीं है।

मंत्र के तीन चरण में उसके धरातल पर प्रगट होने वाली उन कर्म शक्तियों का उल्लेख है जिन्हे धिय कहा गया है। (कर्माणिधियः) इस प्रकार गायत्री मंत्र समग्र जीवन का सारगार्भित सूत्र है।

ब्रह्मचर्य काल में सावित्री मनस्तत्व, यौवन काल में प्राणतत्व और आयु के शेष भाग में धियः या ज्ञानाधिष्ठित कर्म तत्व का विशेष महत्व है। वैसे ये तीनों एक दूसरे में सम्मिलित है। गायत्री एक छन्द है। छन्द का प्रयोजन साम है। साम का तात्पर्य आपके मानसपटल में गान रूप में गूंजता रहे। गायत्र साम को जो गाता है गायत्री उसकी रक्षा करती है। जो समस्त चराचर जगत है। इनमें जो सामगान है उन्हे ऋषियों ने गायत्र कहा है अर्थात गायत्री लोक त्रयी संज्ञा है। अगर व्यापक और सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाये तो वेद की अनेक विद्याओं का अन्तर्भाव गायत्री विद्या में होता है। जैसे प्राण विद्या गायत्री का ही रूप है। प्राण का स्वरूप है समंचन और प्रसारण है। (प्राणो समंचन प्रसारणम्) गायत्री ही प्राणात्मक त्रेधा स्पन्दन का रूप है। यही गायत्री और प्राण का आध्यात्मिक रहस्य है।

प्राणो का रहस्यमय संचालन- भारतीय ऋषियों ने प्राणों के विषय में इस प्रकार व्याख्या की है। मानव शरीर में दस प्रकार के प्राणों का संचालन होता है। इनमें से पांच प्राण मुख्य हैं और पांच प्राण सम है। जिसे लघु प्राण भी कहते हैं योग में। अपान, व्यान, सपान, उदान और ध्यान ये मुख्य प्राण हैं। नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय ये लघु प्राण हैं। शरीर में कुछ ऐसे स्पन्दन हैं जिनके स्पन्दन होने से प्राण तत्व की क्रिया उन स्पन्दनों के अनुसार होने लगती है। प्राण तत्व एक प्रकार से विद्युत ऊर्जा के समान है। पांच मुख्य प्राण को ओजस और लघु प्राण को रेतस कहा गया है। ये दसों प्राण एक दूसरे के पूरक हैं और दूध पानी की तरह मिले हुए हैं। भारतीय योगियों ने प्राणो के सूक्ष्म संचालन को देखते हुए दस भागों में बांटा और प्राणायाम का सूक्ष्म आधार बनाया। जिस तरह आत्मा का एक रूप है मन। मन ही आत्मा का भौतिक संचालन है। प्राण का मुख्य निवास

स्थान हृदय है और नाग प्राण भी वहीं रहता है। अपान प्राण गुदा और मूत्रेन्द्रियों के बीच रहता है। उसी के पास कूर्म प्राण का निवास है। समान और कृकल प्राण का नाभि प्रदेश में है निवास। उदान प्राण और देवदत्त प्राण का निवास कण्ठ प्रदेश है। धनञ्जय प्राण का मुख्य निवास मस्तिष्क के मध्य भाग में है। वैसे यह सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है मृत्यु के बाद धनञ्जय प्राण सबसे बाद में शरीर से अलग होता है और आत्मा के साथ अनन्त यात्रा पर निकल पड़ता है। इसलिए हिन्दू धर्म में शव के जलने के बाद कपाल क्रिया का महत्व है और है विधान। एक प्रकार से प्राण शरीर का ईधन है। अपान प्राण से मल-मूत्र आदि का विसर्जन होता है और समान से पाचन और उष्णता का संचार होता है। ध्यान प्राण का कार्य रक्तसंचार को संयमित करना है। उदान प्राण बाह्य वस्तुओं को शरीर में ग्रहण करने योग्य बनाता है। नाग प्राण से डकार का, कूर्म प्राण से पलक झपकने का, कृकल प्राण से छींकने और देवदत्त प्राण से जम्हाई का संकेत माना जाता है।

धनञ्जय प्राण शरीर के पोषण करने में सहयोग करता है और अन्त में शरीर के सारे प्राण एक के बाद एक शरीर से अलग होते हैं। आखिरी पल जब शरीर को नष्ट होने की क्रिया शुरू होती है तब धनञ्जय प्राण शरीर से अलग होता है। जैसा कि ऊपर बतलाया गया है कि कपाल क्रिया परम आवश्यक है नहीं तो धनञ्जय प्राण बिना सूक्ष्म शरीर का निर्माण तुरन्त सम्भव नहीं है इसलिए बहुत सी प्रेतात्माएं हजारों वर्षों तक भटकती रहती है। इसलिए भारतीय धर्मशास्त्र में श्राद्ध का काफी महत्व है। बिना श्राद्ध कर्म किये अगला जन्म नहीं होता है उपलब्ध। अगर होता भी है तो काफी समय लगता है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि आत्मा को कितना समय लगेगा जन्म लेने में। प्राण के विषय में योग ग्रन्थों में काफी विस्तृत वर्णन किया गया है लेकिन यहां संक्षेप में प्राणों के विषय में दिया जा रहा है। योग कहता है कि जिन स्थानों में प्राणों का स्थान बतलाया गया है वह एक प्रकार का स्पन्दन है। यह स्पन्दन कभी निम्न होता है तो कभी उच्च। उसे एक प्रकार से वायु चक्र कह सकते हैं। चक्र एक प्रकार का भंवर है। भंवर ऊपर की ओर उठते हैं तो चौड़े होते हैं और नीचे की ओर जाते हैं तो संकरे। ऊपर के भाग को स्तर और नीचे के भाग के कहते हैं बिन्दू। शास्त्रीजी ने आगे बतलाया- यह अति गम्भीर तत्व है। आपको ज्ञात होना चाहिए कि प्राण वायु के उत्थान भाग को महाप्राण और अर्ध भाग को लघु प्राण कहते हैं। एक स्तर है तो दूसरा है बिन्दू। दोनों ही उस महातत्व के भाग हैं। प्राण का कार्य है जीवन चक्र को चलाना। प्राण के द्वारा हृदय

धड़कता है और उसके बाद रक्त संचार होता है। इसलिए जब नवजात शिशु पैदा होता है यदि वह नहीं रोता है तो उसे उल्टा करके थाप दिया जाता है जैसे ही बच्चा रोता है प्राण का संचार शुरू हो जाता है। हृदय धड़कने लगता है और सारा शरीर कार्य करने लगता है। जैसे-जैसे प्राण में शिथिलता आती जाती है जीवनी शक्ति घटने लगती है।

अपान प्राण का. महत्व : वार्ता के बीच में मैंने प्रश्न किया शास्त्रीजी से- योग में अपान प्राण का काफी महत्व है अपान अगर विकृत हो जाये तो शरीर का सन्तुलन ही बिगड़ जायेगा। हाँ! शास्त्रीजी बोले- शर्माजी मानव शरीर में अपान का विशेष महत्व है। उसी पर कुछ देर विचार कर लिया जाये। मैं कुछ बोला नहीं। शास्त्रीजी ने आगे कहना शुरू किया। अपान प्राण का कार्य स्थूल मलों को प्राकृतिक रूप से विसर्जन करना है। प्रकृति चिकित्सा में मल, मूत्र, पसीना, कफ, विष, अप्राकृतिक पदार्थ आदि त्याज्य पदार्थो को अपान अनेकों छिद्रों के द्वारा शरीर के बाहर निकालता रहता है। अगर अपान वायु क्षीण हो जाये तो शरीर में मल विसर्जन की शक्ति घट जायेगी और अपच, सर्दी जुकाम, पेट सम्बन्धित रोग हो जायेंगे। शास्त्रीजी बोले कि अपान का कार्य केवल मल विसर्जन करना ही नहीं है इसकी सूक्ष्म क्रिया शरीर के अन्य भागों पर पड़ती है। इसका प्रभाव जननेन्द्रियों पर भी पड़ता है। कामवासना इसी पर निर्भर करती है। मन को व्याकुल व अधीर कर देने वाली वासना अपान के उच्च स्पन्दन हो जाने से ही होता है। अगर शिथिलता आ जाये तो युवा मनुष्य भी नपुंसक होते देर न लगेगी। मनुष्य का सौन्दर्य, स्वास्थ्य, मेधा, शक्ति एवं स्वभाव भी अपान प्राण से जानना चाहिए। अपान प्राण का सहोदर कूर्म प्राण यदि सुषुप्ता अवस्था में होगा तो मनुष्य कितना भी शारीरिक रूप से स्वस्थ्य रहे गर्भ धारण कराने में समर्थ नहीं होगा।

क्या यही रहस्य है अपान और कूर्म प्राण का? मैंने कहा। शास्त्रीजी हँसते हुए बोले- जिस पुरूष नारी में अपान प्राण सौम्य होगा उन्हे रतिक्रिया में असीम आनन्द का होता है अनुभव। बहुत सारे सुन्दर पुरूष और सुन्दर नारी होती है लेकिन उनमें आन्तर समझ की कमी होती है कहीं न कहीं मन में उदासी सी छायी रहती है। वे होटल, क्लब, अन्य मनोरंजन में उस कामवासना से मन को हटाने में लगाते हैं लेकिन ऐसा भी देखा गया है कि खूबसूरत पुरूष है और उसकी पत्नी कम सुन्दर है लेकिन उनका जीवन खुशहाल है। बदसूरत पुरूष है और उसकी पत्नी परम सौन्दर्य को है प्राप्त उनमें भी अपार प्रेम झलकता है। इसके मूल में

है कामऊर्जा। तंत्र ग्रन्थों में इसका वृहद वर्णन है। खैर, नारी में कूर्म प्राण ऊर्जा और पुरूष में अपान प्राण ऊर्जा प्रधान होती है। दोनों के परस्पर मिलन से एक ऐसा प्राण ऊर्जा का विस्फोट होता है जो अनेक शारीरिक, मानसिक अभावों की पूर्ति करता है। जोकि नर-नारी को बांधने का एक महत्वपूर्ण कार्य करता है और जीवन भर इस आनन्द और सन्तुष्टि के साथ अपना समय चक्र पूरा करते हैं।

वर्तमान में स्त्री-पुरुष क्यों दूसरे स्त्री-पुरूषों के प्रति आकर्षित हो रहे हैं? उसका कारण है अपान प्राण। जो एक से सन्तुष्ट नहीं हो सकता वह कभी भी सन्तुष्ट नहीं होता। उसका जीवन मृगतृष्णा की तरह है। इसलिए भारतीय योग में ब्रह्मचर्य आश्रम का यही उद्देश्य रहा है कि २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करे। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ब्रह्मचर्य रहे नारी की तरफ देखे भी न। ऐसा नहीं था प्राचीन काल में विशेष क्रिया द्वारा गुरु अपने शिष्य को अभ्यास कराता था जिसमें अपान प्राण और कूर्म प्राण को साध सके और आगे का गृहस्थ जीवन सफल रहे यही इसका गूढ़ रहस्य था।

शास्त्रीजी थोड़ा गम्भीर होते हुए बोले- प्राचीन महर्षियों ने चार आश्रम का वर्णन किया। उसका काफी गम्भीर आशय है। जीवन को सन्तुलित कर स्वस्थ्य रहते हैं अपने कर्तव्यों का भली भांति पूरा करना उद्देश्य रहा लेकिन आज मनुष्य का वर्तमान जीवन ताश के पत्ते की तरह बिखरा पड़ा है वह समेटना चाहता है लेकिन समेट नहीं पाता है। यही अशान्ति का कारण है। जीवन में प्राण का महत्व है बस यही आपको बतलाने का कर रहा हूँ प्रयास।

जाड़े का समय था अन्धेरा कब हो गया पता ही नहीं चला। मन्दिरों के घण्टे घड़ियाल की समवेद आवाज ने तन्द्रा को भंग कर दिया। अरे! समय का तो भान ही न रहा शर्माजी। खैर, फिर मुलाकात होगी अच्छा लगता है जब तुम आते हो। उम्र हो गयी है, परिवार के अन्य लोग अपने-अपने कार्य में लगे रहते हैं मैं अकेला बस पुस्तक ही मेरा सहारा है देखें फिर मिलना कब होगा।

आप ऐसी बातें क्यों करते हैं। आप जैसे विद्वान पुरूषों से तो काशी की गरिमा है। इतने गम्भीर विषय पर भला कौन प्रकाश डालेगा। मैंने सांत्वना दिया और प्रणाम कर अपने गन्तव्य की ओर चल पड़ा लेकिन उनकी आंखों में सूनापन देखा वह काफी व्यथित करने देने वाला था। खैर, कार्य की व्यस्तता के कारण इधर काफी दिनों से जाना न हुआ। संजोग से एक दिन मेरे परम मित्र चन्द्रशेखर स्वामी मेरे निवास पर आये थे। स्वामीजी जंगमबाड़ी मठ में आचार्य पद पर थे। तंत्र के प्रकाण्ड

विद्वान भी थे। हम दोनो के बीच तंत्र चर्चा होती रहती थी। उन्हे जब शास्त्रीजी के बारे में बतलाया तो वे काफी प्रसन्न हुए और बोले देर किस बात की है चला जाये। ऐसे विद्वानों के दर्शन लाभ कहां होते हैं। कुछ ही देर बाद हम लोग शास्त्रीजी के निवास पर पहुंच गये। कुछ अस्वस्थ दिख रहे थे लेकिन मुझे देखते ही प्रसन्न मुद्रा में बोले- आइये शर्माजी जब उनकी नजर स्वामीजी पर पड़ी तब मैंने स्वामीजी का परिचय दिया। बैठने का इशारा प्राप्त होते ही हम दोनों उनके समीप बैठ गये। चाय पान का समय था औपचारिकताएं पूरी हुई। लेकिन जहां से वार्ता रूकी थी शास्त्रीजी को याद रहा। मैं अक्सर अपने साथ नोटबुक रखता था और आवश्यक बातें नोट कर लिया करता था और रोज की डायरी लिखने की भी मेरी आदत थी। बीच में टोकते हुए शास्त्रीजी बोले नोटबुक क्या देख रहे हो मुझे याद है कि हम लोग अपान प्राण पर ही चर्चा कर रहे थे। मैं उनकी स्मरण शक्ति को देखकर हतप्रभ रह गया और झेपते हुए धीरे से बोला हाँ, उसी पर चर्चा चल रही थी। मैं तो दो हफ्ते बाद आया हूँ आपको याद रहा...।

शास्त्रीजी हँसते हुए बोले अरे भाई मैं अभी इतना वृद्ध नहीं हो गया हूँ कि स्मृति भंग होने लगे। शास्त्रीजी का अपनापन काफी अच्छा लगा मुझे। शास्त्रीजी चर्चा को आगे बढ़ाते हुए आगे बोले कि अपान प्राण की ही तरह समान प्राण भी काफी महत्वपूर्ण है। समान प्राण नाभि के मध्य में रहता है। उसका कार्य उदर के पाचन तंत्र को दुरूस्त करना है। उष्णता और पित्त, चंचलता और उत्साह शरीर में तेज आदि समान प्राण की ही देन है। त्वचा में कोमलता, चमक, खूब भूख लगना कृकल प्राण का कार्य है। सर्दी कम लगना आदि समान और कृकल प्राण के संयोजन की विशेषता है। भूख लगना, स्फूर्ति, उत्साह, शरीर में तेज, सर्दी कम लगना समान प्राण व कृकल प्राण के स्पन्दन पर निर्भर करता है। जिनमें इन प्राणो का स्पन्दन या समान प्राण कम होता है उन्हे सर्दी खूब लगती है जाड़े में इनका शरीर बर्दास्त नहीं करेगा, हाथ और पैरों में ज्यादा ठण्ड लगेगी, स्नान करना काफी कष्ट कर प्रतीत होता है। अधिक गर्म कपड़े पहनने पर भी ठण्ड का अहसास होता रहता है। जरा सा भोजन करते ही पेट भरा-भरा सा लगने लगता है। ऐसे मनुष्य को धूप, आग और गरम पदार्थ अच्छे लगते हैं। खास बात यह भी है कि जाड़े में जाड़ा बर्दास्त नहीं और गर्मी में गर्मी बर्दास्त नहीं कर पाते। परन्तु गर्म मौसम ऐसे मनुष्यों को ज्यादा भाता है।

शर्माजी आपको ज्ञात होना चाहिए कि अपान प्राण की तरह समान प्राण का

मानव शरीर से गहरा सम्बन्ध होता है। समान प्राण की न्यूनता से मनुष्य के पास सब कुछ होते हुए भी वह खिन्न बना रहेगा, असन्तुष्ट होगा, छोटी-छोटी बात में खिजलाना उसकी प्रकृति बन जायेगी। शरीर के किसी न किसी अंग में बीमारी लगी रहती है। समान प्राण का चक्र अस्थिर होने से पेट का भारीपन, थकान, आंखों की कमजोरी आदि रोग अक्सर घेरे रहते हैं।

आयुर्वेद ने सारे रोग का जड़ उदर को ही माना है। अगर उदर ठीक है तो बीमारी की सम्भावना कम है। इसका अर्थ है कि समान प्राण ही हमारे स्वास्थ्य का मुख्य कारण है। समान प्राण सन्तुलित है तो मनुष्य स्वस्थ्य, प्रसन्न और दीर्घायु होगा। बीच में चन्द्रशेखर स्वामीजी ने कहा कि क्षमा करे शास्त्रीजी रहा नहीं गया मैं भी अपना विचार रखना चाहता हूँ। हाँ...हाँ.... जरूर कहें बड़ा आनन्द आयेगा। शास्त्रीजी बोले तंत्र-योग में प्राण साधना एक कठिन क्रिया है। अगर प्राण नहीं सधता तो तंत्र की सारी क्रिया व्यर्थ है। तंत्र में प्राणकर्षणी विद्या की साधना काफी दुरूह है लेकिन साधक उसे साधता है। बिना प्राण साधे ध्यान समाधि सूक्ष्म लोक का विचरण देहातीत अनुभव प्राप्त होना सम्भव नहीं है। जिस प्रकार से जिन दसों प्राणो का आपने जिक्र किया और यह भी कहा कि दोनों दूध और पानी की तरह मिले हुए हैं। जिस तरह प्रकृति और पुरूष। प्रकृति अपनी लीला बिना पुरूष के नहीं कर सकती उसी प्रकार पांच महाप्राण बिना पांच लघु प्राण के सन्तुलित नहीं हो सकते। यह भी कहा जा सकता है कि महाप्राण और लघु प्राण शिव और शक्ति के प्रतीक हैं। जिस तरह बिना शिव-शक्ति के चराचर जगत शून्य है, ब्रह्माण्ड स्पन्दनहीन है उसी प्रकार दसों प्राण का स्पन्दन ही जीवन है।

शास्त्रीजी ने कहा- प्राणतोषणी क्रिया तंत्र का काफी गुह्य विषय है। प्राणतोषणी क्रिया अगर सध जाये तो साधक प्राण पर नियन्त्रण कर शरीर के तापमान को प्रकृति के अनुसार घटा बढ़ा सकता है और प्राण को सहस्त्रार में स्थापित कर सैकड़ों वर्षो तक समाधि को कर सकता है प्राप्त। कुण्डलिनी योग में षट्चक्र भेदन बिना प्राणों के संधान से सम्भव नहीं है। तंत्र में प्राण को असीम ऊर्जा माना है। तंत्र मे उदान प्राण का निवास कण्ठ प्रदेश है। इसे साधने से श्री और समृद्धि दोनों का उदय होता है। कण्ठ प्रदेश को स्फुटा ग्रन्थ भी कहते हैं इसलिए कण्ठ प्रदेश को लक्ष्मी का प्रतीक भी माना है इसी कारण स्वर्णाभूषण गले में धारण किया जाता है। स्फुटा को जाग्रत करने के लिए मोती की माला, रत्न और सोने के आभूषण धारण करना शुभ होता है।

उदान के परिपूर्ण होने पर अथवा स्फुटा ग्रन्थि जिनकी स्वजाग्रत रहती है वे मनुष्य कभी भी अभावग्रस्त नहीं रहते हैं। ज्यादातर लोग कहते हैं कि मेरे पास कुछ भी नहीं है, मैं कितना अभावग्रस्त हूँ और सामने वाले के पास सब कुछ है। वह कितना धनी है, ऐश्वर्यवान है, सब कुछ है। उनको यह ज्ञात नहीं है कि सामने वाले की स्फुटा ग्रन्थि जाग्रत है इस कारण उसके पास सब कुछ है। उसका क्या दोष? साधक प्राण की विशेष क्रिया द्वारा स्फुटा ग्रन्थि जाग्रत कर लेता है, भौतिक या आध्यात्मिक सुख जब चाहे उसे प्राप्त कर सकता है लेकिन विरले साधक ही इसका उपयोग भौतिक सुखों के लिए करते हैं। उनका उद्‌देश्य मंत्र व वाक् सिद्धि के लिए होता है। स्फुटा ग्रन्थि जाग्रत होने से यंत्र में अपार शक्ति तत्काल होती है उपलब्ध और वाक्सिद्धि भी।

शास्त्रीजी चर्चा को आगे बढ़ाते हुए मेरी ओर देखकर बोले- शर्माजी धनञ्जय प्राण का स्पन्दन पूरे शरीर में सूक्ष्म रूप से होता रहता है। शरीर के २६ ऊर्जा केन्द्रों पर प्रभाव पड़ता रहता है। एक प्रकार से धनञ्जय प्राण सभी प्राणों का मुख्य है क्योंकि उसका सूक्ष्म संचालन शरीर के सूक्ष्म केन्द्रों के अलावा बाह्य सूक्ष्म तरंगों को भी करता है आकर्षित। इसलिए कपाल प्रदेश में इसका निवास माना गया जहां सहस्त्रार चक्र है। शिव-शक्ति का सामरस्य मिलन है। इसी को तंत्र में शिव लोक कहा गया है। गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है 'मैं प्राणों में धनञ्जय प्राण हूँ'।

हमारा मस्तिष्क रहस्यमय है अभी तक। वैज्ञानिकगण भी मस्तिष्क के रहस्यों को पूर्णरूप से उजागार नहीं कर पाये हैं। हमारे मस्तिष्क में अद्‌भुत शक्तियों का भण्डार है जो सुप्त है। संसार में ऐसे अनेकों महान पुरूष हुए जिन्होने अपनी अद्‌भुत मानसिक योग्यता और प्रतिभा से लोगों को हैरत में डाल दिया। जाने अनजाने में यह धनञ्जय प्राण का ही चमत्कार है। शिथिलता आ जाये या स्पन्दन मन्द पड़ जाये तो मानसिक बीमारी, त्रुटियां उत्पन्न होने में देर नहीं लगेगी। मन्द बुद्धि, मानसिक रोग, चिन्ता, दुख, मस्तिष्क के विकास क्रम में कमी, यादाश्त की कमी आदि अनेकों समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है मनुष्य को। कहने की आवश्यकता नहीं किसी मनुष्य के पूर्ण मस्तिष्क का विकास धनञ्जय प्राण पर ही निर्भर करता है।

इतना कह कर चन्द्रशेखर स्वामी कुछ देर के लिए शान्त होकर विचार मग्न हो गये। शास्त्रीजी की ओर देखते हुए मैंने प्रश्न किया- प्राणों की सूक्ष्म क्रियाओं का वर्णन सुन कर तो मैं काफी हतप्रभ हो गया। शास्त्रीजी ने कहा- शर्माजी हजारों

वर्ष पूर्व हमारे ऋषि-महर्षियों ने प्राण पर बेहद गम्भीर विचार किया और साथ में शोध किया कि प्राण के कुपित हो जाये या मन्द पड़ जाये तो उसे संधान कैसे किया जाये? लेकिन योग हो या हो तंत्र बिना गुरु के निर्देशन में नहीं करना चाहिए नहीं तो लाभ की जगह हानि उठानी पड़ सकती है। इसलिए योग को परम ज्ञान और तंत्र को गुह्य ज्ञान कहा गया है। बिना गुरु कृपा से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। योग्य गुरु से ही ज्ञान व प्रशिक्षण प्राप्त करना शुभ है।

शास्त्रीजी आगे बोले- दसों प्राण का संयोजन-नियोजन तथा कुप्रवृत्तियों का निवारण करने और प्राण शक्ति पर अधिकार प्राप्त करने, आत्मिक उन्नति के लिए प्राण विद्या का रहस्य अवश्य जानना चाहिए। चाहे वह योगी हो या साधक हो या हो गृहस्थ। मैंने प्रश्न किया कि क्या प्राणों को साधने के लिए भी विशेष क्रिया होगी योगशास्त्र में? हाँ, क्यों नही! शास्त्रीजी बोले- वैसे तो काफी क्रियाएं हैं लेकिन विशेष क्रियाओं के बारे में आपको बतलाता हूँ। बन्ध, मुद्रा, प्राणायाम और ध्यान ये मुख्य है योग शास्त्र में। मुख्य तीन बन्ध हैं प्राण को साधने के लिए।

मूल बन्ध को सिद्ध करने के लिए विशेष प्राणायाम की सहायता से यह सिद्ध होने से अपान प्राण स्थिर हो जाता है। वीर्य स्तम्भन होता है। वीर्य उर्ध्व भाग की ओर होता है अग्रसर। अपान प्राण का स्पन्दन बढ़ जाता है और मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी पर भी प्रभाव पड़ता है और उसमें ऊर्जा का प्रभाव बढ़ जाता है। अपान प्राण और कूर्म प्राण दोनों पर मूलबन्ध का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। रक्तसंचार सुदृढ़ होता है और बिखरी हुई प्राण ऊर्जा संघठित हो जाती है।

जालन्धर बन्ध से श्वांस क्रिया पर अधिकार होता है। ज्ञान तन्तु बलवान होते हैं। हठ योग प्रदीपिका में इसका वर्णन किया गया है। यह शरीर के सोलह ऊर्जा क्षेत्र पर प्रभाव डालता है। कुण्डिलिनी के विशुद्ध चक्र को जाग्रत करने में यह परम सहायक होती है।

उड्डियान बन्ध जीवनी शक्ति को बढ़ाने के लिए परम सहायक सिद्ध होता है। नाभि में स्थित समान और कृकल प्राणों में स्थिरता लाता है। सुषुम्ना नाड़ी को खोलने में सहायक है और स्वाधिष्ठान चक्र चैतन्य करता है। कुण्डलिनी चक्र को जाग्रत करने में काफी सहायक होते हैं ये तीनों बन्ध।

मुद्राएं- योग में सात मुद्राओं का वर्णन है। महामुद्रा, खेचरी मुद्रा, विपरीत करणी मुद्रा, योनि मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा, अगोचरी मुद्रा और भूचरी मुद्रा। तंत्र में इन मुद्राओं का विशेष महत्व है। वैसे ध्यान के लिए योग में कुछ विशेष मुद्राओं का भी वर्णन है।

सूर्य मुद्रा में अनामिका का मोड़कर उसके नख के ऊपर वाले भाग को अपने अंगूठा को स्पर्श करावें शेष तीनों उंगलियां सीधी रहे। शरीर में एकत्रित चर्बी अथवा स्थूलता दूर करती है और शरीर चैतन्य होता है। सूर्य की रश्मि रूपी ऊर्जा का निरन्तर प्रभाव शरीर पर पड़ता है। प्रातःकाल सूर्य के सामने बैठ कर ध्यान करने से आत्म शक्ति जाग्रत होती है।

वरूण मुद्रा मध्यमा अंगुली को मोड़कर उसके ऊपरी भाग को अंगूठे के ऊपरी भाग पर स्पर्श कराएं। शेष अंगुलियां सीधी रेखा में रहे। इस मुद्रा से जल तत्व से होने वाले रोग जैसे रक्त विकार, चर्म रोग में फायदा पहुंचता है। एनीमिया को भी दूर करने में सहायक सिद्ध होता है।

पृथ्वी मुद्रा कनिष्ठिका को अंगूठे के ऊपरी भाग से स्पर्श कराएं व शेष अंगुलियों को सीधी रखें। इसके करने से शारीरिक दुर्बलता दूर होती है और चेहरे पर तेज बढ़ता है।

लिंग मुद्रा दोनों हाथों की उंगलियों को मिलाकर अंगूठे को सीधा रखें इससे शारीरिक उष्णता, कफजनित रोग नष्ट होते हैं।

अपान मुद्रा कनिष्ठिका को सीधा रखें और तीनों अंगुलियों को अंगूठे के अग्रभाग से मिलायें। यह हृदय सम्बन्धित विकार दूर करता है एवं वायु, बेचैनी को भी दूर करता है।

शून्य मुद्रा मध्यमा को मोड़कर ऊपरी भाग को अंगूठे से स्पर्श कराएं शेष अंगुलियां सीधी रहे। नर्व यानि मस्तिष्क सम्बन्धित रोग के लिए फायेदमन्द है।

ज्ञान मुद्रा प्रथम अंगुली या तर्जनी को अंगूठे के अग्र भाग पर स्पर्श कराएं शेष अंगुली सीधी रहे। यह मानसिक तनाव, अनिद्रा, क्रोध पर नियन्त्रण आदि पर काफी लाभप्रद है और ध्यान में भी काफी सहायक सिद्ध होती है।

वायु मुद्रा प्रथम अंगुली को मोड़कर उसके नख के ऊपर के भाग को अंगूठे की गद्दी स्पर्श करें शेष अंगुली सीधी रहे। यह स्नायु तंत्र और जोड़ो के दर्द, हिस्टीरिया में लाभप्रद है।

प्राण मुद्रा कनिष्ठिका, अनामिका और अंगूठे के ऊपरी भाग को परस्पर एक साथ स्पर्श करायें शेष दोनो उंगलियां सीधी रहे। यह मुद्रा प्राणशक्ति का केन्द्र है इससे शरीर में अत्यन्त ऊर्जा का प्रभाव पड़ता है और शरीर निरोगी रहता है, आंखों में विशेष तेज पैदा करता है और प्राण शक्ति को बढ़ाता है।

यह विशेष मुद्रा योग-तंत्र में काफी प्रचलित है। आसन, प्राणायाम के बाद ध्यान करते समय इस विशेष मुद्रा का अभ्यास करने से चमत्कारिक फायदा होता है। एक मुद्रा जबतक सिद्ध न हो जाये अन्य मुद्रा को न करें या अपने अनुसार करें या एक मुद्रा को कम से कम एकतालिस दिन अवश्य करना चाहिए। ये विशेष मुद्राएं ध्यान के परम अवस्था में जाने के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

मैं यहां संक्षेप में प्राणायाम के बारे में बतला रहा हूँ।

प्राणायाम- लोम-विलोम प्राणायाम, सूर्य भेदन प्राणायाम, उज्जयी प्राणायाम, शीतकारी प्राणायाम, भस्त्रिका प्राणायाम, भ्रामरी प्राणायाम, प्लाविनि प्राणायाम आदि योग के प्रचलित प्राणायाम हैं। प्राण शक्ति या प्राणमय कोश सुव्यवस्थित या उनकी ऊर्जा को बढ़ाने के लिए उपरोक्त क्रियायें हैं।

आगे शास्त्रीजी बोले- किस प्राण को किस प्रयोजन हेतु और किस प्रकार जाग्रत किया जाये, उसका निर्णय इतना आसान नहीं है। साधक की शारीरिक, मानसिक व आन्तरिक स्थिति, आयु संस्कार आदि मुख्य आधार पर ही विचार किया जा सकता है और वर्तमान स्थिति को देखते हुए कौन सी साधना उपयोगी होगी यह निर्णय योग्य गुरु ही बतला सकता है।

शास्त्रीजी ने जैसा बतलाया योग हो या हो तंत्र बिना सद्गुरु के आशीर्वाद के बिना नहीं करना चाहिए। गुरु के परामर्श से ही साधक को योग-तंत्र के मार्ग में अग्रसर होना चाहिए। रात गहरा गयी थी शास्त्रीजी के पूजन का समय हो गया था। समझते देर न लगी शास्त्रीजी से आज्ञा मांगकर मैं और चन्द्रशेखर स्वामी वहां से प्रस्थान करने ही वाले थे तभी एकाएक शास्त्रीजी बोले- शर्माजी बड़ा ही आनन्द आया। समय कब कट गया पता ही न चला। खैर, देखिए फिर कब मुलाकात होगी. .....। उनकी सूनी आंखों को देखकर मन अन्दर से सहम गया। शास्त्रीजी का यह बार-बार का कथन समझ नहीं पाया।

चन्द्रशेखर स्वामी मेरे परम मित्रों मे से थे। लिंगायन सम्प्रदाय से जुड़े थे चूंकि वे मद्रासी थे उनका अक्सर बनारस आना होता रहता था। जब भी आते मुझसे अवश्य मिलते और योग-तंत्र पर चर्चा भी होती रहती थी बराबर।

मैं जब शास्त्रीजी के निवास स्थान से चला तो रास्ते भर मेरी और स्वामीजी की कोई बात नहीं हुई लेकिन विदा होते समय स्वामीजी से रहा न गया बोले- क्या बात है शर्माजी आप शान्त हैं किस गहरी सोच में पड़े हैं? मैंने बोला कुछ नहीं शास्त्रीजी तो ज्ञान के भण्डार हैं लेकिन सब होते हुए भी उनकी सूनी आंखें लगता

है कुछ कह रही हैं। स्वामीजी बोले यह तो मैंने भी महसूस किया था लेकिन समझ नहीं पा रहा हूँ। खैर उसके बाद मैं भी अपने कार्य में व्यस्त हो गया। चन्द्रशेखर स्वामीजी भी काशी में अल्पवास कर मद्रास चले गये।

समय तेजी से बीतता गया। जाड़े का समय चारो तरफ सन्नाटा पसरा रहा। मैं भी अपने नित्य कर्म कर आराम करना चाह रहा था। हल्की झपकी लगी लगा जैसे शास्त्रीजी अपनी उसी चिरपरिचित मुस्कान से मेरी ओर देख रहे हों लेकिन उनकी आंखों में दैवी चमक थी। वह सूनापन उनकी आंखों से गायब था। स्वच्छ धवल प्रकाश से परिलक्षित बोले- काफी समय बीत गया शर्माजी आप आये नहीं. .....उनकी आवाज एकदम साफ सुनाई दी। मैं झट से उठ बैठा, देखा चारो तरफ कोई नहीं था। कमरे में बल्ब की मन्द रोशनी बिखरी पड़ी थी। देखा घड़ी में बारह बज रहा था। सोचा हो सकता है शास्त्रीजी याद कर रहे हों। काफी समय बीत गया वे भी क्या सोचते होंगे।

खैर, कल प्रातः ही उनके निवास पर जाऊंगा और क्षमा मांगूगा इतने दिन न मिल पाने के लिए। दूसरे दिन अपने नित्य कर्म से निवृत्त होकर शास्त्रीजी के निवास की ओर चल पड़ा, देखा गली में सन्नाटा बिखरा पड़ा था। दरवाजा खटखटाया तो एक वृद्धा निकली सूनी आंखों से मुझे देखा और दरवाजा खोल दिया। शास्त्रीजी की तस्वीर लगी थी सब कुछ उसी तरह था बस शास्त्रीजी नहीं थे। उनकी चौकी, पुस्तक, चश्मा सब कुछ यथास्थान पर रहा.....ऐसा लग रहा था कि शास्त्रीजी कहीं गये हैं आते ही होंगे। मन काफी व्यथित हो गया....बस उनके फोटो को नमन किया और भारी मन से वापस चला आया। रास्ते भर यही सोचता रहा कि मिलने को कहकर नहीं गया शायद संजोग ही नहीं रहा होगा।

क्या शास्त्रीजी अन्तिम समय में मुझे याद कर रहे थे, तभी तो उन्होने मुझे आभास कराया। उसके बाद फिर कभी भी शास्त्रीजी नहीं दिखे स्वप्न में।

जिस तरह जीवन है उसी तरह मृत्यु है। लेकिन यह बात सिद्ध हो चली कि मनुष्य को मृत्यु का पूर्वाभास हो जाता है। कुछ दिनों से मुझे भी मृत्यु का आभास हो रहा है और हो रहा है अनुभव कुछ शब्द अपने मृत्यु के पहले लिख देना चाहता हूँ। जन्म-मृत्यु के रहस्य को जानने के लिए मैंने अपना सारा जीवन लगा दिया। उस अनुभव को आत्मसात करने से कैसे चूकता......। कभी-कभी मैं भी लोगों से कह दिया करता हूँ कि देखो कब मुलाकात होगी। अब संसार से धीरे-धीरे विरक्ति होती चली जा रही है। पता नहीं क्यों भावुकता बढ़ सी गयी है। बस जो

अनुभव हैं उसे जल्दी-जल्दी लिपिबद्ध करना चाहता हूँ। फिर समय मिले न मिले बस यही विचार हर वक्त मेरे मानस पटल पर चलता रहता है। शुरू से भौतिकता से दूर रहा लेकिन भौतिक जीवन है तो उसे तो निर्वाह करना ही है।

वैसे माँ जगज्जननी से कुछ समय और मांग रहा हूँ और सब कुछ माँ के ऊपर है। वैसे तो भौतिक शरीर से उस अनन्त अनवर्चनीय आनन्द को तो प्राप्त कर चुंका हूँ और प्राप्त कर चुका हूँ अनुभव भी। लेकिन अब शरीर भी थक गया। सोचता हूँ कि यह शरीर कब तक मेरी आत्मा को ढोयेगा, एक न एक दिन इस शरीर को साथ छोड़ना ही है यही परम सत्य है। बस यही चाहता हूँ कि परम शान्ति मिले और वह शान्ति जो देहातीत के बाद मिलेगी। उस अद्भुत शान्ति जो आत्मा का विश्राम है बस आत्म विश्राम को होना चाहता हूँ उपलब्ध। जहां तक मेरी पुस्तकों की बात है मैंने जो अनुभव प्राप्त किया प्रच्छन्न योगी और महात्माओं, विद्वानों से उसे मैंने आत्मसात किया और किया लिपिबद्ध उनके आत्म वचन, चमत्कारपूर्ण आत्म अनुभव को लिखते समय उन महान आत्माओं का नाम देना नहीं भूलता क्योंकि यही उनके प्रति सच्ची श्रंद्धाजलि होगी मेरी ओर से।

मेरी पुस्तकें मेरी आत्मा हैं। मैं पुस्तकों के माध्यम से संसार में रहूंगा। बस यह शरीर तो नहीं रहेगा क्योंकि आत्मा की तो अनन्त यात्रा है वह फिर कोई नया शरीर धारण करेगी और फिर आध्यात्मिक जीवन शुरू हो जायेगा और हो जायेगी शुरू आध्यात्मिक साधना भी। फिर मैं अपनी अधूरी साधना को जो इस जीवन में पूरी नहीं हो पायी है उसे भी तो पूरा करना है। यही जीवन चक्र है चलता रहेगा। बस चलता रहेगा अनन्त काल तक। मेरी पुस्तक का एक-एक शब्द मेरी आत्मा की आवाज है जिसे मैंने मोतियों की तरह पिरोया और आपके समक्ष रख दिया है। मेरी पुस्तक को वही आत्मसात कर सकता है जो आध्यात्मिक जीवन को है उपलब्ध और है आत्मा के करीब ।

***

द्वितीय अध्याय

रहस्यमय स्वप्न जगत

स्वप्न के विषय में विचार करने से पूर्व हमें भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक अंग को समझ लेना आवश्यक है जैसा कि आपको ज्ञात होना चाहिए सूक्ष्म जगत भारतीय योगी, साधकों, तत्ववेत्ताओं से प्रभावित प्रायः सभी मतों ने किसी न किसी रूप में इस तथ्य को स्वीकार किया है कि दृश्यमान जगत ही सब कुछ नहीं है। इसके बाद भी कुछ ऐसे जगत हैं जो हमारी भौतिक इन्द्रियों के सामने प्रत्यक्ष नहीं होता फिर भी हम उस अभौतिक सत्ता को अस्वीकार नहीं कर सकते हैं।

उस सूक्ष्म जगत का संचालन कौन सी अदृश्य सत्ता कर रही है? क्या हमारे क्रियाकलाप उसी सूक्ष्म जगत के आधार पर चलते हैं अर्थात जो घटना हमारे जगत में घटती है वहां भी घटती रहती है या उसका प्रतिबिम्ब मात्र पड़ता है। इसमें देश और काल का कोई निश्चित व्यवधान नहीं होता। जिससे यहां वर्षों लग जाते हैं वहीं सूक्ष्म जगत में क्षणों में हुई रहती है। दूसरा तात्पर्य यह है कि जिसमें यहां अधिक समय लगता है वह वहां कुछ क्षणो में हो सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि सूक्ष्म जगत में घटित घटनाओं का प्रतिबिम्ब हमारी सूक्ष्म इन्द्रियां ग्रहण करती हैं।

स्वप्नों की इन्द्रधनुषी और खौफनाक संसार बहुत हद तक मनुष्यों के अवचेतन मन से जुड़ा रहता है। आधुनिक परामनोवैज्ञानिकों का मत है कि अवचेतन मन का एक अज्ञात संसार है जहां से जीवन की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है और भौतिक जगत में जन्म लेती या साकार होती है। इस प्रकार अवचेतन मन का संसार चेतन जगत का मुख्य स्रोत है। उसी अवचेतन (परम चैतन्य) के कारण प्रत्येक जीवित प्राणी में गति होती है और वह सक्रिय होकर कार्य करता है।

अवचेतन में प्रकृति अपने आप खिलती है। चेतन मन में असहजता के कारण विकार ही नाना रूप से ग्रहण करके स्वप्नों के भाव जगत में प्रतिबिम्बित होते हैं। कहने का तात्पर्य है अवचेतन मन सहज है निर्दोष है वह प्रकृति के साथ

एक लय है। वैज्ञानिकों के शोध से यह प्रमाणित हो चुका है। कि चेतन तत्व और अवचेतन तत्व में जितना द्वन्द होगा उतनी ही स्वप्नों की भरमार होगी। अवचेतन तत्व नैसर्गिक है। मानवीय संस्कारों की अभिव्यक्ति अवचेतन तत्व के माध्यम से स्वप्नों में अधिक होती है। वैज्ञानिक अध्ययन से यह सिद्ध हो चुका है कि स्वप्नों का रहस्यमय संसार निर्मित होता रहता है हर नब्बे मिनट के अन्तराल के बाद मनुष्य नींद में स्वप्न अवश्य देखंता है।

आपको ज्ञात होना चाहिए कि अवचेतन मन भाव जगत में संचरण कर रहा होता है तब चेतन मन सक्रिय नहीं रहता वह सुप्तावस्था में चला जाता है। कभी-कभी स्वप्न की अवस्था में ऐसा आभास होता है कि सपनों का सारा व्यापार इतनी तेजी से होता है कि वहां समय का महत्व ही नहीं रह जाता। अतः शोध से यह बात स्पष्ट होती है चेतन मन से सम्बन्धित जो अतीन्द्रिय ज्ञान शक्ति से अवश्य होता है इसे परा जगत भी कहा जा सकता है। यह परा जगत मनुष्य के अवचेतन मन का भाव जगत है। जहां भविष्य में होने वाली घटनाओं का पूर्वाभास कभी-कभी आकस्मिक ढंग से मिल जाया करता है। साथ ही अतीत में घटित घटनाओं का भी। हमारे पुराणों, ज्योतिष और आयुर्वेद के ग्रन्थों में स्वप्न विज्ञान का पर्याप्त प्रमाण मिलता है। भारतीय योगियों ने स्वप्न की चार अवस्थाएं मानी हैं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। जाग्रत अवस्था में हमारी प्रायः सारी इन्द्रियां जाग्रत रहती हैं। स्वप्न अवस्था में सुप्त यानि निष्क्रिय रहती है। केवल मन इन्द्रियों से रहित होकर पुरीतनि नामक सूक्ष्म नाड़ी में प्रवेश कर अपना कार्य करता है। इस अवस्था में भौतिक इन्द्रियों से सम्पर्क न रहने के कारण उनके विषयों भौतिक पदार्थों का मन को ज्ञान नहीं रह जाता किन्तु सूक्ष्म नाड़ी में रहने से सूक्ष्म जगत में उसका सम्बन्ध रहता है और वह अपनी सामर्थ्य और योग्यता के अनुरूप वहां की घटनाओं या दृश्यों का वे भूत हो या भविष्य को साक्षात्कार करता है और सुषुप्ति में मन भी निष्क्रिय हो जाता है अतः उसे किसी प्रकार का आभास नहीं होता शायद यही निद्रा की अवस्था हो।

भारतीय संस्कृति में पूर्वजन्म एक मान्य सिद्धान्त है अतः कुछ ऐसे संस्कार होते हैं जो जन्म-जन्मान्तरों से हमारे मन में समाये रहते हैं अर्थात पूर्व जन्मों से हमारे द्वारा दृष्ट, श्रुत, अनुभूत आदि की छाप हमारे मन के पटल पर रहती है अतः वर्तमान जन्म में प्रत्यक्ष अथवा उन्हे वर्तमान में देखने-सुनने आदि में असमर्थ पाते हुए भी हम स्वप्न में उनका अनुभव प्रत्यक्ष कर लेते हैं।

योग में स्वप्न को दो प्रकार का माना है भविष्य और दोषज। भविष्य का अर्थ है भविष्य में होने वाली घटनाओं का पूर्वाभास। भविष्य में होने वाली सूक्ष्म जगत में घट जाने से मन को किसी प्रकार का ज्ञान हो जाता है। ऐसी घटनाओं को मन देखता है और किस रूप में यह कहा नहीं जा सकता। जो घटनायें देखी जाती हैं वे कहां तक सत्य होती है यह मनुष्य के स्वप्न देखने पर निर्भर करता है और विश्लेषण करने पर भीं। दोषज स्वप्न वे हैं जो वात, पित्त और कफ इन तीनों के कुपित होने पर स्वप्न दिखते हैं। आयुर्वेद के चरक संहिता में विस्तार से वर्णन मिलता है। दोषज स्वप्न वे हैं जो सोते समय मन का घबड़ाना, डरावने सपने आना, खाई में गिरना जंगल में भटक जाना, जानवरों के दौड़ाने आदि।

अवचेतन मन- अवचेतन मन की पहुंच केवल मानव शरीर तक ही सीमित नहीं है वह असीमित है। संसार के किसी भी भाग में जब चाहे जा सकती है। भूत, भविष्य और वर्तमान का ज्ञान अवचेतन मन से सम्भव है। अवचेतन मन के इस रहस्य का ज्ञान आदिकाल से ऋषि-मुनियों को पता रहा उनके त्रिकालज्ञ होने का यही रहस्य है। जिनके विषय में अनेक उदाहरण सुनने को मिलते हैं। वे भूत, भविष्य का वर्णन इस प्रकार करते थे मानो वे उस घटना को प्रत्यक्ष देख रहे हों या उस घटना को कभी देखा हुआ है। उनकी भविष्यवाणी का अक्षरसः सत्य होने का कारण ही अवचेतन मन है। ऐसे बहुत सारे रहस्यों को जो अवचेतन मन ग्रहण करने में समर्थ है।

प्राचीन काल से मानव स्वप्नों के प्रति जिज्ञासा रखता आया है एक प्रकार से सत्य भी है शायद आपको ज्ञात हो सम्पूर्ण जगत में केवल मानव मात्र ही स्वप्न देखता है और अपने तरीकों से करता है विश्लेषण। वर्तमान वैज्ञानिक शोध से पता चला है। पशु-पक्षी भी स्वप्न देखते हैं लेकिन मानव की तरह उसका विश्लेषण नहीं कर सकते हैं। कहा जाये तो ईश्वर प्रदत्त स्वप्न मानव की सर्वश्रेष्ठ निधि कही जा सकती है। जिस समय हमारी पांचों ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां कर्म नहीं करती थीं उस समय जो हम देखते हैं वह स्वप्न कहा जा सकता है। हम स्वप्न में उसी प्रकार हिस्सा लेते हैं जैसे वास्तविक जीवन में। प्राचीन योगियों का मत है कि मानव शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियां या उससे भी अधिक विद्यमान हैं। खासकर तीन नाड़ियां मुख्य हैं- इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। योग में सुषुम्ना नाड़ी की महत्ता है। सुषुम्ना नाड़ी में आकाश तत्व प्रधान है तथा यह प्रकाशमयी भी है। अतः इस प्रकाशमयी नाड़ी को ही ब्रह्माण्ड के रहस्य से मन का सम्बन्ध जोड़ने और व्यापक बनाने वाली

माना गया है उसी सुषुम्ना को सिद्ध कर साधक की चेतना विराट क्षेत्र में तैरती है। इसी प्रकार सुषुम्ना में मन का प्रवाह ही उन स्वप्नों का कारण बनता है। यह एक तथ्य है कि मन जब मस्तिष्क का अनुवर्ती न रह कर सुषुम्ना का अनुवर्ती हो जाता है तब उसकी स्थूलता नष्ट हो जाती है और सूक्ष्मता आ जाती है। इस प्रकार मन स्थूल से सूक्ष्म होकर चेतन मन, अवचेतन मन बन जाता है। मन के दो भेद हैं चेतन मन और अवचेतन मन। चेतन मन जो कार्य नहीं कर पाता उसे अवचेतन मन करने में सदा समर्थ होता है क्योंकि मन स्थूल होने के कारण उतना सामर्थ्य नहीं रखता जितना कि सूक्ष्म होने पर अवचेतन मन रखता है। स्थूल मन किसी भी कार्य करने में इतना स्वतंत्र नहीं होता जितना अवचेतन मन (आन्तर्मन) अपना कार्य करने में स्वतंत्र होता है।

विज्ञान की नजरों से देखा जाये तो स्वप्न एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है जिसे उसके शारीरिक और मानसिक आधार पर समझने की आवश्यकता है। हमें सपनों के विषय की तथा उनके रहस्यों की खोज करनी चाहिए और यह पता लगााना चाहिए कि हमारी आत्मा की कौन सी शाखा इसे प्रस्तुत करती है। सपनों की आवर्ति का कार्य हमारी सोच का है या है बोध का। सपने हमारी विचार क्षमता का परिणाम नहीं हैं और यह सीधे-सीधे बोध से भी नहीं जुड़ा है फिर भी स्वप्न बोध का अंश है क्योंकि हमारे भीतर उपलब्ध एक ऐसे प्रभाग का हिस्सा है जो ज्ञान अर्जित करता है। विचार को स्वप्न की उत्पत्ति का साधन न मानने के पीछे मुख्य कारण यह है कि नींद के दौरान विचार क्षमता का शिथिल पड़ जाना स्वप्न कल्पना क्षमता की स्थिति है जो ज्ञान प्रभाव के कारण जन्म लेती है। सपनों पर गहराई से अध्ययन करना चाहिए क्योंकि ये अन्यथा नहीं होते। जो भी हम स्वप्न देखते हैं उसका कोई न कोई कारण अवश्य होता है। कभी-कभी सपने भविष्य में घटने वाली घटनाओं का पूर्व संकेत होते हैं और कभी संयोग भी। सपनों की प्रकृति हमारी नींद की प्रक्रिया का क्रमबद्ध विकास है। इसलिए सपनों के रहस्य को समझने के लिए दैवीय सिद्धान्त और वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना बुद्धिमत्ता होगी।

विज्ञान और स्वप्न- आज का युग विज्ञान का युग है। रहस्य की खोज करते-करते अपनी बुद्धि की प्रखर ऊर्जा और सच्चाई से भरे हुए प्रयासों द्वारा वैज्ञानिकों ने सृष्टि के अनेक नियमों को खोज निकाला है। उस परम सत्य को जानने की आज के वैज्ञानिकों की जिज्ञासा वृत्ति की हम सराहना करते हैं तथा हमें

यह भी नहीं भूलना चाहिए कि भौतिक पदार्थों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म परीक्षण करने के बाद भी वैज्ञानिकगण अभीतक उनके वास्तविक स्वरूप को जान नहीं पाये। परीक्षण के दौर से गुजरते-गुजरते वे ठोस पदार्थ से परमाणुओं तक, परमाणुओं से यत्र-तत्र घटित विद्युत प्रमाणों तक तथा विद्युत प्रमाणों से सम्भाविकी तरंगों तक आ पहुंचे। फिर भी वैज्ञानिक अभी तक पदार्थ के मूल इकाई तक को समझ नहीं पाये। आज हजारों वैज्ञानिक रात-दिन परीक्षण कर रहे हैं और अपने ज्ञान की आहुति दे रहे हैं लेकिन वहां रहस्यमय अग्नि और बढ़ती भी जा रही है।

एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक मेटरलिंक ने हार कर कहा- 'आज मैं एक ऐसे विश्व में रह रहा हूँ जिसमें एक परमाणु का पूरा रहस्य भी न जाना गया है।' सम्भाविकी तरंगों के समान सूक्ष्मातिसूक्ष्म सपनों का क्षेत्र भी ऐसा ही क्षेत्र है जहां विज्ञान के जाने माने साधनों और प्रयोगों की सीमा समाप्त हो गयी है। सपनों के उद्गम का रहस्य, उनका प्रभाव क्षेत्र आदि ऐसे अनेक प्रश्न हैं जिन्हे हल करने के प्रयास में विज्ञान अभी तक भटक रहा है।

विज्ञान कोई सपना नहीं है वह यथार्थ है। यह बात सत्य है कि यदि यह कहा जाये कि स्वप्न का विज्ञान के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है तो यह सही नहीं होगा। आज विज्ञान के जितने भी अविष्कार हैं उसमें स्वप्न का कहीं न कहीं योगदान रहा है।

आधुनिक युग परमाणु युग कहलाता है। आपको आश्चर्य होगा कि इस युग का जन्म नीलस बोहर नामक वैज्ञानिक के सपने में हुआ था। शताब्दी के आरम्भ में नीलस विज्ञान का शोध विद्यार्थी था तब तक परमाणु की गुप्त रूप से खोज हो चुकी थी लेकिन उसकी संरचना किस तरह की है यह प्रश्न वैज्ञानिक को परेशान किये हुए था। नीलस बोहर एक युवा वैज्ञानिक और विवेकशील था तथा अंधविश्वास से कोसों दूर था। वह भी रात-दिन इसी विषय को लेकर परेशान रहता था। सहसा एक रात स्वप्न में अजीब से दृश्य देखा। उसने देखा कि वह सूर्य के उबलती हुई गैसों के बीच में खड़ा है और सूर्य के चारो ओर अनेक ग्रह घूम रहे हैं और वे एक पतले तन्तु से जुड़े हुए हैं। सूर्य के साथ जब कोई नीलस के समीप से गुजरता तो एक सीटी जैसी आवाज निकलती है। धीरे-धीरे गैसों का जलना शान्त हो गया और वह ठोस रूप ग्रहण करने लगा। तभी एकाएक उसने देखा सूर्य और आस-पास चक्कर लगाते ग्रह पिण्ड बिखर गये एक जोर की आवाज के साथ। तभी नीलस एक झटके के साथ उठ बैठा। सिर पर पसीने की

बूंदे आ गई उठकर नीलस ने पानी पिया फिर रात भर सो न सका। बस उस सपने के बारे में सोचता रहा। उसे बड़ा अजीब लगा लेकिन उसका सोचना रूका नहीं निरन्तर इसी विषय पर सोचता रहता और सपने के प्रतीकों को अपने चेतन मन पर ग्रहण करता गया। उसकी अन्तरात्मा उससे बार-बार आभास दिलाती थी कि सपना सत्य है वह असत्य नहीं है, झूठ नहीं है, इसका कोई अर्थ है कोशिश करो, खोजो, सपना समझकर टालो मत। बस उसने अपनी अन्तरात्मा की बात सुनी और खोजा और पा लिया उसका रहस्य। सौर मण्डल का वह स्वप्न दर्शन कहीं परमाणु की संरचना का रहस्य तो नहीं दे गया। बस यही सोचते ही वह उछल पड़ा और उसने अनुसंधान के आधार पर जगत को परमाणु की संरचना का वह भेद प्रदान किया जिससे परमाणु स्वयं एक केन्द्र अथवा न्युक्लियस है और उसके चारो ओर विद्युत कण यानि इलेक्ट्रान चक्कर लगा रहे हैं। नीलस बोहर का सपना सच हो गया और उसने सपने में संसार को परमाणु युग की दहलीज के भीतर दाखिल करा दिया।

ऐसे कई उदाहरण हैं स्थानाभाव के कारण नहीं दिया जा सकता है। विज्ञान सपने के रहस्य को सुलझाने का प्रयास कर रहा है लेकिन समय-समय पर सपनों ने यह सिद्ध कर दिया है कि जिस आविष्कारों का श्रेय उन्हे दिया जाता है उसके पीछे वास्तव में स्वप्न का हाथ था। १९२० में क्रिसमश के एक दिन पहले अमेरिकी भैषज विज्ञान डॉ. आट्टो लोवी को कल्पना भी न थी कि आने वाली रात में क्या घटना घटने वाली है परन्तु उस रात घटना घटी। उसी के कारण आगे चलकर चिकित्सा का नोबेल पुरस्कार मिला, जिस प्रयोग का सिद्धान्त उन्हे स्वप्न में मिला उसे आगे चल कर एसिटिलकोलाईन के नाम से जाना गया। इसकी शिनाख्त १९०१ में डॉ. लोवी के सहयोगी डॉ. एच. एन. डेल ने की थी १९३६ में उन्होने डॉ. लोवी के साथ चिकित्सा का नोबेल पुरस्कार जीता था। सपने में दिखायी पड़ी उस प्रयोग विधि के कारण। विज्ञान के लिए नोबेल पुरस्कार जीतने वाले पाउलिंग ने एक बार स्वीकार किया था। नये-नये वैज्ञानिक प्रयोग, विचारों की प्रेरणा मुझे सपनों के माध्यम से ही प्राप्त होते हैं। महान वैज्ञानिक केकुल, वैजीन परमाणु की व्यवस्था को एक निश्चित स्वरूप देने के लिए विख्यात हैं परन्तु यह स्वरूप उन्हे सपने में एक सांप को अपनी पूंछ निगलते देख कर ही सूझा था। सपना देखकर ही उनके मन में परमाणुओं को एक रिंग की भांति व्यवस्थित करने का विचार आया।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक जेम्सवाट को शाटगन के लिए शीशे की गोलियां बनाने की एक सरल विधि के रहस्य स्वप्न के माध्यम से हुए थे। आपको विश्वास हो या न हो पर यह सत्य है कि गणित के अनेक जटिल समस्याओं के हल भी सपनों की दुनिया से जन्मे हैं। फ्रांस के प्रख्यात गणितज्ञ हेनरी फोर ने विश्व भर में फैले अपने सहयोगियों से·एक प्रश्न किया कि आपको गणित की जटिल समस्याओं को हल करने की प्रेरणा कहां से प्राप्त होती है। मनन-चिन्तन से या अपने साथियों से विचार विमर्श करके। ७६ प्रतिशत लोगों ने उत्तर दिया स्वप्न के माध्यम से।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक आईंस्टीन से एक पत्रकार ने पूछा कि आपके सृजनात्मक प्रक्रिया का रहस्य क्या है? इस पर महान वैज्ञानिक आईंस्टीन ने कहा- एक स्थिति सुप्तावस्था और स्वप्नावस्था में ऐसी आती है जब बुद्धि एक लम्बी छलांग सी लगा कर बोध के उच्चस्तर पर पहुंच जाती है। संसार के अधिकांश वैज्ञानिक अविष्कार इसी स्थिति में सम्भव हुए हैं। आईंस्टीन का विश्वास था कि गणित और विज्ञान की सहायता से यह सिद्ध किया जा सकता है कि जगत एक स्वप्न है, एक लम्बा स्वप्न। यही बात तो हजारों वर्ष पूर्व हमारे ऋषियों ने कहा- जगत मिथ्या है, जगत एक स्वप्न है।

अपने मृत्यु से पूर्व आईंस्टीन ने लाईफ नामक पत्रिका के एक प्रतिनिधि से बातें करते समय एक वृक्ष की ओर इशारा करते हुए कहा था- कौन पूरी सच्चाई और ईमानदारी के साथ यह कह सकता है कि यह एक वृक्ष ही है यह स्वप्न भी हो सकता है। अनेक वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है कि जटिल वैज्ञानिक समस्याओं के हल उन्हे मात्र चिन्तन या मनोयोग से ही प्राप्त नहीं होते बल्कि नींद के बाद इन समस्याओं का समाधान अवचेतन मन अनायास ही प्रस्तुत कर देता है।

प्रत्यक्ष अनुभवों और वैज्ञानिक अनुसंधान के आधार पर अभी तक सपनों के रहस्यमय और कौतुहलपूर्ण संसार के बारे में जो जानकारी मिल पायी है वह अत्यन्त ज्ञानवर्धक और उपयोगी है इसमें सन्देह नहीं। इससे यह पता चलता है कि सपने भविष्य का आभास कराते हैं। अपरिहार्य सच्चाईयों को उभारते हैं तथा अपनी प्रतीकात्मक भाषा में हमें आवश्यक परामर्श भी देते हैं और पूर्वाभास भी कराते हैं, भविष्य में होने वाली घटनाओं के प्रति सचेत भी करते हैं।

वैज्ञानिक यह जानने में सफल हो गये हैं कि सपनों के सही परीक्षण, विश्लेषण से मानव मन की कुण्ठाओं और ग्रंथियों का उपचार किया जा सकता है और समाधान भी। कारण यह है कि जिस अवचेतन मन में सपनों का जन्म

होता है उसका आयाम और प्रभाव क्षेत्र असीम है। अवचेतन मन के अथाहं समुद्र में भूत, भविष्य और वर्तमान के सभी रहस्य वृत्तियां, स्मृतियां आदि छिपी है जिनकी हम केवल कल्पना भर ही कर सकते हैं।

स्वप्न और जाग्रत जीवन- सपनों का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों शोधकर्त्ताओं को हमेशा इस बात को लेकर चिन्तन-मनन करना पड़ता था कि सपनों का संसार जाग्रत जीवन से सर्वथा कटा हुआ है या अपरोक्ष रूप से जाग्रत जीवन से जुड़ा हुआ है और स्वप्न जगत का किसी प्रकार का अदृश्य सम्बन्ध तो नहीं है। हो सकता है कि मानव जीवन उससे अनभिज्ञ हो।

जर्मन मनोवैज्ञानिक वर्डेक ने कहा कि सपनों में व्यक्ति की रोजाना के यथार्थ जीवन नहीं दोहराये जाते। प्रसिद्ध वैज्ञानिक फिख्ते ने कहा कि सपने यथार्थ जीवन के पूरक हैं। फिख्ते सपनों को जाग्रत जीवन की अवस्था का विस्तार नहीं मानते। उन्होने यहां तक कहा कि सपने मानव के लिए किसी वरदान से कम नहीं है और वे मनुष्य के मन द्वारा अपनी मानसिक व्याधियों के स्वयं के इलाज की प्रक्रिया है। इसी प्रकार महान वैज्ञानिक स्टूपैल ने भी कहा कि स्वप्न देखने वाला व्यक्ति जाग्रत दुनिया से पूरी तरह कटा हुआ होता है। स्वप्न देखते समय जाग्रत जीवन के व्यवस्थित तथ्यों की स्मृति लुप्त हो जाती है। सपने में मनुष्य का मस्तिष्क उसके जाग्रत जीवन से पूरी तरह अलग हो जाता है। वैज्ञानिक राबर्ट के महत्वपूर्ण विचार हैं कि स्वप्न में हमारे अत्यन्त भारग्रस्त मस्तिष्क को भार से मुक्त करने और उसे आराम पहुंचाने की विलक्षण क्षमता है। यदि किसी मनुष्य से स्वप्न देखने की क्षमता छीन ली जाये तो कालान्तर में वह मानसिक रूप से विक्षिप्त हो जायेगा। उनका यह कथन वर्तमान वैज्ञानिकों की खोज में सत्य सिद्ध हुआ।

भाव जगत में प्रवेश का द्वार स्वप्न : स्वप्न का सम्बन्ध मनुष्य के चेतन तत्व से है। जिस प्रकार भाव जगत स्थान से बंधा हुआ नहीं है वह जगह मौजूद है यानि वह काल या समय से बंधा हुआ नहीं है। भाव जगत में प्रवेश करने के बाद व्यक्ति को चेतना के मार्ग में स्थान और समय की बाधाएं नहीं रहती हैं। वह कहीं भी सब कुछ देख सकता है और एक ही पल में तीनों कालों की बातें भी जान सकता है।

सपनों को भाव जगत का प्रवेश द्वार माना गया है। इसका कारण सीधा है सपने हमारे मन की क्रिया नहीं है। अवचेतन मन जगत से परे है और भाव जगत में जो कुछ ज्ञान और अनुभव मिलता है वह कभी परासृष्टि के बिम्बों के रूप में

तो कभी भौतिक जगत के प्रतीकों के रूप में हमें दिखायी पड़ता है स्वप्न में।

कार्लजुंग ने अपनी एक पुस्तक 'मेमोरिज ड्रीम्स रिफलेक्सन्स' में एक जगह वर्णन किया है कि चेतन मन की अपेक्षा अवचेतन मन के पास ज्ञान प्राप्त करने के अधिक साधन हैं। चेतन मन केवल इन्द्रियों के माध्यम से ज्ञान पर निर्भर रहता है किन्तु हमारा अवचेतन मन पूरे ब्रह्माण्ड की शाश्वत, सनातन और सारगार्भिक चेतना के साथ निरन्तर जुड़ा हुआ है और उसमें भाव जगत के संकेतों को ग्रहण करके उनके अर्थ निकालने की असीम क्षमता है।

तीसरा नेत्र : भाव जगत का एकमात्र साधन है ध्यान और तीसरा नेत्र का आभास ही उस अभौतिक सत्ता का प्रवेश द्वार है। भ्रूमध्य स्थित आज्ञाचक्र के मध्य में एक 'जव' के आकार का छिद्र है, जिसे योग की भाषा में तीसरा नेत्र कहते हैं। उस छिद्र पर ध्यान लगाने पर चेतन मन का अस्तित्व धीरे-धीरे लुप्त होने लगता है और तब अवचेतन मन का अस्तित्व उसका स्थान ग्रहण करने लगता है लेकिन उसी अवस्था में जब हम ध्यान की गहन अवस्था में पहुँचते हैं। उस समय हमारे दिल की धड़कने ७५ प्रति मिनट कम होकर क्रमशः ६०, ५५, ५० प्रति मिनट हो जाती हैं। एक मिनट में १६ बार सांस न लेकर क्रमशः १२, १०, ८ बार ही सांस लेते हैं। शरीर का तापमान रक्तचाप और आमरिक कायाग्नि में धीरे-धीरे कमी आने लगती है पर त्वचा का तापमान बढ़ जाता है। आश्चर्य की बात यह है कि इस अवस्था में प्रस्वेद ग्रन्थियाँ भी अधिक सक्रिय हो जाती हैं और उसी के साथ मस्तिष्क की ओर जाने वाला रक्त प्रवाह क्रमशः बढ़ता जाता है। योग ने इस अवस्था को उल्लेखनीय तीन अवस्थाओं में विभक्त किया है। पहली अवस्था में ध्यान, समाधि का रूप ग्रहण करता है। उस समय मस्तिष्क तरंगों का प्रतिमान बदलने लगता है और शनैः-शनैः वे तरंगे थीटा तरंगों का रूप धारण करने लगती हैं। उनकी विद्युत शक्ति अनियमित हो जाती है। दूसरी अवस्था में तरंगों की गति बढ़ जाती है और वीटा तरंगों का रूप धारण कर लेती है। विद्युत शक्ति में भी काफी वृद्धि हो जाती है। आँख की पुतलियाँ स्थिर होने लगती हैं। तीसरी अवस्था में तरंगों की विद्युत शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि परामानसिक जगत की विद्युत चुम्बकीय तरंगों से उनका संबंध स्थापित होने में देर नहीं लगती। यह समाधि का प्रथम चरण माना जाता है। इस प्रकार समाधि के आठ चरण हैं। अन्तिम चरण को निर्विकल्प समाधि कहते हैं। यह समाधि १० वर्ष से एक हजार वर्ष तक की होती है। यह योगी की संकल्प शक्ति पर निर्भर है कि वह कितने

वर्ष तक निर्विकल्प समाधि में रहना चाहता है। हम काल को उस खण्डित रूपों सेकेण्ड, मिनट, घण्टे, दिन, महीने और वर्ष में ही जानते हैं पर समाधि की अवस्थाएं इस सीमा में नहीं बंधती। क्षणमात्र में भूत, भविष्य और वर्तमान के दृश्य, अनुभव, अनुभूतियाँ समाधि में साकार हो सकती है।

तीन प्रकार की निद्रा : भारतीय मनीषियों ने आत्मा की पाँच अवस्था बतलायी है- जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय और तुरीयातीत। अन्तिम दो अवस्था को ही सविकल्प और निर्विकल्प समाधि कहते हैं। पहले हम जाग्रत अवस्था को लें। जाग्रत अवस्था का दूसरा नाम है जीवन। जीवन क्या है? जीवन एक नींद से और दूसरे नींद के बीच देखा गया एक स्वप्न है। स्वप्न क्या है? इस प्रश्न पर हम संक्षिप्त में विचार करेंगे। स्वप्न और धर्म से गहरा संबंध है। दोनों ही समान प्रतीकों का सहारा लेते हैं। धर्म के माध्यम से मनुष्य ने ईश्वर को साकार किया। मनुष्य ही ईश्वर की कल्पना कर सकता था और वह कल्पना उपलब्ध हुई स्वप्न से। जहां उसने अपने से अधिक बलशाली और महत्वपूर्ण साकार शक्ति को देखा। हमारे विचार से विश्व के पहले धर्म की उत्पत्ति तभी हुई होगी जब मनुष्य के आतुर, व्याकुल और भयभीत मन ने जीवन की समस्या का हल जानने का प्रयत्न किया होगा और इस प्रयत्न का उत्तर उसे प्राप्त हुआ सपनों में। जहां उसने अपने पुरखों को जीवित देखा और अपने को अमर माना। मनुष्य ने जाना कि यद्यपि वह जीवन की एक तुच्छ और अस्थायी इकाई है फिर भी जीवन का अर्थ सिवाय उसके और कुछ नहीं है। इसी अनुभूति ने मनुष्य को रहस्यवाद की ओर प्रेरित किया। रहस्य के उद्घाटन की वह प्रवृत्ति वर्तमान समय तक मानव मन में जन्म लेती चली आ रही है और भविष्य में भी जन्म लेती रहेगी।

रहस्यवाद और धर्म : दोनों की भाषा प्रतीकात्मक है। वही प्रतीकात्मक भाषा सपनों की भी भाषा है। साइंस ऑफ सैनिटी में महान मनोवैज्ञानिक कोरजेवस्की ने ठीक ही लिखा है एकमात्र प्रतीक ही मानव प्रगति का आधार है। प्रतीकों से हमें जीवन को समझने और उसके साथ अपने संबंध को जानने में सहायता प्राप्त होती है। प्रतीकों के अभाव में सृष्टि के साथ हमारा कोई भी सम्बन्ध और व्यवहार असम्भव है। योगी और साधकों की भी भाषा प्रतीकात्मक ही होती है जिनको समझना कठिन है। एक योगी पुरुष थे। मैं उनके निकट बैठा था। एक और भी महाशय थे। वह कलकत्ता से दर्शन करने आये थे। योगी पुरुष अधिकतर मौन ही रहते थे।

उस समय मौन ही थे। एकाएक उन्होंने जमीन पर खड़िया से एक रेलइंजन का आकार बनाया और तुरन्त हाथ के संकेत से वापस घर लौटने का आदेश दिया। महाशय कुछ समझ न सके। वे चिन्तित हो उठे। अभी-अभी वे आये थे। अच्छी तरह बातें भी नहीं की थी और योगीराज उनको वापस जाने को कह रहे हैं। बेचारे मुंह लटकाए चले गये। बाद में पता चला कि उसी समय उनकी माता की मृत्यु हो गयी थी जो लम्बे समय से बीमार थी। इसी प्रकार एक प्रकार एक उच्चकोटि के तंत्र साधक काशी में रहते थे। उच्छिष्ट चाण्डालिनी की सिद्धि थी। मैं प्रायः उनके यहां नित्य ही जाता था। बड़े प्रेम से मिलते थे। साधना की चर्चा करते थे लेकिन•कभी-कभी गाली-गलौज करने लगते थे। पहले मैं इसका कारण नहीं समझ सका। कविराज जी से चर्चा की। वे हँसकर बोले- तुम गाली को श्रद्धापूर्वक सुना करो। उससे तुम्हारे दुरित कर्मों का प्रणाश होगा और चित्त भी शुद्ध होगा। गाली देने का उनका यही अभिप्राय है।

अब हम सुषुप्ति पर विचार करेंगे। सुषुप्ति को ही निद्रा कहते हैं। यह आत्मा की तीसरी अवस्था है। निद्रा के तीन प्रकार हैं- निद्रा, योगनिद्रा और चिरनिद्रा। चिरनिद्रा का ही दूसरा नाम मृत्यु है। निद्रा, शरीर की आवश्यकता है। योगनिद्रा मन की निद्रा है और चिरनिद्रा आत्मा की निद्रा है।

जाग्रत अवस्था- तंत्र के अनुसार इन्द्रियों और मन के द्वारा भौतिक जगत तथा भौतिक पदार्थों एवं वस्तुओं के प्रति जो संवेदनशील बोध की अवस्था है, उसे आत्मा की जाग्रत अवस्था कहते हैं।

मनुष्य के भीतर आत्मा है और वह विराट विश्व का विस्तार है। इस विराट से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए दो उपाय हैं। दो मार्ग हैं। दो यात्राएं हैं। पहली यात्रा, मार्ग या उपाय है- परोक्ष। परोक्ष का मतलब है इन्द्रियों और मन के माध्यम से सम्बन्ध से सम्बन्ध का स्थापित होना।

दूसरी यात्रा, दूसरा मार्ग और दूसरा उपाय है- अपरोक्ष। अपरोक्ष का मतलब है बिना इन्द्रियों और बिना मन की सहायता से, बिना उनके माध्यम से सम्बन्ध का स्थापित होना।

कहने का तात्पर्य यह कि बाहर फैले हुए विराट विश्व के विस्तार को जानने समझने के लिए दो द्वार हैं। एक द्वार है कि हम अपने शरीर का उपयोग करें और उसे जाने समझें। दूसरा द्वार है कि जितने भी माध्यम हैं, उपाय हैं, मार्ग हैं- उन्हे हम छोड़ दें।

इन्द्रियाँ हमारे ज्ञान का माध्यम हैं। स्वभावतः इन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान वैसा ही है जैसे कहीं कोई घटना घट जाये और कोई आकर हमें उस घटना की सूचना दे। घटना-स्थल पर हम सीधे उपस्थित नहीं रहते हैं। घटना के और हमारे बीच कोई सन्देश वाहक है। निश्चय ही घटना की सूचना हमें वैसी ही नहीं मिलेगी जैसी घटी है। क्योंकि सन्देश वाहक की व्याख्या भी उस समाचार में सम्मिलित होगी ।

उदाहरणार्थ- जैसे हमारे नेत्र हमें सूचित करते हैं कि बहुत सुन्दर पुष्प खिला है। यह सूचना फूल के सम्बन्ध में तो है ही। लेकिन साथ ही साथ नेत्रों के रूझानों के सम्बन्ध में भी है। नेत्रों ने अपनी व्याख्या भी जोड़ दी है सूचना में। फूल का जो रंग है वह तो है ही लेकिन उस रंग के सम्बन्ध में नेत्रों ने भी अपनी ओर से कुछ जोड़ दिया है। जो शायद उस फूल में नहीं है।

आपको ज्ञात होना चाहिए कि पाँच हजार वर्ष पूर्व मानव नेत्र केवल तीन ही रंग देखा पाता था और यही कारण है कि पाँच हजार वर्ष पुराने ग्रन्थों में तीन से अधिक रंगों के नाम उपलब्ध नहीं हैं। धीरे-धीरे मानव नेत्र संवदनशील होता गया और वह अब सात रंग देखा पाता है। निश्चय ही आने वाले चार-पाँच सौ वर्षों में मानव नेत्र इतना विकसित हो जायेगा और इतना संवदेनाशील जो जायेगा कि वह सात से भी अधिक रंगों को देख सकेगा। तात्पर्य यह कि हमारा जानना इन्द्रियों के माध्यम से है। इन्द्रियाँ हमें जो समाचार देती है और जो सूचना देंगी, हमें उन्हें विवश होकर स्वीकार करना पड़ेगा। क्योंकि हमारे पास सूचना पाने का और कोई साधन या उपाय नहीं है। पर इन्द्रियों की सूचना में उनकी व्याख्या सम्मिलित हो जाती है।

एक चेहरा आप देखते हैं, सुन्दर लगता है और आकर्षक लगता है। मगर उसी चेहरे को आप खुर्दबीन से देखें। उबड़-खाबड़ और तमाम गड्ढों से भरा लगेगा। आपकी तबीयत घबराने लगेगी देखकर। मगर क्या वह खुर्दबीन गलत बतला रही है। आपके नेत्र अपनी व्याख्या दे रहे हैं। खुर्दबीन अपनी व्याख्या दे रही है। दोनों अपने आप में सही हैं। अन्तर केवल यही है कि खुर्दबीन नेत्र से अधिक गहरा देख पा रही है। फिर आप उसी सुन्दर चेहरे को एक्सरे मशीन से देखें। वह हड्डियों का रूखा-सूखा ढाँचा दिखाई देगा। वह भी अपनी व्याख्या दे रही है सभी सही हैं। लेकिन तीनों की व्याख्या अलग-अलग और आंशिक हैं और जिस माध्यम से पायी है उस माध्यम पर निर्भर है। लेकिन क्या ऐसा भी हो सकता है कि हम बिना किसी माध्यम के जगत को देखे सकें। क्योंकि जब हम बिना माध्यम के देखेंगे तभी हमें सत्य के दर्शन होगें। इसलिए योग-तंत्र की जो गहनतम् खोज है, वह यह कि जब तक इन्द्रियों से हम जगत को जानते हैं, तबतक जिसे हम जानते हैं वह जगत के ऊपर इन्द्रियों के द्वारा आरोपित

प्रक्षेपण है। इसी का नाम 'माया' है। जो आपने देखा है वह दृश्य ही नहीं है देखने वाला भी उसमें संयुक्त हो गया है।

एक मार्ग है इन्द्रियों के माध्यम से सत्य के विस्तार को जानना। इस सत्य को जानने से जो ज्ञान हमारी पकड़ में आता है वह माया है। भ्रम है। आदिशंकराचार्य जैसे महापुरुष जब यह कहते हैं यह जगत माया है तो आप यह मत समझ लें कि जगत है ही नहीं। जगत का अस्तित्व बिलकुल है। लेकिन जैसा आपको दिखलायी पड़ रहा है वैसा नहीं है। बात सिर्फ इतनी सी है। वैसा दिखलाई पड़ना आपकी दृष्टि है और आपकी वही दृष्टि इस जगत को माया बनाये दे रही है। जैसा आपको जगत दिखाई पड़ रहा है वह आपकी व्याख्या है। आपको यह भी मालूम होना चाहिए कि माया की संख्या अनगिनत है। इस जगत को जानने वाले जितने लोग हैं उतनी मायाए हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपना जगत निर्मित किए जी रहा है। हर व्यक्ति का अपना जगत है। हर व्यक्ति के चारों तरफ एक जगत है। आप अपने जगत में है। आपकी पत्नी अपने जगत में है। आपके माता-पिता और पुत्र अपने-अपने जगत में हैं। सब अपने जगत में घिरे हुए जी रहे हैं। आपका पड़ोसी अपने जगत में घिरा हुआ जी रहा है। किसी के जगत का किसी दूसरे के जगत से कोई सामञ्जस्य और कोई तालमेल नहीं होता और यही कारण है कि जब भी दो जगत को हम एक साथ बांधते हैं तो कलह होता है। झगड़ा होता है। वैमनस्य पैदा होता है। ईर्ष्या, क्रोध और घृणा का जन्म होता है। पति-पत्नी का जो संघर्ष है वह दो जगत का संघर्ष है। बाप-बेटे का जो संघर्ष है वह दो जगत का संघर्ष है। जब भी दो जगत को मिलने का प्रयास करेंगे, जब भी दो जगत आपस में तालमेल बैठाने का प्रयत्न करेंगे, तब दोनों के बीच कलह होना अनिवार्य है। कोई और उपाय नहीं है। हम अपनी ही व्याख्या में घिरे हुए जी रहे हैं। खैर, जगत को इन्द्रियों के द्वारा जानने की जो स्थिति है, वह आत्मा की जाग्रत अवस्था है। आपके मस्तिष्क में लगभग तीन करोड़ सेल्स हैं। वे सेल संग्राहक हैं। उनमें पिछले न जाने कितने जन्मों के संस्कार भरे पड़े हैं। न जाने कितनी घटनाएं भरी पड़ी है कहा नहीं जा सकता। स्वप्न में आप इसी संग्रह में से खोज-खोज कर चीजें फिर देखते रहते हैं। वास्तव में यह जुगाली है। संस्कारों व घटनाओं की पुनरुक्ति है। जैसे भैंस घास चर लेती है दिन में जब चबाने की फुर्सत नहीं रहती क्योंकि पता नहीं जब वह इसे चबाने में लग जाये तो वह घास तब तक कोई और भैंस चर जाये। तो पहले वह चबा लेती है और फिर फुर्सत में बैठकर जुगाली करती है। फिर निकाल लेती है और निकाल कर फिर उसे चबा लेती है। दिन भर हम संस्कारों का और घटनाओं का संग्रह करते रहते हैं। जन्म भर हम संग्रह करते रहते हैं। फिर स्वप्न में जुगाली चलती है।

जहां-जहां मन पूरा नहीं हो पाया था, उसको हम फिर खोल लेते हैं। उस संस्कार को हम फिर मानसपटल पर फैला देते है।

स्वप्न अवस्था- वास्तव में स्वप्न हमारे संस्कारों को बिना इन्द्रियों की सहायता से, बिना जगत की सहायता से फिर से प्रक्षेपित कर लेने की व्यवस्था है। यह हमारी निजी सम्पदा है। हम अपने भीतर फिर एक जगत को फैला लेते हैं। पूरा जगत हम निर्मित कर सकते हैं और यही कारण है कि स्वप्न में कभी भी पता नहीं चलता कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ। स्वप्न में यही पता चलता है कि जो मैं देख रहा हूँ वह सत्य है। स्वप्न से जागने के बाद ही पता चलता है कि वह स्वप्न था। स्वप्न के भीतर पता नहीं चलता कि वह स्वप्न है। जिसको स्वप्न के भीतर पता चल जाये कि वह स्वप्न है समझें कि स्वप्न टूट गया। क्योंकि वह पता चलने वाला जो है। इनके उपस्थित होते ही अपने-अपने सेल के भीतर संस्कार छिप जाते हैं। क्योंकि स्वप्न देखने वाला जाग गया। जाग्रति शुरू हो गयी, स्वप्न की अवस्था टूट गयी।

स्वप्न की अवस्था का अर्थ है इन्द्रियों के द्वारा भीतर जो संग्रह हुआ है उसे बिना इन्द्रियों की और बिना जगत की सहायता से मानसपटल पर दृश्य की तरह देखना। स्वप्न हमारे चित्त की दूसरी अवस्था है, जो काफी गहरी है। क्योंकि जाग्रत अवस्था में तो हमें चुनाव भी करने पड़ते हैं। समाज है, सभ्यता है, संस्कृति है। हमें सैकड़ों तरह की रुकावटें डालनी पड़ती हैं। लेकिन स्वप्न में किसी बात की रुकावट नहीं। जैसा कि स्पष्ट है इन्द्रियों के बिना ही बाहर जो विराट जगत है उससे सम्बन्धित हुए बिना ही अतीत के सम्बन्धों के आधार पर मनुष्य अपने भीतर जो जगत निर्मित कर लेता है उस अवस्था का नाम स्वप्न है।

जाग्रत और स्वप्न- प्रथम अवस्था में आत्मा का सम्बन्ध स्थूल शरीर से रहता है। दूसरी अवस्था में सम्बन्ध रहता है, आकाशीय शरीर यानि वासना शरीर से। इसी प्रकार तीसरी अवस्था में सम्बन्ध रहता है सूक्ष्म शरीर से। जाग्रत अवस्था की मैंने व्याख्या की है उसके सम्बन्ध में मेरे गुरुदेव का कहना था कि जाग्रत अवस्था को जाग्रत कहना केवल प्रतीकात्मक है। क्योंकि हमने कोई और बड़ी जाग्रति नहीं जानी किसी और जाग्रति से हम परिचित नहीं हैं इसलिए इसी जाग्रति को जाग्रति समझ बैठे। हम तीन अवस्थाओं से ही परिचित हैं। चौथी अवस्था से हम परिचित नहीं है। वह हमारे लिए अज्ञात है। जिस दिन हमें चौथी अवस्था का ज्ञान होगा, उसी दिन हमें यह भी पता चल जायेगा कि जिसे हमने जाग्रत अवस्था समझा था वह भी स्वप्न और निद्रा की ही एक अवस्था थी।

अरविन्द ने कहा कि जब मैं जागा तो मुझे पता चला कि अब तक मैं सोया हुआ ही था और जब मैं वास्तविक जीवन से परिचित हुआ तो पता चला कि जिसे मैं वास्तविक जीवन समझता था अब तक वह तो मृत्यु थी।

बात स्वाभाविक ही है। जिसे हम नहीं जानते उसका ख्याल नहीं हो सकता। उससे हम कोई तुलना भी नहीं कर सकते। जिसे जाग्रत अवस्था कहते हैं। तीन अवस्थाओं की तुलना करते हैं। हम केवल तीन अवस्थाओं से परिचित हैं। इसलिए तीनों में यही अवस्था जाग्रत कही जा सकती है। जिस दिन हम चौथी अवस्था से परिचित होंगे उस समय, उस दिन ये तीनों अवस्थाएँ निद्रा की अवस्थाएं हो जायेंगी। उस समय ये तीनों अवस्थाएं हमारे लिए सुषुप्ति, कम गहरी सुषुप्ति और गहरी सुषुप्ति हो जायेगी। ये तीनों अवस्थाएं क्रम से नींद की ही अवस्थाएँ समझी जायेंगी। लेकिन जब तक हम चौथी अवस्था से परिचित नहीं हैं तब तक तो हम इसे जाग्रत ही समझेंगे।

उपनिषद् के अनुसार शब्द आदि स्थूल विषय न होने पर भी जाग्रत अवस्था की शेष रह गयी वासना के कारण मन इन्द्रियों द्वारा शब्द आदि वासनाओं में विषयों को ग्रहण करता है उस अवस्था को स्वप्न कहते हैं। उपनिषद् में स्वप्न अवस्था की यह व्याख्या हजारों साल पुरानी है। विज्ञान अभीतक इस व्याख्या को पूरी नहीं कर पाया है। उपनिषद् हजारों साल पहले ही कह चुका कि स्वप्न उसे कहते हैं। इन्द्रियाँ बन्द हो गयीं। आँखें बन्द हो गयीं। फिर भी दृश्य देखे जा सकते हैं। भले ही बाहर की ध्वनियाँ न सुनाई दें मगर भीतर की ध्वनि सुनी जा सकती है। भले ही हाथ बाहर की किसी वस्तु का स्पर्श कर सकने में असमर्थ हो मगर भीतर का स्पर्श जाना जा सकता है। जाग्रत अवस्था में जो विषयवासना पूरी नहीं हो पाती। स्वप्न की अवस्था में वह पूर्ण हो जाती है। वास्तव में स्वप्न जाग्रति की पूर्ति है। इसलिए जो व्यक्ति दिन में यानि जाग्रत अवस्था में पूरी तरह जी लेगा उसे स्वप्न नहीं आयेंगे। जो भी करना है उसे पूरी कर लेगा और पूरी तरह क्षण को जी लेगा। वह स्वप्न की अवस्था से मुक्त ही जायेगा। योगी को स्वप्न नहीं आते क्योंकि वह हर क्षण को पूरी तरह जीता है। उसके लिए कुछ भी अधूरा बचता ही नहीं कि उसकी पूर्ति के लिए स्वप्न की प्रतीक्षा करनी पड़े।

जाग्रत अवस्था में वस्तु बाहर होती है और रूप भीतर होता है। स्वप्न में वस्तु बाहर नहीं होती लेकिन रूप भीतर होता है। यही दोनों में भेद है। स्वप्न शुद्ध आकार है। कोई वस्तु नहीं है वहां। जिस व्यक्ति को आप स्वप्न में देखते हैं वह बाहर मौजूद नहीं है। लेकिन उसकी आकृति भीतर अवश्य मौजूद है। आपको यह जानकर आश्चर्य

होगा कि उस आकृति का निर्माण भी इन्द्रियां ही करती हैं। वह भी इन्द्रियजन्य है। स्वप्न में इन्द्रियां किस प्रकार 'आकृति' का निर्माण करती हैं यह समझ लेना भी आवश्यक है। प्रत्येक इन्द्रियां अपने-अपने अनुभवों का संग्रह किया करती हैं। आपकी रंग देखने की जो स्मृतियां हैं, वे सब आपकी आँखों के पीछे संग्रहीत हैं। स्वप्न में वही संग्रह काम में आता है। आँखें फिर से उन रंगों को भीतर खोल देती हैं। इसी प्रकार स्पर्श, रूप, ध्वनि आदि भी संग्रहीत हैं। सच पूछा जाये तो आपकी खोपड़ी के भीतर इस जगत का विशालतम् संग्रह है। छोटी-सी खोपड़ी में सात करोड़ सेल्स हैं। जैसा कि बतलाया जा चुका है प्रत्येक सेल अपने आप में एक बड़ा सा संसार संग्रहीत किये हुए है। यही नहीं अगर आपकी आत्मा ने कभी किसी समय, किसी अन्य जगत अथवा लोक-लोकान्तर की यात्रा की होगी तो वह भी आपकी खोपड़ी के किसी सेल में विद्यमान होगी। ये तमाम संग्रह आपके इसी जन्म के ही नहीं है बल्कि यह संग्रह आपके अनन्त-अनन्त जन्मों का है। इसलिए स्वप्न में ऐसे भी रूप और ऐसे भी दृश्य तथा ऐसी भी घटना देख सकते हैं, जो आपने इस जन्म में देखे ही नहीं होंगे। जिनसे आपकी कभी भेंट नहीं हुई है। जिनका चेहरा आपने कभी नहीं देखा है। जिनकी स्मृति आपको नहीं है। उसे भी स्वप्न में आप देख सकते हैं।

मानव मस्तिष्क तीन भागों में विभक्त है। पहले भाग में दो करोड़ सेल्स हैं, दूसरे भाग में चार करोड़ सैल्स हैं और तीसरे भाग में एक करोड़ सेल्स हैं। इस एक करोड़ सेल्स में से कुछ लाख सेल्स का सम्बन्ध लोक-लोकान्तरों में निवास करने वाले प्राणियों से तथा कुछ लाख सेल्स का सम्बन्ध अन्तरिक्ष में विचरण करने वाली विभिन्न प्रकार की आत्माओं से है। इसी के फलस्वरूप स्वप्न में कभी-कभी ऐसे स्थान और ऐसे दृश्य दिखलायी पड़ते हैं कि आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है। कभी-कभी स्वप्न में ऐसे भी जीव और ऐसे भी प्राणी दिखलाई देते हैं, जो इस लोक के नहीं होते और जिन्हें देखकर भय का संचार होता है। विलक्षण अनुभव होता है। इसी भाग में कुछ ऐसे भी सेल्स हैं जिनमें पिछले जन्म की तमाम स्मृतियाँ भरी हुई होती है। जो बच्चे अपने पिछले जन्म की बातें बतलाते हैं, उसका कारण वे सेल्स ही हैं। दूसरे भाग में कम से कम पिछले दो सौ वर्षों के जीवनकाल के संस्कार रहते हैं। इसी प्रकार पहले भाग में वर्तमान जीवन के तथा आगामी जीवन के संस्कार रहते हैं। संस्कार का अर्थ होता है आपके मस्तिष्क में जो एकत्र हो गया है।

स्वप्न आपकी वास्तविकता को प्रकट करता है : भारत ही विश्व का पहला देश है जिसने सर्वप्रथम आत्मा की चार अवस्थाओं-जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय

की खोज की। पश्चिम का मनःशास्त्र 'जाग्रत' के आस-पास था। सन् १९१० तक पश्चिम के मनोवैज्ञानिकों के लिए 'स्वप्न' की नासमझी थी और पागलपन था। उनकी दृष्टि में स्वप्न का कोई मूल्य और महत्व नहीं था। लेकिन बाद में जैसे-जैसे पश्चिमी मानसविद् मानव मन को समझने की दिशा में उतरे और मानसिक रोगों की खोज की, वैसे ही वैसे उन्हें इसका पता चला कि जाग्रत के नीचे स्वप्न की एक पर्त है जो जाग्रत से भी अधिक महत्वपूर्ण है। पिछले पचास वर्षों में फ्रायड, जुंग और राडलर के प्रयासों का यह परिणाम हुआ कि अब पश्चिम के मनोवैज्ञानिक, मानसविद् और मनःशास्त्री स्वप्नों के अलावा और किसी की बात ही नहीं कर रहे हैं। उनका कहना है कि मनुष्य की जाग्रत अवस्था में जो घटित होता है वह बहुत ऊपरी है। उससे मनुष्य के सम्बन्ध में अथवा उसके विषय में सत्यता का पता नहीं चलता। मनुष्य के स्वप्न से ही सत्यता का पता चलता है क्योंकि मनुष्य स्वप्न में धोखा नहीं दे पाता। मनुष्य धोखे में निष्णात् हो गया है। दिनभर आप ब्रह्मचर्य की बात कर सकते हैं। लेकिन स्वप्न आपको बतला देगा कि ब्रह्मचर्य कितना गहरा है। आपके ब्रह्मचर्य की बातों में कितनी सत्यता है। दिन भर उपवास रख सकते हैं लेकिन स्वप्न में पता चल जायेगा कि आप में भोजन की वासना कितनी गहरी है। जाग्रत अवस्था में आप अपने को धोखा दे सकते हैं। मगर स्वप्न में धोखा नहीं दे सकते। स्वप्न आपकी वास्तविकता को और सच्चाई को प्रकट कर देता है। सवेरे से शाम तक आप जागकर संसार में क्या करते हैं, पूजा करते हैं, प्रार्थना करते हैं, भजन करते हैं, ध्यान करते हैं, वह इतनी गहरी बात नहीं है। स्वप्न में आप क्या करते हैं वह अधिक गहरी बात है। क्योंकि स्वप्न आपकी आन्तरिक स्थिति को प्रकट करता है। मनोवैज्ञानिकों ने अब इस तथ्य को पूर्णरूप से स्वीकार कर लिया है कि स्वप्न व्यर्थ नहीं है। स्वप्न केवल स्वप्न ही नहीं है बल्कि जाग्रत से अधिक सत्य है। क्योंकि स्वप्न आपके भीतर की सतत बेचैनी है। एक सतत तनाव है। सबसे अधिक महतवाकांक्षी व्यक्ति स्वप्न देखता है। क्योंकि जैसा मैंने कहा कि जाग्रत में जो अधूरा रह जाता है उससे स्वप्न जन्म लेता है और महत्वाकांक्षा तो कभी पूरी होती ही नहीं। वह सदा अधूरी है और अधूरी महत्वाकांक्षाएं स्वप्नों से भर देती है व्यक्ति को। वे स्वप्न इतने गहन हो जा सकते हैं कि उस व्यक्ति को स्वप्नों से जगाना कठिन हो जाता है।

हिटलर का नाम सुना होगा। हिटलर जैसा महत्वाकांक्षी व्यक्ति आज तक संसार में नहीं हुआ। वह सब तरफ से हार चुका था। बचने का कोई उपाय नहीं रह गया था। मगर फिर भी वह बराबर रेडियो से घोषणा कर रहा था कि हम मास्को में जीत

रहे हैं। निश्चय ही वह सपने में था। उसके सेनापति ने आकर कहा- हम चारों तरफ से हार रहे हैं तो उसने अपने अंगरक्षक से कहा- इसे गोली मार दो। यह झूठ बोल रहा है। पागल हो गया है वह। हम हार ही नहीं सकते। हमारे हारने का प्रश्न ही नहीं है। थोड़ी ही देर की बात है। मास्को समर्पण कर चुका होगा।

कितना गहरा सपना था हिटलर का। वह निश्चय ही जागा हुआ व्यक्ति नहीं था। महत्वाकांक्षी व्यक्ति हर समय सपने में ही डूबा रहता है। इसीलिए उसकी आँखें उथली रहती है। अगर सबसे उथली आँखें देखनी हो तो राजनीतिज्ञों के पास मिल सकती है। सबसे गहरी आँखे देखनी हो तो वह संन्यासी के पास मिल सकती हैं। क्योंकि संन्यासी का अर्थ ही है कि अब कोई महत्वाकांक्षा नहीं है।

सुषुप्ति की अवस्था- जब स्वप्न कम हो जाता है और जाग्रति गहरी हो जाती है, तभी पहली बार आपको पता चलेगा कि सुषुप्ति क्या है? गहरी सुषुप्ति का अनुभव बहुत ही कम लोगों को होता है। हम सोते अवश्य हैं लेकिन सुषुप्ति का हमें कोई पता नहीं। क्योंकि हम जो जागने में ही सोये हुए हैं तो हम सोने में कैसे जाग सकेंगे? सवेरे हम उठ कर केवल इतना ही कह सकते हैं कि खूब अच्छी नींद आयी। लेकिन हमें यह पता नहीं कि वह नींद क्या थी? हम जब से जन्मे हैं तब से सो रहे हैं, मगर हमारी नींद से कभी भेंट नहीं हुई। कभी भी हमने चेतना में नींद को उतरते हुए नहीं देखा है। क्योंकि जब नींद उतरती है तब हमारी चेतना नहीं रहती और जब तक चेतना रहती है तब तक नींद उतरती ही नहीं।

सोने से ही परिचय नहीं है और जब हम अपनी नींद से ही परिचित नहीं हो पाये तो अपने आपसे क्या परिचित हो पायेंगे हम। हमारे भीतर इतना गहन अन्धकार छाया हुआ है कि रोजाना आठ घंटे सोते हैं और सब होश खो देते हैं। फिर कैसे हम उस गहन तल पर पहुंच पायेंगे- जहां होश खोया नहीं जाता और चेतना बराबर बनी रहती है। इसके लिए सपने को तोड़ना आवश्यक है। सपनों को तोड़ना साधना की प्रक्रिया है। सपना जब टूट जाता है और जब जाग्रत पूर्णरूप से जाग्रत हो जाता है, उस समय पहली बार सुषुप्ति का अनुभव होता है और हम सुषुप्ति की अवस्था में भी चेतना की अनुभति करते हैं। क्योंकि उस समय किसी प्रकार की बेहोशी नहीं रहती। किसी भी प्रकार का अन्धकार भीतर नहीं रहता। एक प्रकार से हम सोते समय भी जागते ही रहते हैं। यह वही अवस्था है जब हम सुषुप्ति को पार कर तुरीय को उपलब्ध होते हैं।

उपनिषद् में कहा गया है कि समस्त इन्द्रियों के शान्त हो जाने पर जिस अवस्था

में विशेष ज्ञान न होने से शब्दादि विषयों को ग्रहण नहीं करते हैं, आत्मा की उस अवस्था को सुषुप्ति कहते हैं। इस अवस्था में न बाहर के जगत का बोध रहता है न किसी बाहरी वस्तुओं का अनुभव होता है। न ही वस्तुओं द्वारा निर्मित आकृतियाँ संगृहीत मन के संस्कार और उससे निर्मित सपनों की कोई प्रतीत ही रहती है। चेतना पूर्णरूप से निष्क्रिय हो जाती है। व्यक्ति जीवित रहते हुए भी जड़ के समान हो जाता है। आत्मा की इस तीसरी अवस्था में कोई भी विषय आन्दोलित नहीं करता न बाहर और न ही भीतर। जिसे हम मृत्यु कहते हैं वह भी सुषुप्ति की ही एक गहन अवस्था है। निद्रा दो प्रकार की है जीवन की निद्रा और मृत्यु की निद्रा और यही कारण है कि हम मृत्यु को भी चिरनिद्रा कहते हैं। मृत्यु चिरनिद्रा है। इस प्रसंग में यह भी बतला देना आवश्यक प्रतीत होता है कि जैसे निद्रा के दो प्रकार हैं वैसे ही आत्मा की भी चार स्थितियाँ हैं। पहली स्थिति आत्मा की बाह्य स्थिति है और दूसरी है आन्तरिक स्थिति। शेष दो स्थितियों को योग की भाषा में तुरीय स्थिति और तुरीयातीत स्थिति कहते हैं। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति ये तीनों अवस्थाएँ आत्मा की बाह्य स्थिति की है। इसी प्रकार यही तीनों अवस्थाएँ उसकी आन्तरिक स्थिति में भी हैं।

दिनभर के श्रम के बाद निद्रा आवश्यक है। ऐसे ही जीवन भर के परिश्रम के बाद मृत्यु आवश्यक है। निद्रा में मन को शान्ति मिलती है और मृत्यु में मिलती है आत्मा को शान्ति। जैसा कि ऊपर बतलाया गया है मृत्यु सुषुप्ति की एक गहरी अवस्था है और इस अवस्था में भी हम स्वप्न देखते हैं और उस स्वप्न में हम देखते हैं अपने मृत शरीर को, विलाप करते हुए अपने परिवार को, अपने प्रियजनों को, अपनी अर्थी को, अपनी चिता को और उस चिता में जलते हुए अपने पार्थिव शरीर को और जब शरीर पूरी तरह भस्म हो जाता है तो उसी के साथ हमारा वह स्वप्न भी टूट जाता है। हम फिर सुषुप्ति की अवस्था में चले जाते हैं। जब उस अवस्था से जागते है तो अपने को किसी सूक्ष्म लोक में पाते हैं और जब उस अज्ञात सूक्ष्म लोक में सोकर जागते हैं तो पुनः अपने आपको इस भौतिक जगत में पाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि मृत्यु और पुनर्जन्म की अवधि के बीच भी हमारी आत्मा अपनी तीनों अवस्थाओं से गुजरती है।

सुषुप्ति के सम्बन्ध में अन्त में केवल इतना समझ लेना आवश्यक है कि सुषुप्ति की अवस्था में कोई भी विषय हमें आन्दोलित करने के लिए नहीं होता। न बाहर और न ही भीतर की ओर, न वस्तुओं के जगत में और न विचार के जगत में, तब जो स्थिति फलित होती है उसे भारतीय प्रज्ञा सुषुप्ति कहती है।

आत्मा की दो स्थितियाँ : तुरीय और तुरीयातीत– जैसे जाग्रत भंग होता

है तो स्वप्न की उपलब्धि होती है और स्वप्न के भंग होने पर सुषुप्ति की उपलब्धि होती है। उसी प्रकार सुषुप्ति के भंग होने पर क्रम से आत्मा को तुरीय तदनन्तर तुरीयातीत स्थिति की उपलब्धि होती है।

आत्मा की ये दोनों स्थितियां अत्यन्त महत्वपूर्ण समझी जाती हैं। तुरीय स्थिति में किसी भी प्रकार की श्रेय वस्तुओं का, ज्ञेय पदार्थों का अभाव हो जाता है। किसी भी ज्ञेय का अस्तित्व नहीं रहता। अगर अस्तित्व रहता है तो केवल ज्ञाता का। समस्त वस्तुओं का और समस्त पदार्थों को जानने-समझने वाले ज्ञाता की उपस्थिति का यही है तुरीय स्थिति, यह आत्मा की वास्तविक स्थिति है। इसी परम स्थिति में 'आत्मा' का स्वरूप प्रकाशित होता है और उसी आत्म प्रकाश में 'मैं कौन हूँ' का उत्तर हमें प्राप्त होता है और जबतक हम तुरीय को उपलब्ध नहीं होते तबतक केवल विचारों को और वस्तुओं को ही संग्रहीत करते रहते हैं और बराबर इस धोखे में रहते हैं कि मैं जानता हूँ कि 'मैं कौन हूँ'। मगर सच्चाई यह है कि हम उन विचारों और उन वस्तुओं के द्वारा 'मैं कौन हूँ' को जानते हैं। यदि हमारे विचार और हमारी वस्तुएं हमसे छीन ली जायें अथवा हमसे खो जायें तो तत्काल 'मैं कौन हूँ' भी समाप्त हो जायेगा। वह भी खो जायेगा हमसे। यही बड़ी तथ्यपूर्ण बात है। अगर आपसे कोई आपका धन छीन लेता है। मकान छीन लेता है। पत्नी-पुत्र छीन लेता है और आपसे छीन लेता है आपकी कोई अत्यन्त प्रिय वस्तु। उस समय आपको जो कष्ट होता है वह केवल सब कुछ छिनने का ही कष्ट नहीं हैं बल्कि साथ-साथ आत्मा के भी छिनने का कष्ट है। क्योंकि आत्मा नाम की कोई वस्तु आपके पास है ही नहीं। वह तो छिनी जाने वाली वस्तुओं के सम्बन्ध में थी। जब कोई वस्तु आपसे छीन ली जाती है तो उसके साथ आपकी आत्मा भी छिन जाती है। जितनी मूल्यवान और जितनी बड़ी वस्तु उतनी मूल्यवान और उतनी बड़ी आत्मा का भ्रम था आपके भीतर। वह यही स्थान है जहां भारतीय प्रजा के गर्भ से संन्यास का जन्म हुआ।

पारलौकिक जगत के रहस्यों को अनावृत्त करने की दिशा में मैंने जो खोजें की उनमें मुझे स्वप्न और उसके विविध रूपों का महत्व अधिक दिखलायी दिया। यह तो निश्चित है कि जाग्रत से स्वप्न का मूल्य और महत्व अधिक है। परामनोविज्ञान के अन्तर्गत जितने भी विज्ञान हैं उनमें एक है स्वप्न विज्ञान। पिछले प्रकरण में आत्मा की अवस्थाओं का सामयिक विवेचन किया गया है।

जाग्रत अवस्था में मन का सम्बन्ध इन्द्रियों के साथ होने के कारण आत्मा का कार्य क्षेत्र भौतिक जगत होता है। इन्द्रियों की सहायता से मन सभी भौतिक कार्य करता

है। दूसरी जो स्वप्नावस्था है इस अवस्था में आत्मा का कार्य क्षेत्र भौतिक नहीं होता। जिसके फलस्वरूप इन्द्रियां निष्क्रिय हो जाती है और मन अपने आप में स्थित होकर स्वयं क्रियाशील हो उठता है। योग के अनुसार मन की तीन मुख्य अवस्थाएं हैं। वे अवस्थाएं कौन-कौन सी अवस्थाएं हैं इसे जानने समझने के पूर्व यह बतला देना आवश्यक है कि मानव शरीर में ७२ हजार नाड़ियां हैं। जिनमें सात नाड़ियां अपने आप में अति रहस्यमयी और महत्वपूर्ण हैं। जिनका ज्ञान केवल सिद्ध योगियों को ही होता है। उन सातों नाड़ियों में एक नाड़ी है कुहु नाड़ी। योग की दृष्टि से यह अति रहस्यमयी नाड़ी है और अति सूक्ष्म भी।

अधो लघु मस्तिष्क और परामानसिक जगत- इस रहस्यमयी सूक्ष्म नाड़ी की यात्रा भ्रूमध्य से शुरू होती है और मुख्य मस्तिष्क, अधो मस्तिष्क से होते हुए अधो लघु मस्तिष्क के केन्द्र में समाप्त होती है। इन तीनों मस्तिष्कों का संबंध मन की तीनों अवस्थाओं से समझना चाहिए। अधो लघु मस्तिष्क के क्षेत्र में तीस लाख ऐसी अति सूक्ष्म कोशिकाएं हैं जो परामानसिक तत्वों को जन्म देती है और जिनका सम्बन्ध परामानसिक जगत से बतलाया गया है। परामानसिक जगत क्या है? प्रसंगवश आगे चर्चा की मैंने। संक्षिप्त में यहां इतना ही बतला देना आवश्यक है कि आपके जीवन में सब कुछ पूर्व नियोजित है। आपके पूर्वजन्म के अच्छे बुरे कर्मों के परिणाम स्वरूप निर्मित संस्कारों के अनुसार आपके जीवन में शुभ अशुभ घटनायें घटती है। भयंकर से भी भयंकर दुर्घनायें भी घटती हैं। कोई महत्वपूर्ण कार्य सफल और असफल होता है। अच्छे बुरे लोगों का साथ भी होता है। कभी दुख तो कभी सुख तो कभी संयोग तो कभी वियोग सब कुछ पूर्व नियोजित समझना चाहिए।

इन सब बातों का अथवा इन सब चीजों का पूर्व निर्माण परामानसिक जगत में हुआ रहता है। एक प्रकार से वह सब कुछ घटित हो चुका रहता है पहले से ही और फिर उन सबकी पुनरावृत्ति सूक्ष्म जगत में होती है। उसके पश्चात् आपके जीवन में घटित होती है समयानुसार कालान्तर में। इस प्रसंग में यह समझ लेना चाहिए कि इन तीनों के बीच समय का काफी लम्बा अन्तराल होता है। इसके ही साथ यह भी बतलाना आवश्यक है कि जो शरीर आपका है वही एकमात्र शरीर नहीं है उसके साथ दो और महत्वपूर्ण शरीर हैं- सूक्ष्म शरीर और मनोमय शरीर जैसे आपका स्थूल शरीर इस स्थूल जगत से सम्बन्ध रखता है उसी प्रकार आपका सूक्ष्म शरीर और मनोमय शरीर सूक्ष्म जगत और मनोमय जगत से रखता है सम्बन्ध। आपके जीवन से संबंधित किसी भी बात का प्रारूप परामानसिक जगत में तैयार हो जाता है तब वह

मनोमय जगत में सर्वप्रथम अवतरित होकर आपके मनोमय शरीर में घटित होता है। उसी प्रकार समयानुसार सूक्ष्म जगत में अवतरित होकर आपके सूक्ष्म शरीर में होता है घटित। तत्पश्चात वह प्रकट होता है आपके जीवन में। यह भी जान लेना चाहिए कि आपके शरीर में जो रोग व्याधि उत्पन्न होती है उसका भी प्रारूप पहले से ही तैयार हुआ रहता है। उसके बाद आपके मनोमय शरीर में वह रोग व्याधि उत्पन्न होती है। फिर कालान्तर में सूक्ष्म शरीर में और समयानुसार आपके ग्रहों की स्थिति को देखते हुए उत्पन्न होती है आपके शरीर में।

आपको ज्ञात होना चाहिए कि प्रकृति के इसी नियम को कहते हैं नियति। इसी कारण हम जो चाहते हैं वैसा प्रायः होता नहीं। हम जो सोचते हैं वैसा प्रायः होता नहीं और हम जैसा परिणाम चाहते हैं वैसा परिणाम होता नहीं उपलब्ध। इसी को कहा गया है अज्ञान अथवा माया। लेकिन जो सिद्ध योगीगण हैं वे इस अज्ञान और इस माया के पार होते हैं। नियति के सारे क्रियाकलापों से होते हैं पूर्व परिचित। आज भी ऐसे योगसिद्ध दिव्य महापुरूषों का अभाव नहीं जो भ्रूमध्य में चित्त को एकाग्र कर परामानसिक जगत में तत्काल प्रवेश कर जाते हैं और किसी भी मनुष्य के भूत, भविष्य और वर्तमान में घटी हुई घटनाओं, घटने वाली घटनाओं और घट रही घटनाओं को पश्यन्ति भूमि में दृश्य रूप में देख लेते हैं। यहां तक कि आने वाली रोग, व्याधियों, विपत्तियों आदि को सहज रूप से जान समझ लेते हैं और उनका निराकरण कैसे होगा? इसका भी रहस्य प्राप्त कर लेते हैं। इतना ही नहीं समयानुसार आवश्यकता पड़ने पर उसकी भविष्यवाणी भी कर देते हैं। इस प्रसंग में यह भी बतला देना आवश्यक है कि परामानसिक जगत में आपके पिछले कितने जन्मों की कथाएं भरी पड़ी हैं, न जाने कितने जन्मों के इतिहास भरे पड़े हैं बतलाया नहीं जा सकता। इतना ही नहीं परामानसिक जगत विपुल ज्ञान विज्ञान का भण्डार भी है। सिद्ध योगीजन अपनी विशेष यौगिक क्रियाओं द्वारा घटनाओं को जान जाते हैं उसी प्रकार पिछले जन्मों का इतिहास तो जान ही जाते हैं इसके अतिरिक्त योग्यतानुसार उन ज्ञान विज्ञान को भी आत्मसात कर लेते हैं।

वर्तमान समय में भी ऐसे सिद्ध साधकों और योगियों का अभाव नहीं है। पुराणों के अतिरिक्त ज्योतिष और आयुर्वेद के ग्रन्थ भी स्वप्न पर सर्वाधिक विचार किया गया है। महर्षि चरक ने सात प्रकार के स्वप्नों का उल्लेख किया है-दृष्ट, श्रुत, अनुभूत, पार्थिव, कल्पित, भाविक और दोषज। दिन में देखी हुई वस्तु स्वप्न में दिखलायी दे तो उसे दृष्ट स्वप्न कहेंगे। कोई चीज सुनी हुई हो वह स्वप्न में दिखलायी दे तो उसे श्रुत स्वप्न कहेंगे। अनुभव में आयी हुई वस्तु यदि स्वप्न में दिखलायी दे तो उसे अनुभूत

स्वप्न कहेंगे। मन में कल्पना की गयी वस्तु स्वप्न में दिखलायी गयी दे तो उसे कल्पित स्वप्न कहेंगे। इसी प्रकार मन में किसी वस्तु की भावना की गयी हो और वह स्वप्न में दिखलायी दे तो उसे भाविक स्वप्न कहेंगे। इसी प्रकार किसी रोग शोक आदि से जो स्वप्न दिखलायी देते हैं उसे दोषज कहते हैं। जो स्वप्न भविष्य में शुभ-अशुभ घटनाओं के घटने की सूचना देता है अथवा आभास देता है उसे भी भाविक स्वप्न कहते हैं। इसी प्रकार गहन निद्रा की अवस्था में चलना, फिरना और बोलना भी दोषज स्वप्न के अर्न्तगत आता है।

अब प्रश्न यह है कि हम सोते क्यों है ? निद्रा से सम्बन्धित जो भी रहस्य है उनका उद्घाटन होने पर भी वैज्ञानिकों को अभी यह ज्ञात नहीं है कि मनुष्य सोता क्यों है? नींद का कारण शारीरिक है या मनोवैज्ञानिक? यह प्रश्न अभी भी अनुत्तरित है। फिर भी यह जानने में वैज्ञानिक सफल अवश्य हो गये हैं। निद्रा दो प्रकार की है शान्त निद्रा और क्रियाशील निद्रा। नींद के इन दोनों प्रकारों में समानता केवल यही है कि दोनों उत्तेजना के ही रूप हैं लेकिन दोनों में काफी अन्तर है। मेडिकल साइंस के अनुसार संसार में आठ में से एक व्यक्ति अपने जीवनकाल में किसी न किसी मानसिक रोग से अवश्य पीड़ित रहता है। इन मानसिक रोगों से पहले नींद में गड़बड़ी अवश्य उत्पन्न होती है। इसीलिए पश्चिम में दवा के दस प्रतिशत नुस्खे निद्रा लाने वाली गोलियों और दवाओं के ही होते हैं। नींद का प्रायः तीन चौथाई भाग शान्त निद्रा के रूप में होता है। उस अवस्था में मस्तिष्क विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा तरंगों की गति अपेक्षाकृत कम होती है। 'क्रियाशील निद्रा' जिसे वैज्ञानिक भाषा में 'रेपिट आई मूवमेन्ट' या 'रैम' कहा जाता है। उसमें ही सपने दिखलायी देते हैं। इस निद्रा में आँखों की गतिविधि बहुत तेज हो जाती है। 'क्रियाशील निद्रा' को अत्यन्त रहस्यमय माना गया है। वैज्ञानिक उसके अध्ययन में जुड़े हुए हैं। इस कार्य के लिए केवल अमेरिका में दो एक दर्जन से अधिक प्रयोगशालाएं हैं। जिनमें रात दिन कार्य होता है। अबतक उनमें चार हजार वैज्ञानिकों ने बारह हजार से अधिक रातें इस अनुसंधान में व्यतीत की हैं। अबतक के परिणामस्वरूप क्रियाशील निद्रा की स्थिति में व्यक्ति काफी बेचैन और परेशान रहता है। उसके मस्तिष्क में विभिन्न प्रकार के अच्छे बुरे सपने सिनेमा के परदे पर फिल्म दृश्यों की तरह नाचते रहते हैं। यदि इस नींद के समय रक्तचाप काफी अधिक बढ़ जाये तो कभी-कभी सोते समय ही दिल का दौरा पड़ जाता है और व्यक्ति हमेशा के लिए ही सो जाता है। गर्भस्थ शिशु हर समय शान्त

निद्रा में रहता है और सपने भी बराबर देखता है जो उसके पिछले जन्मों से सम्बन्धित होते हैं।

नींद और आप- योग, तंत्र से संबंधित साधना मार्ग हो या अन्य कोई हो साधना मार्ग। यदि आप अपने नींद और भोजन को सुव्यवस्थित नहीं रखेंगे तो साधना में कभी भी सफलता नहीं प्राप्त हो सकती।

क्या आप इतनी नींद लेते हैं, जितनी आपको चाहिए? सन् १९६५ में मेरी भेंट निद्रा-चिकित्सा पद्धति के विशेषज्ञ डॉ० एडवर्ड हारपर से कलकत्ता में हुई थी। इस सम्बन्ध में चर्चा होने पर डॉ. हारपर ने कहा- शर्मा जी! संसार के आधे से भी अधिक व्यक्ति प्रातःकाल तरोताजा नहीं उठते। जिसका सीधा अर्थ यह है कि वे पूरी नींद नहीं लेते हैं। बहुत ही कम लोग नियम और निष्ठा के साथ पूरी नींद लेते हैं। जिस प्रकार हम भोजन की दिनचर्या और मात्रा का पालन नहीं करते। उसी प्रकार नींद की भी दिनचर्या और मात्रा का पालन नहीं करते। जिसका कुपरिणाम हमें आगे चलकर गम्भीर शारीरिक और मानसिक रोगों के रूप में भोगना पड़ता है। पहले के लोग शर्मा जी डॉ० हारपर बोले- रात्रि में नौ बजे सो जाते थे। प्रातः चार बजे उठ जाते थे। रात्रि में भोजन के दो घंटे बाद सोते थे। सोने के पहले कोई पेय पदार्थ नहीं लेते थे, वाद विवाद में भाग नहीं लेते थे फलस्वरूप हमसे कहीं अधिक स्वस्थ और दीर्घजीवि होते थे। यदि आप चाहते हैं कि आपकी दृष्टि तेज हो, स्मृति तेज हो, त्वचा उज्ज्वल हो, दमकती हुई हो, हाजमा ठीक हो, वजन और शक्ति आपकी आयु के अनुरूप हो तो सदा एक स्वर्ण नियम का पालन करिए। दिन भर डट कर मेहनत करिए। सायं सात बजे खाना खाकर थोड़ा टहलिए और फिर नौ बजे सो जाइए और प्रातः चार बजे उठ जाइए।

योगनिद्रा- सुषुप्ति यानी निद्रा के संबंध में हमने संक्षिप्त में विचार किया है। अब हम योगनिद्रा पर प्रकाश डालेंगे। योगनिद्रा वास्तव में निद्रा की ही एक प्रगाढ़ और गहरी अवस्था है। यह अवस्था दो प्रकार की है पहली है चेतनयुक्त अवस्था और दूसरी है चेतनहीन अवस्था। पहले हम चेतनहीन अवस्था की चर्चा करेंगे।

चेतनहीन अवस्था : यह अवस्था तब उपलब्ध होती है जब व्यक्ति किसी लम्बी बीमारी की अन्तिम स्थिति में रहता है। अचानक सिर पर भारी आघात लगने पर, अचानक कोई भयंकर दुर्घटना घटने पर या सहसा कोई अकल्पनीय सत्य के सामने आने पर। ऐसे समय अपने आप मन से प्राण का तो संबंध टूट

जाता है लेकिन प्राण का संबंध शरीर से किसी न किसी रूप में बराबर बना रहता है। ऐसी ही स्थिति को 'कोमा' या गहन मूर्च्छा कहते हैं। वास्तव में यह मृत्यु का ही एक प्रारूप है। व्यक्ति कम ही जीवित बचता है। जीवन की सारी सम्भावनाएं समाप्त होने पर भी वह जीवित तो रहता ही है लेकिन मृतवत्। आत्मा अपने निजस्वरूप में स्थित रहती है। मन, धीरे-धीरे अपने अवचेतन मन में प्रवेश कर लेता है। रही प्राण की बात। वह शरीर में तबतक बना रहता है जबतक शरीर की आन्तरिक स्थिति पूरी तरह बिगड़ नहीं जाती है। बिगड़ते ही प्राण मुख मार्ग से बाहर निकल कर तत्काल सूक्ष्म शरीर का आकार ग्रहण कर लेता है। वह आकार स्थूल शरीर जैसा ही होता है। आकार बनते ही अवचेतन मन के साथ ही आत्मा उसमें अपना स्थान बना लेती है।

अब प्रश्न यह है कि क्या 'कोमा' की अवस्था में व्यक्ति सपने आदि देखता है या नहीं? हाँ देखता है लेकिन सपने नहीं। वह देखता है उन लोगों को जो उसके जीवन काल में महत्व रखते थे। इसके अलावा उन घटनाओं को भी देखता है जो उसके आस-पास घटित होती रहती है।

कोमायुक्त एक व्यक्ति से साक्षात्कार : सन् १९६० ई०, वाराणसी। एक बहुत बड़े रईस थे। नाम था मोहनलाल शाह (कल्पित नाम)। आयु यही थी साठ-पैंसठ के आसपास। एक दिन एकाएक उन्हे अपने दामाद की मृत्यु का समाचार मिला और समाचार सुनते ही मोहनलाल शाह बेहोश हो गये और बाद में चले गये कोमा में। पूरे दो वर्ष कोमा में ही रहे महाशय। कोमा की कोई समयावधि नहीं होती। कोई-कोई तो सात से दस वर्ष तक कोमा की स्थिति में रहते हैं। सौ में नब्बे प्रतिशत कोमा से वापस आने का अवसर नहीं होता है। वास्तव में 'कोमा' एक प्रकार की मृत्यु ही है।

मोहनलाल शाह दो साल कोमा में रहे और वह भी एक नामी अस्पताल के एक कमरे में। परिवार के लोग कबतक प्रतीक्षा करते। संसार समाज का काम तो रूकेगा नहीं। पौत्र का विवाह हुआ। फिर बाद में पौत्री का भी हो गया। विवाह और भी कई शुभ और मंगल कार्य हुए उन दो वर्षों के भीतर। कोमा से उबरते ही शाह जी से मिलने तुरन्त गया मैं। बिस्तर पर लेटे हुए थे शाह जी। कमजोरी अधिक थी। मुझे देखकर मुस्कुराये। मैं भी मुस्कुराते हुए समीप की कुर्सी पर बैठ गया।। कहिए कैसे हैं आप? यह सुनकर शाहजी बोले- इस संसार में आँखे खुल गयी प्रभु की कृपा से। इसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ। मेरे यह पूछने पर कि दो वर्ष

तक आप किस स्थिति में रहे। उस स्थिति में आपको क्या-क्या अनुभव हुए? आपको अपना बोध बना रहा या नहीं.........।

मेरे इस प्रश्न के उत्तर में मोहन शाह ने जो कुछ बतलाया वह परामनोविज्ञान की दृष्टि में अति महत्वपूर्ण था। बड़ा ही भारी मानसिक झटका लगा मुझे और उसी के साथ चेतना शून्य हो गया। उसके बाद की स्थिति का मुझे कोई ज्ञान नहीं है। मैं कहां था? क्या था और मेरा अस्तित्व किस रूप में था? समझिए एक प्रकार से मेरा अस्तित्व बोध ही समाप्त हो चुका था। लेकिन पण्डितजी आश्चर्य तो इस बात का है कि अस्तित्व का बोध न रहते हुए भी मैं अपने पौत्र और अपनी पौत्री के विवाह के सभी कार्यक्रमों को बिल्कुल साफ देख रहा था। कौन क्या कर रहा है? यह भी बिल्कुल स्पष्ट देख रहा था और उसी के साथ-साथ लोगों के विचारों और भावों को भी समझ रहा था। ऐसा लग रहा था कि मुझसे अलग कुछ भी नहीं है।

चेतनयुक्त अवस्था : यह अति महत्वपूर्ण अवस्था है। इस अवस्था में स्वबोध और अस्तित्व बोध दोनों बराबर बना रहता है लेकिन देहबोध नहीं रहता। इसके आगे की अवस्था तुरीयावस्था है। योगनिद्रा और तुरीय अवस्था के बीच का जो समय है वह 'शून्य' है। वहां समय नहीं है। काल के प्रभाव से मुक्त है वह। योगनिद्रा क्या है? इसे समझने के पहले यहां हम यह बतला देना आवश्यक समझते हैं कि यदि आप छः घंटे की नींद की अवस्था में रहते हैं तो उन छः घण्टों के प्रथम चरण में सोते हैं और वह सोना भी अधिक से अधिक २०-२५ मिनट का ही होता है। उसके बाद आप सपना देखते हैं जो ३ मिनट से अधिक नहीं होता। फिर आप सो जाते हैं और वह भी सोना २० से २५ मिनट से अधिक नहीं होता। उसके बाद आप फिर सपना देखने लग जाते हैं। इस प्रकार एक नींद की अवस्था में आप कई बार सोते हैं और कई बार आप सपने भी देखते हैं और जब आप अन्तिम बार सोने के बाद सपना देखते हैं तो वह सपना आपका अन्तिम सपना होता है क्योंकि आप फिर सोते नहीं जाग जाते हैं और वही सपना आपको याद भी रहता है जागने पर। पीछे देखे गये सपने याद नहीं रहते, इसलिए कि आप सपना देखकर फिर सो जाते हैं। वह सोना, पिछले सपने को मिटा देता है और जिस सपने को देखकर हम जाग जाते हैं वही सपना हमें याद रहता है और सत्य भी होता है। इस प्रकार की निद्रा और सपने भौतिक आवश्यकता है किन्तु योगनिद्रा है आध्यात्मिक। जैसा कि हम बतला चुके हैं सपने प्रतीकात्मक होते हैं।

जिस अन्तिम सपने को देखकर हम जाग जाते हैं, वे पूर्णरूप से प्रतीकात्मक नहीं होते। सपनों की प्रतीकात्मक भाषा को समझना एक जटिल कार्य है इसमें सन्देह नहीं। परन्तु एक सपना ऐसा भी होता है जो प्रतीकात्मक होते हुए भी उसकी भाषा तत्काल समझ में आ जाती है और उसका अर्थ भी हृदयंगम हो जाता है और वह सपना है योगनिद्रा का सपना। वह सपना वास्तव में सूक्ष्म जगत अथवा आन्तर जगत से विशेष कर संबंधित होता है।

भौतिक निद्रा और योगनिद्रा- इन दोनों निद्राओं में भारी अन्तर है। भौतिक निद्रा शरीर और मन से संबंधित वासनात्मक है और जबकि योगनिद्रा मनोमय शरीर और अवचेतन मन से संबंधित है और है योगात्मक।

ध्यानसिद्ध योगीगण ध्यान के एक विशेष अवस्था में पहुंच कर योगनिद्रा को उपलब्ध होते हैं। योग निद्रा शान्त, निर्विकार और एक रस होता है। शरीर पूर्णरूप से शिथिल हो जाता है। इन्द्रियों से चेतन मन का संबंध टूट जाता है। एक प्रकार से बहिर्जगत से योगीगण पूर्णरूप से अलग हो जाते हैं। चेतन मन का स्थान शनैः-शनैः अवचेतन मन ग्रहण करने लग जाता है और फिर शुरू हो जाते हैं योग निद्रा के सपने जो यथार्थ में सूक्ष्म जगत अथवा अभौतिक सत्ता से होते हैं संबंधित। सच तो यह है कि जिस सपना से हम परिचित हैं वैसे सपने वे नहीं होते। वे मानसपटल पर उभरने वाले अभौतिक सत्ता अथवा सूक्ष्म जगत के होते हैं दृश्य जो अपने आपमें अद्भुत, अकल्पनीय, आनन्ददायक, परम शान्तिदायक और आत्मविभोर करने वाले होते हैं। इस संसार में हम वैसे दृश्यों की कभी कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। प्रकृति के दो रूप हैं एक तो है 'प्राकृतिक' और दूसरा है 'पराकृतिक'। हमारा यह संसार प्राकृतिक दृश्यों से जैसे भरा पड़ा है। उसी प्रकार अभौतिक संसार पराकृतिक से है भरा पड़ा। जिसे देख कर योगीगण आनन्दमग्न हो जाते हैं। आप इस संसार में जिस आनन्द का और जिस शान्ति का अनुभव करते हैं उसके पीछे कोई न कोई कारण होता है। बिना किसी कारण के न आपको आनन्द मिलता है और न तो मिलती है शान्ति ही और कारण समाप्त होते ही आनन्द भी समाप्त हो जाता है और शान्ति भी। इसीलिए दोनों क्षणिक हैं। क्षणभर का आनन्द और क्षणभर की शान्ति और फिर उसके बाद वही दुख और वही अशान्ति। अभौतिक सत्ता में प्रवेश करने पर पराकृतिक भूमि में जो आनन्द और जो शान्ति उपलब्ध होती है उसका कोई कारण नहीं होता है। कारणहीन आनन्द और कारणहीन शान्ति का एक बार भी अनुभव हो जाने पर

यह संसार रसहीन और निरर्थक प्रतीत होने लग जाता है और यही एकमात्र कारण है कि योगनिद्रा को उपलब्ध योगीगणों का मन इस संसार में नहीं लगता। वे एकान्त में रहना पसन्द करते हैं लोगों से निरर्थक बात करना नहीं चाहते हैं। निरर्थक समय भी व्यतीत करना नहीं चाहते। यदि सच कहा जाये तो यह संसार उन्हें सपना-सपना सा लगता है। जिस पारलौकिक जगत का उन्होंने अवलोकन किया है वह उनके लिए सत्य हो जाता है और भौतिक जगत असत्य इसलिए कि वहां उनको वास्तविकता और सत्यता का अनुभव होता है। भौतिक जगत में अतीत विस्मृत है। भविष्य अन्धकार में डूबा है। रही वर्तमान की बात तो वर्तमान है कहां इस जगत में। जबकि पारलौकिक जगत में इस प्रकार का खण्डकाल है ही नहीं। बस काल है और है काल का अखण्डित प्रवाह मात्र।

काल का अखण्ड प्रवाह और योगनिद्रा का स्वप्न : योग के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ में महत्व, अहंकार तन्मात्राओं एवं महाभूतों के साथ तीन गुण सात्विक, राजसिक और तामसिक उत्पन्न हुए और उन्हीं के साथ उत्पन्न हुई तीन अवस्थाएं जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति। जाग्रत और सुषुप्ति के बीच की अवस्था स्वप्न है। प्राचीन भारतीय स्वप्न सिद्धान्त की बारीकियों को समझते तो थे ही और यह भी जानते थे कि कई ऐसे सपने होते हैं जिनका संबंध जन्म-जन्मान्तरों से भी होता है। प्रतीकात्मक होने के कारण हम उन सपनों का अर्थ ठीक-ठीक समझ नहीं पाते। इसका एक कारण यह भी है कि स्वप्न के दृश्य तीन मिनट में कई बार बदलते हैं। जिनमें कोई तारतम्य नहीं होता मतलब कि वह सिलसिलेवार नहीं होता। भौतिकनिद्रा जनित स्वप्न की व्याख्या योगसूत्र ने इस प्रकार की है जब व्यक्ति स्वेच्छा से और स्वभावतः सुध से बेसुध होकर चेतनावस्था से अचेतन अवस्था में प्रवेश करता है। उस समय चेतना और अचेतना की मिश्रित अवस्था में वह रहता है और ऐसी अवस्था में व्यक्ति अपने शरीर और मन की प्रधान वृत्तियों के अनुसार निद्रा में जो अश्रृंखलित दृश्य देखता है वह स्वप्न है। पित्त प्रधान व्यक्ति को आग और प्रकाश संबंधी दृश्य दिखलायी देते हैं। वात प्रधान व्यक्ति को आकाशगमन जैसे दृश्य दिखलायी देते हैं। कफ प्रधान व्यक्ति को जल सम्बन्धी दृश्य दिखलायी देते हैं। योगनिद्रा जनित स्वप्न में भारी भिन्नता है। वास्तव में वह स्वप्न नहीं बल्कि अभौतिक सत्ता में जागना है। यह पढ़ कर शायद आपको विश्वास शीघ्र न हो। यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो योग की दृष्टि से जिसे आप जाग्रत अवस्था समझते हैं वह सच्चे अर्थो में एक सपना है। जब हम अभौतिक

सत्ता में प्रवेश करते हैं तो भौतिक जगत स्वप्न जैसा उस समय प्रतीत होता है जबकि हम भौतिक नींद में सपने देखते हैं तो उस समय वही सत्य रहता है। जाग्रत अवस्था की स्मृति नहीं रहती लेकिन जिस स्थिति का उल्लेख हमने अभी ऊपर किया है उस स्थिति में अभौतिक जगत सत्य और भौतिक जगत स्वप्न प्रतीत होता है। स्वप्न जीवन और जाग्रत जीवन की एक साथ प्रतीति उस समय होती है।

एक योगी का अनुभव : काशी के हनुमानघाट पर एक योगी रहते थे। दक्षिण भारतीय थे, नाम था बाला सुब्रमण्यम्। अवस्था पचास के लगभग थी। बालाजी भौतिक निद्रा में तो कम, लेकिन योगनिद्रा में अधिक रहते थे।

योगनिद्रा की अवस्था में आपको क्या प्रतीति होती है? मेरी इस जिज्ञासा के समाधान में बालाजी बोले- अभ्यास काल में जाग्रत से सुषुप्ति में और सुषुप्ति से स्वप्न में प्रवेश करता था। जाग्रत की तरह इन दोनों अवस्थाओं में भी अभ्यास के कारण बाह्य चेतना बराबर बनी रहती थी। उसी प्रकार फिर मैं जब उस स्वप्न से चैतन्य स्थिति में पुनः सुषुप्ति में प्रवेश करता था तो उस समय मुझे इस बात का बराबर ज्ञान बना रहता था कि मैं किन-किन अवस्थाओं से गुजरा हूँ और उन अवस्थाओं में क्या-क्या मुझे अनुभव हुए। सुषुप्ति भंग होने पर जब मैं जाग्रत अवस्था में उपलब्ध हुआ तो एकबारगी स्तब्ध रह गया। मेरा वह जागरण इस जगत में नहीं बल्कि परामानसिक जगत में हुआ था। जिसे आप अभौतिक जगत अथवा अभौतिक सत्ता कहते हैं।

क्या अनुभव हुआ आपको वहां ?

कुछ सोचते हुए बालाजी बोले- क्या बतलाऊं मैं शर्माजी आपको। बस समझ लें, झोपड़ी से निकल कर महल में पहुंच गया था मैं। इसके आगे बतलाने के लिए पर्याप्त शब्द नहीं है मेरे पास। इस संसार में जिसे शान्ति और आनन्द कहा जाता है वह निरर्थक है। भ्रम के अलावा और कुछ नहीं है। केवल भाववाचक है गुणवाचक नहीं। उस अनर्वचनीय जगत से वापस लौटने वाला हर व्यक्ति यही कहेगा यह भौतिक जगत स्वयं अपने आपमें एक गहरा भ्रम है यहां की प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक पदार्थ और प्रत्येक दृश्य अच्छी बुरी मानसिकता की उपज है। कुछ भी स्थिर नहीं है। निर्माण और विनाश की लीला बराबर हो रही है और इसके विपरीत वह अभौतिक जगत है। वहां ऐसा लग रहा था कि मेरा सम्पूर्ण अस्तित्व शान्ति और आनन्द के अथाह सागर में आकण्ठ डूबा हुआ हो। उस अलौकिक जगत के ध्वनिहीन निःशब्द वातावरण में भी भौतिक जीवन की स्मृति बराबर बनी

हुई थी जो मुझे निरर्थक और सारहीन लग रही थी और लग रही थी मुझे निष्प्रयोजित। वहां के जीवन के सामने भौतिक जीवन व्यर्थ, निरर्थक और आडम्बरमय लग रहा था। मैं अपने आपमें असीम प्रफुल्लता का अनुभव कर रहा था, वहां के अपार्थिव वातावरण में। थोड़ा रूककर बालाजी आगे कहने लगे- पहली बार इस संसार में वापस लौटा तो यह देख कर मुझे आश्चर्य हुआ कि समय का आभास इस त्रिआयामी संसार में ही होता है जबकि उस चतुर्थ आयामी संसार में समय का कोई भी ज्ञान नहीं रहता। मैं पूरे पांच घण्टे के बाद वापस लौटा था लेकिन मुझे यही लग रहा था कि मैं वहां उस अनर्वचनीय जगत में एक दो क्षण के अलावा नहीं रहा होऊगा। यह जगत चेतन मन का जगत है जबकि वह जगत है अवचेतन मन का। यहां काल खण्डों में अनुभव होता है वहां ऐसा नहीं। वहां काल का प्रवाह सतत है इसीलिए समय का अनुभव नहीं होता।

अभौतिक सत्ता में प्रवेश के चार मार्ग- बाला सुब्रमण्यम् की बात सुनकर मुझे ऐसा लगा कि अभौतिक सत्ता में परामानसिक तत्वों द्वारा केवल शान्ति और आनन्द का ही अनुभव होता है इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। लेकिन यह मेरा भारी भ्रम था और उस भ्रम का निवारण किया गुरुदेव डॉ० गोपीनाथ कविराजजी ने। उनका कहना था कि बाला सुब्रमण्यम् ने अभौतिक सत्ता का स्पर्श मात्र किया था उसमें प्रवेश नहीं। यह सुन कर अवाक् रह गया था मैं। क्या स्पर्श मात्र से इतनी शान्ति और इतना आनन्द मिल सकता है। प्रवेश हो जाता तो फिर क्या होता। कविराजजी ने आगे बतलाया कि उस बिन्दु तक तो कभी-कभी कोई अपने आप भी पहुंच जाता है। यदि उस समय उसके मन में रचनात्मक, भावात्मक अथवा संकल्पनात्मक विचार है तो वहां उस बिन्दु पर वह विचार साकार रूप में दिखलायी देता है। इसे हम पहला मार्ग कहेंगे। दूसरा मार्ग है योगपरक अभ्यास मार्ग जिस पर चल कर बालाजी वहां पहुंचे थे। तीसरा मार्ग है किसी प्रकार का नशा। गहरे नशे की भी स्थिति में व्यक्ति संयोगवश वहां पहुंच जाता है और शान्ति और आनन्द लाभ करता है। मरणासन्न अथवा मुमुर्षु अवस्था में भी व्यक्ति अकस्मात् उस स्थिति में पहुंच जाता है। यदि वापस जीवन में आ गया तो उसी शान्ति और आनन्द का वर्णन करता है। यह चौथा मार्ग है। यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो एक प्रकार से सभी साधना सम्प्रदायों में किसी न किसी रूप में कोई न कोई 'नशा' अवश्य प्रचलित है। जैसे वैष्णव सम्प्रदाय में तस्मै, शाक्त सम्प्रदाय में मदिरा, शैव सम्प्रदाय में भांग, गांजा आदि। नशा सहयोगी का काम करता है उस

अवस्था में पहुंचने में इसमें सन्देह नहीं। उनके प्रभाव से व्यक्ति संसार से अलग होकर परामानसिक जगत यानि अभौतिक सत्ता के उस बिन्दु पर पहुंच जाता है जहां उसे असीम शान्ति, असीम मानसिक सुख और आनन्द की अनुभूति होती है। इसका एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि नशा टूटने पर वह व्यक्ति खाली हाथ लौटता है और लौटते ही फिर उसे सांसारिक समस्याएं और उलझने घेर लेती हैं। फिर वही अशान्ति, फिर वही क्लेश और वही मानसिक और शारीरिक कष्ट। जिस स्थिति में गया था, उसी स्थिति फिर आ गया वापस। सबसे बड़ी बात तो यह है कि नशा के द्वारा उस अवस्था को उपलब्ध होने वाले व्यक्ति को भौतिक जगत की स्मृति नहीं रहती। वह भूल जाता है कि वह कौन है। देश, काल और पात्र से परे हो जाता है वह। यह हुई साधारण व्यक्ति द्वारा नशा सेवन से प्राप्त उपलब्धि की चर्चा जिसका भौतिक परिणाम होता है मानसिक विकृति और शारीरिक शिथिलता और अकर्मण्य जीवन। आज की युवा पीढ़ी इसी दिशा में आगे बढ़ती जा रही है। अपने देश के लिए इसका परिणाम बड़ा ही घातक सिद्ध होगा भविष्य में, इसमें सन्देह नहीं।

स्थिरचित्त की दशा और आन्तरजगत : बहुत कम लोग इस बात से परिचित हैं कि २४ घंटे में एक बार पलभर के लिए श्वास-प्रश्वास रूक जाता है। पल भर के लिए हृदय की धड़कन बन्द हो जाती है और पलभर के लिए चंचल चित्त स्थिर हो जाता है। ये तीनों कार्य एक ही साथ और एक ही समय में होते हैं लेकिन कब यह निश्चित नहीं। लेकिन होता अवश्य है और जब होता है तो व्यक्ति का अनजाने में ही पारलौकिक जगत से संबंध स्थापित हो जाता है लेकिन साधारण व्यक्ति उसका अनुभव नहीं कर पाता इसलिए कि उसकी समस्त इन्द्रियां उस पल में निष्क्रिय हो जाती हैं।

उच्चतम् बोध की स्थिति है यह लेकिन इस परमयोग की स्थिति से अध्ययनशील, चिन्तन मननशील, अन्वेषक, ज्ञान के सागर में डुबकी लगाने वाले लोग ही लाभान्वित होते हैं। उनको अपनी दिशा में समाधान प्राप्त हो जाता है। उनकी जटिल से जटिल समस्याएं उस स्थिति में हल हो जाती हैं। हम इसका उदाहरण यहां दे रहे हैं। आइन्सटाईन को भला कौन नहीं जानता? वे महान वैज्ञानिक तो थे ही इसके अतिरिक्त महान गणितज्ञ भी थे। एक बार किसी ने उनसे पूछा कि आपकी सृजनात्मक प्रक्रिया का रहस्य क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में उस महान व्यक्ति ने एक बार कहा था- 'हम सदैव कुछ न कुछ देखते रहते हैं। पर

उसे ठीक-ठीक देख और समझ नहीं पाते। सत्य एक मौखिक धारणा मात्र है, पर उसे गणित या अन्य किसी विधि से प्रमाणित नहीं किया जा सकता। बुद्धि तो वहीं तक हमारा साथ देती है, जहां तक वह जानती है और सिद्ध कर सकती है। लेकिन एक स्थिति ऐसी भी आती है कि बुद्धि जहां एक छलांग सी लगाकर सुप्तावस्था और स्वप्न अवस्था के पार बोध के उच्चस्तर पर पहुंच जाती है योग में इसी स्थिति को सहजोपलब्धि अथवा आन्तर ज्ञान कहते हैं परन्तु उसे प्रमाणित करना सम्भव नहीं। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में ऐसी स्थिति अवश्य आती है, जहां वह केवल ऐसे आन्तर ज्ञान द्वारा वह अनुभूति प्राप्त कर सकता है, जो मात्र ज्ञान द्वारा सम्भव नहीं और जिसका हल फिलहाल प्रस्तुत नहीं कर सकता।

एक वैज्ञानिक के नाते आइन्सटाईन हिन्दू धर्म के इस सिद्धान्त पर भी विश्वास करते थे कि जगत माया है, एक स्वप्न है और मानते थे कि इसे गणित और विज्ञान के द्वारा सिद्ध भी किया जा सकता है। अपने अन्तिम दिनों में वे इसे सिद्ध करने का भी प्रयत्न कर रहे थे। अपने देहावसान से कुछ दिन पहले एक पत्रकार ने भेंट के अन्त में एक वृक्ष को दिखाकर उनसे पूछा- क्या कोई पूरी सच्चाई के साथ कह सकता है कि यह वृक्ष ही है?

आइन्सटाईन ने उत्तर दिया- यह स्वप्न भी हो सकता है सम्भव है तुम कुछ भी न देख रहे हो।

इसी प्रकार विश्वविख्यात गणितज्ञ हेनरी पाइन केयर का कहना था कि वे लगातार पन्द्रह दिनों से यह सिद्ध करने के लिए प्रयत्न कर रहे थे कि जिस फल की कल्पना उन्होंने की थी वह निरूपम है पर उन्हें सफलता नहीं मिल रही थी। एक शाम कड़ी कॉफी पीने के बाद उनके दिमाग में विचार काफी तेजी से आने जाने लगे। पर एक स्थिर हल उस रात सपने में सूझा जिसे उन्होंने प्रातः उठते ही लिख लिया।

मैंने पाया है कि गणित की जटिल समस्याओं का हल मनोयोग और चिन्तन से नहीं मिलता। ऐसी जटिल समस्या का हल ताजा और सशक्त दिमाग अनायास ही कर देता है। उच्चतम् बोध की स्थिति में रहने वाला अवचेतन मन इस सफाई से समस्याओं का हल प्रस्तुत करता है कि बस आप देखते रह जाते हैं।

हेनरी के इस उदाहरण के सन्दर्भ में हम यह कहना आवश्यक समझते हैं कि यदि आप भी ऐसे अथवा इस प्रकार के हल की आशा अवचेतन मन से रखते हैं तो आपके लिए चेतन मन को भी उससे पूर्व सक्रिय करना आवश्यक है। लेकिन

कैसे? चित्त की एकाग्रता से। जैसे कड़ी काफी पीने से हेनरी का अस्थिर चित्त एक क्षण के लिए स्थिर हो गया। समझ गये न।

शरीर विज्ञान और चिकित्सा विज्ञान में नोबेल पुरस्कार विजेता डॉ० आहो लोहवी को एक रात स्नायविक आवेगों के संचरण से संबंधित एक सिद्धान्त योगनिद्रा के सपने में दिखलायी दिया। जागने पर उसी सिद्वान्त को उन्होंने कागज पर लिख लिया और अपनी प्रयोगशाला में चले गये। वहां उन्होंने सिद्धान्त के अनुसार एक मेढक पर प्रयोग किया। आगे चल कर वही प्रयोग उनके विश्वविख्यात रासायनिक सिद्धान्त का आधार बना।

कहने का तात्पर्य यह है कि विज्ञान का क्षेत्र हो, दर्शन का क्षेत्र हो, साहित्य का क्षेत्र हो अथवा हो अध्यात्म का क्षेत्र। मनुष्य का अवचेतन् मन सदैव ज्ञात अज्ञात रूप से प्रेरणा देता रहता है। वह किसी भी समस्या पर हल प्रस्तुत करे। इन समस्याओं की रूपरेखा और उसकी कृति कभी भी अस्पष्ट नहीं होती।

उच्चतम् बोध की स्थिति और काव्य कला साहित्य आदि से संबंधित कृतियां अनगिनत काव्य कृतियाँ, कहानियाँ, नाटक और उपन्यास जिनका जन्म उच्चतम् बोध के गर्भ से हुआ था इसके जीते जागते प्रमाण हैं। कार्लजुंग ने इस संबंध में ठीक ही कहा है प्रत्येक श्रेष्ठ कलाकृति स्वप्न के समान ही होती है अश्लिष्ट, प्रयत्क्ष और सुगम।

स्वप्न यह कभी नहीं कहता है कि ऐसा करो और ऐसा न करो। यह भौतिक निद्रा के स्वप्न की बात है। स्वयं वह अपनी व्याख्या नहीं करता। उस संबंध में जो भी परिणाम निर्धारित करने होते हैं, हमें ही करने पड़ते हैं। इसीलिए हर कलाकृति की व्याख्या हर कोई अपने-अपने ढंग से करता है। इस दिशा में हमारी जो खोज है उसके अनुसार जहां तक हम समझते हैं कि कलाकार, साहित्यकार, काव्यकार, गीतकार आदि के निजी सपनों में से जन्मी कृति का सच्चा अर्थ जानने के लिए हमें उसी दृष्टि से देखना होगा और इसलिए उसके स्वप्न को अपना बनाकर उसे उसी ढंग से अपने मानसपटल पर उभार लेना होगा। एक असहाय व्यक्ति की तरह उसी ढंग से उसे रूप युक्त होने देना होगा, जिस ढंग से असहाय कलाकार ने उसे अपने सामने स्वप्न में साकार होते देखा था और जिस स्थिति से वह स्वयं इस प्रक्रिया का एक माध्यम बन कर रह गया था। यही प्रक्रिया प्रत्येक कलाकार के भाग्य का उसी के सृजनात्मक शक्ति का निर्णय करती है। कवि गैट ने स्वप्न का निर्माण नहीं किया था। स्वप्न ने कवि गेटे का निर्माण किया था और

यही कारण है कि स्वप्न की तरह व्यक्ति निरपेक्ष होते हुए भी प्रत्येक महान कलाकृति प्रत्येक दर्शक को गहरे ढंग से छूती हुई प्रभावित करती है।

हम और हमारी कृतियाँ- सन् १९५० ई० से २००८ ई० की दीर्घ अवधि में हमने क्या-क्या लिखा? किन-किन विषयों पर लिखा? किन-किन पत्र-पत्रिकाओं में मेरी रचनाएं और मेरी कृतियां छपी। हमने अबतक कौन-कौन सी पुस्तकें लिखी और कौन-कौन विषयों पर लिखी हमें स्मरण नहीं है इसलिए कि उन कृतियों की रचना हमने नहीं की है। उन सब ने मेरी रचना की है। उन समस्त पुस्तकों को हमने नहीं लिखा है। उन पुस्तकों ने मेरा निर्माण किया है। मारण पात्र, कुण्डलिनी योग, तीसरा नेत्र, तंत्रम् (शीघ्र प्रकाशित) आदि पुस्तकों ने हमारा निर्माण किया है। हमारी आत्मा को प्रकाशित किया है और हमारी चेतना को किया है जाग्रत। आप सम्भवतः आश्चर्य करेंगे। मेरी एक लम्बी कथा है "कालीमठ" और दूसरी लम्बी कथा है "मैं छली गयी"। पाठकगण यही समझते होंगे कि लेखक की कल्पना की लम्बी उड़ान है। कितनी ऊंची और सजीव है उसकी कल्पना। लेकिन बन्धु क्या आप जानते हैं उन दोनों कथाओं के स्वयं हम ही नायक थे। सारी घटनाएं हम पर से ही गुजरी थीं। वैसे तो हम कई बार उच्चतम् बोध की स्थिति में पहुंच जाते हैं और उस अवस्था का सुख ग्रहण कर वापस आपके नारकीय संसार में लौट आते हैं। एक बार ध्यान का अभ्यास करते हुए एकाएक उच्चतम् बोध की स्थिति में पहुंच गये। लगभग चार घंटे बाद वापस वास्तविक स्थिति में पहुंचे। आपको ज्ञात हो कि उन चार घंटों में अपने पिछले किसी जन्म को जीया और जो जीया उसका परिणाम है कालीमठ। इसी प्रकार एक बार हम ध्यान की उच्चतम् अवस्था में थे। आनन्द का अनुभव कर रही थी मेरी आत्मा और उसी अवस्था में एकाएक छलांग लगाकर हम पहुंच गये तीन सौ वर्ष पूर्व जीये हुए जीवन में और जीवन का परिणाम है "मैं छली गयी"। इस प्रसंग में एक बात हम आपको बतला दें और वह यह कि जितनी भी कहानियां हमने लिखी हैं। उनसे संबंधित घटनाएं कुछ तो इसी जन्म में हमारे साथ घटी हैं और कुछ घटी है पिछले किसी जन्म में। अब आप तीसरा नेत्र को ही लीजिए।

लेखक का 'तीसरा नेत्र' एक अद्भुत कृति : हमारी एक पुस्तक है तीसरा नेत्र सम्भवतः पढ़े होंगे। नहीं पढ़े हैं तो अवश्य पढ़ें। इसका कारण है और वह यह कि लगभग तीन सौ वर्ष पहले की बात है। उस समय काशी में एक संन्यासी चातुर्मास व्यतीत कर रहे थे। नाम था स्वामी बृजेन्द्र सरस्वती। हम उनके शिष्य

थे और हम भी संन्यासी थे और हमारा नाम था कौशलेन्द्र सरस्वती। पच्चीस वर्ष की अवस्था में अपने गुरु के साथ हमने पूरे ग्यारह वर्ष हिम प्रवास किया और उस दीर्घकाल में हमने गुरु के साथ पूरे हिमालय की यात्रा की और उस यात्रावधि में हम अनेक उच्चकोटि के कालञ्जयी सिद्ध पुरुषों से मिले। अनेक दिव्य महात्माओं के साथ सत्संग किया हमने। हिमालय के कई गुप्त स्थानों में गये। कई रहस्यमयी गुफाओं में निवास करने वाले महान योगियों का साक्षात्कार किया। चर्मचक्षु से परे कई गुप्त मठों में भी निवास किया और इतना ही नहीं, अनेक योग-तंत्र परक रहस्यमयी गुप्त विद्याओं के अतिरिक्त कई गोपनीय योग तांत्रिक साधनाओं का भी प्राप्त किया हमने अनुभव। परिणामस्वरूप उच्चकोटि की दुर्लभ सिद्धियां भी उपलब्ध हुई हमें।

एक दीर्घ अन्तराल, महासमाधि की अवस्था, नियमानुसार सद्गुरु प्रकट हुए। फिर हमारी आत्मा सिद्ध मण्डली की सदस्य बन गयी और शरीर पुनः उपलब्ध हुआ और सद्गुरु के आदेश के अनुसार पुनः हिमयात्रा की और जिसका परिणाम है तीसरा नेत्र। इस यात्रा में पुनः वे ही महापुरुषगण मिले जो कभी मिल चुके थे हमारी आत्मा से।

अब हम पश्चिम के वैज्ञानिकों और कवि, लेखकों की चर्चा करेंगे इस सन्दर्भ में। कलाकारों के व्यक्तिगत जीवन की विशेषताएं सहायक और बाधक होते हुए भी उनकी सृजनात्मक प्रक्रिया अपरिहार्य नहीं है। कलाकारों के व्यक्तिगत जीवन के अध्ययन से कलाकारों को, विद्वानों को, लेखकों को समझा नहीं जा सकता। कोई भी कला हो, वह एक प्रकार की अन्तर्जात सहज प्रवृत्ति है जो कलाकार को ढकेल कर अपना माध्यम बना लेती है। कलाकार अभिलर्षित ध्येय की पूर्ति में व्यस्त स्वतंत्र व्यक्ति नहीं होता। वह ऐसा असहाय व्यक्ति होता है जो कला के ध्येय की पूर्ति अपने माध्यम से होने देता है। यह सत्य है कि जब चेतना को किसी प्रकार का ग्रहण लग जाता है उदाहरण स्वरूप जैसे स्वप्नावस्था में, नशे की अवस्था में या पागलपन की अवस्था में तो प्रायः वह उभर कर ऊपर आ जाता है। जिसमें मानसिक विकास के आदिकालीन स्तर के सभी प्रकार के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। आपको ज्ञात होना चाहिए कि ऐतिहासिक, पौराणिक और धार्मिक विषयों पर आधारित कलाकृतियों के निर्माण के मूल में वे बिम्ब ही हैं, जो इन अवस्था में उभर कर कभी ऊपर आये थे। इस प्रक्रिया का सुनिश्चित अंश अथवा रूप योगनिद्रा के सपने में सरलता से देखा जा सकता है।

अपने इस कथन अथवा विचार के प्रमाण स्वरूप जुंग ने नीत्शे, दान्ते, बैगनर की कलाकृतियों के अतिरिक्त राइडर हैगर्ड के विश्वविख्यात उपन्यास का उल्लेख किया है। जिसका जन्म और विकास योगनिद्रा के सपनों में हुआ था।

मारण पात्र और हम : हमारे जीवन की सर्वश्रेष्ठ कृति 'मारण पात्र' इसी प्रकार हमारे जीवन में अवतरित हुई। वैसे हमने अपनी पुस्तक में इस प्रसंग का उल्लेख नहीं किया है, लेकिन यहां आवश्यक होने के कारण विवश होना पड़ रहा है। हम एक युवती से प्रेम करते थे और उससे विवाह भी करना चाहते थे। प्रेम प्रसंग अबाध गति से चलता रहा। कभी काशी के किसी घाट पर या किसी निर्जन स्थान पर हम दोनों मिलते। खूब बातें करते। विषय होता कभी साहित्य, कभी कला और कभी होता यात्री कल्पना। मैं कोई लेख लिखता तो उसे सुनाता। वह दत्त चित्त होकर सुनती और फिर गालों पर हाथ रखकर कुछ सोचती और कहती अमुक पंक्ति की भाषा बदल दो न! अच्छा रहेगा। लेकिन जो नियति में लिखा था वही हुआ। नियति कब और किस समय जीवन की धारा को बदल देगी, भला इसे कौन जानता है। प्रेमिका का विवाह कर दिया गया। वह विवश थी और मैं था किंकर्तव्यविमूढ़। अपनी पीड़ा, अपनी व्यथा और अपना दुख किसे सुनाता और उस समय सुनने वाला ही कौन था? आत्महत्या करने की कई बार इच्छा हुई। प्रेमिका के वियोग में प्रेमी ने आत्महत्या कर ली। मैं इस परम्परा का निर्वाह न कर सका। लोग क्या कहेंगे? इसकी चिन्ता नहीं थी। जीवन का मूल्य था मेरे सामने संन्यास लेने की इच्छा हुई। वैराग्य से भर गया था मन। वैराग्य और प्रगाढ़ हो इसके लिए संन्यास आवश्यक समझा मैंने। काशी में एक परम तपस्वी संन्यासी के शरण में गया। वृद्ध थे और अनुभवी भी। एक बार सिर उठा कर मेरी ओर सिर से पैर तक गहरी दृष्टि से देखा उन्होंने फिर उपदेश दिया। इतनी कम आयु में संन्यास. .....संन्यास लेकर करेंगे क्या? किसी मठ में आलसी की तरह पड़े रहना। शरीर के लिए भिक्षाटन करना। क्या लाभ होगा इससे? संन्यास अनिवार्य है, लेकिन उम्र की चौथी अवस्था में।

जीवन का मूल्य समझो। उसका सदुपयोग करो। जीवन एक अवसर है और यह अवसर बार-बार नहीं मिलता। थोड़ा मोह हो गया है तुम्हे। मोह से कभी न कभी मुक्त होता ही है मनुष्य। मुक्त होने पर पश्चाताप के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगता। अपने ऊपर ग्लानि होती है। अपनी मूर्खता का एहसास होता है समझ गये न। अपने मार्ग का निर्माण स्वयं करें। दूसरे के मार्ग पर चलने के बजाय

स्वनिर्मित मार्ग पर चलना श्रेयस्कर है। खूब अध्ययन करो। मोहमाया, आकर्षण आदि से मुक्त होकर चल पड़ो अपने मार्ग पर निर्भीक होकर। सफलता ही सफलता है। फिर अन्त में एक ऐसा भी दिन आयेगा जब तुम संसार के लिए निरपेक्ष हो जाओगे और संसार भी निरपेक्ष हो जायेगा तुम्हारे लिए। संन्यासी का उपदेश धीरे-धीरे उतरता गया अन्तरात्मा में। चरण स्पर्श किया और लौट आया।

फिर दीर्घकाल का अन्तराल। एक दिन प्रेमिका का पत्र मिला, करुणा में डूबा हुआ और भरा हुआ पीड़ा से। मैं आपका हाथ थामना चाहती थी। नियति को शायद यह स्वीकार नहीं था। माता-पिता ने थमा दिया दूसरे से। विवश थी भला कर ही क्या सकती थी। पति रूप में स्वीकार करना ही पड़ा उन महाशय को। शराब खूब पीते थे। एक दिन शराब ने ही विधवा बना दिया मुझे। अब क्या करूं? जीवन तो पहले से ही सूना था अब वह और अधिक सूना हो गया। सोचती हूँअब यह सूनापन दूर होने वाला नहीं है। हो सके तो कभी इस अभागिन को याद कर लिया करें। यह मेरा सौभाग्य ही होगा। वह पत्र क्या था? एक प्रबल आघात था और जिसने छिन्न-भिन्न कर दिया मेरे हृदय को एकबारगी। स्तब्ध हो गया मैं और जड़वत् हो गयी मेरी आत्मा और उसी स्थिति में छलांग लगा कर पहुंच गया मेरा आन्तरिक अस्तित्व परामानसिक चेतना के जगत में जिसका परिणाम है 'मारण पात्र'। 'मारण पात्र' केवल मात्र पुस्तक ही नहीं है। एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व है और वह सम्पूर्ण व्यक्तित्व है मेरा। मेरा जीवन है वह जिसे जीया है मैंने?

यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि हमारा चेतन मन विविध प्रवृत्तियों में पड़ कर जिस भाव को पकड़ नही पाता, उसे हमारा अवचेतन मन स्वरूप चित्त अवस्था में केन्द्रित प्रवृत्ति के कारण सहज ही स्थायी रूप से उपलब्ध कर लेता है।

हमारे चेतन मन में स्मृति भी है और विस्मृति भी है। यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो विस्मृति ही अधिक है। पर अवचेतन मन ऐसा नहीं है। वह स्मृतियों का भण्डार है। चेतन मन की विस्मृति तो अवचेतन मन में सुरक्षित है ही इसके अतिरिक्त पिछले न जाने कितने जन्मों की संस्कारजन्य स्मृतियाँ भी उसमें विद्यमान है। इसी प्रकार भविष्य में घटनाओं का भी लेखाजोखा तो है ही और इसके साथ हम मरने के बाद कहां जन्म लेंगे? हमारा जीवन कैसा होगा? उस जीवन में हम क्या-क्या करेंगे? इन सब बातों का भी संकलन उसमें है इसमें सन्देह नहीं।

चिरनिद्रा : पिछले प्रकरण में चिरनिद्रा की चर्चा मैंने मृत्यु के रूप में की थी। चिरनिद्रा वास्तव में आत्मा की निद्रा है। आत्मा जब सो जाती है तो हम उसे

मृत्यु कहते हैं और कालान्तर में जब वह चिरनिद्रा से जागती है तो सब कुछ बदला सा रहता है शरीर भी और जीवन भी, समाज परिवार भी और नाम रूप भी पिछले जन्मों का कुछ रहता है अपने मौलिक रूप में वह है मात्र संस्कार अच्छा भी और बुरा भी। वर्तमान जन्म में मनुष्य अपने पिछले कई जन्मों के संस्कारों को लेकर जीता है। वे संस्कार वही होते हैं जो जीवन में क्रियान्वित नहीं हुए होते हैं। एक ही जीवन में कई मोड़ आते हैं। कई बार जीवन की धारा बदलती है। करना चाहते हैं कुछ और हो जाता है कुछ। सोचते विचारते क्या हैं और हो जाता है क्या? इसी को हम 'नियति' कहते हैं। नियति के सामने सभी को झुकना पड़ता है। चाहे वह कोई भी हो, ईश्वर ही क्यों न हो। नियति को दूसरे शब्दों में अव्यक्त भी कहते हैं। अव्यक्त अथवा नियति का अर्थ है 'जिसका अस्तित्व है' लेकिन उस अस्तित्व से हम परिचित नहीं हैं। उससे परिचित होते हैं उच्चतम् स्थिति को उपलब्ध सिद्ध योगीगण ही। भगवान श्रीकृष्ण योगेश्वर थे। योग के साक्षात् रूप थे। वह नियति के रहस्य से परिचित थे। अव्यक्त कब किसके जीवन को बदल देगा इस रहस्य को जानते थे वे। तभी तो वे महापुरुष हर समय मुस्कुराते ही रहते थे। वास्तव में योगियों का मन्द-मन्द मुस्कुराना अपने आपमें एक रहस्य है।

चार प्रकार के संस्कार : पहला है भावजन्य संस्कार- हमारे मन में कोई भाव उत्पन्न हुआ। लेकिन किसी कारणवश विचारशक्ति के रूप में परिवर्तित न हो सका। किन्तु वह भाव अपने स्थान पर बराबर बना रहेगा। उसी जन्म में अथवा अगले किसी जन्म में वह अवसर देख कर विचारशक्ति के रूप में परिवर्तित हो ही जायेगा इसमें सन्देह नहीं।

दूसरा है इच्छाजन्य संस्कार- आपके मन में कोई इच्छा उत्पन्न हुई, लेकिन वह पूरी नहीं हुई। बस समझिए वह इच्छा, भले ही बड़ी हो या छोटी तत्काल उसका संस्कार बन जाता है और वह संस्कार अवसर खोजने लगेगा अपने को साकार करने के लिए।

तीसरा है मनोजन्य संस्कार- अपने मन में कोई कामना की, कोई संकल्प किया। कोई योजना बनाई। कोई काम करने के लिए सोचा और वह साकार नहीं हुआ यदि हुआ भी तो अधूरा ही। अब वह मनोजन्य संस्कार बन गया। अवसर देखेगा और अवसर मिलते ही कर्म में नियोजित हो जायेगा। रही बात अवसर की वह इसी जन्म में उपलब्ध होगा अथवा अगले किसी जन्म में। यह निश्चित नहीं।

चौथा है आत्मजन्य संस्कार- जिसका संबंध सीधा आत्मा से समझना चाहिए।

तीर्थ यात्रा, देव दर्शन, तप, तपस्या, साधना, उपासना आदि आत्मजन्य संस्कार है। जिसे मनोरथ कहते हैं। मनोरथ का आविर्भाव आत्मा में होता है तीर्थयात्रा का मनोरथ है। पूरा नहीं हुआ या हुआ भी तो अधूरा। देव दर्शन का मनोरथ है। पूरा हुआ भी तो अधूरा। साधना, तप-तपस्या और साधना करने का मनोरथ है अभिलाषा है। पूरी नहीं हुई और हुई भी अधूरी, संस्कार बन गया। वह संस्कार भी अवसर खोजेगा। मिल गया तो ठीक। नहीं तो अगले किसी जन्म में। मानव जीवन में जो अकस्मात् परिवर्तन हो जाते हैं उसके मूल में संस्कार ही है एकमात्र।

नर्क क्या है? : वैसे तो अपनी पुस्तक 'आवाहन' में इस संबंध में विस्तार से लिखा है मैंने। यहां प्रसंगवश संक्षिप्त में बतला देना आवश्यक है कि मृत्यु कैसी भी हो? तत्काल उसका परिणाम होता है आत्मा का गहन अन्धकार में प्रवेश। जिस अन्धकारों से आप परिचित है, वैसा अन्धकार नहीं है वह। बिल्कुल प्रगाढ़, चिपचिपा और भयप्रद। उस अन्धकार का प्रभाव इतना गहरा होता है कि पिछले जन्मों की सारी स्मृतियाँ एकबारगी नष्ट हो जाती है। हाँ! संस्कारों का सारांश अवश्य रहता है आत्मा में विद्यमान।

जैसा कि मैंने ऊपर बतलाया है चिरनिद्रा के विषय में उसके अनुसार मृत्यु एक चिरनिद्रा है। एक गहन और निर्विचार निद्रा। सोने की तरह सोये। जो घबड़ाहट थी, जो बेचैनी थी और जो थोड़ा बहुत शारीरिक मानसिक कष्ट था वह सोते ही चिरनिद्रा में प्रवेश करते ही एकबारगी समाप्त और समाप्त होते ही शरीर अपने आप छूट गया और जागे तो दूसरे शरीर में फिर नया जीवन और उस जीवन से सम्बन्धित सब कुछ नया-नया। एक शरीर के अलग होने और दूसरे शरीर को उपलब्ध होने के बीच की यात्रा। वह यात्रा क्या है? वह यात्रा है उसी तिमिराच्छन्न गहनतम् अन्धकार की यात्रा। अन्तहीन यात्रा बिल्कुल एकांकी और शून्य से भरी हुई। उस अज्ञात यात्रा में आत्मा के पास होता है स्वनिर्मित वासना शरीर। जिसको प्रेत शरीर कहते हैं और ऐसी आत्मा को कहते हैं प्रेतात्मा। वासना शरीर में मन रहता है लेकिन इन्द्रियां नहीं। इसलिए मन में भरी वासनाओं की पूर्ति प्रेतात्माएं मनोनुकूल किसी जीवित व्यक्ति की इन्द्रियों द्वारा करती हैं।

यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो वह गहनतम् अन्धकार ही नर्क है। 'नर्क' का सरल अर्थ है 'न' यानि 'नहीं और 'अर्क' यानि सूर्य। सूर्य और सूर्य का प्रकाश जिस स्थान पर नहीं है वह स्थान 'नर्क' हैं।

नर्क के दो भाग हैं। पहले भाग को तो नर्क लोक कहते हैं और दूसरे भाग

को कहते हैं पितर लोक। वैसे दोनो भाग गहन अंधकारमय है लेकिन पितर लोक में एक वर्ष में पन्द्रह दिन सूर्य उदय तो नहीं होते लेकिन सूर्य का प्रकाश अवश्य होता है। पितर लोक में वे प्रेतात्माएं निवास करती हैं जिनकी वासनाएं सत्वगुणी मिश्रित रजोगुणी हैं। नर्क लोक की निवासिनी प्रेतात्माएं तो पूर्णरूप से तमोगुणी वासनाओं में डूबी हुई रहती है। यही दोनों में अन्तर है। इसी अन्तर के कारण आश्विन मास के आस-पास जब सूर्य सिंह राशि में होते हैं। तब आश्विन मास के कृष्णपक्ष में पितरलोक में केवल पन्द्रह दिन प्रकाश होता है। जिसे 'पितृपक्ष' कहते हैं। उस समय पितरगण जागते हैं और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने परिवार के सदस्यों से याचना करते हैं। यदि उनकी याचना पूरी नहीं हुई तो कुपित होकर अपने परिवार के लोगों को परेशान करते हैं, तरह-तरह के कष्ट देते हैं, उत्पीड़न करते हैं। रोग-शोक उत्पन्न करते हैं। परिवार के किसी सदस्य को मारकर अपने पास बुला लेते हैं और उसे यातना देते हैं इसलिए पितर पक्ष में श्राद्ध-ब्राम्हण भोजन और दान का विधान है ताकि पितरगण प्रसन्न रहें, कल्याणकारी भावना रखें अपने परिवार के प्रति। नर्क लोक और पितर लोक में मृतात्माएँ कब तक निवास करेंगी? इसका लेखा-जोखा कहीं नहीं है। इसी प्रकार प्रमाणित रूप से यह भी ज्ञात नहीं है कि दोनों लोक हैं कहाँ, पृथ्वी पर या पृथ्वी के बाहर।

चिरनिद्रा में जागने पर : कोई भी निद्रा क्यों न हो उसमें स्वप्न तो आयेगा ही। चिरनिद्रा का भी अपना स्वप्न होता है। प्रेतात्माएं भी स्वप्न देखती हैं। उनको स्वप्न के रूप में अपना पिछला जन्म दिखलायी देता है। उनके जीवन की जो मुख्य घटनाएं होती हैं वे चलचित्र की तरह बिल्कुल साफ दिखलायी देती है। कुछ घटनाएं सुख देने वाली होती है तो कुछ दुख देने वाली भी होती है। प्रायः दुख और सन्ताप देने वाली घटनाएं ही अधिक दिखलायी देती है। जिनको देखकर प्रेतात्माएं अत्यन्त दुखित होती हैं, रोती हैं। पश्चाताप करती हैं कि ऐसा जघन्य अपराध मैंने कैसे किया? ऐसा पाप क्यों किया? कैसे किया और किसलिए किया? तब उसके समझ में आता है कि जीवन कितना मूल्यवान है और कितना सुन्दर है? कैसे गंवा दिया मैंने इतना सुन्दर जीवन? मारपीट गाली, गलौज, ईर्ष्या, द्वेष कलह अपने पराये की नासमझी में ही बीत गया पूरा का पूरा जीवन। समय का अच्छा उपयोग भी तो हो सकता था। कहने की आवश्यकता नहीं उस अवस्था में पश्चाताप की आग्नि में जलने के अलावा और कुछ नहीं रहता शेष प्रेतात्माओं के पास। पश्चाताप की अग्नि एक बार जल जाय तो वह कब बुझेगी भला कौन जान समझ सकता है इसे।

जैसे आप निद्रा काल में कोई स्वप्न देखकर जाग जाते हैं और बाद में फिर प्रयास करने पर सो जाते हैं। वैसे ही चिरनिद्रा में भी मृतात्मा बीच में जाग जाती है। उस समय वह अपने चारो ओर जिन विकट परिस्थितियों का अनुभव करता है और कैसे असहनीय वातावरण का उन्हे सामना करना पड़ता है, क्या आप उसकी कल्पना कर सकते हैं? कभी भी नहीं। आप जरा एक ऐसे स्थान के बारे में सोचिए अथवा कल्पना करिये जिसकी जमीन दलदली और कीचड़ से भरी हुई है और चारो ओर गहन अन्धकार फैला हुआ हो और उस चिपचिपे अंधकार से घबड़ाकर आप चारो ओर प्रकाश की खोज में हाथ फैलाएं चींखते चिल्लाते हुए दौड़ रहे हों और आपकी ही तरह उस चिपचिपे अन्धकार में न दिखलायी पड़ने वाले अनगनित लोग भी प्रकाश की खोज में चीखते चिल्लाते और रोते बिलखते हों लेकिन फिर भी उनका अस्तित्व उसी घोर अंधकार में डूबा हुआ हो और आपको दिखलायी न दे रहा हो तो बतलाइए आपको कैसा लगेगा? बस समझ लीजिए यही स्थिति होती है प्रेतात्माओं की नर्क में। मैंने तो इसकी कल्पना करने के लिए कहा लेकिन आपको ज्ञात होना चाहिए कि मैंने अपनी 'रहस्य विद्या' के अन्वेषणकाल में इसी प्रकार की कई प्रेतात्माओं का प्रत्यक्ष आवाहन कर उनसे उनकी इस प्रकार की दयनीय दशा को सुना है और अपनी पुस्तकों में उनका वर्णन भी किया है। इस पुस्तक में भी मृतात्माओं के रहस्यों को अनावृत किया है मैंने।

आन्तर जगत में प्रवेश का द्वार स्वप्न- योग-तंत्र में आत्मा की जितनी भी अवस्थाएं हैं उनमें स्वप्नावस्था को सर्वाधिक महत्व दिया गया है इसलिए कि स्वप्न आन्तर जगत का प्रवेश द्वार है और है एकमात्र साधन।

लेकिन वह स्वप्न नहीं, जो प्रायः हम छिछले रूप में अर्धचेतना की अवस्था में देखते हैं। आपको ज्ञात होना चाहिए कि सपनों में हमारे इस जन्म की स्मृतियां ही नया रूप धारण ही नहीं करती बल्कि पूर्वजन्म की न जाने कितनी स्मृतियां भी कभी-कभी उनमें प्रवेश कर जाती हैं। आप इस पर जरा विचार करिये। पूरब पश्चिम के जितने भी काव्य हैं और हैं जितनी भी कविताएं उनके मूल में स्वप्न ही तो है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि वर्ड्सवर्थ ने कहा है-'काल के कम्पित, धुंधले प्रतिबिम्ब में जो सौन्दर्य होता है। वही काव्य या कविता का मुख्य आधार होता है। अपने समय के महान दार्शनिक और लेखक एलिस भी कहते हैं कि स्वप्न हमें उस अलौकिक सौन्दर्य की झांकी पा लेने देते हैं जो हमारे जीवन के क्षेत्र से निश्चय ही बहुत दूर हैं। 'बाइबिल' एक प्रकार से सपनों का भण्डार ही है। वस्तुतः बाइबिल पूरी तरह सपनों पर ही

आधारित है अभी कुछ समय पूर्व पश्चिम में एक नये धर्म का आविर्भाव हुआ है। जिसका नाम है 'वाहा'। उसका कहना है कि इस सत्य से अवगत होना चाहिए कि ईश्वर के अनगिनत लोक-लोकान्तर हैं। सोते समय आप स्वप्न लोक में पहुँच जाते हैं जो पृथ्वी लोक से सर्वथा भिन्न है। स्वप्न लोक का न आदि है और न तो है अन्त। वह वास्तव में ईश्वर का विलक्षण और रहस्यमय लोक है। प्रत्यक्ष आन्तर ज्ञान के प्रकाश में ही सपनों की वाणी को समझा जा सकता है। यह तो निश्चित है कि विश्व इतिहास की अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाएं इस बात की साक्षी हैं कि सपने मानवता की नियति के निर्णायक रहे हैं और कई बार उन्होंने इतिहास को एक नया मोड़ भी प्रदान किया है।

मानसिक तनाव- मन के दो रूप हैं-चेतन मन और अवचेतन मन। चेतन मन का व्यापार बहिर्जगत से संबंधित है लेकिन अवचेतन मन का संबंध आन्तर जगत से है। लेकिन उस आन्तर जगत में प्रवेश करने की दिशा में सबसे बड़ा बाधक है मानसिक तनाव। आयुर्वेद में इसे मनोरोग अथवा मानसिक रोग कहते हैं और अंग्रेजी में जिसे कहते हैं 'टेन्सन'। टेन्सन जब गहरा हो जाता है तो डिप्रेशन में हो जाता है परिवर्तित। एक बार व्यक्ति डिप्रेशन में चला जाता है तो उससे मुक्त होना असम्भव है। वह व्यक्ति एक जीवित शव के समान हो जाता है। तुलसीदास ने मानस रोग को असाध्य बतलाया है। उनका कहना है कि इस रोग का उपचार केवल भगवान का भजन है।

मानसिक तनाव का मुख्य कारण है तरह-तरह की अनगिनत समस्याएं। प्रायः हम समस्याओं के बोझ को लेकर ढोते हैं। उनके समाधान पर अधिक ध्यान नहीं देते और यही कारण है कि समस्याएं शनैः-शनैः जटिल से जटिल होती जाती है और एक दिन डिप्रेशन का रूप धारण कर लेती है। समस्या पर अधिक विचार न कर उसके कारण पर और उसके समाधान पर सोच विचार करना चाहिए। निश्चय ही उसका हल हो जायेगा इसमें संदेह नहीं।

मानसिक तनाव से बचने का पहला उपाय है कि आप कम से कम लोगों से जुड़ने का प्रयत्न करें। उन्हीं लोगों से जुड़े जो आपसे बड़े हों, बुद्धिजीवि हों धार्मिक प्रवृत्ति के हों, उनके विचारों में गम्भीरता हो, व्यर्थ की बातें न करते हों। प्रसन्न चित्त हों। दूसरा उपाय है नकारात्मक विचार वालों से दूर रहिए। अपने स्वार्थ की बात करने वाले से भी अलग रहिए। अधिक बात करने और समय का ध्यान न रखने वालों से दूर रहिए। विपरीत परिस्थितियों से बचने का बराबर प्रयत्न

करिए। मन में सकात्मक भाव रखिए। कम से कम बोलिए। आवश्यकता से अधिक न खर्च करिए, न बोलिए और न तो लोगों के बीच रहिए। कोई भी काम करने के पहले उस पर खूब सोच विचार कर लीजिए। परिणाम भी सोच लीजिए। कम से कम कुछ समय एकान्त में मौन.बैठ कर ध्यान करिए। अपनी समस्या अथवा अन्य किसी की समस्याओं को लेकर किसी के घर मत जाइये। टेन्शन की स्थिति में भी मत जाइये। आप जानते हैं क्या होगा! आपको टेन्शन की स्थिति में देख कर अन्य लोग भी प्रभावित हो जायेंगे। उनकी भी मानसिक स्थिति डावांडोल और बोझिल होने लग जायेगी। आपकी चिड़चिड़ाहट और मुँह लटका कर उदास बैठना भी वातावरण को खराब कर सकता है। अन्य लोगों के कामों को भी प्रभावित कर सकता है। आप जितना तनाव कम करते जायेंगे उतना ही स्वप्न के माध्यम से आन्तर जगत में प्रवेश भी करते जायेंगे। यह परम उपलब्धि तो है ही इसके अतिरिक्त तनाव मुक्त रहने पर आपमें कार्य करने और सोच विचार की क्षमता भी बढ़ जायेगी। अच्छे-अच्छे विचार मन में आने लगेंगे। कामों में मन लगने लगेगा। प्रसन्न रहने लगेंगे। उत्साह भी बढ़ेगा। अपने आपमें आप हल्कापन, प्रफुल्लता और स्फूर्ति का भी अनुभव करने लगेंगे। तनाव मुक्त होकर तो देखिए आप। इस प्रसंग में आपको यह बतला दूं कि जीवन के पच्चीस वर्ष की आयु से लेकर पैंतालिस की आयु तक मेरा अपना समय अत्यन्त व्यस्त रहा था। अनेक प्रकार की समस्यायें मेरे सामने थी जिनके कारण तनावग्रस्त रहने लगा था मैं। उससे मुक्त होने का मैंने स्वयं एक दो रास्ता निकाला। एकान्त में ध्यानस्थ बैठ जाता था और कल्पना करता था कि हरिश्चन्द्र घाट के श्मशान में मेरी चिता जल रही है और उस चिता को जलती हुई देख कर सोचने लगता- क्या है इस संसार में मेरा? शरीर भी तो अपना नहीं है। शरीर कब धोखा दे जायेगा कोई निश्चित नहीं है। आज सभी अपने लगते हैं कल सभी छूट जायेंगे शरीर के साथ मुझसे! ऐसी और ऐसी बहुत सी बातें सोचने लगता मैं उस अवस्था में।

कहने की आवश्यकता नहीं इससे से भारी सफलता मिली मुझे। आज भी तनाव मुक्त हूँ मैं। और तभी तो आज आपको मेरी पुस्तकें पढ़ने को मिल रही हैं। जो मेरे तनाव मुक्त होने का ही प्रमाण है।

स्वप्न और योग- सन् १९७०-७५ ई. के काल में पारलौकिक जगत के रहस्यमय विषयों से संबंधित अन्वेषण दृष्टि से मध्य प्रदेश के जंगलों और नर्मदा के तटवर्ती इलाकों में भटक रहा था मैं। कई सन्त मिले, कई सिद्ध महात्माओं के दर्शन

हुए। उसी समय के आसपास 'दैनिक नवभारत' नागपुर के सभी संस्करणों में मेरी योग-तंत्रपरक लेख माला प्रकाशित हो रही थी। मेरे पाठकों में एक पाठक थे स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती। भ्रमण काल में उनसे मेरी भेंट हुई वैतूल और आम्ला इलाके के जंगलों में। उनकी कुटिया थी वहां। अवस्था साठ पार कर चुकी थी। हँसमुख, मिलनसार स्वभाव, गौर वर्ण, आकर्षक व्यक्तित्व। कुल मिलाकर एक सन्त के सभी लक्षण थे स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती में। जिस लेखमाला को वे पढ़ते थे उसका लेखक उनके सामने खड़ा है तो उठकर मुझे गले लगा लिया उस सन्त ने और जब मुझे यह जानकारी मिली कि स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती ने काशी में रहकर विद्याध्ययन किया है और उच्च पुलिस अधिकारी भी रह चुके हैं और किसी विशेष कारणवश त्याग पत्र देकर संन्यास ले लिया था, तो मेरी दृष्टि में उनका और महत्व बढ़ गया। स्वामीजी का आध्यात्मिक अध्ययन काफी गहरा था। यह समझते देर न लगी थी मुझे। उनका कहना था कि निद्रा और सुषुप्ति के बीच का समय है वह है सपना। सपना वास्तव में हमारे संस्कारों का प्रतिबिम्ब है। जिसमें अतीत की लम्बी श्रृंखलाएँ होती है। उसकी व्याख्या कर अपनी आवश्यकता के अनुसार उससे मनोनुकूल कार्य लिया जा सकता है। मैंने कहा- ध्यान संबंधी योग ग्रन्थों में कई ध्यानात्मक विधियाँ बतलायी गयी हैं। जिनकी सहायता से मनुष्य अपने सपनों का रहस्य जान सकता है और उसका अर्थ भी समझ सकता है। उसे साकार भी कर सकता है। मैंने विषय को आगे बढ़ाते हुए स्वामीजी से कहा- 'योग' स्वप्न को विज्ञान की श्रेणी देता है। इस बात में कोई सन्देह नहीं कि जब योग अनुभूति की बात करता है तो अन्ततः इसका आशय 'स्व' की पहचान या ईश्वर की अनुभूति होती है। जब हम भगवान की किसी मूर्ति के सामने बैठ कर एकाग्रचित्त से ध्यान करते हैं तो वह भी एक प्रकार का सपना ही समझा जायेगा। मेरी बात सुनकर स्वामीजी जरा मुस्कुरा कर बोले- बन्धुवर! इसका मतलब यह है कि कोई व्यक्ति अपनी प्रेमिका को लेकर मधुर कल्पना करता है। कोई अपने भावी जीवन को लेकर योजना बनाता है। कोई अपने व्यापार अथवा नौकरी को लेकर सोच-विचार करता है। इसी प्रकार कोई व्यक्ति कोई आधार लेकर कल्पना करता है तो क्या वह भी सपना ही समझा जायेगा ? हाँ! मैंने उत्तर दिया, उसे दिवा स्वप्न कहेंगे। इस प्रकार की सोच, दिवा स्वप्न के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं।

स्वामी ब्रह्मानन्द एक योगी थे इसमें सन्देह नहीं। स्वप्न को लेकर मेरी योग दृष्टि पर मुझसे कुछ विशेष जानना चाहते थे। मैंने उनका आशय समझते हुए कहा-

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यदि सपने शुद्ध, स्वच्छ और स्पष्ट हैं तो ईश्वर भी उसे साकार करने में सहयोगी होता है। तंत्र-योग का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। त्रिपुरा रहस्य में इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। यह सत्य है कि दृढ़ निश्चय ही पुराने संकल्प को भुला देता है। नया संकल्प पूरी दृढ़ता के साथ करना चाहिए। व्यक्ति को नए और प्रभावशाली अनुशासन के लिए मस्तिष्क पर से पुराने धब्बों को अच्छी तरह से धो देना चाहिए। यह एक सूत्रीय अवधारणा है और इसे किसी प्रकार रोका नहीं जा सकता। स्वामी ब्रम्हानन्दजी ने कहा- मैं आपके इस विचार से सहमत हूँ।

मैंने अपने विषय को आगे बढ़ाया- ऐसी शक्ति से सभी बड़ी चीजों को प्राप्त कियां जा सकता है इसे करने के लिए तंत्र शास्त्र एक साधारण से रहस्य की बात करता है और वह रहस्य है एकाग्रता। वह तो यहां तक कहता है कि कल्पना 'निश्चय' के समान है। आप अपने सपने की कल्पना करिए, उसे रंग, गहरायी और एकाग्रता दीजिए। जैसे आप थ्री. डी. में देख रहे हों। मैंने आगे कहा- आधुनिक तकनीक एन.एल.पी. इसी आधार पर काम क़रती है। इसमें भी प्रत्येक सपने या महत्वाकांक्षा को पूरी गहरायी के साथ स्पष्ट रूप से मन के संसार में देखा जाता है। इसे मस्तिष्क में बार-बार दोहराना चाहिए। जिससे कि आपको इस दिशा में काम करने में सहायता प्राप्त हो। किसी सपने को साकार करने का पहला चरण है उसके प्रति पूर्ण एकाग्रता का होना। यही वह रास्ता है, जो साधारण लोगों को भी प्रसिद्धि दिलवाता है। उदाहरण के लिए जैसे आपका सपना है कि 'मैं' उच्चपद प्राप्त करूं। तो आपको चाहिए कि उस उच्चपद को प्राप्त करने की दिशा में पूर्णरूप से चित्त को एकाग्र कर दें। एकाग्रता को साधें। आपको अवश्य सफलता मिलेगी इसमें सन्देह नहीं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि सपनों में ऐसी स्पष्टता होनी चाहिए कि ईश्वर भी आपकी सहायता करने के लिए विवश हो जाये। मैं स्वयं अपने जीवन की एक बात बतला रहा हूँ वह यह कि मैंने अपनी हिमालय यात्रा का प्रारम्भ इस दृढ़ संकल्प के साथ शुरू किया था कि मुझको प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से निवास करने वाले साधु सन्त महात्मा और सिद्ध साधक योगीगण अवश्य मिलेंगे। मैं अपने इस सपने के प्रति पूर्ण एकाग्रता साधकर यात्रा पर निकला था। सफलता मिली और मैंने 'तीसरा नेत्र' पुस्तक भी लिखी उस यात्रा के सन्दर्भ में। अब योग की बात लीजिए। आयु के अनुसार आसन और प्राणायाम का नियमित अभ्यास सपनों को साकार करने के लिए आवश्यक अनुशासन की नींव रखने में सहयोगी

सिद्ध होते हैं। प्राणायाम मस्तिष्क पर नियंत्रण रखने के लिए व्यवहारिक रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि श्वास वह डोर है जो मस्तिष्क की भटकती पतंग पर नियंत्रण रखती है। आपने आयु के अनुसार योग चर्चा की है- स्वामी ब्रह्मानन्द ने प्रश्न किया मैंने?

हाँ! आपको ज्ञात होना चाहिए कि- 'योग' हर युग में और हर काल में रहा है और है भी लेकिन युग और काल के अनुसार उसमें परिवर्तन भी होता रहा है। योग साधना के लिए चार बातें आवश्यक हैं- आयु, वातावरण, समय और स्वास्थ्य। इन चारों में इन युग और काल के अनुसार बराबर परिवर्तन होता रहता है। रामायण काल में योग का जो स्वरूप था वह महाभारत काल में नहीं था। जो महाभारत काल में था, वह वर्तमान युग में 'न' के बराबर है। इतना प्रदूषण है, इतना कुपोषण है, इतनी मिलावट है, इतनी नकली सामग्री है इतना तनाव है कि आप हजार क्या एक लाख व्यक्ति में से एक या दो को ही पायेंगे स्वस्थ और वह भी पूर्ण नहीं। अब आप ही बतलायें कि योग में सफलता मिलेगी। आज तो मरने के लिए भी समय नहीं है तो क्या आसन और प्राणायाम के लिए निकाल सकेगा कोई समय? क्या योग के नियमों का पालन कर सकेगा कोई? यह प्रश्न है विचार करिये। आपके कहने का तो यही अर्थ निकलता है कि फिर कोई योगाभ्यास करे ही नहीं- स्वामीजी बोले। नहीं! ऐसा तो मैंने नहीं कहा। योगाभ्यास करिये, लेकिन उपर्युक्त चारों बातों पर ध्यान रखते हुए करिए। कौन मना करता है?

प्राणायाम मस्तिष्क को नियंत्रित करता है। तनाव उत्पन्न होने नहीं देता। आपके मस्तिष्क में अच्छे और शुभ विचारों का उदय हो, इस कार्य में सहायक सिद्ध होता है। **'आसन'** आपको अपने सपनों का पीछा करने के लिए आवश्यक शारीरिक बल देता है। तब कहीं जाकर **प्रत्याहार** (इन्द्रिय संयम), **धारणा** (एकाग्रता) और **ध्यान,** इन केन्द्रीय शक्तियों को आधार बना कर अपना काम करते हैं। मैंने स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती से कहा योग के पंचांगों पर पूरे बारह वर्ष नियमित रूप से अभ्यास किया। जिसका परिणाम यह हुआ कि एकाग्रता सध गयी। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह जीवनपर्यन्त सधी रहेगी।

क्या इसका प्रमाण आप दे सकते हैं ? स्वामीजी बोले- हाँ! क्यों नहीं। मैंने कहा- बाहर देखिए। बारिश होने ही वाली है जोर-शोर से। ठीक कहते हैं स्वामीजी बाहर निकल कर बोले- आंधी पानी दोनों अपने-अपने वेग में आने वाले हैं। नहीं आयेंगे। न आंधी आयेगी और न तो पानी ही बरसेगा महाराज। बूंदे अवश्य गिरेंगी।

यह कैसे कहते हैं आप। अपनी एकाग्रता के बल पर। और ऐसा हुआ भी। न आंधी आयी और न तो बरसे बादल। इस प्रसंग के अन्त में मुझे इतना ही कहना है कि मस्तिष्क के नकारात्मक विचारों का सचेत प्रत्युत्तर प्रतिपक्ष भावना कहलाती है। यह प्रतिपक्ष भावना हमें अपने सपनों को साकार करने के लिए प्रेरित करती है। तब ईश्वर हमारी सहायता करता है।

योगनिद्रा आध्यात्म की परम उपलब्धि– स्वामी ब्रह्मानन्द को क्रियापरक योग का ज्ञान था। ज्ञानपरक योग का नहीं। 'योगनिद्रा' के संबंध में पीछे संक्षिप्त में प्रकाश डाला गया है। स्वामी ब्रह्मानन्द ने इस संबंध में मेरे विचार और मेरी धारणा को जानना चाहा। उनकी जिज्ञासाओं का समाधान करते हुए मैंने कहा- योगनिद्रा, वास्तव में एक शक्तिशाली आध्यात्मिक अभ्यास है। अपने संकल्प की अनुभूति को योगनिद्रा के साथ जोड़कर आप अपने प्रयासों को अधिक प्रेरित कर सकते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि इस प्रक्रिया के दौरान मस्तिष्क के बाएं और दाएं अर्ध गोलार्धों में एक शक्तिशाली सम्बन्ध बन जाता है। यह संबंध सपनों को साकार करने में महत्वपूर्ण कारक है।

प्रयोग– शरीर को ढीला छोड़कर पीठ के बल लेट जाइये। दोनों पैर एक दूसरे से और हाथ शरीर से पर्याप्त दूरी पर हों। हथेलियाँ छत की ओर खुली और आँखे बन्द हों। योग निद्रा शुरू करने से पहले अपना ध्यान आज्ञा चक्र या भ्रूमध्य में केन्द्रित करिए। अपने मस्तिष्क की आँख यानी 'तीसरा नेत्र' में अपने संकल्प को दोहराइए। अपने संकल्प को मध्य में केन्द्रित करिए। फिर अपने मस्तिष्क को शरीर के सभी भागों तक ले जाइए। ऐसा करते समय अपने शरीर के प्रत्येक हिस्से के प्रति सचेत रहिए। यह क्रिया अपने दायें हाथ से शुरू कर सम्पूर्ण शरीर के दायें हिस्से पर करिए फिर समान प्रक्रिया बायें हिस्से में दोहराइए। फिर गले और चेहरे तक आने के पूर्व धड़ पर भी ऐसा ही करिए। एक बार यह प्रक्रिया पूर्ण हो जाने पर अपने तीसरे नेत्र पर आप अपने संकल्प को दोहराइए। ('तीसरा नेत्र' भ्रूमध्य के ठीक ऊपर मस्तक के मध्य में होता है) आदर्श रूप से आपको इसे एक 'विडियो टेप' के रूप में देखना होगा यानी पूरा चित्र पूरी तरह से स्पष्ट और विस्तृत। क्षण विशेष के रंग, गन्ध, वस्त्रों की बनावट, आपके चारो ओर के लोगों के मिजाज सभी कुछ आपके इस मानसिक चित्रण में स्पष्ट होना चाहिए। आपको अपना संकल्प साकार हुए के समान देखना चाहिए। यदि प्रारम्भ में यह चित्रण कठिन लगे तो अपने संकल्प को एक छोटे और सटीक वाक्य के रूप में देखने का

प्रयत्न करें। यह मानसिक चित्रण सफलता के लिए अल्प समय तक है। इस चित्रण में समस्या दो ही परिस्थितियों में आ सकती है। पहली जब आपका मस्तिष्क आपके सपने को साकार करने को इच्छुक न हो और दूसरी जब उसे अस्वीकृत होने का भय हो। अतः अपने मस्तिष्क चित्रण से इन नकारात्मक विचारों पर विजय पाइए। अब आप 'योगनिद्रा' से धीरे से जाग सकते हैं। ऐसा करते समय बैठने के लिए करवट लेने से पूर्व अपने हाथ और पैरों को सामान्य स्थिति में लाइए। यह प्रक्रिया आप जितनी बार चाहें कर सकते हैं ताकि आप अपने सपने के निकट आ सके।

क्या आपने यह अभ्यास किया है? स्वामीजी के इस प्रश्न के उत्तर में मैंने कहा- एक दो बार नहीं, पूरे चार वर्ष लगातार किया है और साठ प्रतिशत तक ही मुझे सफलता मिली है।

स्वप्न और ज्योतिष- स्वप्न और ज्योतिष का भी कोई आपसी संबंध है- यह दूसरा प्रश्न था स्वामीजी का। हाँ है। ज्योतिष में स्वप्न और सकुन को भारी मान्यता दी गयी है। चन्द्रमा को मन, सूर्य को आत्मा और लग्न को शरीर माना गया है। स्वप्न का संबंध हमारे अचेतन मन से जुड़ा है। चन्द्रमा सपनों के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण ग्रह माना गया है। ज्योतिष पूर्वजन्म को मान्यता देता है। हमारी आत्मा पर पिछले कई जन्मों के संस्कार और घटनाएं साथ लगी हुई है। जिनका रहस्य कई बार सपनों के माध्यम से परिलक्षित होता है।

अमेरिका में सैकड़ों अनुसंधानशालाएं ऐसी हैं जिनमें स्वप्नों के सम्बन्ध में नाना प्रकार की खोजें एवं प्रयोग चल रहें हैं। लगभग साठ केन्द्रों का संचालन तो अमेरिका की सरकार ही कर रही है। यहां हजारों व्यक्ति ऐसे हैं जो रात-रात भर जागकर स्वप्न सम्बन्धी परीक्षण करते हैं और दिन में अपनी नींद पूरी करते हैं परन्तु अभीतक वे ऐसे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचे पाये हैं जिसके आधार पर वे कह सके कि स्वप्नों का भविष्य की घटना से किस प्रकार सम्बन्ध जुड़ जाता है। भारतीय दार्शनिकों का मत स्वप्न विज्ञान के विषय में पाश्चात्य विद्वानों से कुछ भिन्न है। उन्होने जीवन की समस्याओं को सुलझाने के लिए स्वप्नों को उपयोगी बताया है।

स्वप्न द्वारा शुभ-अशुभ ज्ञान : प्रत्येक मानव के जीवन में तीन अवस्थायें होती हैं। जाग्रत, सुषुप्ति और स्वप्नावस्था। जाग्रत अवस्था में सांसारिक पदार्थों को अपने नेत्रों द्वारा प्रत्यक्ष देखते हैं और सभी इन्द्रियां सक्रिय रहती हैं। सुषुप्ति अवस्था में मानव निद्रा को प्राप्त कर लेता है और पुनः जब वह उठता है तो चैतन्य रहता है अपने कार्य के लिए और तीसरी अवस्था स्वप्नावस्था है। इस अवस्था में मानव

सोता तो जरूर है किन्तु अनुभूति होती रहती है कि जो कुछ वह कर रहा है वह उसके साथ प्रत्यक्ष घटित हो रहा है और जागने पर उसका कोई अस्तित्व नहीं रहता। जब कालान्तर में शुभ और अशुभ घटनायें जिन्हे मानव स्वप्न में देखता है जब वह घटित हो जाती है तब उसे स्वप्न की बात सत्य मालूम पड़ती है। कभी-कभी स्वप्न जाग्रत अवस्था में घटिंत हो जाता है उसे पूर्वाभास या दिवास्वप्न कहते हैं। स्वप्नों की व्याख्या अथवा वर्णन हमारे वैदिक और अन्य धर्मग्रन्थों मे मिलती है और स्वप्न शब्द का प्रयोग शास्त्रों में निद्रा के लिए किया गया और आगे चलकर निद्रा की अवस्था में विषय वस्तु स्वप्न कहा जाने लगा और शोध के बाद शुभाशुभ फल का संकेत प्राप्त होने लगा और स्वप्नों के लक्षण के अनुसार शुभ-अशुभ फलकारक और फलविदित निर्रथक स्वप्न के तीनों भेदों में इसका विचार होने लगा।

आयुर्वेद के प्रसिद्ध विद्वान और ऋषि आचार्य सुश्रुत ने अपने ग्रन्थ में स्वप्न पर वृहद विश्लेषण किया। ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। वेदों में प्रशस्त सामवेद में भी वृहद वर्णन मिलता है। शास्त्रों के अनुसार जब ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां सहित जीव का मन सब कार्यों से खाली हो जाता है और वह विश्राम के लिए जाता है उस समय उसे नाना प्रकार के स्वप्न दिखलायी देते हैं। इससे यह प्रगट होता है कि इन्द्रियां और मन के निष्क्रिय अवस्था में मस्तिष्क की चैतन्य शक्ति की क्रियाओं का नाम ही स्वप्न है। वे क्रियायें जीव के नियंत्रण की बाहर की होती हैं। आयुर्वेद के अनुसार वात, कफ, पित्त इन तीनों धातुओं के वैषम्य से अनेक प्रकार के स्वप्न दिखलायी पड़ते हैं। संक्षेप में स्वप्न के विषय में वर्णन किया मैंने। लेकिन तंत्र में स्वप्नेश्वरी देवी की साधना का वर्णन मिलता है। वैसे है तो विकट साधना लेकिन प्रसंगवश मैं यहां संक्षेप में वर्णन कर रहा हूँ।

साधक जब अपनी साधना की पूर्णता के नजदीक पहुंचता है उसके फल आदि को जानने के लिए अथवा अपने पिछले जन्म में साधक रहा है या नहीं और भविष्य सम्बन्धी अन्य बातें जानने के लिए तब वह स्वप्नेश्वरी देवी की साधना करता है। जिससे उसकी शंका निर्मूल हो सके।

स्वप्नेश्वरी देवी स्वप्न जगत की अधिष्ठात्री देवी हैं। यह स्वप्न जगत की देवी हैं। बिना इनकी अनुकम्पा से भूत-भविष्य और अन्य बातें जानना सम्भव नहीं है। इसलिए प्राचीन काल में तंत्र की गुप्त साधना में स्वप्नेश्वरी देवी की साधना मुख्य मानी जाती थी। मंत्र के साथ-साथ यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि मंत्र के

पहले इष्ट का ध्यान किया जाये और फिर मंत्र जप करें। स्वप्नेश्वरी देवी का ध्यान इस प्रकार है- देवी स्वर्ण आभायुक्त नीलवर्ण सहस्त्र कमल दल पर विराजमान हैं। उनके चार हस्त हैं। ऊपर के दोनों हाथों में नील कमल पुष्प हैं और बायें हस्त में स्वर्ण पात्र है उसमें ऊर्जा निःसृत हो रही है जो कि स्वप्न ऊर्जा का प्रतीक है। दायां हस्त वरद मुद्रा में है उनका स्थान नील आकाश है।

स्वप्नेश्वरी नतस्तुभ्यं फलाय। मम सिद्धिमंसिद्धि वा स्वप्ने सर्व प्रदर्शनः।।

साधक रात्रि में स्वच्छ होकर सोते समय २१ बार उक्त मंत्र का जप कर माँ का स्मरण करे तो उसके सोने में ही उसका उत्तर मिल जायेगा और शुद्ध और निष्काम प्रश्न का ही उत्तर मिलता है। उसी प्रकार भैरव तंत्र में भैरव मंत्र है उसे भोजपत्र में लिख कर तकिये के नीचे रखने से प्रश्न का उत्तर मिल जाता है। खैर, यह तो हो गयी स्वप्न की बात। अब सामान्य सगुन-असगुन पर विचार कर लेना चाहिए।

मनुष्य जब चाहे स्वप्नों के द्वारा अपना भविष्य ज्ञात कर सकता है। इसके लिए उपाय भी बताया है कहा गया है कि जब कोई ऐसी समस्या सामने आ जाए जिसका समाधान समझ में न आ रहा हो तो उस प्रश्न को स्वच्छ सफेद कागज पर साफ-साफ अक्षरों में लिख लें और प्रश्न लिखा कागज सिरहाने रखकर सो जायें। इसमें सन्देह नहीं कि स्वप्न में उसे अपने प्रश्न का सही उत्तर अवश्य मिल जायेगा। मैं यहां एक बात बतला देना चाहता हूँ कि जो सामान्य स्वप्न दिखायी देते हैं उन सबका फल तत्काल नहीं मिलता। किस प्रकार का स्वप्न कितने समय पर फलित होगा इसका विधान हमारे शास्त्र में किया गया है। उसके अनुसार जो स्वप्न रात्रि के प्रथम प्रहर में देखा जाता है वह छः मास बाद फलित होगा। तीसरे प्रहर में देखे गये स्वप्न का फल तीन मास बाद प्राप्त होता है। जो स्वप्न रात्रि के चौथे प्रहर अर्थात अन्तिम प्रहर में देखा जाता है उसका फल एक मास के अन्दर ही मिल जाता है। सूर्य निकलने के बाद जो स्वप्न दिखायी देता है उसका फल दस दिन के अन्दर मिल जाता है। भारतीय स्वप्नवेत्ताओं ने स्वप्न को दो कोटियों में विभाजित किया है-शुभ स्वप्न तथा अशुभ स्वप्न। उसके अनुसार यदि स्वप्न में निम्नलिखित वस्तुएं दिखायी दे तो स्वप्न का फल शुभ होता है- राज्य, राज परिवार का कोई सदस्य, गुरु, ब्राह्मण, ज्योतिषी, देव मूर्ति, देव मंदिर, राज सिंहासन, अप्सरा अथवा गंधर्व, देवोपसना, महात्मा, सौभाग्यवती स्त्री, पुष्प लिए हुए व्यक्ति, बालक-बालिकाएं, चन्द्र, नक्षत्र, श्वेत वस्त्र या श्वेत पुष्प, गौ, बैल, हाथी, सिंह, श्वेत वस्तुएं जैसे चांदी के

बर्तन, दूध, दही, चावल, रूई, झण्डा, पताका सहित रथ, कमल, समुद्र या गंगा में स्नान, विवाह, फल वाले वृक्ष, तोरण, तीर्थयात्रा, मुर्दा, धन की प्राप्ति, सर्प, संगीत मण्डली, बंधन से मुक्ति, विशाल भीड़, अश्वारोहरण, पुस्तक आदि देखना शुभ समझा जाता है। यदि स्वप्न में निम्न कार्य भी किये जायें तो शुभ होता है- दूसरों को मिठाई खिलाना, किसी स्त्री से प्रेम निवेदन करना, तैरना, दुष्ट या शत्रु को दण्ड देना, शर्बत पीना या पिलाना, शरीर का बढ़ना, छाता लगाना, दूध पीना, पहाड़ पर चढ़ना या उड़ते हुए देखना, भाषण देना, सवारी करना, लेखन कार्य करना, दुर्ग पर विजय प्राप्त करना, घर से बाहर मुर्दे को मुस्कुराते हुए देखना।

यदि स्वप्न में निम्न वस्तुएं दिखे तो अशुभ फलदायी होता है- राक्षस, दुष्ट व्यक्ति, प्रलय, सूर्य या चन्द्र ग्रहण, भूत-प्रेत, जलती हुई चिता, सूखा या कांटेदार वृक्ष, सुनसान जंगल। यदि स्वप्न में निम्नलिखित कार्य हों तो भी फल अशुभ होता है- किसी के द्वारा अपमानित होना, भयभीत होना, पसीना आना, फांसी लगाना, जंगली जानवर पर सवारी करना, मिष्ठान या गुड़ खाना, घी लेना, शरीर पर कीचड़ लगाना, एक्सीडेन्ट होना, सिर के बालों या दांतों का गिरना, खाली पात्र लेकर इध ार-उधर भटकना, लाल, काले या मैले कपड़े पहनना, सांपों के साथ खेलना या सांप का पेट में घुसना, आंधी आना, आंधी में उड़ना या पानी बहना, दक्षिण दिशा की यात्रा करना, कीचड़ में फंस जाना, तालाब का सूखना, चोरी करना अपने घर में चोरी हो जाना, परनारी या परपुरूष से बलात आलिंगन करना, पहाड़ का टूटना या पहाड़ पर से नीचे गिरना। जो अशुभ फल दिखायी देते हैं उस पर हमारा किसी भी प्रकार से नियंत्रण नहीं होता है लेकिन हमारे स्वप्नवेत्ताओं ने कुछ उपाय बताये हैं- १. जब अशुभ स्वप्न दिखायी दे तो उसके बाद जाकर काम में नहीं लगना चाहिए, बल्कि एक बार फिर सो जाना चाहिए। इस प्रकार नींद आ जाये तो आंख खुले और स्वप्न याद रहे तो बिना किसी संकोच के सो जाना चाहिए। २. अधिक से अधिक व्यक्तियों को स्वप्न सुनाने से उसके अशुभ फल की तीव्रता कम हो जाती है। ३. ऐसा स्वप्न गुरुजनों या ब्राह्मणों को सुनाकर उनका आर्शीवाद प्राप्त करना चाहिए। अब कुछ आगे के विषय में चर्चा कर लें।

वह रहस्यमय साधक- स्वप्न के विषय में इतना कुछ वृहद चर्चा हुई लेकिल एक घटना जो मेरे जीवन को एक बार झकझोर दिया चूंकि वह घटना स्वप्न से जुड़ी है इसलिए यहां प्रसंगवश वर्णन करना उचित समझा मैंने।

यह घटना सन् ६५ के समय की है। उस समय मैं घोर साधना में रहता था।

सारे संसार को भूलकर बस साधना करता रहा। विकट से विकट घटनायें घटीं, अद्भुत अनुभव हुए जिनका यदाकदा मैं अपनी पुस्तकों में वर्णन करता रहा हूँ। मैं अपने साधना पूजा और अन्य कार्य से निवृत्त होकर जब सोता था। जब भी मैं गहन निद्रा अवस्था में रहता था तब ज्यादातर एक ही स्वप्न देखता था। खजुराहो जैसा भव्य मंदिर और उसके पास एक शिव मंदिर है। उस मंदिर से सटा किसी साधक का स्थान, जटाजूट दाढ़ी, गौरवर्ण, कषाय वस्त्र, गले में रूद्राक्ष और अन्य रंग की विभिन्न प्रकार की मालाएं पहने एक युवा साधक खड़ा है। ऐसा लग रहा है जैसे वह मुझे बुला रहा है या कुछ कहना चाह रहा है। तभी मेरी नींद अचानक से खुल जाती और सोचता रहता कि यह साधक कौन है? क्यों मुझसे सम्पर्क करना चाहता है?

मैं साधना के द्वारा भी कोशिश करता लेकिन सफलता नहीं मिलती। इसका क्या रहस्य है मेरी समझ के परे था। चूंकि खजुराहो मंदिर को देखा है लेकिन वहां ऐसा कुछ भी नहीं है जैसा कि मुझे स्वप्न में अक्सर दिखता था।

संयोगवश एक दिन मेरे परिचित जो शिक्षक थे रमाकान्त जोशी। परिचित के साथ मेरे पाठक भी थे उन्हे जब भी समय मिलता मेरे पास चले आते और योग, तंत्र पर अपनी जिज्ञासा व्यक्त करते और समाधान चाहते। एक दिन आकस्मिक उनका आना हुआ। चर्चावश मैंने अपने स्वप्न के बारे में उनसे जिक्र किया तो वे बोले- अरे यह स्थान तो मेरा देखा हुआ है। बोलिए आपको क्यों जानना है और यदि जाना है तो मैं व्यवस्था करा दूंगा। वहां मेरे काफी परिचित के लोग हैं। बस फिर क्या था। जाने की व्यवस्था हो गयी। मैंने उनसे स्वप्न के विषय में नहीं बोला कि जो स्वप्न में साधक को देखा था बस उसी से मिलने जा रहा हूँ और बस यही सोच रहा था वह साधक सशरीर होगा। किसी क्रिया द्वारा मुझसे सम्पर्क करना चाहता है। मेरी सबसे बड़ी कमजोरी यही है कि जहां पता चलता किसी साधु-संन्यासी के बारे बस मैं चल देता लेकिन पहली बार स्वप्न के माध्यम से मुझसे कोई साधक सम्पर्क करना चाहता है तो मेरी उत्सुकता और भी बढ़ गयी।

रमाकान्त जोशी के परिचित थे। नाम था श्रीराम शर्मा। पता था छत्तीशगढ़ जिला कवर्धा। इस समय वर्तमान में क्या नाम है पता नहीं। उस समय कवर्धा के नाम से जाना जाता था। बस अगले सप्ताह रमाकान्त जोशी से पता और पत्र एवं साथ में कुछ आवश्यक सामान लेकर निकल पड़ा। काफी कष्टप्रद यात्रा रही लेकिन जिद थी कि पहुंचना है। बस स्टेशन पर उतरा। आगे का रास्ता भी बस द्वारा तय

कर नियत स्थान पर पहुंचा। पता पूछने पर कठिनायी नहीं हुयी। श्रीराम शर्मा सेवानिवृत्त शिक्षक थे पता तुरन्त मिल गया। घर पर पहुंचा तो देखा कि आधा कच्चा और आगे का कुछ भाग पक्का था। दरवाजा खटखटाया तो एक अधेड़ व्यक्ति ने दरवाजा खोला गंजी और लुंगी पहने, आंखों में काली फ्रेम का मोटा चश्मा, पकी हुई दाढ़ी, छोटे-छोटे कम बाल, देखने से ही विद्वान प्रतीत हो रहे थे। प्रश्न भरी नजरों से मुझे नीचे से ऊपर तक देखा। कुछ बोलना चाहा उसके पहले ही मैं बोल पड़ा- अपना नाम बतलाया और बोला मैं काशी से आया हूँ और तुरन्त पत्र थमा दिया उनके हाथों में। पत्र पढ़कर काफी प्रसन्न हुए। तत्काल कमरे के अन्दर ले गये। मैं काफी थका था। उन्होने पहले स्नान और चाय पान की व्यवस्था की। रमाकान्तजी के बारे में पूछा और जब उन्हे पता चला कि मैं लेखक हूँ खोजी प्रवृत्ति का हूँ तो काफी प्रसन्न हुए। बोले- क्या जानना चाहते हैं? मैंने स्वप्न वाली बात छुपाकर यही कहा कि मैं यहां कोई प्राचीन मंदिर और महल है बस देखने की इच्छा है यही उत्सुकता मुझे यहां खींच लायी है।

श्रीराम शर्मा बोले- मेरा तो यहीं पूरा जीवन बीता। वह तो यहीं पास में है। उसे छोटा खजुराहो भी कहते हैं। चलिये सायंकाल हो रही है आप थोड़ा आराम कर लें। रात्रि के खाने की व्यवस्था करता हूँ। बस मैं हूँ और मेरी बूढ़ी पत्नी है। एक बेटा है बम्बई चला गया है वहीं नौकरी करता है। रिटायर्ड हो गया हूँ पेन्शन मिलता है और थोड़ा बहुत मेरा बेटा मनिआर्डर भी कर देता है। उसी से जीवन चल रहा है। जीवन का अन्तिम समय बस हम दोनों यहीं बिताना चाहते हैं। बेटा बुलाता है लेकिन इच्छा नहीं करती जाने की। लेकिन एक चीज मैंने अनुभव की वह यह कि कमरे में साफ-सफाई कम थी। उनकी पत्नी शायद अन्दर थीं क्योंकि उनकी आवाज नहीं सुनायी दी मुझे। आगे बोले कमरे में दो चौकी थी उसमें पुरानी दरी बिछी थी, सामने टेबिल पर दो चार किताबें और लालटेन थी। लालटेन होने की वजह से कम रोशनी थी। चारो तरफ सांय-सांय कर रहा था। होली के बाद गया था मौसम हल्का गरम था। हवायें अपनी गति से चल रही थीं। श्रीराम शर्माजी अन्दर गये शायद रात के खाने की व्यवस्था के लिए। बस यूं ही मैं पुस्तकें पलटने लगा। ऐसा लगा पुस्तक काफी समय से छुयी भी नहीं गयी है।

धूल से भरी थी। खैर, मैंने यही सोचा कि शायद गांव होने की वजह से खुली जगह में धूल आंधी आदि तो चलती ही रहती होगी।

मुझे नींद कहां आने वाली थी। आधे घण्टे बाद पण्डितजी का दर्शन हुआ।

हाथों में दो थाली लिये हुये थे जिनमें स्वादिष्ट खाना था। खाना खाने के बाद हाथ धोने के लिए जब मैं बाहर निकला तो अन्धेरा हो रहा था लेकिन आश्चर्य की बात तो यह है कि अन्दर से खाना बनने की खुशबू या किसी प्रकार की आवाज नहीं आयी। मैंने ध्यान नहीं दिया बस हाथ धोकर चुपचाप सामने वाली चौकी पर बैठ गया। पण्डितजी भी आराम से बैठ गये और कहना शुरू किया- शर्माजी जिस स्थान को आप देखना चाहते हैं वह स्थान तो काफी मनोरम है लेकिन गांव वालों का कहना है कि अमावस की रात में या पूर्णिमा की रात में वहां से अजीब-अजीब आवाजें आती हैं। कम ही लोग जाते हैं लेकिन वहां एक शिव मंदिर है। गांव वालों का विश्वास है कि भगवान शंकर की पूजा करने से गांव में शान्ति रहेगी। वर्ष में दो बार वहां मेला भी लगता है लेकिन शाम होते-होते सभी लोग वापस आ जाते हैं। कभीकदा कोई भक्त पूजा करने चला जाता है। रिटायर्ड होने के बाद खाली होने की वजह से अक्सर मैं भी चला जाया करता था। लेकिन एक ऐसा हादसा मेरे साथ हुआ तो फिर कभी जाना नहीं हो सका। मैंने पूछा- कौन सा हादसा लेकिन वो टाल गये।

लालटेन की पीली रोशनी कमरे में फैली थी लेकिन अन्धकार को कम करने में नाकाम थी। जब मैंने पण्डितजी की आंखों में देखा तो उनकी आंखों में काफी सूनापन था जीवन्त नजर नहीं आ रहा था। एकबारगी मेरा मन भय से कांप गया। लेकिन करता क्या इस अनजान जगह में पण्डितजी के अलावा मुझे कोई जानता भी नहीं था। पता नहीं क्यों मेरे अन्दर एक अजीब सा भय व्याप्त होने लगा। परन्तु पण्डितजी का इसका आभास नहीं होने दिया।

खैर, पण्डितजी ने जो कथा सुनायी वह काफी विलक्षण थी। चूंकि वे उस स्थान को देखे थे और उसके इतिहास को भी जानते थे इसलिए वहां जाने से पहले मैं सारा कुछ जानना चाहता था।

पण्डितजी ने बतलाया कि आप जहां है वहां से तेरह किलोमीटर की दूरी पर वह भव्य मंदिर है और राजा का महल यहां पर भोरमदेव मंदिर के नाम से जाना जाता है। वहां पहुंचने का रास्ता काफी बीहड़ है। चारो तरफ जंगली पेड़-पौधे हैं, कच्ची पगडण्डी है और काफी उतार चढ़ाव, खेत खलिहानों के बीच से रास्ता है लेकिन मार्ग के दोनों ओर दूर-दूर तक फैली पहाड़ियां, वन और खेत एक ऐसा सुन्दर प्राकृतिक दृश्य उपस्थित करती हैं कि आपका मन मोहित हो जायेगा और आप भोरमदेव मंदिर कब पहुंच जायेंगे पता ही नहीं चलेगा।

मैंने पूछा कि इतने घने जंगल और पहाड़ी के बीच मंदिर और महल बनवाने का क्या रहस्य है। पण्डितजी बोले- मुझे लगता है कि राजा के गुरु एक विकट साधक थे उन्ही के निर्देश पर शायद यह मंदिर बना होगा लेकिन इसका क्या रहस्य है आज तक किसी को पता नहीं है। जो किवदन्तियां हैं वे यह सुनने को मिलती हैं वह भी काफी अलग है, पहले मैं मंदिर के बारे में कुछ बतला दूं।

यह मंदिर ऊंचे और पहाड़ी स्थल पर एक प्राकृतिक तालाब के पास स्थित है। इसके चारो ओर ऊंची दीवारें बना दी गयीं हैं यह भी एक रहस्य है। उस जमाने में अन्दर क्या होता था किसी को पता नहीं रहता था। प्रवेश द्वार से आपको मंदिर की ऊंचाई का पता लगेगा। इतना ऊंचा और भव्य मंदिर आस-पास की दीवारों पर उभरी एक-एक आकृति आपके दिल और दिमाग को सोचने को कर देगी विवश। इस मंदिर के पास कामकला का प्रदर्शन क्यों? पत्थर पर बड़ी ही खूबसूरती से तरासी गयी नर और नारी की नग्न आकृतियां जो आपके सामने एक प्रश्न चिन्ह खड़ा कर देगी। लेकिन अन्वेषण और शोध के अभाव में प्रामाणिक इतिहास अभी तक उपलब्ध नहीं है।

यहां मंदिर की दीवारों पर पुरूष और नारी का मिलन और विभिन्न आसनों को दर्शाया गया है जोकि तंत्र की एक विशेष मुद्रा को दर्शाता है। इसे तांत्रिक साधना की अभिव्यक्ति माना जाता है। लोग इसे ब्रह्म और शक्ति या पुरूष और प्रकृति का मिलन मानते हैं। खास बात यह है शर्माजी कि उन मूर्तियों जो पुतलियां हैं विवेचकों का मत है कि यह शारीरिक नहीं आध्यात्मिक और ब्रह्मानन्द की अभिव्यक्ति का प्रतीक है। पण्डितजी बोले कि शर्माजी इन मूर्तियों को देखने से किसी भी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं होता बल्कि एक अजीब सी आध्यात्मिक शान्ति का होता है अनुभव। लेकिन खास बात तो यह है कि मूर्ति के नीचे पता नहीं किस भाषा में मंत्र और निर्देश लिखें हैं।

भोरमदेव के मंदिर का बाह्य आवरण उस समय की अपनी कला का उत्कृष्ट श्रेणी का था तथा इसे खजुराहो के मंदिर से तुलना की जा सकती है। मैंने मन ही मन सोचा खजुराहो तो मेरा घूमा हुआ है। काफी समय बिताया वहां पर लेकिन खजुराहो जैसा दूसरा मंदिर मैं अपने जीवन में कहीं नहीं देखा। कहां नहीं भ्रमण किया लेकिन जो मंदिर पण्डितजी बतला रहे थे वह मंदिर मेरे स्वप्न से काफी मिलता जुलता है। बस यही सोच रहा था कि कब सवेरा हो जल्दी से जल्दी वहां पहुंच कर और अपनी आंखों से देखकर उसका आनन्द प्राप्त कर सकूं। उस साधक से भी

मिलने की इच्छा प्रबल होती जा रही थी और साथ ही साथ यह भी सोचे जा रहा था कि जैसा पण्डितजी बतला रहे हैं वह साधक कैसे नितान्त और सुनसान वातावरण में रहता होगा।

खैर, रात्रि काफी हो गयी थी। दिन भर का थका था और पण्डितजी भी थक गये थे। आगे की चर्चा कल होगी यह कहकर मैं सोने चला गया। लेकिन रात्रि के तीसरे पहर में मेरी नींद अचानक खुली प्यास लगी बगल में लोटे में पानी रखा था उठकर पानी पिया और सामने की तख्त पर मेरी नजर गयी तो एकबारगी चौंक पड़ा मैं। पण्डितजी का तख्त खाली था सोचा इतनी रात में पण्डितजी कहां गये होंगे। उठकर देखने की हिम्मत नहीं हुई बस मन मारकर फिर सोने की कोशिश करने लगा। कब सवेरा हो गया पता ही नहीं चला। जब उठा तो देखा पण्डितजी स्नान आदि कर पूजा कर रहे थे।

मैं भी उठा। स्नान आदि कर बैठ गया पण्डितजी के पास। पण्डितजी जब खाली हुए तो कुल्हड़ में गरम-गरम चाय ले आये और थोड़ी ही देर में नाश्ता किया एवं मंदिर निकलने का विचार बना रहा था कि तभी एक गहरी सुगन्ध चारो तरफ फैल गयी। किसी ने दरवाजा खटखटाया। पण्डितजी तुरन्त उठे अपना चश्मा ठीक करते हुए दरवाजा खोला। मैं भी पलट कर देखने की कोशिश करने लगा। देखा दरवाजे के सामने लगभग छः फीट का, गौरवर्ण, घने काले बाल जो पीछे तक फैले थे, घनी दाढ़ी जो काफी नीचे तक लटकी थी, गले में माला और कषाय वस्त्र से लिपटे हुए एक संन्यासी को। मैं झट से उठ खड़ा हुआ यह तो वही परिचित चेहरा है जो अक्सर मेरे स्वप्न में दिखता रहता था। मैं तुरन्त पहचान् गया। मेरे मुंह से एकाएक निकला अरे! आप। मैं तो आपसे ही मिलने आया था। बस मंदिर की तरफ प्रस्थान करने ही जा रहा था। आपको कैसे पता कि मैं यहां पर ठहरा हूँ। वह साध ाक हँसते हुए बोला जब मैं स्वप्न के माध्यम से आपसे काशी में सम्पर्क कर सकता हूँ तो यहां क्यों नहीं......। आप तो मेरे मेहमान हैं। मैं तो आपको ही लेने यहां आया हूँ। मैंने पूछा आपने कैसे मुझसे सम्पर्क किया। बोले मैं कहीं भी किसी से भी सम्पर्क कर सकता हूँ स्वप्नाकर्षणी विद्या द्वारा।

स्वप्नाकर्षणी विद्या का नाम सुनते ही मुझे लगा जरूर यह परम उच्चकोटि का साधक है। खैर, ज्यादा चर्चा नहीं हो पायी। कभी समय मिलेगा तो जरूर स्वप्नाकर्षणी विद्या के बारे में लिखूंगा। लेकिन एक बात मैंने गौर की। उस संन्यासी को देखकर पण्डितजी का चेहरा एकदम सफेद हो गया। वो कुछ बोले नहीं। मैंने

उन्हे प्रणाम किया और जरूरी सामान के साथ टार्च हमेशा अपने साथ रखता था लेकर उस रहस्यमय साधक के साथ चल पड़ा। लेकिन यह सन्तोष रहा कि जिससे मिलने मैं इतनी दूर से आया था खोजना नहीं पड़ा। मुलाकात हो गयी। जब पलटकर देखा तो पण्डितजी का दरवाजा बन्द हो गया था। खैर मैंने ज्यादा ध्यान नहीं दिया और उस संन्यासी के साथ पगडण्डी के रास्ते चल पड़ा। एक बात मैं जरूर गौर कर रहा था कि जो भी ग्रामीण मिलते केवल मुझे देखते आश्चर्य भरी नजरों से और किसी का भी ध्यान उस आकर्षक संन्यासी पर नहीं जा रहा था। इसका क्या रहस्य था उस समय मैं नहीं समझ पा रहा था।

धीरे-धीरे गांव, खलिहान छूटता चला गया। अब पगडण्डी संकरी होती जा रही थी। दोपहर का समय था। मेरे मनोभाव को वह संन्यासी समझ गया। हँसते हुए बोला कि घबड़ाये नहीं यदि रात हो जायेगी तो मेरी कुटिया में ठहर जाइयेगा। मंदिर के नजदीक तालाब के पास है मेरी कुटिया। आपकी सुरक्षा की चिन्ता है मुझे। आप एकदम न घबरायें। आप तो खुद साधक हैं। महादेव की नगरी काशी निवासी हैं। मेरा आवश्यक काम है इसलिए मैंने आपको कष्ट दिया। वह काम आप ही कर सकते हैं और कोई नहीं। इसलिए जबतक आप सुरक्षित काशी नहीं चले जायेंगे तबतक मैं आपके साथ ही रहूंगा। उस संन्यासी के बातों से मुझे काफी आत्मिक बल मिला। माँ को स्मरण कर समय के साथ अपने को छोड़ दिया।

संन्यासी आगे बोला- शर्माजी जहां आप चल रहे हैं। वह स्थान तो अपने समय का काफी रहस्यमय रहा है। चौंदहवीं शताब्दि बस्तर राज्य के वंशज राजा गोपाल देव ने वहां से आकर यहां अपना राज्य स्थापित किया था और मेरे कहने पर यहां उन्होने अपने महल के सामने यह मंदिर का निर्माण कराया था। क्योंकि मैं शाक्त साधक हूँ राजा मेरे काफी बड़े भक्त थे। मेरी आज्ञा को शिरोधार्य करते थे। उनका वंश नहीं चल रहा था। मेरे अनुष्ठान पूजा से उनका वंश चलने लगा। एक पुत्र और एक कन्या का जन्म हुआ। वे काफी प्रसन्न थे। दक्षिणास्वरूप यह मंदिर बनवाया। यह मंदिर तंत्र की गुह्य विद्याओं पर आधारित है। अब आप चल ही रहे हैं तो खुद ही देख लीजियेगा। लेकिन चौंदहवीं शताब्दि की बात सुनकर मेरे मन में विचार कौंधने लगे। यह युवा संन्यासी और चौंदहवीं शताब्दि। हो सकता है साधकों की गति मति कौन जाने। मैंने अपने दिमाग पर ज्यादा जोर नहीं दिया। लेकिन सब कुछ रहस्यमय लग रहा था। धीरे-धीरे सूर्य पश्चिम की तरफ सरक रहा था। मुझे मंदिर दूर से दिखने लगा था। काफी मनोरम दृश्य था। सूर्य की आभा

मंदिर के कलश को चमका रही थी जैसे स्वर्ण आभा फूट रही हो।

जब मंदिर के प्रांगण में पहुंचा तो देखा कि भगवान शिव का भव्य शिवलिंग। लगा कि अभी-अभी कोई पूजा करके गया हो। महाकाल के साक्षात् रूप लग रहे थे। मंदिर का गुम्बज काफी ऊंचा था नन्दी विराजमान थे लेकिन मंदिर काफी जीर्ण शीर्ण हालत में था। प्राचीन होते हुए भी भव्यता में कोई कमी नहीं थी। संन्यासी बोला- राजा गोपाल देव नागवंशी शासक थे। वे परम भक्त और शिव के उपासक थे और इनके कुलदेवता शेषनाग हैं। आइए अन्दर चलते हैं। शिव मंदिर के बगल से रास्ता था। आगे बढ़ा और तभी मेरी नजर जगत जननी कालरूपा महाकाली की आदमकद प्रतिमा अट्टहास करती प्रतीत हुयी। उनका विकराल रूप देख कर एकबारगी आत्मा कांप उठी। नीचे बलि वेदी पर सूखे हुए रक्त की मोटी पपड़ी जमी हुयी थी।

संन्यासी बोला- यही मेरी इष्ट हैं आज तक अनवरत् पूजा करता चला आ रहा हूँ। घी का दीपक अपने मन्द-मन्द प्रकाश से उस घने अन्धेरे मंदिर को अपने प्रकाश से भरने की कोशिश कर रहा था। बगल के दूसरे मंदिर में सरस्वती, लक्ष्मी विष्णु की प्रतिमा भी दिखी। संन्यासी बोला- यह आम लोगों के दर्शन हेतु राजन ने बनवाया था जिससे लोगों को शक न हो कि यहां तंत्र की गुप्त साधना चलती है। अब आप अन्दर आइये। देखें मंदिर प्रांगण के दूसरे भाग में जहां काफी अन्धेरा था लेकिन बाहर पर्याप्त रोशनी थी आकाश में। संन्यासी ने जैसे ही उस मंदिर का दरवाजा खोला मेरी आंखे फटी की फटी रह गयी। दरवाजा तो काफी छोटा था लेकिन मंदिर अन्दर से काफी भव्य और बढ़ा था। अन्दर शेषनाग भयंकर मूर्ति थी। ऐसा लगा साक्षात् शेषनाग विराजमान हैं। अन्दर भी दीपक जल रहा था और जो भयानकता को कर रहा था प्रगट। मेरी हिम्मत जवाब देने लगी। संन्यासी हँसते हुए बोला अरे शर्माजी आप तो घबड़ा गये। राजा गोपाल देव को विश्वास था कि उनका वंश नागलोक से है। वे नागवंशी हैं इसलिए वे अपना कुल देवता मानकर रोज सपरिवार पूजा करने आते थे। चूंकि मैं शिव और शक्ति का उपासक था मेरा ज्यादातर समय माँ के चरणो में ही बीतता था। जब हम लोग बाहर निकले तो देखा कि सूर्य धीरे-धीरे अस्ताचल की ओर प्रस्थान कर रहे थे। मंदिर के चारो तरफ काम कला की अद्भुत मूर्ति देखकर मैं एकबारगी खजुराहो को भी भूल गया। इतनी अद्भुत अलौकिक और आध्यात्मिक छवि देखकर स्तब्ध रह गया मैं। तभी मेरी नज़र मंदिर के आगे एक खण्डहरनुमा महल पर गयी। मैं संन्यासी की तरफ देखते

हुए बोला यह किसका महल है। संन्यासी बोला- यह राजा का राजमहल है। ऊपर पहाड़ी पर बना दुर्गनुमा चारो तरफ दुश्मनों से रक्षा के लिए बड़ी-बड़ी दीवारें खड़ी कर दी गयी थी। इस महल का नाम मण्डवा महल था। अब न तो राजा है और न ही उनका वंश। बस यह महल उस समय की याद ताजा करता रहता है और आगे कहना शुरू किया।

राजा गोपाल देव काफी धार्मिक प्रवृत्ति के थे और उन्हे तंत्र में भी गहरी रूचि थी। जब मैं महल के नजदीक पहुंचा वहां की कारीगरी और नक्काशी का बेजोड़ नमूना देखने को मिला। थोड़ी ही देर में अन्धेरा होने लगा। चारो तरफ से अजीब-अजीब सी आवाजें आने लगीं। इस वीरान और घने जंगल में दूर-दूर तक कोई भी नहीं दिख रहा था सिवाय उस संन्यासी के लेकिन वह संन्यासी निर्भीक और शान्त दिख रहा था लेकिन मेरा मन अन्दर से उद्विग्न हो रहा था। मन ही मन लगा सोचने कहां आकर फंस गया, अच्छा खासा अपने घर पर था। पता नहीं माँ की इच्छा क्या है? लेकिन उस संन्यासी में एक अद्‌भुत आकर्षण था। तभी मेरी ओर मुस्कुराते हुए बोला- शर्माजी आइये अब यहां ज्यादा देर रूकना ठीक नहीं है। चारो तरफ अतृप्त आत्मा और जंगली जानवरों का भय है। चलिए पास ही में मेरी कुटिया है आइये। बस इतना कहकर वह आगे बढ़ चला। मैं भी क्या करता बस संन्यासी के पीछे-पीछे चल पड़ा।

थोड़ी ही दूर पर कुटिया नजर आने लगी। हल्की चांदनी रोशनी में चारो तरफ अबूझ सा सन्नाटा। कभी-कभी किसी जानवर या पक्षियों की आवाज भंग कर देती थी वहां के निःशब्द वातावरण को। जब झोपड़ीनुमा कुटिया के अन्दर प्रवेश किया तो देखा कि कुटिया के बीच में अग्निकुण्ड था जो जल रहा था। चारो तरफ पूजा पाठ की सामाग्री फैली थी। बगल में उस संन्यासी का जमीन पर आसन लगा हुआ था। धूप की सुगन्ध और दीपक की रोशनी ने चारो तरफ का वातावरण सम्मोहित सा कर दिया था। कोने में लाल कपड़े के ऊपर कच्ची मिट्‌टी का पात्र रखा था। उसमें रक्त सूख चुका था। मेरी नजर जब उस पर पड़ी तो संन्यासी ने मेरे मनोभाव को पढ़ लिया ऐसा लगा मुझे। संन्यासी हँसते हुए बोला- यही पात्र तो सारे रहस्य का जड़ है। छाया सिद्धी के लिए मैं अपने रक्त से बलि करता था। रात काफी हो गयी है इसकी चर्चा हम लोग बाद में करेंगे। चलिए आप पहले कुछ खा लीजिये। मैंने कहा इस बीयावान जंगल में मेरे और आपके अलावा और कोई है ही नहीं तो भोजन की व्यवस्था कैसे होगी? संन्यासी बोला- शर्माजी बाहर जाइये

जरा हाथ मुंह धो लीजिये। खैर मैं कुटिया के बाहर निकला और हाथ पैर धोकर अन्दर आया तो देखा पत्तल में पकवान भरे पड़े हैं और बड़े से कुल्हड़ में पानी। केवल एक पत्तल लगा था। मैंने पूछा आप नहीं खायेंगे क्या? संन्यासी बोला नहीं मेरी इच्छा नहीं है। मैंने उस समय उसका आशय समझा नहीं। मैं चुपचाप खाना खाया और हाथ धोने बाहर गया एवं जब अन्दर आया तो देखा कि पत्तल, कुल्हड़ गायब था। मैंने ज्यादा ध्यान नहीं दिया। कुटिया का वातावरण काफी बोझिल लग रहा था। ऐसा लग रहा था कि कुटिया के चारो तरफ कोई काली छाया घूम रही हो। मैंने पूछा संन्यासी से कि ऐसा लग रहा है जैसे बाहर कोई है। संन्यासी जरा गम्भीर होकर बोला- शर्माजी वहां कोई नहीं है मेरा छाया शरीर है। मैंने बहुत पहले छाया सिद्धी की थी उसी का फल आज तक भोग रहा हूँ। मैं थोड़ा सकपका गया। क्या आपने छाया सिद्धी की थी। यह तो बड़ी विकट साधना है और काफी त्याग से सिद्ध होती है। यह साधना तो तंत्र में बहुत अच्छी नहीं मानी जाती। हां शर्माजी इस एक गलती ने मेरे जीवन को बदल दिया। बस इसी समस्या के समाधान के लिए मैंने स्वप्नाकर्षिणी विद्या द्वारा आपसे सम्पर्क किया। उसका समाधान आप ही कर सकते हैं और इस सिद्धी से मुक्ती भी।

मैंने कहा- आप तो उच्चकोटि के साधक हैं। अपार सिद्धी है आपके पास मेरे जैसे प्राणी की क्यों आवश्यकता पड़ी। बस यही तो रहस्य है मेरी मुक्ती का मार्ग केवल आप ही प्रशस्त कर सकते हैं। यह केवल काशी के महाश्मशान के पास ही होगा। जहां आप अक्सर जाते रहते हैं। मैं समझा नहीं। संन्यासी ने कहा मेरी मुक्ति काशी में ही हो सकती है नहीं तो मैं भटकता रहूंगा। संन्यासी बात को घुमाते हुए बोला कि मेरा मतलब है कि इस सिद्धी से मुक्ति....। मैं कुछ नहीं बोला लेकिन थोड़ी देर बाद असीब सा वातावरण बनने लगा और उस अद्भुत वातावरण में मैं अपने आपको तरोताजा महसूस कर रहा था। नींद तो कोसो दूर थी। थकान का तो नामोनिशान भी न था। परन्तु पता नहीं अन्दर कहीं न कहीं भय व्याप्त था लेकिन इसका आभास मैं जरा सा भी होने नहीं दे रहा था।

संन्यासी से कहना शुरू किया- शर्माजी कथा काफी रहस्यमय है। चलिए मैं अपनी कथा संक्षेप में सुनाता हूँ उसी से आप अर्थ लगा लेंगे......। मेरे पिता ब्रह्मदत्त एक प्रकाण्ड विद्वान और साधक थे। मेरी माता का बचपन में ही स्वर्गवास हो गया था। पिताजी ने माँ और बाप दोनों का प्यार दिया और धीरे-धीरे साधना की ओर मुझे अग्रसर करने लगे। मेरे पिता राजवंश के कुल गुरु थे। जब यहां महल

बना चूंकि नागवंशी थे इसलिए भगवान शिव का मंदिर भी बनवाया गया जिसे आपने अभी देखा है। लेकिन कालान्तर में राजा की कोई सन्तान नहीं थी और पिताजी काफी वृद्ध हो चुके थे। उस समय मेरी उम्र पच्चीस वर्ष के लगभग थी। पिताजी ने सारा कार्य मुझ पर छोड़ दिया और वे अपनी साधना पूजा आदि में लगे रहते थे। मेरा आना जाना राजमहल में लगा रहता था। नागवंशी राजकुमारी से राजा ने विवाह किया था लेकिन सन्तान न होने के कारण से वे लोग काफी दुखी रहते थे। पिताजी के कहने पर सन्तान प्राप्ति के लिए अनुष्ठान किया। मेरे अनुष्ठान व पूजा आदि से बाद में दो बच्चों का जन्म हुआ। जैसा कि मैंने पहले कहा था कि राजा ने प्रसन्न होकर दक्षिणा मांगने को कहा था तो मैंने दक्षिणास्वरूप माँ काली का मंदिर तंत्रोक्त पद्धति से बनवाने का आग्रह किया। आपने देखा है न माँ जगत जननी की प्रतिमा को। मेरा सारा समय वहीं व्यतीत होता है। धीरे-धीरे मेरा नाम चारो तरफ फैलने लगा। कभी-कभी महाराज और महारानी भी आती थीं। वे लोग काफी प्रभावित थे। महाराज अपने कार्य में व्यस्त रहने लगे लेकिन महारानी अक्सर आ जाया करती थी। उन्हे तंत्र में काफी रूचि रहती। तंत्र पर अक्सर चर्चा चलती। एक दिन काम कला तंत्र पर चर्चा चली। रानी काफी प्रभावित हो गयी और उन्ही के आदेश पर मेरे निर्देशन में मंदिर के चारो तरफ यक्ष-यक्षणी की काममुद्रा में मूर्ति बनवायी गयी। जिसे आपने चारो तरफ देखा। चौरासी आसन की काममुद्रा पर मूर्ति गढ़ी गयी जो अपने आप में अद्भुत है। जब मूर्ति गढ़ी जाती तब अक्सर रानी आ जाया करती और मैं तो रहता ही था। धीरे-धीरे रानी इतनी प्रभावित हुयी और मेरी ओर आकर्षित होने लगी मुझे पता ही नहीं चला कब मैं भी आकर्षित होने लगा।

उस समय मेरे पिता काफी अस्वस्थ थे। वे मंदिर में रहते थे। मैं अपनी कुटिया में रहता था। जहां आप बैठे हैं। एक दिन अचानक रानी मेरी कुटिया में चली आयी और आलिंगनबद्ध हो गयी। मैं भी अपना संयम खो दिया। जो नहीं होना था वो सब कुछ हो गया। जब होश आया तो आत्मग्लानी से भर चुकी थी मेरी आत्मा। शायद रानी को भी पश्चाताप हुआ। उसके बाद काफी समय तक मैंने रानी को देखा नहीं। माँ से अपनी गलती की क्षमा याचना कर साधना में लग गया।

कुछ दिनों तक तो सब कुछ ठीक चलता रहा लेकिन रानी ने मेरे मन और आत्मा में जो आग लगा दी थी। उस आग में मैं अनवरत जलता रहा। एक दो बार मुलाकात भी हुई लेकिन वे नजरें झुका कर चली जाती। ऐसा क्यों हो रहा था यह

तो रानी ही जानती थी। मैं अक्सर साधु वेश में रहता गेरूआ वस्त्र मेरा प्रिय वस्त्र था लेकिन साधक तो था ही क्योंकि मैंने संन्यास दीक्षा नहीं ली थी। मैंने पूछा- आप तो आज भी संन्यासी भेष में हैं। संन्यासी बोला- इष्ट तो माँ काली थी लेकिन दीक्षित गुरु कोई नहीं था। मैंने यही गलती की। यदि अपने पिता को ही गुरु बना लेता और उन्हे ही अपना दीक्षित गुरु मान लेता और उनकी आज्ञा से संन्यास लेता तो आज मेरी स्थिति ऐसी नहीं होती।

मैं बीच में ही बोल पड़ा- संन्यास का क्या तात्पर्य है?

संन्यासी बोला- संन्यास का रहस्य अति गहन है। संन्यास लेने के पहले पत्नी माता-पिता, पुत्र इनमें से कोई एक है तो उनसे आज्ञा लेनी पड़ती है फिर गुरु से। जब गुरु सहमति दे देता है तब संन्यासी बनने के पहले अपना श्राद्ध और पिण्डदान उसे स्वयं करना पड़ता है इसलिए कि वह संसार के लिए मृत हो जाता है। वह समाज और संसार को एक प्रकार से छोड़ देता है और पिण्डदान, श्राद्ध करने से वह सीधे सूक्ष्म शरीर को प्राप्त करता। जैसी साधना वह करता है उसी अवस्था को वह प्राप्त भी करता है शरीर से या सूक्ष्म शरीर से। संन्यास का नियम एक कठोर तप है। कर्म आदि पूरा होने के बाद गुरु द्वारा संन्यास वस्त्र, गुरु मंत्र दिया जाता है। बस वहीं से उसका संन्यास धर्म शुरू हो जाता है। इसीलिए संन्यासियों को जल में प्रवाहित किया जाता है या समाधि बना दी जाती है। इसलिए इष्ट और गुरु का काफी महत्व है। संन्यास धर्म में जो लोग केवल गैरिक वस्त्र पहन लेते हैं और संन्यास के नियमों की अनदेखी करते हैं वह मेरी तरह भटकते रहते हैं।

भटकते रहते हैं मैं समझा नहीं..... लेकिन मेरी बातों को अनदेखी कर संन्यासी आगे कहना शुरू किया। पिताजी द्वारा सारा ज्ञान मिला। गुप्त रहस्यों का पता चला। सारी सिद्धी भी मिली लेकिन वे मेरे पिता थे इसलिए मैं ज्यादा ध्यान नहीं देता था। एक दो बार पिताजी ने कहा जो करना है नियमपूर्वक करो। मेरा क्या है मैं तो कभी भी संसार छोड़ सकता हूँ तुम तो देख ही रहे हो। उस समय मैं उनका आशय समझा नहीं और एक दिन वे गुजर गये। पास ही में उनकी समाधि है। उनके बाद राजमहल के किसी भी पूजा पाठ आदि के लिए मुझे ही नियुक्त कर दिया गया। बेरोक टोक राजमहल में मेरा आना जाना लगा रहा लेकिन रानी का सान्निध्य न मिल पाने की वजह से मेरा मन काफी दुखी रहता था। यहां मैं अपने को काफी विवश मानता था। एक दिन पिताजी का सारा सामान अपने कुटिया में ले गया। कुछ पाण्डुलिपियां भी थी, कुछ हस्त लिखित पुस्तकें भी। ऐसे

ही एक दिन पुस्तक देख रहा था तभी मुझे एक अद्भुत तंत्र ग्रन्थ मिल गया। उसमें विभिन्न प्रकार के तामसिक सिद्धियों के बारे में वर्णन था। उनमें से एक थी छाया सिद्धी। छाया सिद्धी का रहस्य पढ़ा तो काफी प्रभावित हुआ। उसमें लिखा था कि भौतिक शरीर के साथ एक उप शरीर हमेशा जुड़ा रहता है। जिसे छाया शरीर कहते हैं। उस छाया शरीर में आपके अच्छे बुरे संस्कार समाहित होते रहते हैं। एक प्रकार का वह संग्रह होता है। उसे आप आकाशीय शरीर भी कह सकते हैं। मृत्यु के बाद उसी को प्रेत शरीर कहते हैं। मैं बड़े ही मनोयोग से सुन रहा था क्योंकि मेरे खोज का एक विषय था लेकिन उस संन्यासी ने जो रहस्य खोला वह काफी महत्त्वपूर्ण था।

संन्यासी ने आगे कहा- शर्माजी आत्मा स्वतंत्र है वह कोई शरीर का निर्माण नहीं करती। सात शरीर, सात परत की तरह जुड़े रहते हैं। आत्मा अपनी अवस्था के अनुसार शरीर में प्रवेश करती है। छाया शरीर एक प्रकार से प्रेत शरीर है। वह निष्क्रिय रहता है। बस आपके संस्कार उसमें समाते रहते हैं। शरीर छूटते ही प्राण शक्ति तुरन्त छाया शरीर को कर देती है सक्रिय। प्राण ऊर्जा प्राप्त होते ही वही छाया शरीर प्रेत शरीर यानि आकाशीय शरीर को हो जाता है उपलब्ध और आत्मा उसमें प्रवेश कर जाती है। उसी को प्रेत शरीर कहते हैं। वासना क्षय का मतलब यह है कि जब आत्मा भौतिक शरीर के प्रति निराश हो जाती है यानि संस्कार क्षय होने के बाद आत्मा का दूसरा वाहक सूक्ष्म शरीर होता है वह उसमें प्रवेश कर जाती है और जब चाहे तब वह पुनः संस्कार वश जन्म ले सकती है या उच्चावस्था प्राप्त कर कारण शरीर, मनोमय शरीर को हो सकती है उपलब्ध। मैं तो बस सुनता रहा क्योंकि आत्मा के एक नये रहस्य का हो रहा था उजागार।

कुछ देर तक वह संन्यासी शान्त रहा। ऐसा लग रहा था कि वह कहीं विचारों में खो गया हो। उसके चेहरे पर असीम वेदना और पश्चाताप के भाव लहरा रहे थे। रात्रि का अन्धकार अपने चरम पर था। दीपक की हल्की रोशनी चारो तरफ फैलने की नाकाम कोशिश कर रही थी। कुछ देर तक शान्ति बनी रही तभी सन्यासी की आवाज ने उस निःशब्द वातावरण को कर दिया भंग।

संन्यासी ने आगे कहना शुरू किया। छाया शरीर की साधना काफी दुरूह और श्रम साध्य थी शर्माजी। लेकिन मैंने अपने हठ के कारण उसे साधा। पहले दीप छाया सिद्ध किया। फिर चन्द्र छाया उसके बाद जल छाया, सूर्य छाया सिद्ध कर और अन्त में अपनी कुटिया में नग्न होकर दीपक जलाकर अपनी छाया को देखकर अपनी प्राण ऊर्जा उसमें प्रवाहित करने लगा। फिर मुझे धीरे-धीरे आभास होने लगा कि

कोई छाया मेरे पीछे खड़ी है। यह थी पहली शुरूआत। मानसिक रूप से उसे आदेश देता। जैसे किसी को बुलाना होता तो मैं मानसिक रूप से आदेश दे देता तो वह व्यक्ति अपने आप मेरी ओर मुड़ कर चला आता। शर्माजी एक बात तो कहना भूल ही गया। रक्त में सबसे ज्यादा प्राण शक्ति होती है। जब मैं छाया शरीर का कार्य करने लगता तो उसमें अपने रक्त को चढ़ा कर प्राण ऊर्जा देनी पड़ती है। उससे वह और भी जल्दी सक्रिय हो जाता था।

मैंने कहा- छाया शरीर अपने सिद्ध कर लिया कहने का तात्पर्य यह कि जीते जी आपने अपने प्रतिरूप को सिद्ध किया यानि प्रेत शरीर को। संन्यासी बोला प्रेत शरीर तो नहीं कहेंगे वह तो मृत्यु के बाद मिलता है हाँ आप मेरा प्रतिरूप कह सकते हैं। छाया सिद्धी के बाद मैं काफी ताकतवर हो गया। चारो तरफ ख्याति फैलने लगी। कोई कार्य तत्काल कर देता। एक से एक अविश्वसनीय चमत्कार दिखला देता। अब मैंने छाया शरीर के माध्यम से राजमहल में राजा सहित सभी को अपने वश में कर लिया था। रानी भी मेरे वश में हो गयी थी। जो मैं चाहता मेरा मनोरथ पूर्ण होने लगा। मैं वासना और सिद्धी में ऐसा डूबा कि माँ की आराधना तक भूल गया। अपने शिष्यों को सौंप दिया माँ की पूजा पाठ आदि।

लेकिन शर्माजी होनी तो होनी ही थी। मैं यह भूल गया कि जिसे मैं सिद्ध किया हूँ एक दिन मेरे लिए काल बन जायेगी। रक्त बलि के माध्यम से मेरे पांचों शरीरों को प्राण ऊर्जा प्राप्त होने लगी उसे और मैं धीरे-धीरे मैं अस्वस्थ होने लगा। मेरा सारा शरीर रक्तहीन और ऊर्जाहीन होने लगा। चूंकि छाया सिद्धी की सारी विधि पढ़ी थी लेकिन कुछ बातों पर ध्यान नहीं दिया। नारी सुख, धन दौलत सारी सुख-सुविधायें प्राप्त हो गयी थीं लेकिन अब धीरे-धीरे सारा नशा उतरने लगा। पिताजी थे नहीं किससे पूछता। पैंतालिस साल की उम्र में सत्तर साल का लगने लगा। शर्माजी आपको ज्ञात होना चाहिए कि आप जितना खाइये, पीजिये लेकिन अगर आपके शरीर से प्राण ऊर्जा खत्म होने लगे तो शरीर भी आपका साथ छोड़ देता है। आप तो जानते ही हैं कि मृत्यु के पहले शरीर के पांचों प्राण धीरे-धीरे निकल जाते हैं और आकाशीय शरीर यानि प्रेत शरीर में समाने लगते हैं धनञ्जय प्राण की ऊर्जा के साथ आत्मा प्रेत शरीर में प्रवेश कर जाती है। श्राद्ध आदि के बाद ही आत्मा सूक्ष्म शरीर में प्रवेश कर सकती है।

हमारे धर्म शास्त्रों में श्राद्ध का जो नियम है वह काफी महत्वपूर्ण है। उसका मूल्य आज मुझे समझ में आ रहा है। मैं तो गलती पर गलती करता चला गया।

बस आपका ही अन्तिम सहारा है। मैं कुछ बोला नहीं बस उस संन्यासी की अद्भुत कथा सुनता रहा।

संन्यासी बोला- बस स्वप्न के माध्यम से ही आप तक पहुंच पाया। आपने मेरा निवेदन स्वीकर कर यहां तक चले आये यह एहसान मैं कभी नहीं भूल सकता। मैंने हँसते हुए कहा- ऐसी कोई बात नहीं है। मैं तो खोजी प्रवृत्ति का हूँ। संयोग से एक सज्जन आये तभी यहां तक पहुंच पाया और संन्यासी को मैंने यहां तक आने का सारा वृत्तान्त सुना दिया। खुश होते हुए बोला- आप भी माँ का काली के भक्त हैं और मैं भी परम भक्त हूँ। वो मेरी इष्ट हैं और आपकी भी। उन्ही की अनुकम्पा से आपका दर्शन हुआ और मुझे विश्वास है कि मेरा समाधान हो जायेगा।

मैंने बीच में ही बात को काटते हुए बोला- फिर क्या हुआ? आपकी कहानी तो काफी रहस्यमय है। संन्यासी ने आगे कहना शुरू किया। जब मुझे होश आया तबतक काफी देर हो चुकी थी। छाया शरीर के माध्यम से उन प्रेतात्माओं का यहां निवास हो गया। राजवंश पर भी प्रभाव पड़ने लगा। एक दिन आकस्मिक रूप से रानी मृत पायी गयी। चारो तरफ हा-हाकार मच गया। राजा काफी दुखी हुए। मंत्री को राजपाट सौंप कर कुछ दिनों के लिए तीर्थाटन पर निकल गये। विदेशियों के आक्रमण का खतरा होने लगा। इधर मेरी भी स्थिति खराब हो रही थी। रानी के गुजरने के बाद मेरा भी मन विरक्त हो गया। मैं भी वहां से जाना चाहता था लेकिन ऐसा हो न सका।

छाया शरीर का ऐसा प्रभाव मुझ पर पड़ने लगा कि पहले तो वह मानसिक आदेश को मानता था लेकिन अब तो वह भी नहीं हो रहा था। मेरे शरीर के किसी भी हिस्से से अपने आप रक्त निकल जाता। पहले तो मैं बली करता था लेकिन अब तो छाया शरीर अपनी प्राण ऊर्जा को बढ़ाने के लिए स्वतः ही रक्त निकाल लेता है। पहले तो वह पीछे रहता था लेकिन अब धीरे-धीरे काले साये की तरह मेरे सामने दिखने लगा।

शर्माजी चौबीस घण्टे कोई आपके सामने रहे तो आप क्या करेंगे। मैंने बोला कि पीछा छुड़ाने की कोशिश करूंगा। हाँ बस यही विचार मेरे मन में आया। मैंने पुनः उस पाण्डुलिपि को पढ़ा और उसमें लिखा था कि जब साधक प्राण ऊर्जा क्षीण होने लगे तो छाया शरीर को मुक्त कर देना चाहिए। मंत्र के साथ विधि भी लिखी थी। उसमें यह संकेत था कि जिस रक्त पात्र में अपना रक्त तर्पण करता था उस पात्र में पुनः अपना रक्त मंत्र सहित उस अग्निकुण्ड में डाले तो छाया शरीर से

स्वतः मुक्त हो जायेगा।

आप जानते हैं शर्माजी मुझे तो अपने छाया शरीर से पीछा छुड़ाना था इसलिए मैंने पूरी तैयारी की। हवन कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित की और विधिपूर्वक हवन करने लगा। लेकिन ऐसा आभास होने लगा जैसे कोई अनहोनी घटना घटने वाली है। मैंने जैसे ही मंत्र पढ़कर उस रक्त पात्र को उठाया तभी किसी ने मेरा हाथ पकड़ लिया। मैंने देखा कि मेरा ही प्रतिरूप यानि छाया शरीर मेरा गला दबा रहा है। मैंने लाख कोशिश की लेकिन सम्भव न हो सका। संन्यासी थोड़ा शान्त हुआ। फिर क्या हुआ मैंने पूछा। संन्यासी पुनः बोला- आगे की घटना सुनने से पहले आपसे विनती करना है और विधि बतलानी है। उस समय से मेरी मति मारी गयी थी कि मैं तो एक मृतात्मा संन्यासी से बात कर रहा हूँ। खैर मैं अपने को सम्भालते हुए बोला कि आगे की विधि कौन सी है। संन्यासी ने जो विधि बतलायी वह इस प्रकार थी। उसने बोला- पास में समाधि है, वहां से थोड़ी मिट्टी लेकर आप काशी जायें। उसमें से जौ के आटे के साथ पुतला बनाकर यथाविधि पूजन कर संन्यासी श्राद्ध तर्पण कर उस पुतले को गंगा में प्रवाहित कर दें। जिससे मुझे अपने छाया शरीर और यहां फंसी आत्मा दोनों से मुक्ति मिल जायेगी और मैं तत्काल सूक्ष्म शरीर को प्राप्त हो जाऊंगा। आपका काफी उपकार होगा। एक अतृप्त साधक की आत्मा को मिल जायेगी मुक्ति।

एकाएक मैं घबड़ा गया। आप क्या बोल रहे हैं। अभी तो आप जिन्दा हैं मेरे सांमने बैठे हैं। संन्यासी हँसते हुए बोला- आप देख रहे हैं यह हवन कुण्ड और रक्त पात्र यह चौंदहवीं शताब्दि से जल रहा है और मेरी आत्मा उस चौदहवीं शताब्दि से जल रही है। मेरी आत्मा चौंदहवीं शताब्दि के वर्तमान में फंस गयी है। पास ही मेरी समाधि है। क्या आप सशरीर नहीं हैं? संन्यासी बोला अगर मैं सशरीर होता तो मेरा कई जन्म हो चुका होता। आगे कहा- जप हवन के समय छाया शरीर से मुक्त होने के समय में सारी घटना घट गयी। बस मैं वर्तमान काल में फंस गया। न तो यहां से मुक्त हो सका और न ही यहां से निकल पा रहा हूँ। मेरी सीमा इस किले के आस पास तक ही है। यहीं भटकती रहती है।

इतना सुनते ही जैसे मेरे सामने अन्धेरा सा छाने लगा और मैं अपना होश खो बैठा पता ही नहीं चला। जब मेरी आंखे खुली तो देखा कि पूरब की ओर से भगवान भास्कर काफी ऊपर आ चुके थे। नजर घुमा कर देखा तो गाय बकरी चराने वाले चारवाहा मुझे घेरे हुए थे। मेरे मुंह पर पानी का छींटा मार रहे थे। मैंने

पूछा- मैं कहां हूँ? एक व्यक्ति बोला- बाबूजी आप मंदिर के प्रांगण में बेहोश पड़े थे। अच्छा हुआ हम लोगों की नजर पड़ गयी। यहां से बचकर जाना सम्भव नहीं है। हम लोग कभी भी यहां अकेले नहीं आते हैं।

मैं जब उठा तो देखा कि धूल से अटी सीढ़ी के पास मैं पड़ा था। माँ काली की प्रतिमा मेरे सामने थी लगता था कि उन्ही की कृपा से जिन्दा हूँ। अन्दर गया माँ के चरण पकड़ कर आशीर्वाद लिया। ऐसा लगता था कि वर्षों से यहां पूजा नहीं हुई थी। चारो तरफ धूल से अटा था मंदिर का प्रांगण। खैर, मुझे काफी कमजोरी लग रही थी बस किसी तरह उठा चारवाहों ने सहारा दिया। धीरे-धीरे सारी कथा एक के बाद एक मेरे मानसपटल पर उभरती जा रही थी। धीरे से मैंने उन चारवाहों की तरफ नजर करके देखा और पूछा कि यहां पर कहीं झोपड़ी है क्या?

बाबूजी चारो तरफ यहां जंगल है यहां कहां आपको झोपड़ी मिलेगी लेकिन मैंने देखने की इच्छा जाहिर की। सब मुझे पीछे की ओर ले गये। वहां झोपड़ी तो नहीं थी बस एक समाधिनुमा ऊंचा चबूतरा जैसा कुछ बना था जैसा कि उस संन्यासी ने बतलाया था।

मैं कुछ नहीं बोला उन लोगों से बस समाधि को प्रणाम किया। तभी मेरे मानसपटल पर संन्यासी का चेहरा कौंध सा गया ऐसा लगा जैसे वह मुझे देख रहा है और याचना भी कर रहा है। थोड़ी ही देर में मैं पूरी तरह होश में आ गया और रात में घटी घटना का हो गया था स्मरण। जो हवन कुण्ड था वह और संन्यासी सब कुछ चौंदहवीं शताब्दि का था। ऐसा लग रहा था कि वह संन्यासी मुझे चौंदहवीं शताब्दि में ले गया था। खैर, मैंने समाधि से मिट्टी उठायी और एक कपड़े में बांध लिया चूंकि उस संन्यासी को वचन दे चुका था। मैं सहायता नहीं करूंगा तो कौन उसकी सहायता करेगा और यदि नहीं करूंगा तो उसकी आत्मा पता नहीं कब तक भटकती रहेगी और रहेगी तड़पती भी। एक साधक को दूसरे साधक की सहायता अवश्य करनी चाहिए। मेरे लिए बहुत ही पुण्य का काम होगा यदि मेरी वजह से उस संन्यासी की आत्मा मुक्त हो जाती है। इससे बड़ी और क्या बात हो सकती है।

मैं मिट्टी लिया और सभी अतृप्त आत्मा को प्रणाम कर उन चारवाहों के साथ वापस गांव की तरफ चल पड़ा। रास्ते में उन लोगों ने बतलाया बाबूजी आप बड़े भाग्यशाली हैं जो जिन्दा बच गये। यहां तो कोई एक रात भी नहीं बिता सकता। अभी पिछले साल हमारे गांव के एक शिक्षक महोदय थे। प्रातः भ्रमण करने यहां

आते थे लेकिन एक दिन तो वो वापस ही नहीं आये। दो दिन बाद हम लोगों को उनकी लाश मिली। शायद रास्ता भटक गये हों तो भूतों ने उनकी जान ले ली होगी। मैं क्या बोलता बस यही सोच रहा था कि इन बेचारों का क्या पता कि रात भर मैं उन्ही लोगों के बीच रहा।

खैर, जब गांव पहुंचा तो गांव वाले घेर लिए जब उन्हे पता चला कि मैं काशी से आया हूँ और ब्राह्मण हूँ तो सभी लोग मेरे पैर छूने लगे और आशीर्वाद मांगने लगे। बोले पण्डितजी आप काशी से आये हैं आपका पैर छूकर काशी का थोड़ा पुण्य हम लोग भी लेना चाहते हैं। हम लोगों का कहां भाग्य है काशी जाने का। किसी तरह उन लोगों से पीछा छुड़ाया लेकिन उन लोगों ने ही मेरे नहाने और खाने की व्यवस्था की थी। चार बजे की बस थी। मैं स्टेशन की तरफ चल पड़ा। तभी एक महिला बोली बाबूजी आप अकेले उधर जा रहे थे तब मैंने आपको रोकना चाहा लेकिन ऐसा कर न सकी। मैंने कहा कि मेरे साथ तो एक संन्यासी महोदय भी थे वह बोली बाबूजी आप तो अकेले थे। मैं तत्काल चुप हो गया। शायद वह संन्यासी इन गांव वालों को नहीं दिखा होगा। मुझे अपने ऊपर हँसी आने लगी वह तो आत्मा थी इन्हे कहां दिखती। जब मैं निवृत्त हो गया तो सोचा चल के पण्डितजी से मिल लूं क्योंकि मुझे वापस जाना है। जहां मैं रूका था गांव वालों के पास बस थोड़ी ही दूरी पर पण्डितजी का मकान था। मैं उन्ही में से एक सज्जन से बोला- यहां श्रीराम शर्माजी रहते हैं सोचा उनसे मिल कर ही काशी जाऊंगा। वह कुछ बोला नहीं बस मेरी ओर देखने लगा। जैसे मैंने कोई अजीब सी बात कह दी हो। वह मेरे साथ चलने लगा। गांव का रास्ता भी भूलभुलैया होता है। मुझे रास्ता तो याद नहीं था लेकिन वे सज्जन मुझे उनके घर के पास ले गये। जब मैं उनके घर पर पहुंचा तो देखा कि दरवाजा धूल से भरा था। चारो तरफ जंगली पेड़-पौधों का अम्बार था, ताला लटक रहा था ऐसा लग रहा था कि जैसे वर्षों से खुला ही न हो। मैं तो हतप्रभ हो गया। अभी कल ही यहां रहा, खाना खाया पण्डितजी से बातें की मैं बस सोच ही रहा था कि तभी वह व्यक्ति बोला- बाबूजी इनको गुजरे तो एक वर्ष से ऊपर हो रहा है। जहां से आप जिन्दा बच के आये तो उधर ही सुबह-सुबह टहलने जाते थे। एक दिन गये तो वापस ही नहीं आये। मैं क्या बोलता उस व्यक्ति से मेरा तो सिर ही लगा घूमने। कांपते हुए पूछा कि पण्डितजी की पत्नी। वह व्यक्ति बोला कि उन्हे गुजरे तो काफी समय हो गया वे तो अकेले ही रहते थे। लेकिन जब मैं यहीं के बस स्टेशन के पास लोगों से पता पूछा पण्डितजी का वहां के लोगों ने यहीं का पता बतलाया था। वह व्यक्ति हँसते हुए बोला- चूंकि पण्डितजी का यहां कोई वारिश

नहीं है एक लड़का था वह आज तक कभी आया नहीं। उसका पता तो था नहीं इसलिए हमलोग ही पण्डितजी का दाह संस्कार कर दिये। हो सकता है कि गांव वाले आपको कोई अधिकारी समझ कर पता बतला दिया होगा। तभी मेरी नजर नीचे गयी मेरा पत्र वहीं पड़ा था लिफाफा बन्द। मैं कुछ बोला नहीं बस यही सोचता रहा कि क्या मैं रात भर पण्डितजी के प्रेत के साथ रहा।

अब तो ऐसा लगने लगा कि वह व्यक्ति जो मुझे लेकर आया है कहीं वो भी तो कोई प्रेतात्मा तो नहीं है। बस सभी लोग मुझे प्रेतात्मा नजर आने लगे। बस जितना जल्दी हो सके मैं वहां से. भागना चाह रहा था। उस व्यक्ति को प्रणाम कर किसी तरह बस स्टेशन पहुंचा। बस आयी जब मैं उसमें बैठ गया तब जाकर मेरे शरीर में जान में जान आयी।

मेरी मनःस्थिति तो आप जान ही रहे होंगे। मुझ पर उस समय क्या गुजर रही होगी समझ ही चुके होंगे आप। खैर, किसी तरह बनारस पहुंचा। मिट्टी अपने घर नहीं ले गया। सीधे घाट किनारे गया। मिट्टी को घाट के पण्डितजी के पास रख दिया और अगले दिन तिथिवार निकलवा कर उसी प्रकार श्राद्ध और पूजन कर संन्यासी की समाधि की मिट्टी और जौ का पुतला बनाकर गैरिक वस्त्र में लपेट कर बीच गंगा में प्रवाहित कर दिया। उस समय केवल मैं और घाट के पण्डितजी थे। लेकिन आश्चर्य की बात तो यह थी कि जिस समय मैं घर आया अपना झोला देखा जो मैं ले गया था उसे उसी तरह रख दिया था। सोचा था कि कपड़े आदि निकाल कर धोने को दे दूंगा। परन्तु देखता क्या हूँ एक प्राचीन पाण्डुलिपि और पांच सोने के सिक्के पड़े थे। इसका क्या रहस्य था मैं नहीं जान पाया। शायद वह संन्यासी अपने पैसों से श्राद्ध आदि करवाना चाहता रहा होगा। वह पाण्डुलिपि काफी दिनों तक मेरी अलमारी में पड़ी रही। देखने की हिम्मत नहीं हो पायी।

श्राद्ध पूजा के बाद एक दिन वह संन्यासी दिव्य रूप में स्वप्न में दिखा। हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और बोला- शर्माजी कितने वर्षों से मेरी आत्मा समय चक्र में फंसी थी आपकी कृपा से आज मैं मुक्त होकर सूक्ष्म शरीर को हो गया उपलब्ध। अब मैं अपनी नयी यात्रा पर जा रहा हूँ सूक्ष्म लोक में विश्राम करूंगा। काफी थक गया था। आज मेरी आत्मा को शान्ति मिली। इतना कह कर वह संन्यासी गायब हो गया। मेरी नींद खुल गयी। देखा घड़ी में भोर का चार बज रहा था। फिर नींद नहीं आयी बस संन्यासी के बारे में सोचता रहा। रात्रि का आखिरी प्रहर था। नींद उचट गयी थी बस विचार चलने लगा एक के बाद एक दृश्य चलचित्र

की भांति मेरे मानस पटल पर।

सबसे पहले मैंने माँ को धन्यवाद दिया उस भयानक प्रेत लीला से बचकर सकुशल वापस आ गया। माँ की अनुकम्पा से वह संन्यासी तो मुक्त हो गया और हो गया सूक्ष्म शरीर को उपलब्ध। लेकिन सारी घटनाओं को जो मेरे साथ घटी थी। प्रारम्भ से लेकर अन्त तक लगा चिन्तन करने और निष्कर्ष निकालने लगा। जो नये तथ्य पता चला उस संन्यासी की आत्मा द्वारा। संन्यासी चूंकि एक विकट साधक था इसमें दो राय नहीं। माँ का परम भक्त भी था, उसका कहना था आत्मा निरपेक्ष है वह कभी भी कोई शरीर निर्माण नहीं करती बस उसका कार्य है शरीर में प्रवेश करना। आत्मा बिना शरीर के एक पल भी नहीं रह सकती। एक प्रकार से आत्मा ऊर्जा रूप है फिर चाहे वह भौतिक शरीर हो या सूक्ष्म शरीर हो या कोई और। एक नयी बात का पता चला जो मेरे शोध का विषय भी बन गया था। उसका कहना था कि आत्मा के सात शरीर हैं। जो एक दूसरे से जुड़े हैं। लेकिन जहां तक छाया शरीर का प्रश्न है जब मानव शरीर जन्म लेता है यानि कि आत्मा जब भौतिक शरीर को धारण करती है तो छाया शरीर कार्बन की तरह जुड़ा रहता है। जब मानव का वर्तमान संस्कार घनीभूत होता जाता है उसी से छाया शरीर को बल मिलता है। जब आत्मा शरीर को त्याग देती है जैसा मनष्य का संस्कार या वासना होती है उसी के अनुरूप छाया शरीर का निर्माण होता है। छाया शरीर एक प्रकार से आकाशीय शरीर होता है। अपरोक्ष में कहा जाये तो यही प्रेत शरीर होता है। जैसे ही आत्मा अपने शरीर से अलग होती है पंच प्राण के साथ एवं वासना और संस्कार के अनुरूप छाया शरीर का निर्माण हो जाता है और जब वासना एवं संस्कार क्षीण हो जाते हैं तो आत्मा सूक्ष्म शरीर हो जाती है उपलब्ध। जब तक वासना का क्षय नहीं होता तबतक आत्मा एक प्रकार से प्रेतयोनि में बंधी रहती है। वर्तमान शरीर के अनुरूप ही आत्मा अपने बन्धुजन को अपनी उपस्थिति का आभास कराती है चाहे वह माध्यम स्वप्न ही क्यों न हो। चूंकि संन्यासी साधक था और छाया शरीर को सिद्ध कर चुका था एवं प्राण ऊर्जा से उसका छाया शरीर काफी शक्तिशाली हो गया था। जैसे ही संन्यासी का शरीर छूटा उसकी आत्मा स्वतः ही प्राण ऊर्जा के साथ छाया शरीर में प्रवेश कर गयी तभी तो स्वप्न के माध्यम से मुझसे सम्पर्क करने की कोशिश की। उसका छाया शरीर इतना शक्तिशाली था कि जबतक मैं उसके साथ रहा तबतक उस संन्यासी का मानव देह का भ्रम बना रहा मुझे।

मुख्य बात तो यह है कि आत्मा कभी-कभी काल के बन्धन में फंस जाती

है तो हजारों वर्षों तक फंसी रहती है। जबतक किसी के माध्यम से वह काल के बन्धन से निकल नहीं जाती तबतक उसके लिए समय वहीं रूक जाता है। मैंने जो माँ की छवि देखी, माला फूल देखा, पूजन आदि देखा, झोपड़ी में जलता हुआ हवन कुण्ड और रक्त पात्र आदि उसी समय का था यानि चौदहवीं शताब्दि का। मैंने भी उस संन्यासी के साथ उस क्षण का स्पर्श कर लिया था और उसी समय उसकी आत्मा को उसके छाया शरीर ने अलग कर दिया था उसके जीवित शरीर से। झोपड़ी के बाहर जो काली छाया घूम रही थी वह उस संन्यासी की थी जब वह पूजन कर रहा होगा तभी वह घटना घट गयी होगी। इस प्रकार वह संन्यासी काल के समय चक्र में फंस गया और मृतात्माओं का वास कैसे हुआ उस महल और मंदिर के आस पास जैसा कि गांव वालों ने बतलाया था कि हर अमावस्या और पूर्णिमा को अजीब-अजीब सी आवाजें आती हैं। इसका कारण यह था कि संन्यासी के छाया शरीर को प्रेत समझ कर आस पास की अतृप्त आत्माओं ने वहां पर वास कर लिया होगा। जिसकी वजह से राजवंश छिन्न-भिन्न हो गया और रानी की अकाल मृत्यु का कारण छाया शरीर ही बना होगा। जहां तक मेरा विश्वास है और अनुभव है उससे यही निष्कर्ष निकला कि छाया शरीर को ऊर्जा प्राप्त करने में कठिनाई होती होगी क्योंकि संन्यासी रानी से लिप्त हो गया था और हो गया था पथभ्रष्ट इसलिए संन्यासी की आत्म ऊर्जा हो गयी क्षीण और छाया शरीर को प्राण ऊर्जा चाहिए जो उसे नहीं मिल रही थी। इसलिए वह स्वयं ही संन्यासी के रक्त से प्राण ऊर्जा ग्रहण कर लेता इसलिए जब उसे चाहनी होती तो वह संन्यासी का शरीर घायल कर देता।

सद्गुरु न बनाने से और संन्यास धर्म का पूर्ण पालन न करते हुए संन्यासी वेश धर लेने के कारण भी उसकी यह दुर्गति हुई। जब संन्यासी को यह आभास हुआ कि छाया शरीर से पीछा छुड़ाने में ही उसकी भलाई है। तबतक काफी देर हो चुकी थी। क्योंकि संन्यासी के शरीर से स्वतः ही रक्त निकालने लगता उसका छाया शरीर और यदि अपरोक्ष रूप से कहा जाये तो छाया शरीर का सारा कार्य संन्यासी की प्राण ऊर्जा से होने लगा। एक प्रकार से छाया शरीर संन्यासी के नियंत्रण से बाहर हो गया। उसे तो बस संन्यासी की आत्मा चाहिए थी। इन सब बातों का आभास होते ही संन्यासी ने रक्त पात्र भस्म करने के लिए हवन करना शुरू किया और रक्त पात्र भस्म करना चाहा तभी छाया शरीर ने संन्यासी के प्राण हर लिये और संन्यासी हमेशा-हमेशा के लिए उसके वश में हो गया।

लेकिन बन्धु स्वर्ण तो स्वर्ण ही होता है। वह संन्यासी माँ का परम भक्त था और था परम साधक भी। उसी क्षण माँ ने अपरोक्ष रूप में उसकी सहायता की होगी तभी तो संन्यासी की आत्मा शरीर छोड़ते ही छाया शरीर में हो गयी प्रवेश और प्रेत योनि को हो गयी उपलब्ध और काल के वर्तमान क्षण में फंस गयी। शायद माँ की लीला यही रही होगी। माँ की कृपा से ही स्वप्न के माध्यम से मुझसे मिला और हो गया मुक्त। जहां तक बात श्रीराम शर्मा की है। उनकी जोशीजी से काफी घनिष्टता थी लेकिन श्रीराम शर्माजी का मृत्यु का समाचार जोशीजी तक नहीं पहुंचा होगा। लेकिन एक बात है जब मैं पत्र लेकर पहुंचा तो श्रीराम शर्माजी ने अपरोक्ष रूप से सम्पर्क किया और मेरी सहायता भी की। मेरे द्वारा जब जोशीजी को पता चला तबतक श्रीराम शर्माजी की भी आत्मा मुक्त हो गयी होगी। शायद उनकी आत्मा अपने मृत्यु का संदेश मेरे द्वारा देना चाहती थी। लेकिन एक बात का रहस्य आज भी बना हुआ है कि कैसे मैं पण्डितजी की आत्मा के साथ रात भर रहा और यह रहस्य आज तक यथावत ही बना हुआ है मेरे लिए।

ये सारी घटनाएं आज भी मुझे अभौतिक जगत के बारे में सोचने को कर देती है विवश। जितना भी मैं जानना चाहता हूँ उतना और उलझता चला जाता हूँ। जन्म-मृत्यु और आत्माओं का रहस्य और भी गहरा होता चला जाता है। कभी-कभी ऐसा लगता शायद ही कभी मैं सामान्य जी पाऊंगा। जैसा कि आप लोग जी रहे हैं। खैर अब कुछ विचार अन्य विषयों पर कर लेते हैं।

रहस्यमय मस्तिष्क- देखने, मापने और तौलने में छोटा सा लगने वाला मस्तिष्क जादुई क्षमताओं और गतिविधियों से भरापूरा है। उसमें प्रायः एक अरब स्नायु कोष है। इनमें प्रत्येक की अपनी दुनिया, अपनी विशेषता और अपनी सम्भावनाएं हैं। वे प्रायः अपना अभ्यस्त काम निपटाने भर में दक्ष होते हैं। उनकी अधिकांश क्षमता प्रसुप्त स्थिति में पड़ी रहती है। काम न मिलने पर हर चीज निर्रथक लगती है। इसी प्रकार इन कोशों से दैनिक जीवन की आवश्यकताएं पूरा कर सकने के लिए आवश्यक है थोड़ा काम कर लेना चाहिए। अलादीन की कहानी कल्पित हो सकती है लेकिन मस्तिष्क सचमुच जादुई चिराग से कम नहीं है।

मस्तिष्क का आकार बढ़ने के पीछे वह क्रमिक विकास है जो पूर्वजों की तुलना में आज के मस्तिष्क की स्थिति में हो चुका है। अब से करीब छः लाख पूर्व मनुष्य का पूर्वज कहलाने वाला पूंछ विहीन वानर 'एप्स' था। उसके मस्तिष्क का आकार ६२० से ६५० घन सेन्टीमीटर था। इसके बाद अधिक विकसित नर वानर

'पिथेकैन्थ्रोपस' के मस्तिष्क का आयतन ८०० से ६०० घन सेन्टीमीटर था। आधुनिक मनुष्य का मस्तिष्क आयतन १४०० घन सेन्टीमीटर है। यही क्रम बुद्धि के विकास के साथ-साथ आगे भी चलता रहेगा और हमारी पीढ़ियां अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत मस्तिष्क वाली होंगी। किन्तु उसकी सम्वेदन कणिकाएं अधिक जटिल एवं सूक्ष्म हो जायेंगी।

मानवी मस्तिष्क बड़ा विचित्र है। उसकी सूक्ष्म एवं जटिल संरचना अद्भुत है। आमतौर पर वे प्रसुप्त स्थिति में पड़ा रहता है और ४ प्रतिशत ही काम में आता है। इस प्रसुप्त भाग से जो जितना जाग्रत कर लेता है वह उतना ही बुद्धिमान बन जाता है। भविष्य में इस सूक्ष्म भाग का अधिक मात्रा में जागरण होगा। उसका आयतन तो बढ़ेगा परन्तु भार नहीं बढ़ेगा।

न्यूरोलॉजी मस्तिष्क विज्ञान के अनुसार मस्तिष्क के बाहरी धूसर पदार्थ यानि ग्रे मैटर में तंत्रिका कोशिकाओं न्यूरान्स की संख्या करीब १७ अरब है। लघु मस्तिष्क सेरीबेलम में १२० अरब और मेरूदंड के १ करोड़ ३५ लाख तंत्रिकाएं हैं। इनके साथ ग्लाया स्तर की करीब एक खरब लघु कोशिकाएं इन न्यूरान्स में रहती हैं। इनके मिलन स्थल को तंत्रिका बंध या न्यूरोग्लाया कहते हैं।

भीतरी मस्तिष्क के चारो ओर दो काले रंग की पट्टियां लिपटी हुई हैं इन्हे टेम्पोरल कोरटेक्स कहते हैं। इनका क्षेत्रफल लगभग २५ वर्ग इंच और मोटाई एक इंच का दशवां भाग है। इनका स्थान कनपटियों के ठीक नीचे है। स्मृति का संचय और नियमन इन्ही से होता है। मस्तिष्क के शल्य चिकित्सक डॉ. बिल्डर पेन फील्ड ने इन पट्टियों की शेष खोज की है वे पुरानी स्मृतियों को जाग्रत करने में सफल हुए हैं। सामान्यतौर पर देखा जाता है कि महत्वपूर्ण घटनायें तो याद रहती हैं लेकिन दैनिक जीवन में जो आंखों के सामने होती हैं वे याद नहीं रह पाती हैं। पुरानी हो जाने पर वे पूरी तरह से नष्ट तो नहीं होती हैं लेकिन विस्मृत अवश्य हो जाती हैं। किन्तु वे टेम्पोकल कोरटेक्स पट्टियों के स्पर्श से पुनः जाग्रत हो उठती हैं। डॉ. बिल्डर ने कितने ही व्यक्तियों के मस्तिष्क के मर्मस्थलों का विद्युत धारा से स्पर्श कराके निरर्थक घटनाक्रमों को स्मरण कराने में सफलता प्राप्त की है।

मस्तिष्क की अनोखी हलचलों का विश्लेषण अणु जैविकी मोली क्यूलर बायोलॉजी के आधार पर करते हुए स्वीडन की गोटन वर्ग युनिवर्सिटी के जीव विज्ञानी होल्गार इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि मस्तिष्क को दक्ष बनाने वाले शिक्षण एवं चिन्तन कार्य कोशिकाओं में महत्वपूर्ण रासायनिक पदार्थो की मात्रा बढ़ा देते हैं और

वे संवेदनशील बन कर बुद्धिमत्ता का क्षेत्र विस्तार करती है। इसी दिशा में डॉ. सेमुअल वार्नाडेस ने कहा कि मस्तिष्क में काम करने वाली बिजली की अपेक्षा कोशिकाओं की रासायनिक स्थिति को अधिक श्रेय देते हैं क्योंकि वह घटती और बढ़ती रहती है।

मस्तिष्कीय विकास मात्र उस शिक्षण पर निर्भर नहीं है बल्कि वह जानकारी को बढ़ाता है। बलिष्ठ मस्तिष्कों की विद्युत शक्ति का प्रवाह यदि दुर्बल मस्तिष्कों की ओर मुड़ जाये तो उनकी तीक्ष्णता में भारी परिवर्तन हो सकता है और उसका परिचय विशेष प्रोटीनों की मात्रा की वृद्धि के रूप में सहज ही देखा जा सकता है। मस्तिष्कीय पोषण के लिए सुविकसित चेतना सम्पन्न मनस्वी लोगों का सान्निध्य अत्यन्त उपयोगी है। उनकी बढ़ी हुयी प्राण शक्ति दुर्बल मनः चेतना की अभाव पूर्ति कर सकती है और मन और मस्तिष्क पर इसका अनुकूल प्रभाव देखने को मिलता है। क्या शिवलिंगम् मस्तिष्क के प्रतीक हैं? क्या शिवलिंग मस्तिष्क के रहस्यमय आवरण का प्रतीक हैं? यह एक वैज्ञानिक खोज से यह रहस्य प्रकाश में आया है।

शिवलिंगम् का रहस्य- परब्रह्म परमेश्वर का निराकार रूप शिव है। मस्तिष्क की रचना भी शिवलिंग से मिलती है। मस्तिष्क की ऊर्जा ही ब्रह्माण्ड में फैली असीम ऊर्जा का ग्राह्य है। जो जाने अनजाने में ब्रह्माण्डीय ऊर्जा से हर समय सम्पर्क बनाये रखता है और मानव चेतना को इसका आभास समय-समय पर होता रहता है।

लिंग पुराण के अनुसार समस्त चराचर जगत शिव में समाये हैं अगर आप रात्रि में आकाश को देखें तो ऐसा लगता है कि सम्पूर्ण आकाश शिवलिंगम् है, उसके अन्दर सारा ब्रह्माण्ड समाहित है। शिवलिंगम् का आध्यात्मिक और वैज्ञानिक विवेचन इस प्रकार है। हिन्दू धर्म दर्शन के अनुसार- हिन्दुओं के देवी-देवताओं में भगवान शिव सबसे अधिक पूजे जाने वाले देवता हैं। उत्तर हो या दक्षिण, महिला हो या पुरूष भक्त उनको संहारक के रूप में जानने के बाद भी सबसे अधिक उन्ही की अर्चना करते हैं। शिव शीघ्र प्रसन्न तो होते ही हैं साथ ही अपना प्रसाद भी शीघ्र देते हैं। वे महायोगी हैं- योगीगण **'अद्वैतं शिवं शांत चतुर्थम्'** की मीमांसा के साथ उन्हे जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति के बाद ब्राह्मी चेतना के द्वारा तुरीय चेतना के रूप में स्वीकार कर अपनी साधना को आगे बढ़ाते हैं तो लोक में उनकी आराधना शिव और शक्ति के सांयुज्य रूप लिंगम् अथवा मूर्तरूप में कैलाश पर निवास करने वाले उस महादेव के रूप में की जाती है जिनकी जटाओं से त्रिपथगामिनी गंगा निकली है।

तात्विकों ने यदि शिव के ब्रह्मरूप का विवेचन किया है तो उनके भक्तों ने उनके विचित्र रूप को ईश्वर का विशिष्ट रूप मानकर **'ओम नमः शिवाय'** का मंत्र पाठ किया है। इस सबके बावजूद बुद्धि के माध्यम से ईश्वरीय रहस्य को समझने वालों की कोशिश उन प्रतीकों के निहितार्थ जानने की रही है। जो आर्ष-ऋषियों ने उनके लौकिक रूप में अन्वित किए हैं। मैस्साच्युसेट्स संस्थान में वरिष्ठ वैज्ञानिक रह चुके प्रोफेसर नादर के अनुसार लिंगम् रूप और गुण में मानव मस्तिष्क का ही प्रतिरूप है। मनुष्य का मस्तिष्क ही ऐसा है जो हर चीज में व्याप्त चेतना का घनीभूत रूप है और जो जगत रूप में सारे शरीर का नियंत्रण करता है। अपने सामंजस्य की आदर्श अवस्था में यह परम शांत हो जाता है। चेतना की तुरीय अवस्था में पहुंच जाता है। शिवत्व में प्रतिष्ठित होकर पराचेतना, भगवद्‌चेतना और ब्राह्मी चेतना का मार्ग प्रशस्त करता है। मस्तिष्क द्वारा ही विश्व की नियंता परम शांत शुद्ध चेतना की अनुभूति भावातीत ध्यान योग से होती है।

प्रोफेसर नादर ने अपने शोध में लिंगम् को मस्तिष्क के रूप में ही प्रतिष्ठा नहीं ही बल्कि शिव के लौकिक रूप में मस्तिष्क के अंग-प्रत्यंग में स्थान सुनिश्चित किया है। भगवान के हाथ में त्रिशूल है जो मानव मस्तिष्क के वेंट्रीकुलर सिस्टम से हूबहू मिलता है। यह सिस्टम को चलने-फिरने खासकर सिर के अचानक घूमने पर नियंत्रण करने में मस्तिष्क की मदद करता है। भगवान शिव के मस्तिष्क में जो चांद है 'हाइपोथैलामस' से लिया गया है। वेंट्रीकुलर सिस्टम के निकट स्थित मस्तिष्क का यह भाग चय-अपचय, हार्मोन के स्राव, मनोभाव, वृद्धि एवं विकास को संयमित करता है। भगवान के गले में पड़ी रूद्राक्ष की माला मस्तिष्क के कोरॉयड प्लेक्सस की अनुकृति है। कोरॉयड प्लेक्सस से सेरिब्रास्पाइनल द्रव स्रावित होता है। जिसमें वेंट्रीकिल डूबे रहते हैं। कोरॉयड प्लेक्सस से सेरिब्रोस्पाइनल द्रव वेंट्रीकिल्स में उसी प्रकार गिरता है जिस प्रकार गंगा और उसकी शाखाएं शिव की जटाओं से बहती है। गंगा का एक नाम त्रिपथगा भी है। वह तीनों मार्गों से होकर गुजरती है। वैदिक साहित्य में इस नाम का दोहरा संदर्भ आया है। पहला जब गंगा स्वर्ग से पृथ्वी पर गिरती है तब वह शिव की जटाओं में उलझ कर सात नदियों में विभाजित हो जाती है। इनमें से तीन नदियां- सुचक्षु, सीता और सिंधु के रूप में पश्चिम की ओर तथा आल्हादिनी, पावनी और नलिनी के रूप में पूरब की ओर, जबकि स्वयं गंगा भगीरथी के रथ के साथ-साथ पृथ्वी पर बहते हुए चली आती है। ये तीन वर्ग पृथ्वी पर उसके तीन पथ हैं। गंगा के बारे में यह भी कहा जाता है कि वह स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल के तीन क्षेत्रों में भी बहती है।

मानव शारीरिकी में कोरॉयड प्लेक्सस से सेरिब्रोस्पाइनल द्रव भी तीन दिशाओं में बहता है। दाहिने वेंट्रीकिल की ओर, बांए वेंट्रीकिल की ओर तथा सेरीब्रोस्पाइनल द्रव तालिक के मध्य चौथे वेंट्रीकिल की ओर। यही नहीं गंगा की सात धाराओं के वैदिक उल्लेख के मुताबिक वेंट्रीकुलर सिस्टम भी अन्दर से दो एंटीरियर, दो पोस्टीरियर और चार हार्न्स से मिल कर बना है। गंगारूपी अन्तिम धारा ब्रेनस्टेम और स्पाइनलकॉर्ड की दिशा में बहती है, जहां चौथा वेंट्रीकिल स्थित होता है। जहां गंगाा के तीन क्षेत्रों में बहने की बात है तो सेरिब्रोस्पाइनल द्रव की पीठ रूप समूचे मस्तिष्क में बहता है। यह पृथ्वी रूप स्पाइनल कॉर्ड (सुषुम्ना नाड़ी) को भी आप्लावित करता है और इनके अन्दर के अंगों में जाकर गंगा के पाताल जाने के वैदिक उल्लेख को प्रमाणित करता है। मस्तिष्क के मध्य में स्थित पीयूष ग्रन्थि को ही ऋषियों ने भगवान शिव के तीसरे नेत्र के रूप में निरूपित किया है। यह ग्रन्थि प्रकाश के प्रति अत्यंत संवेदनशील है और मेलाटोनिन नाम के ऐसे हार्मोन का स्राव करती है, जिसका मनोभावों, जाग्रति और चेतना की अन्य अवस्थाओं से सम्बन्ध है। वेंट्रीकिल्स में झिल्ली जैसी एक रचना है जिसे स्पैक्टम पेलूसिडम कहते हैं। यह भगवान शिव के डमरू से बहुत मेल खाती है।

स्पैक्टम पेलूसिडम की भावना और प्रेरणा में महत्वपूर्ण भूमिका है। वेंट्रीकिल सिस्टम के सिर और गले के चारो ओर लिम्बक सिस्टम अपने नाभिक और फॉरनिक्स के साथ स्थित है। ये अंग बेसल गैंगलिया का हिस्सा है और सहज तथा सांमजस्यपूर्ण गतिशीलता सुनिश्चित करता है। अपने बड़े सिर और लम्बी पूंछ के कारण ये बिल्कुल शिव के गले में चारो ओर नाग जैसा रूप निर्मित करता हैं। तीसरा वेंट्रीकिल भी वेंट्रीकिल सिस्टम का हिस्सा है और मस्तिष्क के केन्द्र में स्थित है। आकार में यह भगवान शिव के कमंडल की तरह है।

भगवान शिव की पारंपरिक पूजा में उनके चारो ओर पूर्णवृत्त की बजाय अर्धवृत्त बनाये जाते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि मस्तिष्क की आकृति अंग्रेजी के सी अक्षर की तरह है। आज जो वैज्ञानिक अपने शोध से प्रभावित करने का प्रयास कर रहे हैं हमारे भारतीय योगी प्रागकाल से ही अपने समाधि अवस्था में उसे जान चुके थे और इसलिए शिव का साकार रूप प्रतिष्ठित किये।

बुद्धितत्व– मस्तिष्क के बारे में आपने ऊपर पढ़ा। मस्तिष्क रहस्यमय और जटिल संरचना जो ईश्वर की देन है लेकिन बुद्धि हमारे विचार और व्यवहार का कारण और निर्णय क्षमता दर्शाता है। बुद्धि द्वारा हम योगी भी हो सकते हैं और

भोगी भी। किसी भी क्षेत्र में सफलता का मूल मंत्र है निर्णय क्षमता जो हमारे बुद्धि के माध्यम से प्रगट होता है। इस संसार में बुद्धि से बढ़कर कोई बल नहीं है। किसी भी क्षेत्र में सफलता के लिए लक्ष्य निर्धारण आवश्यक है। मानव जब भी अपने लक्ष्य से भटक जाता है। तब वह अपने बल अहंकार अभिमान का प्रयोग करने लगता है तथा वह पतन की ओर अग्रसर होने लगता है जीवन में कुछ पल ऐसे आते हैं जहां व्यक्ति को शान्त भाव से अपने लक्ष्य का निर्धारण करना चाहिए। यही बुद्धिमत्ता है अर्थात बुद्धिमान व्यक्ति वही है जो अपने कार्य का आरम्भ करके सम्पन्न कर दे। बुद्धि को धर्म ग्रन्थों, प्रज्ञा, मति, चिन्तन आदि कहा है। भारतीय दर्शन के अनुसार शान्ति के लिए मन, बुद्धि, चित्त, स्वाभिमान ये चार प्रमुख साधन बतलाए गये हैं। मन में संकल्प-विकल्प उठते हैं बुद्धि में तर्क-वितर्क रहते हैं चित्त में करूणा का निवास है। स्वाभिमान में आगे बढ़ने की भावना रहती है। इन चारो के समन्वय से ही मानव पूर्ण सफल हो सकता है। गति में बुद्धि की तीन श्रेणियां बतलायी गयी हैं। सात्विक, राजसिक और तामसिक। सात्विक बुद्धि पारदर्शी, स्वच्छ, निर्मल, विवेकशील और उदात्त विचारों वाली होती है। राजसिक बुद्धि, वैमनस्य सुख की अभिलाषा वाली होती है। तामसिक बुद्धि स्वार्थ की मलिनता से परिपूर्ण होती है।

कृष्ण कहते हैं कि जो मानव आहार-विहार, स्वप्न-जाग्रति, कार्य-विश्राम में सन्तुलन रखता है वही स्थित प्रज्ञ है। जिसकी प्रज्ञा में स्थिरता हो, संयम हो वही परमयोगी है। शान्तभाव से बुद्धिमत्तापूर्वक सहज कार्य करना ही बुद्धि योग कहलाता है। जब-जब मानव अधीर और उतावला हो जाता है शीघ्र सफलता चाहता है तभी उसकी बुद्धि में विकृतियां आ जाती हैं। प्रयत्न, प्रार्थना, प्रतीक्षा एवं ईश्वर कृपा के साथ सफलता की प्रतीक्षा के लिए धैर्य ही परम आवश्यक है जो कार्य बुद्धिमत्ता पूर्वक किया जाता है उसे वैभव, यश, सफलता की प्राप्ति होती है वही स्थितप्रज्ञ है और है मानव और वही सत्य है शिव है और है सुन्दरम्।

क्वांटम सिद्धान्त- आज का विज्ञान क्वान्टम सिद्धान्त पर काफी शोध कर रहा है। क्या हमारे मनीषियों को पहले से ज्ञान था? आज विज्ञान रोज नये-नये खोज व सिद्धान्त संसार के सामने रख रहा है। वह आकाश से लेकर पाताल तक एक किए हुए है। अन्तहीन ब्रह्माण्ड के रहस्यों को जानने के लिए प्राण प्रण से प्रयत्नशील है। मानव मस्तिष्क समग्र महाशून्य तथा समस्त द्रव्य स्थिति एवं पिण्ड यूथों को अपने विलक्षण विद्युतीय स्नायु महाजाल में समा लेने के लिए अनन्त अपरिमेय प्रयत्न कर

रहा है। संसार ने सफल वैज्ञानिक प्रयोगात्मक तथ्यों के आधार पर प्रायः स्वीकार कर लिया है कि द्रव्य या पदार्थ यानि मैटर और ऊर्जा (व्यष्टि एवं समष्टि रूपों में) वस्तुतः एक है। एक ही सत्ता के इन्द्रियगम्य या बुद्धिगम्य रूप हैं। लेकिन अभीतक ऊर्जा की ठीक-ठीक परिभाषा नहीं की जा सकती है। उसके स्वरूप का शुद्ध-शुद्ध विश्लेषण और निर्धारण नहीं किया जा सका है।

एक बात तो सत्य है कि हम उसके विविध रूपों से अवश्य परिचित हैं। नाना प्रकार के विकिरण, ताप, प्रकाश, विद्युत, चुम्बकत्व एवं ध्वनि उस ऊर्जा के विविध व सर्वविदित रूप हैं। गत एक सौ पचास वर्षो में ऊर्जा के रूपों को निर्धारित करने का प्रयत्न कई बार किया गया। लेकिन जर्मन के भौतिक शास्त्री मैक्स प्लैंक ने सर्वप्रथम ऊर्जा के उस सिद्धान्त का नाम क्वान्टम थ्योरी रखा। इसे और विकसित करने का श्रेय प्रोफेसर अलबर्ट आईंस्टीन को जाता है।

क्वान्टम सिद्धान्त के अनुसार ऊर्जा की भी बनावट, रूप या संघटन परमाणविक है अर्थात जैसे विविध द्रव्य परमाणु के बने होते हैं उसी प्रकार ऊर्जा के भी बने होंगे अथवा ऊर्जा के सूक्ष्म भागों में परमाणुओं को विभक्त किया जा सकता है। जैसे द्रव्यों के छोटे-छोटे अंश (इलेक्ट्रान) का सूक्ष्म भाग नहीं हो सकता है उसी प्रकार ऊर्जा के भी लघुतम् भाग को पुनः तोड़ा नहीं जा सकता अर्थात उसका विभाग नहीं हो सकता है।

ऊर्जा के इस लघुतम् (सूक्ष्म) भाग को ही क्वान्टम (मात्रा या राशि) कहते हैं। इसी शब्द के आधार पर क्वान्टम थ्योरी (सिद्धान्त) का नामकरण हुआ। इसे इस तरह से समझा जा सकता है। क्वान्टम ऊर्जा छोटे-छोटे प्वाइन्ट (बिन्दू) होते हैं। ऊर्जा के ऐसे सूक्ष्मतम् प्वाइन्ट का ब्रह्माण्ड में दृश्यमान व अदृश्यमान जालों का अन्तहीन विस्तार है। इस सम्बन्ध में एक और तथ्य है कि इस प्रकार समस्त पदार्थो तथा ऊर्जा से अनन्त ब्रह्माण्ड की प्रकृति दो प्रकार की है। पदार्थ तथा सभी प्रकार की ऊर्जा बनावट में परमाणविक है यानि परमाणुओं से बने हैं और सभी के सूक्ष्मतम् अंश स्पन्दनात्मक या स्पन्दनात्मक गति से व्याप्त हैं आपको ज्ञात होना चाहिए कि प्रकाश के सूक्ष्मतम् परमाणुओं का नाम फोटोन है (३,०७,००० कि.मी. या १८,७२,०० मील प्रति सेकेण्ड की गति से अन्तराल में चलते हैं)। जहां समय अथवा काल गतिशून्य हो जाता है।

यह हुई विज्ञान की बात। मुख्य विषय यह है कि क्या प्राचीन भारतीय ऋषियों ने क्वान्टम सिद्धान्त को जानने का प्रयत्न किया था या क्वान्टम सिद्धान्त जैसे वस्तु

तथ्य या सिद्धान्त निकाला था। ऋग्वेद के दशम् मण्डल के १९० वें सूक्त में कहा गया है कि सृष्टि के आरम्भ में सर्वप्रथम ताप (ऊर्जा) की उत्पत्ति हुई थी। उसी से ऋत् (व्यवस्था) क्रम की उत्पत्ति हुई। ऊर्जा में ही व्यवस्था क्रम निहित था।

इससे यह बात सिद्ध होती है कि ऋग्वैदिक ऋषि लोगों ने अखिल ब्रह्माण्ड को ऊर्जा का ही मायाजाल स्वीकार कर लिया था। यह दूर की कल्पना भी हो सकती है लेकिन यह बात ध्यान में रखने से भावनाओं के विकास के स्वरूप को समझने में अवश्य सहायता मिलती है।

वेदों से लेकर सभी संस्कृत ग्रन्थों में किरण के लिए एक शब्द 'रश्मि' ही कहा है। रश्मि शब्द वास्तव में राशि (क्वान्टिटी या क्वान्टम) से निकला है या सम्बद्ध है। आज से ६०० ईसा पूर्व वैशेषिक दर्शनकार कणाद ऊर्जा अथवा तेजस की परमाणविक बनावट के विवेचन कर्त्ताओं में विश्व में सर्वप्रथम और अग्रणी हैं। वे सभी प्रकार के द्रव्यों और ऊर्जा के परमाणुओं तरंगात्मक (वाइब्रेटरी) गति से भलीभांति परिचित थे इसलिए किसी भी मनीषी को यह कहने में थोड़ा भी संकोच नहीं होगा कि महापण्डित सोम शर्मा का महान शिष्य कणाद क्वान्टम के सिद्धान्त का कम से कम पूर्वाभास प्रस्तुत करने में सबसे समर्थ ऋषि हुआ। प्रयोगात्मक माध्यम के द्वारा नहीं सही तो कम से कम अपनी प्रतिभा के बल पर प्रज्ञा चक्षु से आधुनिक क्वान्टम सिद्धान्त और उसके विविध पक्षों का बहुत ही सरल और सुन्दर साक्षात्कार किया। कर्म और गति के विश्लेषणों से ऐसा प्रतीत होता है कि उसने परमाणुओं की ऋणात्मक-धनात्मक विद्युत शून्यता के सम्बन्ध में पर्याप्त अनुमान लगाया था और इस प्रकार उसने इलेक्ट्रान, प्रोटान, न्यूट्रान, स्ट्रेन्ज पार्टिकल्स (अदृष्ट) तथा ऐन्टी पार्टिकल्स (अभौतिक परमाणु) के अन्तराल में प्रवेश करने की चेष्टा भी की थी।

किस प्रकार पदार्थो वाले लोक का अन्तरिक्ष में विस्तार होता है इस सम्बन्ध में यह कहना है कि काल में व्याप्त घटनाओं की श्रृंखला में लोक का अन्तरिक्ष में विस्तार होता है। कणाद ऋषि यह जानते थे कि ऊर्जा प्रकाश व तेजस के लघुतम् फोटोन व परमाणुओं की ब्रह्माण्ड में एक श्रृंखला सी फैली होती है। काल यानि टाईम सभी प्रकार के परमाणुओं को मिलाने की कड़ी का काम करता है। यही सिद्धान्त क्वान्टम थ्योरी का है।

काल प्रकाशाणुओं में अस्तित्वहीन व गतिहीन हो जाता है। तात्पर्य यह है कि काल विभिन्न पदार्थो पर विभिन्न गति से चलता है। सभी परमाणु (इलेक्ट्रान-फोटोन)

गोलाकार (स्फीरिकल) होते हैं। प्रकाश वृहत्त वृत्तों में चलता है। यही बात आईंस्टीन ने भी कही कि प्रकाश सीधा नहीं बल्कि वर्तुलाकार चलता है। क्या हमारे ऋषियों ने अपने विशिष्ट ज्ञान के द्वारा उन गहन सूक्ष्म रहस्यों को जान चुके थे जो आज के वैज्ञानिक खोज रहे हैं। यही बात और भी रहस्य बनाती है कि हमारे ऋषि त्रिकालदर्शी या भौतिक-अभौतिक ज्ञान के भण्डार थे।

भारतीय दर्शन में एक शब्द है तन्मात्रा। इसका भी अर्थ सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंश होता है। सांख्य योग में इसका काफी महत्व है। प्राचीन भारतीयों ने क्वान्टम सिद्धान्त की दिशा में केवल विमर्श तथा अनुमानों की सम्यक नींव ही नहीं डाली थी कुछ मौलिक ठोस और साधारण आविष्कार करने का प्रयास भी किया और उसमें सफलता भी प्राप्त की थी। क्या प्राचीन काल में ऋषि-मुनियों ने उस अभौतिक सत्ता का भी आभास कर लिया था जिसके लिए आज का आधुनिक विज्ञान प्रयासरत रहता है? आज विज्ञान के लिए चुनौती है और वह खोज कर रहा है कि ऊर्जा के अणुओं को कैसे विघटन किया जाये और क्या इस असीम ब्रह्माण्ड में मेरा भी प्रतिरूप होगा? जो हम कर रहे हैं वहां भी उसी प्रकार हो रहा होगा? अगर वे सत्य हैं तो हम उनके प्रतिरूप हैं, अगर हम सत्य हैं तो वे लोग हम लोगों का प्रतिरूप होंगे। इस सत्य को जानने के लिए वैज्ञानिक गहन शोध में लगे हैं। इसे विस्तार से जानने का प्रयास करते हैं।

पदार्थ-प्रतिपदार्थ- विज्ञान इतनी तेजी से उन्नति कर रहा है कि आज जिस सिद्धान्त को सही ठहरा रहा है जरूरी नहीं कि भविष्य में वह सही ही हो। समय-समय पर सिद्धान्त बदलते रहते हैं और नये-नये आयाम लेते रहते हैं।

अपने समय के विख्यात वैज्ञानिक गैलेलियो ने ब्रह्माण्डीय गुरूत्वाकर्षण का सिद्धान्त मानने से इंकार कर दिया था। वे पृथ्वी के आकर्षण शक्ति को एक ग्रह पिण्ड की आकर्षण शक्ति मानते थे। वही शक्ति एक दूसरे को आकर्षित व प्रभावित करती है और वे एंक दूसरों के साथ बांधे हुए है। महान वैज्ञानिक न्यूटन ने भी काफी देर के बाद यह स्वीकार किया कि ग्रहों के बीच गुरूत्वाकर्षण की बन्धन श्रृंखला है सभी ग्रह एक दूसरे के गुरूत्वाकर्षण से बंधे हैं।

वैज्ञानिकों के शोध के अनुसार अरबों वर्ष पूर्व सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड द्रव्य का घनीभूत महापिण्ड के रूप में था। नाभिकीय कणों का सघन सम्पूञ्जन था। महापिण्ड जब सघन होता चला गया तभी महाविस्फोट हुआ और द्रुत गति से विस्तार होने लगा जो अनवरत चल रहा है।

उसी से मन्दाकिनी, नीहारिकाएं बनी, ग्रह पिण्ड और नक्षत्र बने। इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि दूरस्थ आकाश गंगाएं हमसे लगातार दूर होती जा रही है। इससे स्पष्ट होता है कि विश्व ब्रह्माण्ड का लगातार विस्तार हो रहा है। प्रो. फ्रेड हायल ने ही सर्वप्रथम यह खोजा था कि आकाशगंगाएं पृथ्वी से दूर हट रही हैं। इससे कुछ वैज्ञानिकों ने निष्कर्ष निकाला। लेकिन प्रो. हायल का कहना था कि पुरानी मन्दाकिनियां जो दूर भागती दिखती हैं और अस्तित्वहीन होती रहती है इससे ब्रह्माण्ड की पिण्ड संख्या स्थिर रहती है और घनत्व अपरिवर्तित रहता है। आज के वैज्ञानिकों का मत है कि प्रारम्भ में प्लाज्मा रूप में विश्व ब्रह्माण्ड का समस्त द्रव्य एकत्र था वह सन्तुलन की स्थिति थी। धीरे-धीरे असन्तुलन आरम्भ हुआ होगा। प्लाज्मा के कणों तथा प्रतिकणों यानि एन्टीमेटर के महाविस्फोट हुए इससे फोटोन कणों से परमाणु बने। जैसे-जैसे समय बीतता गया परमाणु घनीभूत हुए उन्ही से क्रमशः विविध आकाश पिण्ड अस्तित्व में आये। यह परिकल्पना आल्फवेन और क्लाइन वैज्ञानिक की है। इसी आधार पर कणो यानि मैटर और प्रतिकणों यानि एन्टीमेटर के खोज की महान शुरूआत हुई। कणों तथा प्रतिकणों के ही आधार पर द्रव्य और प्रतिद्रव्य की धारणा पुष्ट हुई।

प्रो. गोल्ड हानी ने एक शोध के दौरान यह सिद्ध करने की कोशिश की, पुंजीभूत द्रव्य का महापिण्ड जब विखण्डित हो गया और विखण्डित होते ही दो विश्वों में बंट गया। एक द्रव्यमय विश्व और दूसरा प्रति द्रव्यमय विश्व। वैज्ञानिक गोल्ड हानर व उनके अन्य सहयोगी वैज्ञानिक सर्वथा भिन्न प्रतिद्रव्य की कल्पना करते हैं जो कुछ भी उनके अनुसार दृश्य विश्व ब्रह्माण्ड में प्रति द्रव्य वाली आकाश गंगाएं अस्तित्व में है। किन्तु हमें उनका ज्ञान अभी सम्भव नहीं है क्योंकि अभी मात्र हम आकाशीय ग्रह-पिण्डों से उत्सर्जित विकिरण अथवा प्रकाश किरण द्वारा ही उन पिण्डों के बारे में जान पाये है।

द्रव्य-प्रतिद्रव्य का विकिरण एक जैसा ही होता है। हम उसे अलग से पहचानने में अभी असमर्थ हैं। प्रयास जारी है। अभी हाल में ही अमेरिका ने कुछ ऐसे यंत्र समुद्र की गहरायी भी लगाये हैं जिससे प्रतिद्रव्य यानि एन्टीमैटर को पकड़ा जा सके। उनका कहना है कि एन्टीमैटर इतना तेज है कि वह सेकेण्डों में किसी भी ठोस वस्तु से आर-पार हो जाता है लेकिन एन्टीमैटर का आभास हो चुका है जल्दी ही इसका रहस्य संसार के सामने आयेगा ऐसा वैज्ञानिकों का विश्वास है। वैज्ञानिक फेयन मॉर के अनुसार ब्रह्माण्ड व्यापी प्रति पदार्थ के अति सूक्ष्म घटक

पार्टिजोन समय से पीछे भी चलते हैं उसका प्रवाह भविष्य की ओर न होकर पीछे की ओर भी लौटता है जो रहस्य की बात है। अन्तरिक्षवेत्ता फ्रेड हायल का कहना है कि समय आमतौर पर जिस प्रकार वर्तमान से भविष्य की ओर चलता है उसी प्रकार सिद्धान्ततः वह भूतकाल की ओर भी गतिशील हो सकता है। टाईम मशीन की यही परिकल्पना है। अन्तरिक्ष विज्ञान के शोधकर्त्ता इस बात का समर्थन कर रहे हैं कि अपने सौर मण्डल में तो न सही पर अनन्त आकाश में ऐसे कितने ही ग्रह हैं जो पदार्थ से नहीं प्रति पदार्थ से बने होंगे। उन भरे हुए परमाणुओं को टेक्योन नाम दिया गया है। हो सकता है वहां के निवासी हमसे ज्यादा बुद्धिमान हों। उनका विज्ञान हम लोगों से ज्यादा उन्नत हो। जिस तरह पदार्थ का अस्तित्व पूरे विश्व ब्रह्माण्ड में है उसी तरह प्रति पदार्थ का भी अस्तित्व पूरे ब्रह्माण्ड में फैला होगा। जिस प्रकार पदार्थ के कारण यह जगत दृश्य जगत है उसी प्रकार प्रति पदार्थ के कारण वह जगत अदृश्य जगत है। हो सकता है वह जगत अदृश्य रूप में हमारे आस-पास हो जिसका आभास हम लोग नहीं कर पा रहे हैं। प्राचीन योगी साधकों को ब्रह्माण्डीय ज्ञान प्राप्त हुआ था उसी अभौतिक सत्ता के कारण से। समाधि की अवस्था में अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा उस लोक से सम्पर्क कर असीम ज्ञान को होते थे उपलब्ध। वैश्वानर जगत की परिकल्पना उसी अदृश्य सत्ता को माना है प्राचीन योगियों ने। प्राचीन आध्यात्मिक ग्रन्थों में वैश्वानर जगत का उल्लेख मिलता है जो दृश्य जगत से परे है। अदृश्य सत्ता है। वैज्ञानिक का मत है कि हम लोगों का प्रति रूप है। जो जैसा हम करते हैं उसी तरह वहां भी हो रहा है। हो सकता है कि वह प्रतिद्रव्य पदार्थ से बना हो और हमसे ज्यादा उन्नत हो। ज्यादातर वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है कि उन्हे खोज करने अथवा उन्होने जो भी चमत्कारिक आविष्कार किए वह उन्हे स्वप्न के माध्यम से लाक्षणिक रूप से प्राप्त हुआ। जब उन्होने एकाग्रभाव से स्वप्न के लाक्षणिक संकेतों का अध्ययन किया तो उनके आविष्कार का मूल स्त्रोत निकला। जैसा कि ऊपर संक्षेप में वैज्ञानिकों के बारे बतलाया गया। आज प्रतिद्रिव्य पदार्थ पर शोध चल रहा है। हो सकता है भविष्य में इसके बारे में और भी जानकारी मिल सके। जहां तक मेरा मानना है कि प्रतिपदार्थ ही अभौतिक सत्ता है जहां मानव शरीर से अलग होने के बाद सूक्ष्म शरीर द्वारा वहां निवास करता है। अब कुछ अन्य तथ्यों पर प्रकाश डालेंगे।

चेतन मन का वाहक शरीर है। मन के बार-बार किसी कार्य को करने को कहता है। शरीर सक्रिय हो जाता है शरीर के माध्यम से मन अपना कार्य अथवा अपनी इच्छा पूर्ण कर लेता है।

एक संन्यासी से सत्संग के दौरान मैंने पूछा- महात्मा मन को कैसे साधा जाये? संन्यासी ने हँसते हुए बोले- मन का वाहक शरीर है मन जितना कहे, मन जितना चंचल हो अगर आप शरीर को निष्क्रिय कर देगे धीरे-धीरे मन की चंचलता कम हो जायेगी। मन को शान्त रखना है तो शरीर को मन के अनुसार न चलने दे धीरे-धीरे मन खुद ही शान्त होने लगेगा। उसकी भूख शान्त होगी। यह बात तो मन की है। उसी प्रकार हमारे आन्तर मन की सीमा असीमित है। अतीत की गहराईयों में जाना हो या हो भविष्य के अनन्त सागर में जाना हो उसके लिए समय सीमा का कोई बन्धन नहीं होता। मानव मन जब किसी विचार को बार-बार दोहराता है अपने मन में तो धीरे-धीरे मन उस विचार की ऊर्जा ग्रहण कर लेता है। आपको ज्ञात होना चाहिए कि विचार भी एक ऊर्जा का ही रूप है। जब मानव सो जाता है तब वही विचार एक झटके से अवचेतन मन ग्रहण कर लेता है। अवचेतन मन का वाहक सूक्ष्म शरीर है। सूक्ष्म शरीर के माध्यम से अवचेतन मन उन सम्भावनाओं को तलाशने लगता है। जैसा कि मानव मन चाहता है वह अतीत की घटना हो या हो भविष्य की। जब वैज्ञानिक किसी खोज में लगातार डूबे रहते हैं तो उनका मंथन चलता रहता है लेकिन समाधान नहीं मिलता जब निद्रा की अवस्था में अवचेतन मन उनके विचार को लेकर भविष्य की अनन्त सीमा में प्रवेश करता है तब तत्काल उन्हे उनके शोध का समाधान सूत्र के रूप में मिल जाता है। वह भविष्य के ज्ञान के उस भण्डार या जगत में पहुंच जाता है जहां हमारी सोच नहीं है। आज नहीं तो कल वैज्ञानिक इस रहस्य को जान जायेंगे। आन्तर जगत में प्रवेश कैसे किया जाये और वहां के ज्ञान को कैसे प्राप्त किया जाये? यह एक विकट प्रश्न है। रामायण और महाभारत काल में मंत्रो का युग रहा और आज यंत्रों का युग है। उस समय लोग काफी प्रगतिशील थे। मंत्रों के द्वारा वे सूक्ष्म शरीर से किसी भी लोक-लोकान्तर की यात्रा करने में सक्षम थे और असीम ज्ञान को करते थे प्राप्त। लेकिन ऐसा कौन सा क्षण आया कि उस अदृश्य जगत से मानव का सम्पर्क भंग हो गया। ज्ञात और अज्ञात रूप से सपनों के माध्यम से आज भी मानव कभी-कभी उस जगत का आभास कर लेता है और हो जाता है उपलब्ध।

पराभौतिक अस्तित्व का प्रमाण- वैज्ञानिकों ने एक ऐसे अति सूक्ष्म कण की खोज की है जिसमें घनत्व, भार, विस्फुटन, चुम्बकीय क्षेत्र आदि भौतिक लक्षण नहीं मिलते, वैज्ञानिकों ने इस कण का नाम न्यूट्रीनों बतलाया है। ये अरबों, खरबों की संख्या में मानव शरीर के भीतर अबाध गति से चलते हैं और बाह प्रकाश की गति से सर्वज्ञ घूम रहे हैं। अभौतिक होने के कारण भौतिक कण का अवरोध नहीं

होता है। तात्पर्य यह है कि ये भौतिक कण इन्हे रोक नहीं पाते अगर संयोगवश इनका आपस में टकराव भी हो जाता है लेकिन ऐसे टकराव को वैज्ञानिक देख नहीं पाते। इसी आधार पर विख्यात गणित शास्त्री एड्रिया ड्राब्स एक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। जिसमें न्यूट्रिनों के समान साइट्रिनों नामक कण की परिकल्पना की गयी है। ये मस्तिष्क के ही न्यूरान कणो के साथ जुड़कर पराचेतना का निर्माण प्रशस्त करते हैं। भौतिक शास्त्री मार्टिन रूडरकर ने यहां तक कहा कि मानव की नाड़ी व्यवस्था पर न्यूट्रिनों का व्यापक प्रभाव है।

प्रसिद्ध अन्तरिक्ष वैज्ञानिक एकसेल फरसॉव का दावा है कि अतीन्द्रिय संवेदना की न्यूट्रिनों की भांति व्यापक मानसिक चेतना में सम्पन्न माईन्डोन नामक कणो द्वारा होती है। इन कणो के द्वारा हमारा अवचेतन मन उन ब्रह्माण्डीय चेतना के साथ जुड़कर सर्वज्ञ व्याप्त हो जाता है। स्वप्न के समय जो आभास या ज्ञान प्राप्त होते हैं उसका यही रहस्य है। सम्मोहन द्वारा बहुत सारे ऐसे प्रयोग हुए जिससे यह सिद्ध होता है कि मानसिक शक्ति पदार्थ को प्रभावित करते हैं। क्वान्टम सिद्धान्त ने मन और पदार्थ के अलग अस्तित्व और उनके सम्बन्ध को सिद्ध कर दिया है कि ब्रह्माण्ड के मूल तत्व जैसे इलेक्ट्रान और फोटोन दो ईकाई हैं कुछ दशाओं में वे पदार्थ के ठोस कणो का रूप धारण कर लेती है तथा दूसरी परिस्थितियों में वे प्रति पदार्थ माध्यम के भीतर तरंगों की तरह व्यवहार करती है। ये दोनों दशायें एक दूसरे के प्रतिकूल हैं फिर भी उनका अस्तित्व है।

हाइसन बर्ग पहले वैज्ञानिक हैं जिन्होने इस बात को स्वीकार किया है कि मूल कणों के पदार्थ और प्रति पदार्थ, स्वरूप और मन के प्रतिनिधि हैं। जब हम अन्तरिक्ष में वस्तुगत स्तर पर देखते हैं तो वस्तु के साथ-साथ समय का अस्तित्व भी लुप्त हो जाता है। इस बात से यह सिद्ध होता है कि मानसिक अनुभूति, विचार, स्मृतियां आदि का अस्तित्व स्थान, काल और पदार्थ के वस्तुगत ढांचे से बाहर है फिर वे मानव मस्तिष्क के साथ उसी प्रकार जुड़े हुए हैं जिस प्रकार फोटोन का पदार्थहीन स्पन्दन मूलक स्वरूप अपने सूक्ष्म पदार्थ के रूप में चेतना को तो प्रभावित करती है परन्तु स्वयं उससे प्रभावित नहीं होती लेकिन सही तथ्य यह है कि समस्त चेतन पदार्थ जिस चेतना को प्रभावित करते हैं उससे वे भी प्रभावित होते हैं।

विज्ञान ने यह स्वीकार किया है कि इलेक्ट्रान की रहस्यमय क्रियाओं को विज्ञान के मस्तिष्क की क्रियाओं के बिना नहीं समझा जा सकता है। द्रष्टा के बिना इलेक्ट्रान की क्रियाकलाप हो ही नहीं सकती। तभी तो वैज्ञानिक लुडविग ने कहा है

कि क्वान्टम शास्त्र का दार्शनिक पक्ष तो यह है कि विज्ञान चेतना पर निर्भर करता है लेकिन आपको आश्चर्य होगा कि बहुत पहले भारत के वेदान्त दर्शन ने कहा था कि द्रष्टा मन और दृश्य पदार्थ को अलग नहीं किया जा सकता। देखी गयी वस्तु और देखने वाला मन शाश्वत अस्तित्व के दो पक्ष हैं। विज्ञान का कहना है कि जिसे हम कण कहते हैं वह वस्तुतः समग्र का अभिन्न अंश है। इस ब्रह्माण्ड के किसी अंश को ब्रह्माण्ड से अलग नहीं किया जा सकता है।

परामनोविज्ञान भी यही मानता है कि मानव की चेतना बाह्य चेतना से अलग नहीं हो सकती अतः उसे काल और स्थान के दायरों में बांधा नहीं जा सकता। साथ ही उसकी शक्ति पर भी सीमा नहीं लगायी जा सकती। कहने का तात्पर्य यह है कि ब्रह्माण्ड की मूल शक्ति मानव की चेतना के माध्यम से समग्र रूप में प्रगट हो सकती है।

ऊपर दिये गये प्रमाणो और तथ्यों से यह कहा जा सकता है कि आत्मारूपी तत्व शरीर के साथ कभी समाप्त नहीं होता। मृत्यु के बाद आत्मा अपने सम्पूर्ण पूर्वाजित ज्ञान और स्मृतियों के साथ अस्तित्व बनाये रहती है। वर्तमान में वैज्ञानिकों के पास यही चुनौती है कि वह उस अपार आत्म तत्व का अन्वेषण कर मानव को उसकी अनन्त शक्तियों का स्वामी बनाये। यह तो वैज्ञानिकों की बात है। आपको ज्ञात होना चाहिए कि प्राग्काल में हमारे देश के योगियों ने जिन सत्य को अपने समाधि में ज्ञात किया और उस रहस्य को आत्मसात किया आज के वैज्ञानिक भौतिक विज्ञान के द्वारा उन तथ्यों और सिद्धान्तों को प्रमाणित करने का प्रयास कर रहे हैं। योगियों ने जिस आन्तर चेतना के सूक्ष्म रूप और उसकी शक्ति को जाना वैज्ञानिकों द्वारा किया गया उस शक्ति का आंकलन ज्यादा भिन्न नहीं है। जहां तक योग और तंत्र का प्रश्न है उसके अनुसार समाधि की उच्च अवस्था में आन्तर मन द्वारा उस अदृश्य जगत में निवास करने वाले लोगों से सम्पर्क साधा जा सकता है। उच्चकोटि के साधक प्राण शक्ति द्वारा भौतिक जगत में दूरस्थ वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं और हजारों मील स्थित किसी भी व्यक्ति से सम्पर्क स्थापित कर उसकी गति-मति एवं उसके विचारों को ज्ञात कर लेते हैं। इतना ही नहीं अपने विचारों को सम्प्रेषण भी कराते हैं लेकिन योग के उच्चतम् अवस्था की ओर अग्रसर होते ही यह पता चलता है कि जीवन का यज्ञरूपी जीवन ऋत्, सत् और तम इन तीन तत्वों पर चलता है। तब हम जीवन को जड़ और चेतन इन दोनों में फैला देखते हैं। सत् चेतन है और तम् जड़ है इन दोनों की सीमाओं पर रजोगुण का साम्राज्य

है जिसके शिथिल होने पर प्रकृति क्रमशः जीवाणु, शक्ति और विचार में लीन होकर शान्त होती है यांनि निष्क्रिय होती है। अतः स्वप्न के दृश्यों के समय यह विलीन होने के समान है। सारा दृश्य जगत और अदृश्य जगत सूक्ष्म रश्मियों से बना है और इस रश्मि जाल में सारे तत्व सिमटे हुए हैं।

प्राचीन रहस्य विद्या की सर्वाधिक आश्चर्यजनक देन यह है कि मानव शरीर थ्री डी डाइमेन्सन ऑफ स्पेस और वन डाइमेन्सन ऑफ ट्यून के समानुपातिक विप्रत्यय से आकर ग्रहण करता है। इस रहस्य को भलीभांति समझ कर आचरण में लेने की स्थिति प्राप्त होने पर मानव अपने शरीर को किसी भी स्थान पर किसी भी दूरी और परिमाण में प्रगट और पुनर्विलय कर सकता है। ऐसे प्रमाणो से भारतीय योगी समाज भरा पड़ा है। अगर विज्ञान इस सिद्धान्त को लेकर चलता है तो प्राचीन योग विद्या का रहस्यात्मक पहलू पर विचार करना होगा। दीर्घ कालीन ध्यान द्वारा स्वदेह की रक्षा हेतु ब्रह्माण्ड के उन रश्मियों का सहयोग या उपयोग किया जा सकता है। तब उस अभौतिक जगत में जाने के लिए संयत विचार करेगा वही ब्रह्माण्डीय रश्मियों द्वारा कण्डेन्स (संयुक्त) होकर सूक्ष्म आकार ग्रहण कर सकेगा और उसे मालूम होगा कि उसका सूक्ष्म शरीर परमेश्वर का एक अद्‌भुत अविष्कार है। सूक्ष्म शरीर द्वारा आन्तर जगत में प्रवेश का मार्ग खुलता है। तो विज्ञान के लिए ब्रह्माण्ड का अनन्त असीम रहस्य उजागार होगा। तब वैज्ञानिकों द्वारा आन्तर जगत में प्रवेश कर नये-नये ज्ञान को कर सकेंगे प्राप्त। सही मायने में तभी विज्ञान का युग प्रारम्भ होगा।

सत्‌ और असत्‌ जगत- पदार्थ की संरचना के बारे में विज्ञान ने जो खोज की यदि हम उसको गम्भीरता से अध्ययन करे तो भौतिक जगत से सम्बन्धित मूल भ्रान्ति हमें तत्काल स्पष्ट हो जायेगी। हम अपने चारो ओर जिन पदार्थो को ठोस मानते हैं वे केवल अणु और परमाणुओं से बने हैं और उनके बीच स्पन्दनों की क्रिया बराबर चल रही है। हमारा शरीर भी अणु-परमाणु का सघन क्रिया है और है स्पन्दन। अगर इन्हे अलग कर दिया जाये तो हमारा शरीर ही नहीं रहेगा। मैंने वैज्ञानिक ढंग से विचार व प्रमाण पर काफी उल्लेख कर दिया है। अब हम अन्य विधि पर विचार करेंगे। काल के अनन्त प्रवाह में सब कुछ काल कवलित होता जा रहा है, मानव मात्र ही नहीं सौर मण्डल भी निरन्तर काल के प्रभाव में विलुप्त होता जा रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि अनन्त भविष्य हमारे सामने है परन्तु भूत और भविष्य को अलग करने वाला वर्तमान बनते ही उसकी भी वही परिणति होने वाली

है। क्या हम अपने जीवन से सम्बन्धित इस परम सत्य से परिचित हैं? अगर देखा जाये तो वैचारिक दृष्टि से हम सचमुच अपरिचित हैं परन्तु क्या हम इसके वास्तविक महत्व को जानने की चेष्टा करते हैं नहीं बिल्कुल नहीं। यदि हम उसे जानते होते तो हम इस सत्य की ओर इतने उदासीन न होते। सांसारिक जीवन जीकर सन्तुष्ट होते लेकिन क्या हम सन्तुष्ट हैं? नहीं क्योंकि हमारी भूख क्या है उसे नहीं जान पाते केवल माया के आवरण ढके अपने जीवन को जी रहे हैं।

लेकिन हमारे मनीषियों ने जीवन चक्र और ज़गत को देखने की जो दृष्टि अपनायी वह था तटस्थ भाव। उन्होने मानव जीवन को तटस्थ होकर देखा और पाया कि जैसे बाहर से दिखता है वैसा है नहीं। एक युवा जवानी की उमंगों के साथ जवानी में प्रवेश करता है। उसे चारो तरफ उमंग ही उमंग दिखलायी देता है लेकिन जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है उसका उमंग धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है और वह अनुभव करने लगता है दुख और सुख का। सुख के अनुभवों का मिश्रण, सुखद अनुभवों की प्राप्ति के लिए वह अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक कष्टप्रद अनुभवों को सहन करता रहता है। एक दिन मृत्यु को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार प्रत्येक जन्म सब प्रकार के कर्मो का संस्कार लेकर जन्म-मरण के चक्रों में बंधा रहता है।

आध्यात्मिक ऊर्जा जाग्रत करने के लिए हमें कुछ बिन्दुओं पर विचार करना होगा। उसके बिना हम आध्यात्मिक मार्ग पर चल नहीं सकते। अपने जीवन और जिस जगत से परिचित हैं, जिसमें हम रहते हैं उस पर गहराई से विचार करने की जरूरत है। निरूद्देश्य भटकते रहने या प्रभावहीन दिनचर्या मात्र रह जाये इसके लिए आवश्यक है कि अपने आन्तर जीवन में परिवर्तन लाने के लिए एक प्रयत्न किया जाये। हमारा यह जगत जैसा दिखता है वास्तव में वैसा है नहीं। हमारे सन्तोष का कारण यह है कि हमें वास्तव में उसके सत्य स्वरूप का बोध ही नहीं है। अगर दूसरे बिन्दू पर विचार किया जाये तो जिस आन्तर जगत में हम प्रवेश कर सकते हैं उसके स्वरूप को समझने का प्रयत्न करें। हम यह सामान्य तौर पर यह समझ लेना चाहते हैं कि यहां इस जगत के पूर्ण और सुखी जीवन की उच्चतम् कल्पना से उस आन्तर जगत का जीवन कहीं अधिक समृद्ध, सजीव और वास्तविक है। धर्म ग्रन्थों में सन्त ज्ञानियों द्वारा जो वर्णन मिलता है उससे हम हजारों उदाहरण ले सकते हैं। सभी का यही संकेत है इस नश्वर जगत के बाद एक आन्तर जगत है वही सत् जगत है। वे इस बात की पुष्टि करते हैं कि सत् जगत आनन्द और इन्द्रियातीत ज्ञान से पूर्ण है। सन्तो और ऋषियों के इन संकेतों के अतिरिक्त स्वयं

विज्ञान भी इस जगत के अलावा एक अदृश्य जगत के अस्तित्व का संकेत करता हैं। सिद्ध साधकों के समाधि में प्राप्त प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित गुह्य सिद्धान्त ही सही स्थिति स्पष्ट करता है। पदार्थ, जड़ और मन दोनों जगतों के अस्तित्व में सामंजस्य स्थापित करता है। दोनो जगत एक सत् जगत की अभिव्यक्तियां हैं तथा उसी में स्थित है। वही सत् जगत अनेक में विभक्त हो जाने के कारण दृष्टा-दृश्य उत्पन्न करता है। दृश्य जगत के परे जाना और उस सत् जगत को जानना सम्भव है यह दृश्य जगत उसी सत् जगत का छाया मात्र है। आन्तर जगत में प्रवेश करने का एक ही मार्ग है वह है समाधि की अवस्था। समाधि ध्यान की उच्चतम् अवस्था है। उसमें ध्यान के लक्ष्य का ही भान रहता है स्वयं मन तक का भान नहीं रहता है। यह किसी विषय पर ध्यान की परिपूर्णता है। इसमें सत्य की प्रत्यक्ष अनुभूति की जाती है। ध्यान पूर्ण होने पर वही समाधि बन जाती है। समाधि में मन के द्वार समस्त बाह्य और आन्तरिक विक्षेपों और बाधाओं के लिए बन्द हो जाते हैं। मन जितना गहरा डूबता जायेगा एकाग्रता उतनी ही बढ़ती जायेगी। जिस विषय वस्तु पर मन ध्यान करता है उसके सभी पक्ष समाप्त हो जाते हैं। इस स्थिति में उसे अत्यन्त ही एकाग्रता की अवस्था में रहना पड़ता है। वह न तो पीछे जा सकता है और न तो आगे, मानो शून्य में स्थित हो। समाधि की तीव्र एकाग्रता से समस्त बाह्य जगत पदार्थ से सम्पर्क समाप्त हो जाता है। अतः एक ही मार्ग शेष रह जाता है आन्तर जगत में प्रवेश करने का। उसकी चेतना के क्षितिज पर एक नये जगत का उदय होता है। इस नये जगत को ही आन्तर जगत कहते हैं।

अपार्थिव जगत- स्थूल जगत दृश्यमान है। इनके अतिरिक्त ब्रह्माण्ड में ऐसे जगत हैं जिनका अस्तित्व अपार्थिव है। वह आन्तर जगत अथवा आन्तर लोक है उसी को वैश्वानर जगत कहते हैं। भारतीय ऋषि, योगी समाधि की उच्च अवस्था में करते हैं जिसका अनुभव। भारतीय योग में वैश्वानर जगत का वर्णन है वहां सब भावमय है स्थूल कल्पना से उसका किसी प्रकार का तारतम्य नहीं है। वैश्वानर जगत अथवा सूक्ष्म जगत मेरे विचार से प्रति द्रव्य पदार्थ का सूक्ष्मतम् जगत है। जो मानव मन के चार अवस्थाओं से जुड़ा है- जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीयावस्था। इनसे सम्बन्धित मानव के चार सूक्ष्म शरीर हैं। जैसे स्थूल शरीर, वासना शरीर (प्रेत शरीर), सूक्ष्म शरीर और मनोमय शरीर। मन की चार अवस्थाओं और उनसे सम्बन्धित चार शरीर, मन वास्तव में आत्मा का अति सूक्ष्म रहस्यमय क्रियाशील तत्व है। वह जिस अवस्था अथवा जिस शरीर में रहता है उस शरीर के साथ उस

जगत से सम्पर्क कर लेता है। योग की उच्चतम् अवस्था समाधि में मन तुरीय अवस्था मनोमय शरीर में विद्यमान होकर वैश्वानर जगत से सम्बन्ध स्थापित करता है। योगीगण मनोमय शरीर द्वारा वैश्वानर जगत में प्रवेश करते हैं और ज्ञान का विपुल भण्डार लेकर स्थूल शरीर में लौटते हैं। भारतीय संस्कृति और साधना में वैश्वानर जगत को उच्चतम् ज्ञान-विज्ञान का असीम भण्डार बतलाया है। इस तथ्य को जन्म-मृत्यु और पुनर्जन्म पर शोध करने वाले वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया है। जैसा कि ऊपर बतलाया गया है कि इस जगत के अलावा कोई अदृश्य जगत है।

आधुनिक भौतिक विज्ञान की दृष्टि में जगत मानव से निरपेक्ष है और मानव जगत से। वैज्ञानिक जीवन और जगत में अर्थ खोजता है लेकिन इस दिशा में उसके लिए सबसे विकट समस्या यह है कि वह अपने आपको एक ऐसे क्षेत्र में पाता है जहां सब वैज्ञानिक साधनों और प्रयोगों की सीमा समाप्त हो जाती है और अपनी विवशता का भी हो जाता है आभास। वास्तविकता इसी से समझी जा सकती है कि पदार्थ की मूल इकाई इलेक्ट्रान (ऊर्जा) के विश्लेषण में अभी तक वैज्ञानिक अपने आपको असमर्थ पा रहे हैं लेकिन प्रयासरत हैं।

अभी केवल कल्पना मात्र कर रहे हैं। पदार्थ को, भौतिक सत्ता को सर्वोपरिं मानने वाले वैज्ञानिक जब पदार्थ की मूल इकाई इलेक्ट्रान के विश्लेषण में कोई कार्य कारण सम्बन्ध स्थापित करने में सफलता नहीं मिली तो उन्हे यह स्वीकार करने को विवश होना पड़ा कि भौतिक जगत से आगे सम्भवतः कोई अदृश्य जगत यानि अभौतिक सत्ता का कहीं न कहीं अस्तित्व है। जो चैतन्य है जिसमें प्रवेश कर उच्चतम् वैज्ञानिक तथ्यों का साक्षात्कार हो सकता है। जो भौतिक और चेतना के स्तर पर सम्भव नहीं है और उस अभौतिक जगत का प्रवेश द्वार है अवचेतन मन।

मेरा विश्वास है कि भविष्य में वैज्ञानिक,मनोवैज्ञानिक और परामनोवैज्ञानिक भारतीय अध्यात्म योग का आश्रय लेकर उस अदृश्य जगत का आभास कर लेंगे तब विज्ञान और धर्म विज्ञान का नया युग कहलायेगा इसमे सन्देह नहीं।

***

तृतीय अध्याय
आत्मा की अवस्थाएँ

योग-तंत्र की समस्त साधना का मूल बिन्दू है आत्मा। आत्म तत्व की उपलब्धि ही योग तंत्र साधना का एकमात्र उद्देश्य है सायुज्य लाभ, परम गति, निर्वाण, मोक्ष आदि।

परमात्मा की तरह आत्मा की भी व्याख्या नहीं की जा सकती है किन्तु उसका अनुभव अवश्य किया जा सकता है और उसे प्राप्त भी किया जा सकता है। आत्म ज्ञान ही परम ज्ञान है। आत्म अनुभव ही परम अनुभव है। आत्मा ही परमेश्वर और आत्मा ही जीव है। मनुष्य के भीतर जो बोध की क्षमता है जो चैतन्य की क्षमता है और है जो ज्ञाता यानि जो जानने वाला है, जो द्रष्टा है, जो साक्षी है उसे आत्मा कहते हैं। शरीर की सीमाओं में जो परमात्मा का अस्तित्व है। उसका नाम है आत्म लेकिन जब आत्मा को भ्रम हो जाता है कि मैं शरीर हूँ तब उसे जीव या जीवात्मा कहते हैं। बस यहीं से जन्म मृत्यु पुनर्जन्म का रहस्यवाद शुरू हो जाता है।

आत्मा मन और शरीर इन तीनों के सामन्जस्य का नाम भौतिक जीवन है। वैसे इन तीनों की सत्ता स्वतंत्र है लेकिन उनका जब एक निश्चित तल पर सामन्जस्य होता है तो जीवन की अभिव्यक्ति होती है। आत्मा स्वतंत्र है वह किसी भी अवस्था में परतंत्र नहीं हो सकती। मन परतंत्र है। लेकिन विविध साधनाओं द्वारा वह स्वतंत्र हो सकता है। तीसरी है शरीर। शरीर सदैव से परतंत्र है। वह किसी भी अवस्था में स्वतंत्र नहीं हो सकता।

जन्म मृत्यु और पुनर्जन्म ये तीन अकाट्य सत्य है। मगर उनका आत्मा से नहीं बल्कि एकमात्र शरीर से सम्बन्ध है और इसी कारण वह परतंत्र है। आत्मा की न मृत्यु है न जन्म है न तो पुनर्जन्म है इसीलिए वह स्वतंत्र है।

परिचित और प्रत्यक्ष अनुभव में आने वाली संसार के भीतर ही कुछ ऐसी सूक्ष्म तथा अदृश्य सत्ताओं का अस्तित्व है जिन्हे अभी तक हमारा भौतिक विज्ञान जान समझ नहीं पाया है। ऐसा इसलिए क्योंकि अति सूक्ष्म बल्कि अदृश्य होने के कारण यह आधुनिक वैज्ञानिक यंत्रों की पकड़ में नहीं आती। यह अदृश्य और सूक्ष्म सत्तायें मानव जाति के लिए कल्याणकारी भी हो सकती हैं और विनाशकारी भी। इन्हे अदृश्य लोक

अथवा सूक्ष्म जगत भी कहा जा सकता है। जिस प्रकार हमारा भौतिक जगत तीन आयामी जगत है वैसे ही सूक्ष्म जगत चार आयामी जगत है। जिसके सम्बन्ध में हम केवल अनुमान ही लगा सकते हैं कि यह सूक्ष्म जगत इस दृश्य जगत से बहुत दूर नहीं है। बल्कि यहीं हमारे पास है। परन्तु जब तक हम स्वयं इस स्थूल जगत से सूक्ष्म जगत में नहीं पहुंचते उसे देख अथवा अनुभव नहीं कर सकते और जब हम उस सूक्ष्म जगत में प्रवेश करते हैं अथवा विचरण करते हैं तो हम इस भौतिक जगत के लिए अदृश्य हो जाते हैं और रह जाता है इस भौतिक जगत में हमारा भौतिक एकमात्र शरीर।

जिस प्रकार मानवीय सत्ता के तीन शरीर माने जाते हैं- स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण। उसी प्रकार प्रत्यक्ष स्थूल जगत के भीतर भी भारतीय मनीषियों तथा परामनोवैज्ञानिक ने तीन परतों की मान्यता दी है- स्थूल, सूक्ष्म और कारण। देखते ही देखते पदार्थो, वस्तुओं तथा मनुष्यों के अदृश्य हो जाने वाली आश्चर्यजनक घटनायें सूक्ष्म परत का ही क्रियाकलाप हैं। 'वरमुडा त्रिकोण' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं जो अपने आप में आज तक रहस्य बना हुआ है वैज्ञानिकों के लिए। परन्तु जहां अभी स्थूल जगत के रहस्यों का ही पूरी तरह से पता नहीं लगाया जा सका तो रहस्यमय सूक्ष्म जगत के सम्बन्ध में क्या कहा जा सकता है? सूक्ष्म जगत में अदृश्य हो जाने की विचित्र अलौकिक घटनायें अब तक न जाने कितनी बार घट चुकी हैं और बराबर घटती भी रहती है। जिन पर हम केवल आश्चर्य प्रकट कर सकते हैं। क्योंकि विज्ञान इस प्रकार की घटनाओं की व्याख्या करने में असमर्थ है। जिससे यह प्रतीत होता है कि निश्चय ही भौतिक जगत के सामानान्तरं कोई अभौतिक सत्ता है और वह अभौतिक सत्ता और कुछ नहीं एकमात्र सूक्ष्म जगत ही है। जिसमें मरणोपरान्त सूक्ष्म शरीर के द्वारा आत्मा प्रवेश करती है। जहां हम जीवन को ठीक इसी प्रकार अनुभव करते हैं जिस प्रकार जीवित अवस्था में। परामनोवैज्ञानिकों का विचार है कि निद्रा भी एक प्रकार से मृत्यु के समान ही होती है। हमें शरीर की कोई सुध नही रहती। हमारा सूक्ष्म शरीर लोक-लोकान्तरों में जागने पर पता नहीं कहां-कहां का भ्रमण कर आता है। निद्रा से हम जागेंगे ऐसा विचार होता है परन्तु अन्तिम निद्रा यानि मृत्यु से हम जागेंगे, ऐसा विचार नहीं होता। फिर हमारी आत्मा कहां-कहां भटकेगी कैसे जाने?

जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म का रहस्य आज भी एक रहस्य ही है। इस रहस्य पर जमी परतों को हटाया जाना आज भी मानव के वश के बाहर है। हम क्यों जन्म लेते हैं? जन्म लेकर संसार में आते हैं तो क्यों और किस उद्देश्य से आते हैं? क्या इस

संसार में हमारा आना आवश्यक है? आते हैं तो मर क्यों जाते हैं? मरने के बाद कहां जाते हैं? ये कुछ इस प्रकार के प्रश्न हैं जो आज भी समुचित उत्तर की प्रतीक्षा में हैं। इस दिशा में जितना भी शोध अन्वेषण और अध्ययन किया गया है उससे यह सिद्ध हो जाता है कि मानव शरीर में एक परम तत्व विद्यमान है जिसे आत्मा की संज्ञा दी गयी है- वह अजर और अमर है। उसके अस्तित्व का नाश किसी भी अवस्था में अथवा किसी भी काल में नहीं होता है। मृत्यु के बाद भी उसके अस्तित्व में किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं आता। उसका स्वरूप पूर्ववत् बना रहता है।

मृत्यु क्या है? इस सनातन प्रश्न के उत्तर में इतना ही कहा जा सकता है कि स्थूल शरीर का सदा के लिए अलग हो जाना। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, सूक्ष्म शरीर का वह भाग है जिसका मनुष्य जीवित अवस्था में भी हर समय प्रयोग करता है। मनुष्य का व्यक्तित्व सूक्ष्म शरीर जिसमें अन्तःकरण है जो मृत्यु के पश्चात भी वैसा ही रहता है। सूक्ष्म शरीर काल और आकाश की सीमा से मुक्त होने पर भी वैसा ही रहता है। वास्तव में देश काल, पात्र से मुक्त होता है वह। जहां ध्यान पाये वहां वह स्वयं है।

जैसे भौतिक शरीर का निर्माण अणुओं के समूह से होता है उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर की रचना होती है परमाणुओं के सूक्ष्मतम् वैद्युतिक कणों से और उन्ही वैद्युतिक कणों के प्रभावों में विद्यमान रहते हैं पिछले कई जन्मों के हमारे विचार, हमारे अच्छे बुरे कर्मो के संस्कार, हमारे ज्ञान, हमारे अनुभव, हमारे अच्छे बुरे भाव और इन सबके अतिरिक्त हमारी इच्छायें, हमारी अभिलाषायें, हमारी कामनायें, हमारी आशायें, हमारी आकांक्षायें और हम अपने जीवनकाल में जैसा जो कुछ भी रहें हैं उन सबका सारतत्व है। अब प्रश्न है कि सूक्ष्म शरीर होता कैसा है? परामनोवैज्ञानिक शोध और अन्वेषण के अनुसार सूक्ष्म शरीर का आकार प्रकार और रूप रंग वर्तमान में उसके द्वारा छोड़े गये मृत शरीर जैसा ही होता है। किंचितमात्र दोनों में अन्तर नहीं होता है और वही सूक्ष्म शरीर समयानुसार जब अगले जन्म में नवीन स्थूल शरीर स्वीकार करता है तो उसका आकार-प्रकार और रूप-रंग उसी नये स्थूल शरीर के अनुरूप हो जाता है। यहां एक बात समझ लेना चाहिए कि आत्मा एक स्वतंत्र सत्ता है किन्तु शरीर के अभाव में वह रह नहीं सकती है। अवस्था के अनुसार शरीर बदलती रहती है वह। शरीर, आत्मा का वाहक है और इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। वाहक रूप से सात शरीर हैं जिनमें प्रथम दो शरीर, स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर आत्मा के लिए महत्वपूर्ण है इसलिए कि स्थूल शरीर कर्म शरीर है और सूक्ष्म शरीर है भोग शरीर। आवागमन के मूल में कर्म और उसके फल अथवा परिणाम का भोग ही समझना होगा। स्थूल

शरीर माता-पिता से उपलब्ध होता है और जन्म लेता है। उसकी अपनी एक सीमा है, अपनी सामर्थ्य है। उतने ही दिन वह एक यंत्र की तरह चलता है और फिर समाप्त हो जाता है। शरीर वास्तव में एक यंत्र ही है जिसका निर्माण माता-पिता करते हैं। जिसे हम जीवन कहते हैं वह स्थूल शरीर की अपनी यात्रा है जो जन्म से शुरू होती है और समाप्त होती है मृत्यु के तट पर। दूसरा सूक्ष्म शरीर जो स्थूल शरीर के साथ दूध और पानी की तरह मिला रहता है पिछले जन्म से आता है और वही यात्रा भी करता है लोक-लोकान्तरों की।

गर्भ में स्थित शरीर में स्थूल शरीर का प्रवेश एक अपूर्व प्राकृतिक घटना है जो अपने आपमें स्वचालित है। जैसे पानी अपने स्वभाव के अनुसार अपने आप नीचे की ओर प्रवाहित हो जाता है उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर भी अपने योग्य और अनुकूल स्थूल शरीर को हो जाता है उपलब्ध। इसीलिए जब साधारण व्यक्ति मरता है तो तत्काल उसे गर्भ प्राप्त हो जाता है और जन्म ले लेता है वह। क्योंकि इस संसार में हर समय लाखों गर्भ उपलब्ध हैं लेकिन असाधारण व्यक्ति को मरने के बाद शीघ्र गर्भ उपलब्ध नहीं होता। उसके पुनर्जन्म में समय लगता है। असाधरण व्यक्ति अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी। दोनों प्रकार के व्यक्तियों को गर्भ के लिए लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ती है। निम्न श्रेणी के साधारण अथवा मध्यम वर्गीय लोगों को प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। इधर मरे उधर गर्भ उपलब्ध हुआ। एक शरीर छोड़ा और दूसरा शरीर तुरन्त प्राप्त हो गया उन्हे। एक मकान से दूसरे मकान में जाने के समान है उनकी मृत्यु और उनका जन्म। कहने की आवश्यकता नहीं ये सारी लीला सूक्ष्म शरीर की है। यदि सूक्ष्म शरीर न हो तो आत्मा न गर्भ में प्रवेश कर सकती है और न तो मानव शरीर में जन्म ही ले सकती है। आत्मा को स्थूल शरीर की प्राप्ति के लिए सूक्ष्म शरीर आवश्यक है यदि किसी प्रकार सूक्ष्म शरीर का अस्तित्व समाप्त हो जाये तो आत्मा के लिए स्थूल शरीर प्राप्त करना पूर्णतया असम्भव है। सूक्ष्म शरीर के अस्तित्व का विसर्जन होने पर दो अपूर्व आध्यात्मिक घटनायें घटती हैं। पहली यह कि आत्मा सदैव के लिए आवागमन से मुक्त हो जाती है जन्म और मृत्यु उसके लिए कोई अर्थ नहीं रखता। सदैव के लिए स्थूल शरीर से मुक्त हो जाती है वह और सदैव के लिए उसकी स्थूल शरीर की यात्रा समाप्त हो जाती है और उपलब्ध हो जाती है अपने कारण शरीर को। कारण शरीर को उपलब्ध आत्मा का किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रह जाता है न सूक्ष्म शरीर से और न तो स्थूल शरीर से। दूसरी यह कि आत्मा और परमात्मा के बीच जो अन्तर था, जो सीमा थी और थी जो दूरी वह सदैव के लिए हो जाती है समाप्त।

यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो जितनी भी साधना उपासनाएं हैं उन सभी का एकमात्र उद्देश्य है सूक्ष्म शरीर के अस्तित्व का नाश। न सूक्ष्म शरीर रहेगा और न तो फिर फंसना पड़ेगा भवचक्र के मायाजाल में। सूक्ष्म शरीर का नाश ही उनकी सबसे बड़ी और अन्तिम उपलब्धि है और इसमें सन्देह नहीं के शूरू से लेकर अब तक इस संसार में जितने सिद्ध योगी और सन्त महात्मा आदि हुए हैं उन सभी का एकमात्र उद्देश्य और लक्ष्य रहा है सूक्ष्म शरीर का सदैव के लिए विसर्जन।

जन्म और मृत्यु ये दोनों इस संसार की अद्भुत, विचित्र और अति रहस्यमयी घटनायें हैं। जिनका सम्बन्ध शरीर से है। शरीर जन्म लेता है और शरीर ही मरता भी है। आध्यात्मिक विचार धारा के लोगों का कहना है कि आत्मा की अन्तहीन यात्रा में जीवन एक पड़ाव है और मृत्यु एक गहरी नींद के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जैसे हम सोकर जागते हैं उसी प्रकार मृत्यु की नींद से जागने पर हमारे सामने रहता है अगला जन्म और उस जन्म से सम्बन्धित जीवन जी लेने के बाद फिर हम मृत्यु की नींद में सो जाते हैं। इस सम्बन्ध में एक अंग्रेज कवि 'स्विन बर्न' का कहना है- "जीवन एक नींद और दूसरी नींद के बीच देखा गया एक लम्बा सपना ही है।" मृत्यु वास्तव में एक चिरनिद्रा है। पुनर्जन्म के पहले यदि हम उस चिरनिद्रा की अवस्था में किसी प्रकार जाग जाते हैं तो हमारा सूक्ष्म शरीर प्रेतयोनि को उपलब्ध हो जाता है और हम प्रेतयोनि में रह कर तब तक-उस जागरण काल में समय व्यतीत करते हैं जब तक हम पुनः चिरनिद्रा की अवस्था में चले नहीं जाते और उस जागरण काल में हमारी सारी वासनायें, सारी कामनायें और सारी इच्छायें एक साथ उभर कर सामने आ जाती है जिनकी पूर्ति हम इन्द्रियों के अभाव में किसी जीवित व्यक्ति के माध्यम से करते है। मरणोपरान्त जीवात्मा के लिए जिन कर्मकाण्डों की व्यवस्था है उनका एकमात्र उद्देश्य है जीवात्मा प्रेतयोनि में है तो पुनः चिरनिद्रा की अवस्था को उपलब्ध हो जाये। वास्तव में वह जागरण काल मृतात्मा के लिए अति कष्टकारक होता है इसलिए कि उसका अवचेतन मन सक्रिय हो उठता है और उस अवचेतन मन में पिछले जन्मों की स्मृतियां भी जाग्रत हो उठती हैं जो मृतात्मा के लिए परम मानसिक क्लेश का कारण बन जाती है। यदि निश्चित समय पर चिरनिद्रा से जागने पर सूक्ष्म शरीर को योग्य गर्भ की उपलब्धि नहीं हुई तो मृतात्मा अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा सूक्ष्म जगत में विचरण करने लगती है। यदि उसमें आत्म ऊर्जा अधिक है तो अन्य लोक-लोकान्तरों की यात्रा पर भी चली जाती है। आत्म ऊर्जा उस मृतात्मा से अधिक होती है जिसने अपने जीवन काल में सद्कर्म किया है और व्यतीत किया है आध्यात्मिक जीवन। इस प्रकार की मृतात्मायें ही लोक-लोकान्तरों का भ्रमण करने के पश्चात उच्च कुल में और

अभिजात्य वर्ग में जन्म लेती हैं और अवसर उपलब्ध होने पर लोक-लोकान्तरों से प्राप्त ज्ञान-विज्ञान का इस संसार में प्रचार-प्रसार करती हैं।

जीवन में अनेक कठिनाईयां तथा विषमताएं आती हैं फिर भी हम जीवन से जकड़े रहते हैं और मृत्यु से रहते हैं भयभीत। इसी कारण स्वर्ग-नर्क, पुनर्जन्म जैसे शब्दों का जन्म भी हुआ। पर क्या हमें मृत्यु का भय है? या मृत्यु के पूर्व होने वाली असहनीय पीड़ा या अपने व्यक्तित्व को खो बैठने का भय? इस प्रसंग में यह समझ लेना चाहिए कि जन्म और मृत्यु ये दोनों घटनायें बेहोशी में घटित होती है। रोग, शोक, दुर्घटना, विषपान, फांसी, हदय अवरूद्धता आदि मृत्यु के कारण अवश्य है लेकिन मृत्यु घटित होती है बेहोशी की अवस्था में ही और बेहोशी का कारण होता असीम पीड़ा और असीम वेदना।

वास्तव में मृत्यु पूर्व पूरा शरीर शिथिल होने लगता है और उसी के साथ सूक्ष्म शरीर भी उससे अलग होने लगता है। जिसके फलस्वरूप घबड़ाहट, बेचैनी और पूरे शरीर में ऐठन होने लगती है। जो मरणासन्न व्यक्ति को असीम पीड़ा और असीम वेदना का होने लगता है अनुभव। जब वे दोनों अपनी-अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाते हैं तो मस्तिष्क शून्य हो जाता है और अपना काम करना बन्द कर देता है। यही है बेहोशी की स्थिति। चेतन मन का क्षेत्र है स्थूल शरीर और अवचेतन मन का क्षेत्र है सूक्ष्म शरीर। मस्तिष्क के निष्क्रिय होते ही चेतन मन, अवचेतन मन में समां जाता है और प्राण ऊर्जा का होने लगता है विसर्जन। उस विसर्जन का प्रभाव कम्पन के रूप में पड़ता है शरीर पर। जिसे परामनोविज्ञान मृत्यु का रोमांचक क्षण की संज्ञा देता है। प्राण का विसर्जन होते ही स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर अलग हो जाता है। इसी का नाम है मृत्यु। लेकिन फिर भी 'मैं' के रूप में जीवात्मा का अस्तित्व सूक्ष्म शरीर में बराबर बना रहता है। 'मैं' ही एक ऐसा शब्द है जिसका नाश कभी किसी अवस्था में नहीं होता क्योंकि इसी 'मैं' के द्वारा आत्मा का बोध होता है। इसी कारण 'मैं' के प्रति कभी भी सन्देह उत्पन्न नहीं होता।

रहस्य पुनर्जन्म का : यदि जन्म है तो जीवन है, जीवन है तो मृत्यु है और यदि मृत्यु है तो पुनर्जन्म निश्चित है और इसी पुनर्जन्म के रहस्य से परिचित होने के लिए सदियों से लोग प्रयत्नशील हैं। यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो पुनर्जन्म में कोई विश्वास की व्यवस्था नहीं है। न एक मत अथवा मनोवैज्ञानिक उपाय जिसके द्वारा मृत्यु की भीषण अन्तिम नियति से बचा सके बल्कि यह एक विशुद्ध विज्ञान है। जो हमारे अतीत और अनागम जीवनों की व्याख्या करता है। सामान्यतया इनका आधार होता

है सम्मोहनजनित परावर्तन, आसन्न मृत्यु का अनुभव, शरीर की बाह्य स्थिति की अनुभूतियां है।

विलियम सरोयन ने अपनी पुस्तक 'द ह्यूमन कॉमेडी' में लिखा है कि "हममें से कदाचित ही कोई मृत्यु के विषय में सोचता हो, यदि कभी सोचता भी हो तो यही कि आगे क्या होता है? कोई कहता है मृत्यु सबका आवसान है। कोई स्वर्ग और नर्क में विश्वास रखता है। बहुत से लोगों का मत है कि उनका यह जीवन अनेक बीते हुए जन्मों में से एक है और भविष्य में भी रहेंगे।" विश्व के लोग यह भी आशा करते होंगे कि बिना झुर्रियों के या गठिया (सन्धि शोध) या सफेद बाल के अपनी पूरी शक्ति के साथ सदा जीवित रहे। यह स्वाभाविक है क्योंकि जीवन का सर्वप्रथम और आधारभूत सिद्धान्त है सुख भोग। मगर ऐसा सम्भव ही कहां? विज्ञान जगत शायद इसी कोशिश से नाकामयाब रहेगा। परन्तु फिर भी विज्ञान ने इस रहस्य को जानने की कोशिश काफी हद तक की है। क्या कोई मनुष्य तत्काल ही पुनर्जन्म ग्रहण करता है या धीरे-धीरे अथवा लम्बे समय की अवधि में? क्या दूसरे जीवधारी जैसे पशु मानव शरीरों में पुनर्जन्म लेते हैं? क्या मनुष्य प्रकट हो सकता है। यदि ऐसा है तो कैसे और क्यों? क्या हम सदैव पुनर्जन्म लेते हैं या यह कहीं समाप्त हो जाता है? क्या आत्मा निरन्तर नरक में दुख भोगती है अन्यथा सदा के लिए स्वर्ग का सुख? क्या हम अपने भावी पुनर्जन्मों को वश में ला सकते हैं? कैसे? क्या हमारा पुनर्जन्म दूसरे नक्षत्रों अथवा दूसरे विश्वों में सम्भव है?

स्वतंत्र चेतना आत्मा का सिद्धान्त- भौतिकी के जनक अलबर्ट आइन्टाईन ने स्वीकार किया था चेतना का यथेष्ट स्वरूप विवेचन भौतिक घटनाओं के रूप में नहीं किया जा सकता। इस महान वैज्ञानिक ने एक बार कहा था- 'मेरा विश्वास है कि विज्ञान के स्वयं सिद्ध विधानों को मानव जीवन पर लागू करने का वर्तमान सिद्धान्त न केवल पूरी तरह गलत है। इसमें कुछ ग्लानि के योग्य भी है।'

जैसा कि सिद्ध है प्रत्यक्ष प्रमाण है परन्तु जब मनुष्य भौतिक इन्द्रियों की पहुंच से पार किसी तत्त्व को समझने का प्रयास करता है तब ज्ञान के उच्चतम् स्रोत के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रह जाता है। प्रयोगशाला के अन्वेषणों के माध्यम से कोई भी वैज्ञानिक चेतना के रहस्य अथवा शरीर के विनाश के पश्चात इसकी नियति की सफल व्याख्या नहीं कर सका। इसके विपरीत पुनर्जन्म के व्यवस्थित सिद्धान्त हमारे अतीत वर्तमान और अनागत जन्मों से सम्बन्धित सूक्ष्म विधानों की उचित व्याख्या करते हैं। जो कोई भी पुनर्जन्म को समझना चाहता है तो उसे ऊर्जा के रूप में चेतना

की आधारभूत अवधारणा को उन भौतिक तत्वों से भिन्न और उत्कृष्ट स्वीकार करना पड़ेगा जिनसे भौतिक शरीर का निर्माण होता है। संकल्प करने की अद्भुत मानव क्षमताओं से यह सिद्धान्त सिद्ध हो जाता है। क्या डी.एन.ए. के सूत्र अथवा प्रजनन के अन्य अवयव मानव की परस्पर प्रेम और सम्मान की भावनाओं को सम्भवतः प्रेरित कर सकते हैं। कौन सा परमाणु अथवा कण शेक्सपीयर के 'हैमलेट' में अथवा बाख के 'मास इन बी माइनर' में सूक्ष्म कलात्मक भेदों को पैदा करने के लिए जिम्मेदार है? मानव और उसकी अनन्त क्षमताओं की व्याख्या केवल परमाणुओं और कणों से नहीं की जा सकती है।

शरीर और औषधि विज्ञान के नोबेल पुरस्कार विजेता अलबर्ट जेन्ट ज्योर्जई ने कहा कि 'जीवन के रहस्य की अपनी खोज में अन्त में मेरे हाथ परमाणु और विद्युत कण ही लगे जिनमें कोई जीवन नहीं है। इस राह में कहीं न कहीं जीवन मेरी उंगलियों के बीच से बह गया।' इसी प्रकार विख्यात जीव वैज्ञानिक थॉमस हक्सले ने कहा था-'मुझे यह स्पष्ट दिखाई देता है कि विश्व में एक तीसरा पदार्थ है अर्थात चैतन्य जिसे मैं न तो भौतिक तत्व, शक्ति अथवा इनमें से किसी को भी विचार योग्य रूप मान सकूं।' चेतना के अपूर्ण गुण लक्षणों की स्वीकृति भौतिक नोबेल पुरस्कार विजेता नील्सबोर ने भी दी थी और कहा था कि 'हम जानते हैं कि भौतिक अथवा रसायन विज्ञान में ऐसा कुछ नहीं पा सकते जिसका चेतना के साथ दूर का भी सम्बन्ध हो तथापि हम सभी जानते हैं कि चेतना जैसा पदार्थ है इसीलिए हम सब चेतन हैं। अतएव चेतना को प्रकृति का अंग मानना होगा और हमें विभिन्न प्रकार के विधानों पर भी विचार करना होगा'।

पुनर्जन्म जो भौतिक शरीर से स्वतंत्र चेतन आत्मा के सिद्धान्त पर स्थित है उस पर उच्चस्तरीय व्यवस्था का अंग है जो प्राणियों के एक भौतिक रूप से दूसरे भौतिक रूप में संक्रमण शासन करता है। क्योंकि पुनर्जन्म का सम्बन्ध हमारे अत्यन्त तात्विक शरीर से है अतएव हममें से प्रत्येक व्यक्ति के लिये इसकी प्रासंगिकता है।

पुनर्जन्म की मान्यताएं पूरब और पश्चिम तक- भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है कि 'आत्मा के लिए न तो जन्म है, न मृत्यु। एक बार होकर कभी भी उसका होना नहीं रूकता। वह अजन्मा है, सनातन है सदा रहने वाला, अमर है। वह शरीर के मारे जाने पर मारा नहीं जाता है।' क्या जीवन जन्म से प्रारम्भ होता है और मृत्यु के साथ समाप्त हो जाता है? इस प्रकार के प्रश्न पूर्व धर्मों के साथ जोड़े जाते हैं। जहां मनुष्य का जीवन न केवल जन्म से मरणपर्यन्त तक रहा है बल्कि लाखों युगोपर्यन्त एवं पुनर्जन्म को भी माना जाता रहा है।

पाश्चात्य इतिहास में सदैव ऐसे चिन्तक होते आये हैं जिन्होने आत्मा के देहान्तरण और चेतना के अमरत्व को समझा और स्वीकार किया। दार्शनिकों, लेखकों, कलाकारों, एवं वैज्ञानिकों ने भी पुनर्जन्म पर विचार व चिन्तन किया है। प्राचीन यूनानियों में सुकरात, पाइथागोरस और प्लेटो की गणना की जा सकती है। जिन्होने पुनर्जन्म को अपनी शिक्षाओं का अंग बनाया। जीवन की अन्तिम बेला में सुकरात ने कहा था, 'मुझे विश्वास है कि पुनर्जीवन एक सत्य है और यह कि जीवन का आविर्भाव मृत्यु से होता है।' इसी प्रकार प्लेटो का मत है कि'विशुद्ध आत्मा निरपेक्ष सत्ता के धरातल से वासनाओं के कारण गिरता है और तब भौतिक देह धारण करता है।' कुछ विद्वानों का मत है कि प्लेटो, सुकरात एवं अन्य दार्शनिकों ने पुनर्जन्म का उच्च ज्ञान 'ओरफिज्म' जैसे रहस्यात्मक धर्मों अथवा भारत से प्राप्त किया था।

यहूदी धर्म, ईसाई धर्म और इस्लाम के इतिहास में पुनर्जन्म के संकेत सामान्य रूप से मिलते हैं। कबाला में कहा गया है कि 'आत्माओं को परम सत्ता में पुनः प्रवेश करना होगा जहां से उनका आविर्भाव हुआ है।' परन्तु इसे पाने के लिए उन्हे सभी पूर्णताओं का विकास करना होगा।

भारतवर्ष का सनातन वेद वाङ्मय पुष्टि करता है कि भौतिक प्रकृति के साथ तादात्म्य करने से आत्मा चौरासी लाख रूपों में से एक ग्रहण करती है और एक बार किसी एक जीव योनि में प्रकट होकर नीचे से ऊपर की ओर क्रमिक जीव जातियों में विकसित होता है और अन्त में मानव यानि प्राप्त करता है।

भगवद्गीता कालंजयी ग्रन्थ : भारत वर्ष के संस्कृत वेद पृथ्वी पर सबसे प्राचीन हैं और पुनर्जन्म विज्ञान की सम्पूर्ण और तार्किक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। भगवद्गीता में जो वैदिक ज्ञान का सारा भाग है और उपनिषदों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है पुनर्जन्म विषयक अत्यन्त मौलिक जानकारी मिलती है।

आत्मा की सत्ता को स्वीकार करना मात्र श्रद्धा की बात नहीं है। भगवद्गीता हमारी इन्द्रियों और तर्क जिससे हम इसकी शिक्षाओं को विश्वास के साथ स्वीकार कर सकें। पुनर्जन्म को उस समय तक समझना असम्भव है जब तक हम वास्तविक 'स्व' (आत्मा) और शरीर का भेद नहीं करते। गीता में लिखा है कि जैसे सूर्य समूचे विश्व को प्रकाशित करता है उसी प्रकार जीवात्मा शरीरस्थ चैतन्य के द्वारा समूचे शरीर को प्रकाशित करती है। गीता एक विज्ञान है न कि धर्म की थाती है। गीता हमें बताती है कि शरीरस्थ जीवात्मा भौतिक ऊर्जा से निर्मित यंत्र में स्थित है।

पुनर्जन्म की पुष्टि वैज्ञानिक आधार पर तो भौतिक विज्ञान में पूर्णरूप से हो जाती है क्योंकि भौतिक विज्ञान यह मानता है कि कोई भी पदार्थ न तो उत्पन्न होता है और

न ही समाप्त होता है बल्कि समयानुसार उसका रूप परिवर्तित होता रहता है। इसी प्रकार हमारी आत्मा भी रूप परिवर्तन करती है। शरीर कोई भी क्यों न रहा हो परन्तु उसमें समायी हुई आत्मा एक ही रहती है। आत्मा की यह यात्रा अन्तहीन है। इसी यात्रा काल में यह वह कुछ संस्कार और कुछ स्मृतियां भी अपने साथ लेकर चलती है और वही पूर्व संस्कार और स्मृतियां ही उसके पुनर्जन्म का कारण बनती हैं।

पुनर्जन्म पर शोध करने वाले परामनोवैज्ञानिकों द्वारा यह प्रमाणित किया जा चुका है कि केवल भौतिक शरीर ही जीवन का पर्याय नहीं है औरं इसकी समाप्ति को जीवन की समाप्ति नहीं समझा जा सकता। अनुभव और प्रमाण सभी स्वीकार करते हैं कि आत्मा के अस्तित्व की उपस्थिति भौतिक शरीर के नष्ट होने (मरने) के पश्चात भी बराबर बनी रहती है। यह निश्चित है कि पिछले जन्मों में किये गये कर्मो के कारण ही वर्तमान जन्म में हम एक दूसरे के निकट आते हैं। यह आकर्षण और यह निकटता वास्तव में पूर्व जन्मों का परिणाम है। इनमें से कुछ के हम ऋणी होते हैं और कुछ हमारे ऋणी होते हैं। कर्म के सिद्धान्त की सबसे महत्वपूर्ण बात यही है कि हम सभी पूर्बजन्मों में किये गये अपने कर्मो के फलस्वरूप ही एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं। आत्मा अपने जीवन की लम्बी यात्रा अकेले नहीं करती है। पूर्वजन्मों से चले आ रहे परस्पर सम्पर्क के कारण मनुष्य संसार के विभिन्न परिस्थियों के सम्पर्क में आता है।

आत्मा के विकास क्रम में यदि अपने से अधिक उन्नति प्राप्त किसी और मनुष्य से हमारा परिचय हुआ हो और संयोगवश यदि कभी किसी भी जन्म में हमने उसकी सहायता भी की हो तब वर्तमान जन्म में हम उसकी ओर अनायास ही आकर्षित हो जाते हैं और उससे हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। इसी सम्बन्ध के कारण वर्तमान जन्म में भी हम उन सन्त महात्माओं और दिव्य पुरूषों की ओर आकर्षित होते हैं और इस अनुजय और अलौकिक संयोग के कारण ही हमारे अन्दर नवीन शक्तियां एवं सामर्थ्य उत्पन्न होते हैं और यही शक्ति और सामर्थ्य प्रत्येक जन्म में हमारी आत्मिक उन्नति का चिन्ह हैं।

हमने पिछले जन्म में जो सेवा और सद्व्यवहार किया है उसके फलस्वरूप वर्तमान जन्म में हमें उससे भी श्रेष्ठ तथा दीर्घकालीन सेवा और परोपकार करने का अवसर और अधिकार प्राप्त होता है। ऐसी अवस्था में हमको महापुरूषों के दर्शन से लाभ प्राप्त होता है। अनुपम ज्ञान प्राप्त होता है तथा उसके फलस्वरूप हमारे पवित्र सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तर तक बने रहते हैं तथा हमारी आत्मा परस्पर सहयोग व ज्ञान के कारण उन्नति की ओर अग्रसर होती रहती है। प्रत्येक व्यक्तिगत सम्बन्ध भले ही

प्रेम का हो अथवा द्वेष का हमें एक दूसरे से जोड़ता है। वर्तमान जन्म की क्रिया-प्रक्रिया के फलस्वरूप हम भावी जन्मों में प्रस्तुत होने वाले व्यक्तिगत सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाते हैं। इस जन्म के प्रेमभाव और उस प्रेमभाव से प्रेरित कामों के कारण भविष्य में उन व्यक्तियों के साथ जिनके प्रति हमने सद्भावनाओं को व्यक्त किया है, पुनर्जन्म लेना पूर्णरूप से निश्चित होता है। इस प्रकार वंशगत सम्बन्धों की सीमा के बाहर एक सच्चा परिवार स्थापित करने के साथ ही अपनी प्राचीन कड़ियों को सुदृढ़ बनाने के लिए हम बार-बार जन्म लेते हैं इसमें सन्देह नहीं।

क्या पूर्वजन्म के स्मरण होते हैं : कभी-कभी ऐसे भी मनुष्य होते हैं जिन्हे अपने पूर्व जन्म का स्मरण हो आता है। योग दर्शन में इसे जाति स्तर कहते हैं। पूर्वजन्म की स्मरण की घटनाओं की चर्चा अक्सर समाचार पत्रों और अन्य माध्यमों से होती रहती है। ये घटनायें अनायास या प्रायः आकस्मिक होती है। जिन लोगों को इस प्रकार के स्मरण होते हैं उनकी किन विशेषताओं के कारण ऐसा होता है यह एक शोध का विषय है।

लेकिन योग शास्त्र में ऐसे उपायों की चर्चा है। जिसके अभ्यास से किसी भी मनुष्य के लिए अपने अनेक पूर्वजन्मों का स्मरण सम्भव है। इसमें एक उपाय है जो कि यह हैं अपरिग्रह का पूर्ण अभ्यास। योग दर्शन के अनुसार अपरिग्रह व्रत में पूर्ण निष्ठा हो जाने पर पूर्व जन्मों का स्मरण हो जाता है। (अपरिग्रह स्थैये जन्म कथा सम्बोधनः ।। योग दर्शन २-३६)। दूसरा उपाय है। अपने अन्तःकरण में संचित वासना, संस्कार रूप एवं धर्माधर्म रूप संस्कारों पर संयम (ध्यान, धारणा, समाधि) का प्रयोग। प्रसिद्ध योगी विजय कृष्ण गोस्वामी का मत है कि भगवत् प्राप्ति के लिए उनका ध्यान करते-करते मनुष्य स्वतः ऐसी अवस्था में चला जाता है कि स्वतः ही मनुष्य को अपने पूर्वजन्मों का ज्ञान हो जाता है।

आकृति और स्वभाव : क्या जन्म-जन्मान्तर या पूर्वजन्मों जैसी आकृति होती है? क्या वैसी ही आकृति इस जन्म में भी बनी रहती है? इसी सब शोध के दौरान मैंने योगानन्द द्वारा लिखित पुस्तक पढ़ी। उन्होने अपने आत्म कथा में एक प्रसंग में काशी नाम बालक के पुनर्जन्म तथा शोध की चर्चा की। कथा इस प्रकार है।

स्वामी योगानन्द ने रांची में एक विद्यालय की स्थापना की वहां विद्या अध्ययन के साथ-साथ योग का भी प्रशिक्षण दिया जाता था। कलकत्ता निवासी एक सज्जन का पुत्र काशी उस विद्यालय का विद्यार्थी था। एक दिन कुछ बालकों को काम करा रहे थे तभी किसी बालक ने अपने बाल स्वभाव के अनुरूप प्रश्न किया। गुरुजी मैं बड़ा होकर

क्या बनूंगा। इस तरह अनेक बालकों ने प्रश्न किया। स्वामीजी ने सबका उत्तर सरलता से दे दिया। जब काशी यही प्रश्न किया तो स्वामीजी चुप हो गये। काशी के बार-बार पूछने पर उन्होने उत्तर दिया। तुम्हारा जीवन तो बहुत कम रह गया है बेटा! तुम्हे क्या बतायें। काशी चुप रहा फिर थोड़ी देर बाद बोला वो भी बिना घबड़ाये। गुरुजी आप मेरी एक प्रार्थना अवश्य स्वीकार कर लें कि जहां कहीं भी मैं पुनः जन्म लूं आप मेरा पता लगाकर मुझसे भेंट करने जरूर आइयेगा और अपना शिष्य बना लीजियेगा। यही मेरा आपसे निवेदन है। संयोग की बात है एक दिन काशी की मृत्यु हो गयी। स्वामीजी कलकत्ता के किसी मार्ग पर टहलते हुए जा रहे थे। तभी उन्हे पता चला कि काशी एक महिला के गर्भ में आ चुका है। उन्होने बिना देर किये तुरन्त उस गृह स्वामी से सम्पर्क किया। काशी के पूर्वजन्मों की मुखाकृति का परिचय दिया और कहा कि यदि इस प्रकार का बालक पैदा हो तो आप समझियेगा कि वह काशी की ही आत्मा है यानि काशी ही है। कुछ समय बाद जब उसी आकृति का बालक पैदा हुआ तो उसके पिता को स्वामीजी की बातों पर पूर्ण विश्वास हो गया। उसके पिता ने इस जन्म में भी उसका नाम काशी ही रखा। उस समय स्वामीजी अमेरिका में थे।

प्रसंगवश मैंने जो चर्चा की और जहां तक मैंने जो शोध किया आत्माओं के ऊपर पूर्व जन्म के व्यवहार, मुखाकृति, जन्म चिन्ह अवश्य रहते हैं। यह बात अक्षरशः सत्य है कि मनुष्य के विचारों तथा अन्य मानसिक अवस्थाओं की झलक उसके मुखमण्डल पर पड़ती अवश्य है। प्रसन्नचित्त व्यक्ति का मुखमण्डल फूल की तरह खिला रहता है। चिन्तित और व्यग्र व्यक्ति का मुखमण्डल कान्तिहीन रहता है।। मानसिक अवस्था या विचार धीरे-धीरे स्थायी होकर मनुष्य के स्वभाव का अंग बन जाता है तो उसका प्रभाव भी मनुष्य के मुखाकृति पर स्थायी रूप से पड़ जाता है। उदार, दयालु, प्रसन्नचित्त व्यक्ति की मुखाकृति कृपण और क्रूर व्यक्ति की मुखाकृति से स्वाभाविक रूप से भिन्न होती है।

महाभारत के एक प्रसंग में धृतराष्ट्र ने अपने पुत्र दुर्योधन को समझाते हुए कहा कि तुम युधिष्ठिर से द्वेष क्यों करते हो? तुम भी सभी दृष्टियों से उनके समान ही हो। किन्तु यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे मुखमण्डल की शोभा भी वैसी ही हो जैसी की युधिष्ठिर की है तो तुम्हे भी उसी के समान शीलवान और आचारवान होना पड़ेगा।

इससे यह सिद्ध होता है कि आपका जैसा संस्कार होगा आपके अन्दर से क्रोध शोक ईर्ष्या लालच द्वेष भरा है तो वह आपके मुखमण्डल पर भी दिखेगा। यदि आप दयालु और ईर्ष्या द्वेष रहित हैं तो आपका मुख फूल के समान कोमल और चमकदार होगा अमृत की तरह। यही कारण है कि योगी साधक और विकार रहित

मनुष्य का मुखमण्डल हमेशा चमकता रहता है। इसके विपरीत उन मनुष्यों का मुखमण्डल लाख सम्पन्नता होने के बावजूद कान्तिहीन ही रहेगा। सम्पन्नता आपके अन्दर होनी चाहिए। यही सम्पन्नता आपके अन्तिम समय में संस्कार के रूप में आत्मा के साथ अगले जन्म में होती है अग्रसर।

प्राण ऊर्जा जिसकी चर्चा प्रसंगवश पहले की जा चुकी है। यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो प्राण ऊर्जा ही एकमात्र जीवन ऊर्जा है और है जीवन तत्व भी। आध्यात्मिक दृष्टि से समस्त योग-तंत्र सम्बन्धित साधनाओं का एकमात्र आधार है प्राण ऊर्जा। जीवनकाल में शरीर से प्राण ऊर्जा का विसर्जन मुख्यतया हाथ पैर की उंगलियों के अग्रभाग से, नासिका से, मस्तिष्क से तथा नाभि से होता है। प्राण ऊर्जा के विसर्जन का प्रमाण क्रोध से दिया गया है। क्रोध की स्थिति में हाथ के पंजों से लपटें निकलती है। उसका मस्तिष्क पर इतना प्रभाव पड़ता है कि मानसिक सन्तुलन के भंग हो जाने की सम्भावना बन जाती है। रोना, उदास हो जाना, शरीर का थक जाना इसकी पहचान है। अध्यात्म का पहला सूत्र है क्रोध पर विजय पाइए। क्रोध स्वयं का ही विनाश करता है। क्रोध के विपरीत है प्रेम। जब किसी की ओर स्नेहपूर्ण प्रेम भावनाओं का आदान-प्रदान होता है तो प्राण ऊर्जा क्षेत्र की वृद्धि होती है। जीवन में भी सुन्दरता का आभास होता है। मन प्रसन्न रहता है तथा सुविचार भी उत्पन्न होते हैं। इन्ही विचारों और भावनाओं पर ही संसारेत्तर सम्बन्ध 'जीवन और मृत्यु' के बन्धनों से पार जा सकते हैं। इस प्रकार जिसे हम 'जीवन' मानते हैं वह मृत्यु हो सकती है और जो 'मृत्यु' है वह वास्तव में जीवन हो सकता है और यही कारण है कि हम एक आकृति सी बना लेते हैं- शिव, राम, कृष्ण, दुर्गा या काली की। किसी ने अपनी आंखों से तो देखा नहीं फिर भी नाना प्रकार की आकृतियां विभिन्न स्वरूपों में अपनी धारणाओं के अनुसार पायी जाती हैं। जिसे सभी लोग स्वीकार कर लेते हैं। इसमें सारा समय समाप्त हो जाता है। जीवन और मृत्यु भी सांस्कृतिक कल्पना है। जब हम इसे एक स्वरूप से परे देखें तो समझ भी सकेंगे और अनुभव भी कर सकेंगे। 'उसकी आत्मा को ईश्वर शान्ति दे' इसका क्या तात्पर्य है? आत्मा क्या है और उसे शान्ति कौन देगा और फिर मृत्यु के बाद तो उस व्यक्ति से सम्बन्ध समाप्त है फिर हम उसके लिए क्यों प्रार्थना करते हैं? शरीर को हमेशा के लिए छोड़कर जाने वाली आत्मा अपने ही भीतर से अपनी यात्रा पर निकलती है। हमने उसके पीछे क्या किया और क्या नहीं किया इससे आत्मा की यात्रा से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। फिर भी हम आत्मा के लिए प्रार्थना करते हैं, उसके प्रति शुभ भावना रखते हैं और चाहते हैं उसका कल्याण। इसका तात्पर्य है कि हमारा सूक्ष्म सम्बन्ध किसी न किसी रूप में उस ऊर्जा से है जो आत्मा के रूप

में विचरण कर रही है ब्रह्माण्ड के किसी अनजाने भाग में।

एक अमेरिकी लेखक ने अपनी पुस्तक 'दी लाइट वियोंड' में अपने मृत्यु के अनुभवों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। सभी अनुभवों में एक बात है कि जिन व्यक्तियों से हमारे भावात्मक तथा प्रेम, आत्मीयता के सम्बन्ध हैं सभी ने उन्हे ही मृत्यु के उपरान्त अनुभवों में देखा है। जिस प्रकार जीवन काल में भी हम उन्ही व्यक्तियों के लिए व्याकुल रहते हैं जिनकी ओर प्रेम और शुभ भावनाएं हैं उसी प्रकार मृत्यु के पश्चात भी यही श्रृंखला चलती है इसमें सन्देह नहीं।

परकाया प्रवेश का रहस्य– पुनर्जन्म और परकाया प्रवेश दोनो दो तथ्य हैं। लेकिन इन दोनों का सम्बन्ध एक ही जीवात्मा से है। परकाया जानने से पूर्व स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर को जानना आवश्यक है जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है लेकिन संक्षेप चर्चा करना आवश्यक है। इन दोनों के बारे में यह जानना आवश्यक होता है कि एक दृश्य होता है और दूसरा अदृश्य। लेकिन आकार-प्रकार एक ही होता है। स्थूल शरीर पृथ्वी जल तेज वायु और आकाश इन पांच तत्व से बना होता है। और सूक्ष्म शरीर तेज वायु और आकाश इन तीन तत्वों से ही बना होता है। इन तीन तत्वों के कारण सूक्ष्म शरीर दृश्य नहीं होता। परकाया प्रवेश में सूक्ष्म शरीर ही अग्रसर होता है। अतृप्त आत्माएं भी कभी-कभी मृत शरीर में प्रवेश कर जाती हैं। मृत शरीर यदि उनके अनुरूप नहीं होता तो घबड़ाकर पुनः बाहर निकल जाती है और यदि अनुकूल रहा तो वर्षो तक उस शरीर पर अपना अधिकार जमाए रहती है।

एक योगी जब परकाया प्रवेश करता है वह भिन्न होता है। योगी परकाया प्रवेश सिद्ध कर लेता है लेकिन उसका उपयोग वह तब तक नहीं करता जब तक उसका वर्तमान शरीर काल के प्रभाव से अति जीर्ण शीर्ण नहीं हो जाता है। ऐसी अवस्था में परकाया सिद्ध योगी अपने सूक्ष्म शरीर को पंच प्राण के माध्यम से तत्काल योग्य नवयुवक के मृत शरीर में प्रवेश करा लेता है। यह कार्य वह बिल्कुल एकान्त में करता है। जहां किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न हो और यह भी ध्यान रखता है कि मृत शरीर किसी भी प्रकार का रोगग्रस्त तो नहीं है। योगी अपने ही स्थान से समाधि द्वारा खोज भी लेता है कि योग्य शरीर कहां है और किस स्थान पर है। तभी अपना वर्तमान शरीर त्याग कर तुरन्त उस मृत काया में प्रवेश कर लेता है। उसे सारा ज्ञान रहता है और फिर अपने नये शरीर द्वारा अपनी आगे की साधना पूर्ण करने में लग जाता है।

परकाया प्रवेश का शास्त्रीय स्वरूप : योग वशिष्ठ में महर्षि वशिष्ठ ने श्रीराम को एक प्रसंगवश बतलाया- जिस प्रकार वायु पुष्प से गन्ध खींच कर उसका

सम्बन्ध घ्रणेन्द्रियों से कराता है। उसी प्रकार प्राणायाम की रेचक क्रिया का अभ्यास करके योगी पहले कुण्डलिनी को सिद्ध करता है और सिद्धी लाभ के बाद अपने सूक्ष्म शरीर के द्वारा अपने विशेष कार्य सिद्धी के लिए दूसरे मानव के शरीर में प्रवेश कराता है। जब ज़ीवात्मा का दूसरे शरीर से सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तब पहला शरीर उसके लिए मिट्‌टी के समान हो जाता है। योगीगण अपनी इच्छानुसार अपने अभीष्ट कार्य की सिद्धी कर लेने के पश्चात अपने पूर्व शरीर में अपनी जीवात्मा को वापस ले आते हैं। यह तभी सम्भव है जब पहले का शरीर सुरक्षित हो। वास्तव में परकाया प्रवेश योग की महान सिद्धी है। एक प्रकार से सूक्ष्म शरीर की सिद्धी है। यह अति प्रयास से ही सिद्ध होती है।

जग प्रसिद्ध है कि आदि शंकराचार्य को भी परकाया प्रवेश की सिद्धी थी। वे इस क्रिया को विधिपूर्वक जानते थे। जब आदि शंकराचार्य ने अपने अद्वैतवाद सिद्धान्त के आधार पर बौद्धों और अन्य मतावलम्बियों को पराभूत कर दिया तो वह काशी के आगे मिथिला में पहुंचे। उनका सामना उस समय के प्रकाण्ड विद्वान श्री मण्डन मिश्र से हुआ और शास्त्रार्थ भी हुआ। लेकिन काफी देर तक श्री मण्डन मिश्र ने शास्त्रार्थ किया और अन्त में पराजय का सामना करना पड़ा उन्हे। लेकिन जब उनकी पत्नी भारती ने काम शास्त्र पर शास्त्रार्थ किया तो आदि शंकराचार्य को मूक होना पड़ा। चूंकि आदि शंकराचार्य बाल संन्यासी थे इसलिए काम शास्त्र से उनका कोई लेना देना नहीं था। अन्त में शास्त्रार्थ न खत्म करने का अनुरोध करते हुए कुछ समय मांगा। सर्वसम्मति से उन्हे समय मिल गया। फिर उस महान योगी ने अपना भौतिक शरीर एक गुफा में अपने शिष्यों के निगरानी में सुरक्षित सौंप कर एक सद्यः मृत राजा के शरीर में अपनी जीवात्मा को प्रवेश कराया और रानी के सहयोग से वे काम कला और काम शास्त्र का विधिवत् अध्ययन किया और काम शास्त्र का विधिवत् अध्ययन करने के बाद पुनः अपने शरीर में वापस चले आये। राजा का शरीर छोड़ते ही वह मृतकाया में हो गया परिवर्तित।

आदिगुरु शंकराचार्य पुनः मिथिला पहुंच कर उस महान और विदुषी नारी भारती से काम शास्त्र पर शास्त्रार्थ कर उन्हे पराजित किया। उसके बाद मण्डन मिश्र और उनकी पत्नी भारती इतने प्रभावित हुए कि आदि शंकराचार्य को अपना गुरु मानकर गुरु मंत्र लेकर दीक्षित हुए और जीवनपर्यन्त उनकी पूजा करते रहे। आदि शंकराचार्य के अलावा और कई योगी परकाया प्रवेश सिद्ध साधक थे जिनमें से एक थे योगी गोरखनाथ।

सूक्ष्म शरीर से केवल परकाया प्रवेश ही नहीं होता बल्कि योगीजन सूक्ष्म शरीर से और बहुत से महत्वपूर्ण कार्य भी कर लेते थे। सूक्ष्म शरीर से विभिन्न स्थानों का भ्रमण और तीर्थयात्रा भी करते हैं और एक स्थान पर बैठे हजारों मील दूर की खबर भी जान लेते हैं और महसूस भी कर लेते हैं और जब चाहे शिष्यों को अपनी उपस्थिति का आभास भी करा देते हैं। साधना मार्ग में सहयोग भी करते रहते हैं। सूक्ष्म शरीर के लिए किसी प्रकार का अवरोध नहीं होता है जैसे प्रेतात्माओं के लिए नहीं होता है। क्योंकि सूक्ष्म शरीर भी पारदर्शी होता है और प्रेत शरीर भी। लेकिन दोनों में अन्तर है। प्रेत शरीर की वासना क्षय होगी तभी वह सूक्ष्म शरीर को प्राप्त कर सकता है लेकिन एक योगी के साथ ऐसा नहीं होता है। एक योगी जब अपना सूक्ष्म शरीर सिद्ध कर लेता है तो उसे भौतिक शरीर का भी ज्ञान रहता है और अभौतिक शरीर का भी। लेकिन प्रेतात्माओं के साथ ऐसा नहीं होता उनके पास केवल प्रेत शरीर ही होता है यही उनकी विवशता है।

एक संन्यासी का परकाया प्रवेश : मि. फैरोल सन् १९३७ ब्रिटिश सेना के एक उच्च पद पर कार्यरत थे। वह भारतीय कमाण्ड के चीफ कमाण्डर थे। उन्हे भारतीय योग विद्या और तंत्र में काफी रूचि थी। गहन अध्ययन कर और संत महात्माओं से मिल कर अनेक चमत्कारों की अनुभूति भी की। रिटायर्ड होने के बाद जब ब्रिटेन लौट गये और अपने एक ग्रन्थ में भारतीय योग और चमत्कार के विषय में उक्त घटनाओं का संग्रह किया। जो काफी लोकप्रिय हुआ। परकाया प्रवेश की घटना उन्ही की लेखनी के अनुसार यहां हम दे रहे हैं।

यह घटना १९३९ के आस-पास की है। यह घटना असम-वर्मा सीमा पर एक फौजी शिविर किसी गुप्त योजना में संलग्न था। हमारा शिविर एक नदी के तट पर था। एक दिन हम लोग आठ दस अधिकारी के साथ गहन मंत्रणा कर रहे थे कि तभी नदी के स्वच्छ व शान्त निर्मल जल में कोई वस्तु बहती हुई दिखलायी दी। उत्सुकता वश दुरबीन से देखा तो आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। देखा एक युवक की लाश बह रही थी। तभी नजर दूसरी ओर घूमी। हम लोगों ने देखा कि एक काफी वृद्ध और दुर्बल व्यक्ति बड़े-बड़े बाल वाला उस लाश को बाहर खींचने का प्रयास कर रहा था। मैंने इस आश्चर्यजनक दृश्य की ओर अपने साथी अफसरों का भी ध्यान आकृष्ट कराया। हम सभी दुरबीन की सहायता से लगे देखने। हम लोगों को कौतुहल भी हो रहा था कि वह वृद्ध संन्यासी आगे क्या करता है। देखा कि वह वृद्ध संन्यासी लाश को पानी से निकाल कर घसीटते हुए एक पेड़ के ओट में ले गया। हम सभी लोग

यह नजारा बड़ी उत्सुकता से देख रहे थे। कुछ क्षणों बाद तो आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। हम सभी वह दृश्य देख कर एकबारगी हतप्रभ हो गये। जब उसने पेड़ की ओट से उस मृत शरीर वाले व्यक्ति को बाहर निकलते देखा और वह मृत व्यक्ति आराम से चलने लगा। ऐसा लगा जैसे कुछ हुआ ही न हो।

हम लोगों ने अपने कुछ सैनिकों को बुलाया तथा नदी किनारे जा रहे उस युवक को पकड़ कर लाने को कहा। वे उसे पकड़ कर मेरे पास ले आये। उस युवक की ओर देखते हुए मैंने कड़क आवाज कर पूछा- सच-सच बताओ कि तुम कौन हो? मैं अच्छी तरह से देख रहा था। तुम तो नदी में बहे चले जा रहे थे तथा वहां एक दाढ़ी वाला वृद्ध साधु तुम्हारी लाश को निकालने का प्रयास किये जा रहा था और अब तुम जिन्दा कैसे हो गये। इसका क्या रहस्य है? जल्दी बतलाओ। वह नवयुवक कुछ देर शान्त रहा और फिर गम्भीर स्वर में बोला- वह स्वयं वही वृद्ध संन्यासी है उस नवयुवक के शरीर में मेरी आत्मा का वास हो गया है। मैंने योग की उच्च प्रक्रिया से परकाया प्रवेश किया है। मेरा शरीर काफी वृद्ध हो चुका था। उस शरीर से साधना करने में रूकावट आ रही थी। मैं काफी समय से एक युवा शरीर की तलाश में भटक रहा था। माँ ने योग्य युवा शरीर भेज दिया। मेरी नजर पड़ी और तभी मैंने अपने योग बल से पानी के बीच बहाव से नदी के किनारे खींच लाया और उसे बाहर निकाल कर परकाया प्रवेश विद्या द्वारा अपना शरीर त्याग कर तत्काल युवा शरीर में प्रवेश कर गया। आप पता लगा सकते हैं मेरा वृद्ध शरीर अभी भी उसी पेड़ की ओट में पड़ा हुआ है। अभी उसे जल समाधि देना है लेकिन आपने मुझे अपने पास बुला लिया। क्या आप मेरी सहायता करेंगे? मि. फैरोल ने बोला कि पहले मैं तहकीकात करूंगा। हम सब नदी के पास उस पेड़ की ओट में गये तो देखा वहां उस संन्यासी का जीर्ण शीर्ण शरीर निर्जीव पड़ा था। मैंने अपने सैनिकों की सहायता से उस मृत शरीर को नदी में प्रवाहित कर दिया। कुछ देर तक हम लोगों का ध्यान उस युवक पर नहीं गया लेकिन बाद में देखा तो वह संन्यासी गायब था। इस घटना ने मुझे भारतीय योगियों सिद्ध साधकों पर दृढ़ आस्था रखने को कर दिया विवश। खैर, इसी प्रसंग में एक घटना का वर्णन और कर रहा हूँ जो काफी रोमांचक और अद्‌भुत है।

परकाया सिद्ध साधक से सम्पर्क- जन्म मृत्यु और पुनर्जन्म के विषय में जो हम पहले बता चुके हैं उससे यही निष्कर्ष निकलता है कि आत्मा या चेतना जैसी कोई शक्ति है अवश्य। जो वैसे तो हमारे भीतर ही रहती है लेकिन जो इतनी सक्षम है कि अवसर पड़ने पर शरीर छोड़कर बाहर निकल सके। दूसरे लोक-लोकान्तरों की यात्रा

कर सके और इतना ही नहीं आवश्यकता पड़ने पर किसी के मृत या जीवित शरीर में प्रवेश कर सके।

लीजिए पढ़िये मेरे जीवन की एक सत्य घटना। सन् १९५५ ई. उस समय मेरे एक अध्यापक मित्र थे। बंगाली सज्जन थे। वैसे तो वे गणित के अध्यापक थे लेकिन संगीत और साहित्य में विशेष रूचि थी उनकी। रात में जब सितार बजाने लग जाते थे तब उनकी अपनी ही सुधि नहीं रहती थी और जब उनकी भारी भरखम पत्नी आकर जोर से आवाज देती थी- खावा टावा कोरवे ना! तब कहीं जाकर तानसेन महाशय का संगीत मोह भंग होता था।

नाम था मेघनाद भट्टाचार्य! भट्टाचार्य महाशय को साधु सन्तों के साथ सत्संग करने की भी लिप्सा थी। वेतन का थोड़ा हिस्सा साधु सन्तों की सेवा में चला जाता था। सन्तान नहीं थी। कभी पत्नी विरोध करती तो महाशय हँसकर कहते- महालक्ष्मी तुमको पुत्र लाभ हो इसके लिए ही तो महात्माओं की सेवा करता हूँ। पत्नी बेचारी खाटी बंगालिन थी मुस्करा कर रह जाती पति की बात सुनकर।

एक दिन मेघनाद भट्टाचार्य महाशय हँसते हुए आये। किसी प्रकार अपने को संभाला और बोले- शर्मा जी! सुना आपने एक युवक आया है, आयु अधिक नहीं है, बस २४-२५ वर्ष का है। नाम है पूर्णागिरी। शुभ लक्षण वाला है। साधुवेश में है। ज्ञान का अपार भण्डार भरा है उसमें। योग-तंत्र, ज्योतिष आदि का भरपूर ज्ञान है उसे। क्या आप उससे मिलेंगे। एक सांस में इतना सब बोल गये मेघनाद भट्टाचार्य महाशय। सब सुना और सुन कर बोला- कहां ठहरे हैं संन्यासी महोदय!

भजन मठ में!

कल मेरे घर पर साथ लेकर आइयेगा। ठीक है प्रतीक्षा करियेगा।

दूसरे दिन सांझ के समय भट्टाचार्य महाशय आ गये और उनके साथ पूर्णागिरी भी थे।

हे भगवान! कितना तेज था उस किशोर साधु के चेहरे पर। चुंधिया सी गयी आंखे। बड़ी-बड़ी अनुभवों से भरी गहरी आंखें, गौर वर्ण, लम्बी चौड़ी कदकाठी, मुण्डित सिर, गले में रूद्राक्ष की माला, शरीर पर कषाय वस्त्र, पैरों में खड़ाऊं कुल मिलाकर आकर्षक व्यक्तित्व था। थोड़ी देर भट्टाचार्य महाशय रूके रहे और फिर अपने किसी आवश्यक कार्य से चले गये। उनके चले जाने के बाद गम्भीर स्वर में बोला वह युवा सुदर्शन संन्यासी- मेरे नाम से तो आप परिचित हो ही चुके होंगे। मेघनाद जी ने बतलाया होगा आपको।

हाँ! उन्होने यह भी बतलाया कि आप मीरघाट स्थित भजन मठ में निवास कर रहे हैं इस समय।

काशी के प्रति शताब्दियों से लगाव है बन्धु! इसीलिए चार माह के कल्पवास के लिए काशी आया हूँ मैं। पूर्णागिरी गुरु प्रदत्त नाम है। यदि जीवन मृत्यु की बाधा को स्वीकार न किया जाये तो मेरी अवस्था अत्यधिक है लेकिन गुरुकृपा से मेरे शरीर में किसी प्रकार का परिवर्तन सम्भव नहीं है। जहां तक काल के प्रभाव का प्रश्न है वह तो मुझ पर पड़ता ही है लेकिन अत्यन्त मन्द गति से। यह सब सुन कर कुछ विचित्र सा लगा मुझे। थोड़ा रूककर युवा संन्यासी आगे बोला- आपका परिचय मुझे प्राप्त हुआ था महात्मा दिव्य कैवल्य से।

दिव्य कैवल्य से........

जी हाँ दिव्य कैवल्य से और तभी से आपके जैसे प्रकाण्ड विद्वान, सर्वशास्त्र मर्मज्ञ पुरूष से मिलने के लिए व्याकुल हो उठी मेरी आत्मा। आपका दर्शन प्राप्त हुआ यह मेरा परम सौभाग्य है। आप वास्तव में एक अति पुण्यवान और परम भाग्यशाली महापुरूष हैं और तभी ब्राह्मण कुल का शरीर प्राप्त हुआ और वह भी काशी में। लेकिन इस प्रसन्नता के साथ मुझे एक दुख भी है कि शताब्दियों से चली आ रही काशी की सारस्वत परम्परा की अन्तिम कड़ी हैं आप। फिर भविष्य में क्या होगा? कहा नहीं जा सकता।

नहीं, नहीं ऐसा मत कहिए! कोई भी परम्परा नष्ट नहीं हो सकती है। कुछ समय के लिए लुप्त अवश्य हो जाती है। मेरी बात सुनकर पूर्णागिरी मुस्कुराये और फिर कहने लगे- काशी की सारस्वत परम्परा की स्वयं विशेष अंग रहा हूँ मैं। यह सुनकर थोड़ा आश्चर्य हुआ मुझे लेकिन बोला कुछ नहीं। थोड़ा आगे खिसक कर पूर्णागिरी बोले- वैसे यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो महाभारत के भयंकर महायुद्ध की प्रचण्ड अग्नि में भारत की प्राचीन सभ्यता संस्कृति साधना उपासना अध्यात्म और ज्ञान विज्ञान सब कुछ जलकर भस्म हो गया। कुछ शेष नहीं बचा! जहां तक प्रश्न काशी की सारस्वत परम्परा का है उसका बीजारोपण १३वीं शती में हो चुका था। आपका क्या विचार है?

सांयकाल हो चुका था। मैंने हँसकर कहा- सांयकाल के समय चार कर्म नहीं करना चाहिए। जिनमें एक शास्त्र चर्चा भी है। अब कल बातें होंगी। आप दोपहर के समय आने का कष्ट करें।

ठीक है यह कहकर पूर्णागिरी उठे और चल गये। उनके चले जाने के बाद काफी देर तक मैं उन्ही के विषय में सोच विचार करता रहा। सब कुछ ठीक था लेकिन

दिव्य कैवल्य जैसे दिव्य पुरूष से पूर्णागिरी का परिचय कैसे हुआ और किस प्रसंग में दिव्य कैवल्य ने गिरी को मेरा परिचय दिया? इसी प्रश्न में उलझा रहा मेरा मस्तिष्क पूरी रात।

दूसरे दिन यथा समय पूर्णागिरी आये। प्रसंग मैंने ही शुरू किया। आपने १३वीं की चर्चा की है लेकिल १३वीं और १४वीं शतो में ग्रन्थ निर्माण कार्य अत्यन्त अल्पमात्रा में हुआ है। मैं तो यह कहूंगा कि प्रारम्भ से ही काशी की सभी विषयों में अपनी विशिष्टताएं रहीं हैं। किसी एक विषय में नहीं। साहित्य, ज्योतिष, धर्मशास्त्र, व्याकरण, तंत्र, वैष्णव तथा तांत्रिक आगम, मीमांसा, वेदान्त, न्याय वैशेषिक जैसे भारतीय संस्कृति के सभी विभाग काशी की देन से परिपुष्ट हुए हैं।

क्यों नहीं! सिर हिलाकर बोले पूर्णागिरी। अब आगे सुनिए, वैसे काशी भारत के एक निर्दिष्ट प्रदेश का नाम विशेष है। इसका गौरव और महात्म्य अन्य अनेक स्थानों से कहीं अधिक है। मैं इस प्रसंग में जिस समय की चर्चा करना चाहता हूँ उस समय काशी एक विशेष धाम था। उसके बाद ही चारो धाम का अस्तित्व सामने आया। कहने का तात्पर्य यह है कि चारो धाम के पूर्व केवल मात्र एक ही धाम था और वह था काशी धाम। समझ सकते हैं कि मैं किस काल की चर्चा कर रहा हूँ। उस समय काश अध्यात्म क्षेत्र में ही नहीं विद्यापीठ के रूप में भी विशेष आसन पर आसीन थी। यवन काल में हिन्दू समाज की संस्कृति का भार प्रधान रूप से काशी पर ही निर्भर था। भारत के विभिन्न प्रान्तों में भी विद्या के केन्द्र थे और उनका प्रभाव भी कम नहीं था। फिर भी ऐसा विशिष्ठ केन्द्र शायद ही कोई होगा जिसकी काशी से तुलना की जा सके। मध्य युग में यवनों के उपद्रव भारत के बहुत से स्थानों पर होते रहते थे। वे हिन्दू धर्म को नीचा दिखाने का बराबर प्रयास करते रहते थे। उनसे तंग आकर भी भारत के नाना प्रदेशों से पण्डितों का समुदाय काशी की ओर आकृष्ट होता था। परिणाम यह हुआ कि मध्य युग के अन्त होते-होते महाराष्ट्रीय, गुजराती, बंगाली, तमिल, मद्रासी, उड़िसा आदि प्रदेशों के विद्वानों से भर गयी काशी। बहुत से विद्वान जीवन का अन्तिम भाग काशी में व्यतीत करने के लिए यहां आते थे और मृत्युपर्यन्त काशी में ही रहते थे। कभी-कभी मनीषी वर्ग अपने परिवार के साथ अपने देश को छोड़कर सदैव के लिए काशी आकर बस जाता था एवं वंशानुक्रम से काशीवासी होकर रहने का प्रयास करता था। सभी प्रदेशों के पण्डित परस्पर सम्मिलित होकर काशी के विद्वत समाज का संगठन करते थे। धार्मिक कर्तव्य का निर्णय अथवा किसी दार्शनिक तत्व की मीमांसा के विषय में प्रयोजन होने पर काशी के विद्वद मण्डली द्वारा दी गयी व्यवस्था ही अग्रगण्य मानी जाती थी। धर्म और परापर ज्ञान के विषय में काशी का यह उच्चासन

शताब्दियों तक अक्षुण्ण रहा। केवल इतना ही नहीं संस्कृत भाषा के प्रत्येक विभाग की साहित्य सृष्टि में भी काशी सर्वोपरि रही और उसका प्राधान्य बना रहा।

क्या आप यह स्पष्ट कर सकते हैं कि धर्म, दर्शन, अध्यात्म आदि परापर विषयों पर क्रमबद्ध रूप से ग्रन्थों की सृष्टि कब से हुई काशी में? पूर्णागिरी का यह प्रश्न सुनकर मुझे ऐसा लगा कि मेरे सामने बैठा यह संन्यासी साधारण नहीं है। मैंने कहा- आपकी इस जिज्ञासा के समाधान में इतन ही कहूंगा कि १३वीं शती के पूर्व सन् ११९४ ई. में बनारस मुसलमान शासन के आधीन था। उस समय काशी की स्थिति कभी दृष्टि से दयनीय थी। काशी विश्वनाथ मन्दिर मुसलमानों द्वारा अशुद्ध हो चुका था। बाद में सुलतान अल्तमस के समय काशी विश्वनाथ मन्दिर की पुनः शुद्धि हुई और नियम बनाया गया कि आर्य धर्म को स्वीकार करने वाले लोग ही मन्दिर में प्रवेश करें। उसी काल में गुजरात के प्रसिद्ध जैन सेठ वस्तुपाल ने काशी विश्वनाथ मन्दिर में पूजा के निमित्त एक लाख स्वर्ण मुद्राएं दी थीं।

प्रमाण के लिए आप देख सकते हैं 'प्रबन्ध कोष' कलकत्ता १९३५ ई. पृष्ठ न. १३२। यह सुनकर मेरी ओर देखने लगे पूर्णागिरी आश्चर्य से। अब इस प्रसंग में यह भी सुन लें कि सन् १२९६ ई. में काशी के विश्वेश्वर मन्दिर के निकट पद्मेश्वर मन्दिर का निर्माण हुआ था। अब रही ग्रन्थ सृष्टि की बात! यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो सच्चे अर्थो में १३वीं शती के प्रारम्भ में 'कविकान्त सरस्वती' नाम के एक प्रसिद्ध विद्वान का आविर्भाव काशी में हुआ। उन्होने विश्वादर्शन नाम के एक वृहद ग्रन्थ की रचना की जो धर्मशास्त्र से सम्बन्धित था। समयाभाव के कारण अब मैं आपसे इतना ही कहूंगा कि १३वीं शती से १९वीं शती पर्यन्त काशी में विभिन्न विद्वानों द्वारा विभिन्न विषयों पर ग्रन्थ सृष्टि की एक दीर्घ श्रृंखला रही है। इस दीर्घावधि में काशी के विद्वानों और पण्डितों के द्वारा हजारों की संख्या में विभिन्न विषयों पर ग्रन्थ लिखे गये। उस समय छापाखाना तो था नहीं इसलिए विद्वान और पण्डित अपने से सम्बन्धित विषय पर अपने हाथ से ग्रन्थ लिखते थे। बाद में जिनकी तीन प्रतियां और तैयार होती थीं। मूल ग्रन्थ तो लेखक की सम्पत्ति होती थी शेष तीन प्रतियों में एक प्रति काशी विश्वनाथ को अर्पित हो जाती थी तथा एक प्रति राजा को भेंट स्वरूप प्रदान कर दिया जाता था और अन्तिम प्रति विद्वद मण्डली को प्रदान कर दी जाती थी। इन छः सौ वर्षो में विभिन्न विषयों पर कितनी पुस्तकें लिखी गयी इसका अनुमान सहज ही नहीं लगाया जा सकता।

सब कुछ सुनकर पूर्णागिरी कुछ देर तक मौन साधे न जाने क्या सोचते विचारते रहे और फिर बोले- आत्मा संसार में अवतरित होने के बाद कितनी बार शरीर धारण करती है? इसका लेखाजोखा कोई भी नहीं बतला सकता किन्तु मैं अपने

सम्बन्ध में अवश्य बतला सकता हूँ। आप सत्यान्वेषी हैं आपको भी अपने विषय में बतलाऊंगा।

यदि मेरे सत्यान्वेषण की परिधि में होगा तो अवश्य विश्वास करेगी मेरी आत्मा। मैंने सहज भाव से उत्तर दिया। अपने दोनो हाथों की उंगलियों को आपस में फंसाते हुए युवा संन्यासी कहने लगा। मेरी आत्मा की भौतिक यात्रा १३वीं शती के प्रारम्भ से हुयी। इसके पहले मेरी आत्मा अपने निज शरीर और निज लोक में थी। मेरी आत्मा कैसे और क्यों भौतिक वातावरण को स्वीकार किया? यह तो बतलाया नहीं जा सकता परन्तु इतना अवश्य स्पष्ट है कि गर्भ के मार्ग से मेरी आत्मा ने शरीर धारण नहीं किया।

फिर क्या हुआ? प्रश्न किया मैंने।

यही तो आपको बतलाने जा रहा हूँ। गले में उलझी हुई मालाओं को ठीक करते हुए संन्यासी ने कहा- आत्मा ज्योति स्वरूप है और वह जिस शरीर में रहती है उसे उसे ज्योतिर्मय शरीर कहते हैं। इसी प्रकार आत्म लोक को कहते हैं ज्योतिर्मय जगत। जहां सब कुछ स्वप्रकाशी है। आत्म शरीर भी स्वप्रकाशी ज्योतिर्मय है।

उस समय भू मण्डल के निकट मैं एक रमणीक स्थान में भ्रमण कर रहा था और तभी मुझे ऐसा लगा जैसे कोई मेरा आवाहन कर रहा है। निश्चय ही कोई परम सिद्ध योगी था वह। क्योंकि ऐसे ही लोगों की पुकार आत्म लोक तक पहुंचती है। वह अज्ञात योगी आत्मा का आवाहन कर रहा था। ऐसी अवस्था में आवाहन करने वाले योगी की आत्मा के साधना संस्कार के अनुरूप ज्योतिर्मय शरीरधारिणी आत्मा उसकी ओर आकर्षित होती है। निश्चय ही आवाहन करने वाले उस अज्ञात योगी का आत्म संस्कार मेरे अनुरूप था। तभी तो मुझे सुनायी दी उसकी पुकार।

आत्मा का अस्तित्व कालातीत होता है। समय नगण्य है उसके लिए। भ्रमण करते हुए स्थिर हो गया मैं। कौन करूण स्वर में पुकार रहा है? इस प्रश्न का उदय होते ही मैंने भू मण्डल में एक ऐसा रमणीक, शान्त और प्राकृतिक छटाओं से घिरा स्थान देखा जो चारो ओर से हिमाच्छादित पर्वत मालाओं से घिरा हुआ था। समझते देर न लगी मुझे कि वह स्थान हिमालय था। इस बात से मैं भलीभांति परिचित था कि जो योगात्मायें भू मण्डल के बाहर किसी कारणवश निकलना नहीं चाहती वे हिमालय में ही रह कर कालक्षेम करती हैं। ध्यान से देखा उस स्थान पर एक महात्मा ध्यानस्थ बैठे हुए थे पद्मासन की मुद्रा में और उनके सामने भूमि पर एक दस बारह वर्ष के बालक का शव पड़ा हुआ था। निश्चय ही उसी महात्मा की पुकार थी जिसे मैंने सुनी थी। किसी भी आत्मा का भू मण्डल में प्रवेश करना अति कठिन होता है। इसलिए

कि भू मण्डल के चारो ओर चन्द्र मण्डल का प्रभाव रहता है। भू मण्डल जड़ तत्व प्रधान है जबकि चन्द्र मण्डल मनस्तत्व प्रधान है। योगात्मा में मन का अभाव होता है और यही कारण है कि कोई भी स्वतंत्र योगात्मा बिना मन को स्वीकार किए भू मण्डल में प्रवेश नहीं कर सकती और न तो मानव शरीर ही धारण कर सकती है। भू मण्डल में शरीर जड़ पदार्थ है। उसमें मन का संयोग होने पर चेतन का आविर्भाव होता है। शरीर, मन और चेतना इन तीनों को एक सूत्र में बांधने वाला प्राण है और इसी का नाम मानव जीवन है। प्राण सूत्र टूटने पर तीनों का अस्तित्व टूट कर अलग हो जाता है। इसी का नाम है मृत्यु।

आपका यहां चेतना से क्या तात्पर्य है?

चेतन तत्व ही आत्मा है।

अच्छा अब आगे बतलाइए। क्या हुआ? थोड़ा व्यग्र होकर पुछा मैंने।

होगा क्या शर्माजी! जो होना था वही हुआ। मेरी आत्मा मनस्तत्व को स्वीकार कर भू मण्डल में प्रवेश कर गयी और तत्काल पहुंच गयी जहां महात्मा ध्यानस्थ बैठे हुए थे। एक दिव्यात्मा से योगात्मा का सम्पर्क हुआ। परिणाम स्पष्ट हो गया। वास्तविकता समझते देर न लगी। महात्मा की आयु चार सौ अस्सी वर्ष थी। अब तक कठोर साधना के परिणामस्वरूप उनकी आत्मा आत्मलोक यानि ज्योतिर्मय जगत में प्रवेश कर चुकी थी। अब वे शरीर त्याग करने के लिए व्याकुल थे क्योंकि उनको शरीर की कोई आवश्यकता नहीं थी। यदि आवश्यकता थी तो एक योग्य शिष्य की। जैसे योगी यानि संसारी व्यक्ति के लिए एक योग्य पुत्र की आवश्यकता होती है। वैसे ही एक परम दिव्यात्मा योगी के लिए एक योग्य शिष्य की आवश्यकता होती है। इसलिए कि वह उसके साधनात्मक ज्ञान और अनुभवों का उत्तराधिकारी बन सके। इस समस्या को लेकर महात्मा चिन्तित थे। एक साधक, योगी, सन्त, महात्मा के लिए सब कुछ सुलभ है लेकिन योग्य शिष्य को प्राप्त करना कठिन है। योग्य शिष्य की खोज के लिए महात्मा के पास समय का अभाव था इसलिए कि भार स्वरूप शरीर का त्याग शीघ्र करना चाहते थे वह। उसी मानसिक उद्वेलन की अवस्था में एक दिन महात्मा की दृष्टि अलकनन्दा की प्रखर धारा में बहते हुए एक बालक के शव पर पड़ी। महात्मा के नेत्र चमक उठे। उनका कार्य सिद्ध होता प्रतीत हुआ। एकबारगी प्रसन्न हो उठे वह। धारा से किसी प्रकार बालक के शव को बाहर निकाला और अपने स्थान पर ले आये उसे। शीतल जल के कारण शव का आन्तरिक स्वरूप विकृत नहीं हुआ था अभी तक। आंखों की पुतलियां अपने स्थान पर स्थिर थीं। महात्मा को अपनी अभिलाषा साकार सी लगी। तत्काल शव में अपने योग बल से प्राणों का संचार कर दिया उन्होने। पूरा

शरीर गतिमान हो उठा। सांसे चलने लगीं। सम्पूर्ण नस नाड़ियों में प्राण और रक्त का संचार होने लगा। लेकिन सब कुछ होते हुए भी हृदय में धड़कन उत्पन्न नहीं हो रही थी और न तो उसमें उत्पन्न हुई थी किसी भी प्रकार की क्रियाशीलता ही। योग के अनुसार यह तभी सम्भव होता है जब शरीर में आत्मा प्रविष्ट होती है। क्योंकि आत्मा का स्थान हृदय है। ज्योतिस्वरूप आत्मा की ऊर्जा से हदय में कम्पन धड़कन और क्रियाशीलता आदि उत्पन्न होती है। हृदय की परिधि में एक छोटा सा गोल स्थान है। जिसको योग की भाषा में आत्मपुर कहते हैं। आत्मपुर में निवास करने वाली आत्मा पुरूष वाचक है। आत्मा का पर्याय पुरूष है। आपको यहां यह भी बतला दूं कि आत्मा के अस्तित्व में दो मूल तत्व हैं। पहला है पुरूष तत्व और दूसरा है स्त्री तत्व। ये दोनों आदि तत्व हैं और इन्ही के संयोग से सम्पूर्ण सृष्टि की रचना हुई है। पूर्णागिरी इतना कह कर किसी सोच में डूब गये। अब तक मैं भी काफी प्रभावित हो चुका था उस युवा संन्यासी से। धीरे-धीरे वह जिन गोपनीय रहस्यों को अनावृत्त करता जा रहा था वह आध्यात्मिक भूमि से गहरा सम्बन्ध रखता था। अब मैं थोड़ा सतर्क हो गया था। संन्यासी से ने सिर उठाकर मेरी ओर देखा। मेरे चेहरे पर तैरते हुए कौतुहल और जिज्ञासा के मिले जुले भावों को सम्भवतः समझ लिया उस संन्यासी ने। जरा हँसकर बोला- आप मन को व्याकुल न होने दें। आपकी जो जिज्ञासाएं हैं और जो कौतुहल है उन सभी का समाधान समय-समय पर हो जायेगा उद्विग्न न हों आप।

मैं बोला तो कुछ नहीं लेकिन मुझे यह समझते देर न लगी कि मेरे सामने निर्भय मुद्रा में बैठा हुआ सुदर्शन संन्यासी साधारण नहीं है। फिर आगे क्या हुआ? मेरा प्रश्न सुनका पूर्णागिरी एक बार ऊपर की ओर देखा और फिर एक लम्बी सांस ली। संसार के मायाजाल से अनभिज्ञ एक दिव्यात्मा, एक महात्मा के अनुरोध को टाल न सकी जिसका परिणाम यह हुआ कि उनके योग बल से मैं बालक के अर्ध जीवित शव मे हृदय में प्रवेश कर गया। पहली बार शरीर के बन्धन का हुआ अनुभव शर्माजी। बड़ा ही विचित्र अनुभव था वह इसमें सन्देह नहीं। समझ ले किसी स्वतंत्र रूप से आकाश में विचरण करने वाले पक्षी को पिंजड़े में एकाएक बन्द कर दिया गया हो या किसी को सुन्दर महल से निकाल कर झोपड़ी में डाल दिया गया हो। यह सब तो ठीक है। मायाराज्य में प्रवेश करने पर ऐसा प्रतीत होना स्वाभाविक है लेकिन सबसे बड़ी बात तो यह है शर्माजी कि आत्मा पुरूष शरीर में प्रवेश करती है तो उसे उसमें केवल पुरूष तत्व ही रहता है। दूसरा स्त्री तत्व,स्त्री के शरीर में प्रवेश करने के लिए बाहर ही रह

जाता है। ऐसा ही मेरे साथ भी हुआ। मेरी आत्मा का स्त्री तत्व बाहर ही छूट गया। व्याकुल हो उठा मैं। स्त्री तत्व के अभाव में अपने आपको अधूरा और असमर्थ अनुभव कर रहा था मैं और साथ ही अतृप्त भी। सच पूछा जाये तो वियोग असहनीय था मेरे लिए। बाद में सब कुछ स्पष्ट हो गया। महात्मा ने ही बतलाया मुझे इसका रहस्य।

पुरूष तत्व और स्त्री तत्व ये आत्मा के दो खण्ड हैं। आत्म लोक और भू लोक में अवतरित होते ही नैसर्गिक रूप से आत्मा दो खण्डो में विभाजित हो जाती है। जिसमें एक खण्ड पुरूष तत्व प्रधान होता है और दूसरा होता है स्त्री तत्व प्रधान। आत्मा का यह वियोग ही उसके जन्म, मरण का कारण बन जाता है। पुरूष तत्व प्रधान आत्मा और स्त्री तत्व प्रधान आत्मा दोनो एक दूसरे की खोज में भटकती रहती है। एक दूसरे को प्राप्त करने के लिए लालायित रहती है। यही लालसा,यही कामना, यही अतृप्ति, यही पीड़ा, यही वियोग का असहनीय दुख स्त्री तत्व को स्त्री का और पुरूष तत्व को पुरूष का शरीर धारण करने के लिए बार-बार प्रेरित करता रहता है। आत्मा का यही जीवन चक्र है।

ब्रह्माण्ड संचालिका महाशक्ति योनि रूपा है और भू मण्डल में आने के लिए एक ही मार्ग है और वह मार्ग है मातृ गर्भ द्वारा और दूसरा है परकाया प्रवेश। तुमको संसार में आने के लिए गर्भ में प्रवेश नहीं करना पड़ा। यदि ऐसा होता तो अपने स्वरूप को तुम भी अन्य दिव्यात्माओं की तरह भूल जाते। इसलिए तुमको इस बालक के शरीर में प्रविष्ट कराना पड़ा मुझे। जिसे तुम परकाया प्रवेश भी कह सकते हो। इससे तुमको सबसे बड़ा लाभ यह हुआ है कि तुम अपने ज्योतिर्मय आत्म लोक को और अपने ज्योतिर्मयी आत्मा के स्वरूप को विस्मृत न कर सके। जिसके कारण तुम इस संसार में अपने आपको एक मनुष्य नहीं एक स्वतंत्र आत्मा समझोगे। ऐसे आत्मनिष्ठ को संसार की मोह माया आकर्षित नहीं करती। वह संसार में जल कमलवत् रहता है और आगे की साधना पूर्ण करता है।

परकाया प्रवेश साधक से सत्संग- पूर्णागिरी एक परम सन्त थे। उनका ज्ञान अद्‌भुत था। चूंकि उस समय मैं जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म पर या कहिए आत्मा की अवस्थाओं पर विशेष शोध कर रहा था।

मेरे शोध के समय में ही माँ की कृपा से पूर्णागिरी से परिचय हो गया था। यह एक संयोग था कि मैंने अपने मनोभावों को उनसे अवगत नहीं कराया। लेकिन मेरी

जिज्ञासा को और अन्य विषयों को जानने की जो मेरी उत्सुकता थी वह बराबर बनी रही।

बहुत से ऐसे प्रश्न थे जो मैं तत्काल नहीं पूछ सकता। क्योंकि मैं जानता था कि योगियों और साधकों की मतिगति को। उनके लिए संसार का कोई महत्व नहीं है अगर महत्व है तो केवल स्थूल शरीर का। जिससे वे अपनी आगे की साधना पूर्ण कर सके। इसलिए एक दिन उनके मनोभाव को देखते हुए मैंने प्रश्न किया- आपका प्रवास कब तक है काशी में? पूर्णागिरी बोले- मैं तो कल्पवास के लिए चार माह काशी में निवास करूंगा। उसके बाद साधना के लिए मैं वापस गिरनार चला जाऊंगा। बस दिव्य कैवल्य के कहने पर आपसे मिलने की जिज्ञासा थी जो पूर्ण हो गयी।

खैर, मैंने इस बात का जिक्र नहीं किया कि दिव्य कैवल्य से आपको मेरे बारे में कैसे पता चला। यह योगियों की माया है जो किसी रहस्य से कम नहीं है। पता नहीं क्यों कोई मुझे अन्दर से रोक रहा था। इसका क्या कारण है माँ ही जाने। मेरा सत्संग चार माह तक चला उस साधक के साथ। अक्सर मेरी मुलाकात होती रहती थी। बस मैं उस रहस्य को जानना चाह रहा था जो मेरे लिए अबूझ था। ऐसे ही एक दिन समय देख कर प्रश्न किया- आप तो जाग्रत हैं क्योंकि आप तो गर्भ से पैदा नहीं हुए हैं परकाया प्रवेश किया है। बस उस महात्मा के आवाहन के द्वारा उस बालक के शरीर में प्रवेश कर गये लेकिन आपकी चैतन्यता तो यथावत बनी रही। तभी तो आपने अपना परिचय और कथा सुनायी। पूर्णागिरी बोले- बात तो सही है मैं पूर्ण चैतन्य हूँ और बन्धन रहित हूँ जब चाहे यह भौतिक शरीर छोड़ सकता हूँ। पूर्णागिरी आगे बोले- उस संन्यासी ने मुझे देखा तब अपनी सिद्धी और ज्ञान अपरोक्ष रूप से मेरे मानसपटल अथवा मेरी आत्मा में स्थान्तरित कर दिया। वह ज्ञान और सिद्धी मेरे लिए अमूल्य है। अब मैं भौतिक शरीर द्वारा अपनी साधना को पूर्ण करूंगा। काशी में कल्पवास भी उस साधना की एक कड़ी है। चतुर्मास यहां रहना है। महाकाल की साधना करनी है। दिव्य कैवल्य से आपका परिचय कैसे हुआ। संन्यासी जरा हँसते हुए बोला- सन्त समाज की अपनी मण्डली होती है। बस सूक्ष्म शरीर द्वारा विचरण कर रहा था सत्संग हो गया। प्रसंगवश काशी की चर्चा हुई और मुझे चार माह का कल्पवास भी करना था। इसलिए दिव्य कैवल्य ने बतलाया कि आप काशी चले जायें। आपका नाम लेते हुए बोला कि शर्माजी से अवश्य मिलियेगा आनन्द आयेगा। बस सोच ही रहा था कि आपसे कैसे मुलाकात हो। साधना के बाद खाली समय में सत्संग करना चाह रहा था। माँ की कृपा से संयोग बना और देखिये आज मैं और आप एक साथ बैठे हैं।

चर्चावश आत्मा सम्बन्धित प्रसंग चला। पूर्णागिरी बोले- आज शायद आपको विश्वास हो या न हो। मैं सूक्ष्म शरीर द्वारा स्वतंत्र था। शरीर नहीं था। लेकिन शरीर की कमी कभी-कभी खलती थी। आत्मा की चर्चा तो हम बाद में करेंगे पहले शरीर के विषय में कुछ सत्संग कर लिया जाये।

मानव शरीर और उसका महत्व : परमात्मा और आत्मा के बाद साधना भूमि में यदि किसी वस्तु का महत्व है तो वह है- मानव शरीर का। जिस प्रकार आत्मा परमात्मा का लघु संस्करण है- वैसे ही ब्रह्माण्ड का लघु संस्करण मानव-शरीर है। जिन तत्वों से ब्रह्माण्ड की रचना हुई है- उन्हीं तत्वों से मानव-शरीर की भी रचना हुई है। योगियों का कहना है कि पिण्ड यानि मानव शरीर ब्रह्माण्ड का संक्षिप्त संस्करण है। योगमार्ग में मानव शरीर को ही पिण्ड मानकर ब्रह्माण्ड की व्याख्या की गयी है और यह बतलाया गया है कि मनुष्य के किस-किस अंग में ब्रह्माण्ड का कौन-कौन सा भाग विद्यमान है। यह भी स्पष्ट किया गया है कि ब्रह्माण्ड की कौन सी वस्तु मानव शरीर में किस रूप में विद्यमान है। वास्तव में देखा जाये तो मानव शरीर में सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड सिमट गया है। मानव शरीर में वह सर्वाधिक स्पष्ट है। इसीलिए कहा गया है- **'ब्रह्माण्डेऽप्यस्ति यत्किंश्चित् तत् पिण्डेऽप्यस्ति सर्वथा।'**

मानव शरीर को महत्व देने का यह एक रूप है। किन्तु केवल शरीर ही नहीं, मनुष्य की वाणी, उसका प्राण, उसका मन और उसका बिन्दु सब अपार और अनन्त शक्ति के आश्रय हैं। इनमें से किसी एक की साधना से परम सत्ता को उपलब्ध हुआ जा सकता है।

इसका दूसरा रूप भी कम महत्त्व का नहीं है। परमतत्व की जो पराशक्ति है- वह जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, उसी प्रकार पिण्ड में भी व्याप्त है। वैसे वह अणु में विद्यमान है, मगर पिण्ड में यानि मानव शरीर में वह सबसे अधिक जाग्रत है। अन्य योनियों में वह कम जाग्रत अथवा सुप्त है। आपको ज्ञात होना चाहिए। मैंने पूछा जो गतिशील शक्ति बतलाया है। योग-तंत्र उसी की पराशक्ति कहता है। उस पराशक्ति के तीन प्रारम्भिक रूप है- इच्छा, ज्ञान और क्रिया इसीलिए उस महाशक्ति को त्रिपुरीभूता अथवा 'त्रिपुरा' कहते है। अतः उस त्रिपुरा के तीनों रूप इच्छा, ज्ञान और क्रिया मनुष्य में विद्यमान है। मानव-शरीर में पराशक्ति के इन तीनों रूपों के क्रमशः केन्द्र हैं- हृदय, मस्तिष्क और नाभि। वह पराशक्ति देवताओं में भी जाग्रत नहीं है। क्योंकि देवता प्राकृतिक शक्तियों के रूप में हैं। वे भोग योनि में है। उन्हें केवल भोगने की शक्ति है। वे जिस कार्य के लिए उद्दिष्ट हैं उससे अधिक या कम की उनमें

इच्छा भी नहीं होती। क्रिया भी नहीं होती है। अग्नि केवल जला सकती है। उसमें अन्य प्रकार के कार्य की इचछा भी नहीं होती। क्रिया तो होगी ही कहाँ से? इसीलिए योग ने कहा है- देवताओं में पराशक्ति का अभाव है। वे प्राकृतिक शक्तियों के भिन्न-भिन्न रूप मात्र हैं। मनुष्य में वह पराशक्ति कुण्डलिनी के रूप में इच्छा, ज्ञान और क्रिया के रूप में विद्यमान है। इसीलिए मानव योनि देव योनि से भी श्रेष्ठ है। इस विश्व ब्रह्माण्ड में केवल मनुष्य को इच्छा, ज्ञान, क्रिया की त्रिधारा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त है। इसीलिए परात्पर पुरुष यानि परमेश्वर को भी जब कुछ करना होता है तब उसे मानव शरीर धारण करना पड़ता है। भारतीय तंत्र योग में दो प्रकार से मानव शरीर की श्रेष्ठता का वर्णन मिलता है। पहला है विश्व ब्रह्माण्ड की नियंत्रणकारिणी शक्ति, उसकी समस्त चराचर लीलाएं मानव शरीर के आश्रय से ही प्रगट होती है। दूसरा यह है कि महाशक्ति, महामाया जिसे तंत्र में पराशक्ति कहते हैं जो ब्रह्माण्ड के अणु-अणु में व्याप्त है लेकिन मानव शरीर ही एक ऐसा केन्द्र है जो कि आपको पूर्ण चैतन्य और प्रकाशित कर सकने में समर्थ है।

जिस शक्ति द्वारा विश्व ब्रह्माण्ड का विस्तार हुआ उन्ही तत्वों से मानव शरीर की भी रचना हुई। जो मानव शरीर में लघु रूप से व्याप्त है। वह विश्व ब्रह्माण्ड में पूर्णरूप से व्याप्त है इस वास्तविकता को समय-समय में सभी लोगों ने स्वीकार किया। प्रत्येक प्राणी और प्रत्येक जीव उस परम शक्ति की अनुभूति हर क्षण करता है। चाहे वह ज्ञान विचार या क्रिया के रूप में हो।

मानव शरीर में सबसे महत्वपूर्ण है आत्मा। जो परमात्मा का ही लघु रूप है। मन, पांच प्राण, वाणी और शुक्र यह पांच शक्ति केवल मानव में है अन्य जीव में दुर्लभ है। तंत्र में इसे पंचाग्नि कहते हैं। तंत्र में इसका काफी महत्व है। परब्रह्म परमेश्वर की जो आदि शक्ति है वह जिस प्रकार ब्रह्माण्ड में ऊर्जा के रूप में व्याप्त है और है क्रियाशील। उसी प्रकार सूक्ष्म रूप से मानव शरीर में भी क्रियाशील है। मनुष्य में इच्छा, ज्ञान और क्रिया में त्रिपुरभूता के रूप में कार्य और नियंत्रण करती है। तंत्र में इन्हे त्रिपुरा कहा गया है।

शर्माजी पूर्णागिरी बोले कि सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि एकमात्र मानव को ही इच्छा, ज्ञान और क्रिया की त्रिधारा प्राप्त करने का सौभाग्य मिला। जो देवताओं को भी दुर्लभ है। मानव योनि कर्म प्रधान है। जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी और आकाश का सघनात्मक रूप है इसलिए इसे मानव योनि यानि स्थूल शरीर कहते हैं। अन्य योनि में पृथ्वी तत्व नहीं है इसलिए देवता प्रकाश रूपी हैं और अन्य प्रकार की आत्माओं में पृथ्वी तत्व और जल तत्व न होने की वजह से वह दृश्य जगत में प्रगट नहीं हो

सकते। जैसे पहले मेरा सूक्ष्म शरीर था। मैं सब कुछ देख सकता था अनुभूति कर सकता था, जहां चाहे वहां जा सकता लेकिन पृथ्वी और जल तत्व न रहने से मैं प्रत्यक्ष न हो सका। लेकिन मानव शरीर के कारण अन्य अनुभूति कर रहा हूँ इसलिए मानव शरीर का अपना एक महत्व है।

देखा जाये तो मानव शरीर में ब्रह्माण्ड की सभी शक्तियों को केन्द्र है। बस उसे कैसे जाग्रत किया जाये यह महत्वपूर्ण है। थोड़ा रूक कर वह साधक बोला- शर्माजी आप जानते हैं शरीर में सबसे महत्वपूर्ण चक्र है मूलाधार चक्र। इसे सिद्ध किये बिना आगे का मार्ग कभी भी प्रशस्त नहीं हो सकता। एक प्रकार से इसका सूक्ष्म रूप त्रिकोण है। यह त्रिकोण वास्तव में योनिरूपा है। तंत्र में योनिरूपा को महाशक्ति पीठ यानि मातृरूपा कहते हैं यानि मातृअंक। जीव का आविर्भाव इसी मातृअंक से सम्भव है। यह प्रकृति का रहस्य है। त्रिकोण योनि पीठ में बायें कोण ज्ञान शक्ति दाहिने कोण इच्छा शक्ति एवं नीचे के कोण में क्रिया शक्ति है। ब्राह्मी, वैष्णवी और रौद्री शक्ति पीठ कहते हैं। इन तीनों शक्तियों पर पराशक्ति यानि आदि शक्ति के त्रिविध रूप हैं। जिससे जगत चल रहा है और ब्रह्माण्ड का विस्तार हो रहा है। योग में इसे कुण्डलिनी शक्ति का केन्द्र माना गया है। पराशक्ति स्वयं त्रिकोण के मध्य में विराजमान और सुषुप्त हैं लेकिन तीनों रूपों में जाग्रत और क्रियाशील हैं। (कुण्डलिनी योग में विस्तार से पढ़ें) समय कब बीत गया पता ही नहीं चला। स्वामीजी की साधना समय हो गया था। फिर मिलने की बात कर एक झटके से उठे और अपने गंतव्य की ओर चल पड़े। हाँ अपने स्थान का पता अवश्य दे गये। बोले दो दिन समाधि में रहूंगा आप परसों आइयेगा मेरे निवास स्थान पर वहीं पर सत्संग होगा। उस दिन मैं खाली हूँ कोई कार्य नहीं है।

मैं उठ खड़ा हुआ और प्रणाम कर चल दिया। रात्रि का समय था, चारो तरफ सन्नाटा पसरा था। बस सोचता रहा, मन्थन चल रहा था, कब घर पहुंच गया पता ही न चला। निर्धारित समय पर पहुंचा स्वामी जी के पास। समय सांयकाल का था। हल्के ठंड का आभास हो रहा था शरीर को। जब पहुंचा तो स्वामीजी का दरवाजा बन्द था। अन्दर से हल्की-हल्की सुगन्ध आ रही थी। जैसे ही मैंने दरवाजे खटखटाना चाहा दरवाजा अपने आप ही खुल गया। देखा कमरे का वातावरण मन को सम्मोहित सा करने लगा। दीपक की मन्द लौ कमरे में फैलने की चेष्टा कर रही थी। धूप की सुगन्ध से कमरे में अजीब सा वातावरण पैदा हो रहा था। स्वामी पूर्णागिरी ध्यानस्थ बैठे थे अपने आसन पर। ऐसा लगा शायद आसन से थोड़ा ऊपर उठे हुए हैं। हो सकता है कि मेरा भ्रम हो। सामने त्रिकोण रूप में लाल रोली की योनि पीठ बनी थी और उसी के सामने कुछ पूजा का सामान था। योनि पीठ के सामने महाकाल का प्रतीक

शिवलिंग था। जैसा कि स्वामीजी ने कहा था वैसा ही देखा कि वे तीन दिनों से पूजा कर रहे थे। शायद मैं जल्दी तो नहीं चला आया। लेकिन जब स्वामीजी का ध्यान भंग हुआ तो वे मेरी ओर देखते हुए बोले कि आप आ गये। आइये बैठिये। तभी मेरी नजर उनके आसन पर गयी देखा उनका शरीर आसन से ऊपर उठा है। जैसे लगाा स्वामी जी का शरीर पद्मासन की मुद्रा में हवा में लटका है। मैं यही सोच रहा था। शायद मेरा भ्रम है। तभी स्वामी जी ने मेरा ध्यान भंग कर दिया और बोले- भला शिव साधना सबके वश की बात नहीं है। उन्हे साधना सम्भव नहीं है। यह आसन सिद्धी है ध्यान व समाधि की अवस्था में पृथ्वी का गुरूत्वाकर्षण अवरोध पैदा करता है। इसलिए उच्च कोटि के साधक आसन सिद्धि कर भूमि से अपने शरीर का आकाश तत्व से सहयोग लेकर जमीन से ऊपर उठ कर लोक-लोकान्तर की यात्रा करते हैं। जो आपने देखा वह आपका भ्रम नहीं था। देखना चाहते हैं चलिए एक बार पुनः आपके सामने प्रदर्शन कर देता हूँ। मैं कुछ बोला नहीं। फिर देखा कि स्वामी जी पहले कुम्भक किये फिर क्या देखता हूँ कि उनका शरीर आसन से दस ग्यारह इंच ऊपर उठ गया और फिर धीरे-धीरे यथास्थान पर वापस आ गया। एकबारगी तो मैं हतप्रभ हो गया। पहली बार आसन सिद्धी का चमत्कार देखा था इसलिए अपनी आंखों पर सहसा विश्वास नहीं हो रहा था स्वामीजी सामान्य हुए। प्रसाद दिया उसके बाद कुछ देर विश्राम करने के बाद बोले- काशी आने का एकमात्र उद्देश्य है महाकाल साधना। मैंने कहा- महाकाल साधना तो श्मशान साधना है। स्वामीजी बोले- श्मशान साधना तो है ही तंत्र में शर्माजी आपको बता दूं आप संस्कार जन्य साधक हैं। आपके पास भी असीम ज्ञान है योग व तंत्र का। महा श्मशान एक तो जगत है लेकिन महा श्मशान का पूरा विस्तार विश्व ब्रह्माण्ड है। जहां हर पल निर्माण हो रहा है और हो रहा है विनाश। हम साधक गण केवल महाकाल की आराधना करते हैं उनकी कुछ इच्छायें हैं। उन्हे कौन साध सकता है। अगर देखा जाये तो सारा विश्व ब्रह्माण्ड ही लयमय महा श्मशान है। सब कुछ महाकाल में लय हो रहा है। हम साधक तो उनकी आराधना करते हैं। बिना शिव के मोक्ष सम्भव नहीं है। हाँ महाकाल को साधने का प्रयास एकमात्र महापण्डित रावण ने किया वह तो महाकाल को सिद्ध करना चाहता था उस विनाशरूपी लय को बस। यहीं से उसका अहंकार शुरू हो गया। जन्म सिद्ध को सिद्ध नहीं किया जा सकता है। सिद्धी अनुकम्पा से, समर्पण से मिलती है। अहंकार आया तो नष्ट होते देर नहीं लगेगी। जैसा कि रावण के साथ हुआ। जगत में तीन प्रत्यक्ष अग्नि हर पल जल रही है। एक प्रकार से लय हो रहा है। पहली अग्नि सूर्य रूप, दूसरी अग्नि श्मशान

में और तीसरी अग्नि जिसे जठराग्नि कहते हैं मानव के शरीर में अनवरत् जल रही है। शिव के विषय में आगे चर्चा करेंगे।

योग-तंत्र और आत्मा सम्बन्धित चर्चा पूर्णागिरी से चार माह तक चली। जब स्वामीजी का कल्पवास समाप्त हो गया तो एक दिन उन्होने कहा- शर्माजी अब मेरे प्रस्थान का समय हो गया है। माँ चाहेगी तो फिर मिलना होगा। चार माह का समय कब समाप्त हो गया पता ही नहीं चला। समय तो अपनी गति से चलता ही रहता है वह किसी का इन्तजार नहीं करता। स्वामीजी गिरिनार चले गये। बस मैं रह गया अकेला। ऐसे महान पुरूष का सत्संग परम सौभाग्य से मिलता है। उनके साथ जो सत्संग लाभ हुआ और हुई विविध विषयों पर चर्चा मैं अपनी भाषा में लिखने का प्रयास कर रहा हूँ।

आत्मा के तीन वाहक : वैसे आत्मा के पांच वाहक हैं लेकिन तीन वाहक मुख्य हैं। सूक्ष्म शरीर, लिंग शरीर और स्थूल शरीर। भौतिक शरीर और वासना शरीर का सूक्ष्म सम्मिश्रण सूक्ष्म शरीर है। सूक्ष्म शरीर की साधना योग और तंत्र में काफी महत्वपर्ण है। शरीर रहते इसकी साधना से साधक सूक्ष्म शरीर के माध्यम से अनेक सिद्धी और सूक्ष्म जगत में आवागमन कर सकता है। जैसा कि आगे बतलाया गया है कि एक साधक के लिए आत्मा जब उच्चावस्था को प्राप्त करती है तब सूक्ष्म शरीर एवं मनोमय शरीर का मिश्रण को लिंग शरीर कहते हैं। इसी प्रकार मनोमय शरीर और आत्म शरीर के मिश्रण को कहते हैं कारण शरीर। जाग्रत अवस्था में आत्मा भौतिक शरीर में रहती है। स्वप्न अवस्था में आत्मा लिंग शरीर में रहती है और तुरीय अवस्था में आत्मा कारण शरीर में रहती है। यह आत्मा का निज शरीर है। मृत्योपरान्त आत्मा प्रवेश करती है वह मूढ़ स्वप्नावस्था है।

मृत्यु के बाद हम स्वप्न की इस अवस्था में उसी प्रकार जागते हैं जैसे हम गहरी नींद से जागते हैं और उस जागरण काल से मृत्यु के क्षण तक सारी घटनायें हमें स्वप्न सी प्रतीत होती हैं। उस समय ऐसा लगता जैसे हम नींद से एक लम्बा सपना देख कर जाग गये हैं। उस अवस्था में प्राप्त जीवन, जगत और वातावरण को हम उसी प्रकार सत्य समझने लगते हैं। जैसा जाग्रत जीवन में स्वप्न देखने बाद हम जागते हैं। जागने के बाद आत्मा भौतिक शरीर विहीन पाता है और उसी को प्रेत शरीर कहते हैं। जब वासना का क्षय होता है तो फिर आत्मा सुप्तावस्था को प्राप्त कर लेती है। उसे एक प्रकार से निद्रा या मूढ़ावस्था कहते हैं। जहां पिछले जीवन की स्मृतियां तो नहीं रहती मगर संस्कार का बीज रूप आत्मा के साथ अवश्य रहता है और आत्मा उसी

संस्कार को लेकर अगले जन्म के लिए नये गर्भ में प्रवेश कर जाती है। इसी प्रकार आत्मा हजारों जन्मों के संस्कारों को समेटे रहती है और जन्म, पुनर्जन्म के चक्कर में फंसी रहती है। योग और तंत्र में जितनी भी साधनायें हैं सब संस्कार क्षय के लिए है। जिस प्रकार आपके सिर पर एक बड़ा सा गट्ठर रख दिया जाये तो कुछ ही देर बाद आप उस बोझ से घबड़ाने लगेंगे और तुरन्त उतार फेंकना चाहेंगे। जब आपके सिर के ऊपर से वह गट्ठर उतर जाता है तो आपको असीम शान्ति का अनुभव होता है। उसी प्रकार आत्मा संस्कार रूपी बोझ से दबती चली जाती है। जब तक साधना मार्ग द्वारा संस्कार का क्षय नहीं होता तब तक आत्मा भटकती रहती है। बोझ उतारने के लिए बार-बार जन्म लेती रहती है। जब मानव जन्म लेता है तो कभी उसे सुख तो कभी उसे दुख मिलता है। इसका कारण आप जानते ही होंगे।

महाभारत में एक प्रसंग है। एक दिन धृतराष्ट्र ने भगवान कृष्ण को अपने यहां आमंत्रित किया। उस समयं वे काफी व्यथित थे। भगवान कृष्ण ने पूछा- क्या बात है राजन आप इतने दुखी क्यों लग रहे हैं और किस आश्रय से आपने मुझे याद किया? धृतराष्ट्र बोले- हे वासुदेव आप योगेश्वर, परम ब्रह्म परमेश्वर के साकार रूप हैं यह जानता हूँ मैं। बस आप मेरी एक विनती स्वीकार कर लें जो कि मेरे मन को काफी समय से उद्वेलित करता आ रहा है। केवल आप ही उसका समाधान कर सकते हैं।

वासुदेव बोले- हे राजन अपनी व्यथा तो व्यक्त करें। अगर मेरे सामर्थ्य में होगा तो उसे अवश्य दूर करूंगा।

धृतराष्ट्र बोले- भगवान आज मेरे पास अपार सुख है, सम्पत्ति है, नाना प्रकार के भोग हैं लेकिन सब मेरे लिए व्यर्थ प्रतीत हो रहे हैं सब कुछ होते हुए भी मैं देख नहीं सकता यही मेरी व्यथा है। इसका क्या कारण है। बस इसी का आपसे उत्तर चाहता हूँ।

वासुदेव बोले- हो सकता है कि आपसे किसी जन्म की गलती अथवा अपराध हुआ हो। जो इस जन्म में आपको भोगना पड़ रहा हो। जो कि नियति बन कर आपके सामने है। सारा सुख होते हुए भी आप सुख से वंचित हैं।

धृतराष्ट्र ने पूछा- भगवान नियति क्या है? पहले इसका रहस्य बतलायें।

भगवान बोले- मानव के अच्छे बुरे कर्म मृत्यु के बाद आत्मा में संस्कार के रूप में चले जाते हैं। वह संस्कार अच्छा है या बुरा उसका बीज रूप आत्मा के साथ अनन्त काल तक रहता है। जब तक उसका क्षय न हो जाये। चाहे दान से या पुण्य परोपकार से या किसी अन्य कारण से। जब तक उसका क्षय नहीं होगा वह बराबर आत्मा के

साथ जुड़ा रहता है। चाहे आत्मा कितनी ही बार जन्म क्यों न ले ले। जब मानव को दुख या सुख मिलता है या अपार सुख रहते हुए भी शान्ति नहीं मिलती तो मनुष्य यही कहता है कि इतनी सारा पूजा पाठ दान धर्म कर रहा हूँ फिर भी मेरा दुख कम ही नहीं हो रहा है। इसका कारण खोजता है। राजन आप जानते हैं वह संचित संस्कार जब प्रगट होता तो ऐसे समय में वे चाहे अपार सुख में रहे या रहे दुख में। वही संस्कार नियति के रूप में कब प्रगट हो जायेगा कोई नहीं जानता। भाग्य अपने जगह पर और नियति अपनी जगह पर इसलिए जब नियति प्रगट होती है तो ईश्वर भी सहायता नहीं करता। वह भी तटस्थ हो जाता है। मैं चाहूं तो योग बल से आप के नेत्र ठीक कर सकता हूँ लेकिन जो आपका कष्ट है वह नियति के कारण है।

तब धृतराष्ट्र बोले- भगवन् आप कारण का तो पता लगा ही सकते हैं कृपया कर मेरे दुख का समाधान तो करें। भगवान कृष्ण बोले- इसके लिए मुझे योग बल से पता लगाना पड़ेगा। उसके बाद भगवान कृष्ण ध्यानस्थ हो गये। उनके पूर्वजन्म को देखते गये। जब भगवान कृष्ण धृतराष्ट्र के चौदहवें जन्म में पहुंचे तब उन्होने देखा कि धृतराष्ट्र एक राजकुमार थे, पक्षियों का शिकार कर रहे थे। एक पक्षी पर बाण चलाया लेकिन बाण उस पक्षी के बच्चे की आंख में लग गया और वह तड़पने लगा और बाण से उसके दोनों नेत्र फट गये और रक्त बहने लगा और उस पंक्षी के बच्चे को उसी तरह तड़पता छोड़ कर चले गये। बड़े ही रहस्य की बात है धृतराष्ट्र के चौदहवें जन्म का अपराध उन्हे इस जन्म में मिला। इसी को कहते हैं नियति। नियति उस समय प्रगट होती है जब आप सारे सुख भोगने जा रहे होते हैं। खैर, भगवान ने अपने बन्द नेत्रों को खोला और धृतराष्ट्र को बताया कि आप चौदहवें जन्म का अपराध भोग रहे हैं। आपने एक पक्षी के बच्चे की आंख पर बाण चलाया और बिना पश्चाताप किये उसे उसी अवस्था में छोड़कर चले गये थे यही अपराध था। वह अपराध आज नियति के रूप में आपके सामने है। राजन उस समय आप थोड़ा सा भी पश्चाताप कर उस अबोध बच्चे की सहायता की होती तो वह अपराध संस्कार के रूप में आपकी आत्मा पर अपनी छाप नहीं छोड़ता। एक छोटा सा अपराध नियति के रूप में आपके सामने है। धृतराष्ट्र चुप हो गये। भगवान ने धृतराष्ट्र को प्रणाम किया और अपने गंतव्य की ओर चले गये। इससे यही सिद्ध होता है कि नियति के बीच न प्रकृति हस्तक्षेप करती है और न तो ईश्वर। यह आपका कर्म फल है उसे भोगना ही पड़ता है फिर चाहे वह अच्छा हो या हो बुरा।

चेतन तत्व : वैज्ञानिकों के लिए रहस्य है मानव मस्तिष्क और मस्तिष्क के पीछे

ऐसी कौन सी शक्ति है जो उसे संचालित करती है। वैज्ञानिकों ने उसका नाम दिया चेतना। शोध से यह पता चला कि मानव मस्तिष्क में बन्द एकाकी चेतना नहीं है वह तो सम्पूर्ण जगत यानि ब्रह्माण्ड में फैली उस चेतना का सूक्ष्म अंश है और हर अवस्था और हर समय सम्बन्ध बनाये रखती है। इसलिए सम्पूर्ण जगत में चाहे वह जड़ चेतन हो या हो जीव। सभी· से अगोचर सम्बन्ध बनाये रखती है। चेतनायें अदृश्य रूप से एक दूसरे पर अपना प्रभाव छोड़ती हैं और साथ में प्रभावित भी होती रहती है। मानव की इसी चेतना का नाम आत्मा है और ब्रह्माण्ड की उस विराट चेतना नाम है परमात्मा। इसी को तंत्र में परामानसिक चेतना और ब्रह्माण्ड की परम चेतन को परम चेतना कहते हैं। परामानसिक चेतना को पराशक्ति और विराट चेतना को परमशिव की संज्ञा दी गंयी है।

आज वैज्ञानिक ईश्वर को भले ही न माने लेकिन ब्रह्माण्ड में उस असीम ब्रह्माण्डीय ऊर्जा के रहस्य और उसके महत्व को अवश्य ही विवश होकर स्वीकार कर लिया है। उनके सामने ब्रह्माण्ड के अनेक अनसुलझी गुत्थियां हैं उनमें एक है मानव की चेतना। मानव की चेतना का मूल स्वरूप क्या है और अदृश्य ब्रह्माण्डीय चेतना से क्या सम्बन्ध है? क्या मानव अदृश्य रूप से उस अप्रकट परम चेतना से जुड़ा है जो इस जगत और भौतिक पदार्थ के नियमों से ऊपर है।

वैज्ञानिकों ने अपने शोध से यह निष्कर्ष निकाला कि आध्यात्मिक जगत जिसे मानव का जाग्रत मन उस परम चेतना का छोटा सा अंश है जो कि एक बड़े अंश के किसी रहस्यमय आवरण के पीछे है। स्वप्न का भी यही रहस्य है। स्वप्न के बारे में आगे लिखा जा चुका है।

प्रसंगवश थोड़ा सा अंश दिया जा रहा है। मनुष्य की वासनाओं के आधार पर स्वप्न जगत का स्वतः निर्माण होता है। वास्तव में स्वप्न जगत वासना लोक से है। जिसे प्रेत लोक भी कहा जाता है या उसका प्रतिबिम्ब है। मानव जिस शरीर से स्वप्न जगत में प्रवेश करता है मृत्यु के बाद भी उसी जगत में प्रवेश करता है। जिसे वासना जगत अथवा प्रेत लोक कहते हैं। मूर्च्छा की तरह स्वप्न भी दो प्रकार के होते हैं। पहला जीवित स्वप्न और दूसरा मृत स्वप्न। जब मनुष्य निद्रा द्वारा स्वप्न जगत में प्रवेश करता है। उस समय अथवा उस स्थिति में उसे भौतिक जीवन की स्मृति नहीं रहती। इस बात का भी आभास नहीं रहता क्योंकि उसका शरीर निद्रा में रहता है। उस समय स्वप्न ही सत्य रहता है और उसका करता है अनुभव। लेकिन मृत स्वप्न जब आत्मा छोड़ देती है। एक प्रकार से स्वप्न जगत यानि वासना जगत में चली जाती है और जब

जागती है तब उसका शरीर उसके साथ नहीं रहता तब उसे घबड़ाहट और बेचैनी का सामना करना पड़ता है। इसी को प्रेत पीड़ा कहते हैं।

मनुष्य की जीवित अवस्था में जीवन का तीन भाग जाग्रत मन से प्रभावित रहता है और चौथा भाग अवचेतन परामन के अधीन रहता है। मृत्यु के बाद जाग्रत मन का अस्तित्व स्वतः समाप्त हो जाता है। लेकिन उसका मौलिक तत्व जिसमें वासना और संस्कार अनेक भौतिक वृत्तियां रहती हैं वह अवचेतन मन में चला जाता है। इसलिए मृत्यु के बाद भी अवचेतन मन की शक्ति और अधिक बढ़ जाती है। प्रत्येक मनुष्य को अपने वासना के अनुसार मृत्यु के बाद कुछ समय या उससे अधिक समय जैसी उसकी वासना है प्रेतयोनि में रहना पड़ता है। आत्मा के तीन रूप हैं। आत्मा जब मानव शरीर में रहती है तब उसे मानव आत्मा कहते हैं। आत्मा मृत्यु के बाद वासना शरीर में रहती है तो उसे प्रेतात्मा कहते हैं। जब आत्मा सूक्ष्म शरीर में रहती है तब उसे सूक्ष्मात्मा कहते हैं। वासनामय शरीरधारी आत्माओं का जो लोक है उसे प्रेत लोक कहते हैं। प्रेत लोक इस जगत में और चर्मचक्षु से परे है। अच्छी वासनाओं वाले प्रेत पितृलोक में निवास करते हैं और बुरी आत्माओं वाले प्रेत, प्रेत लोक में निवास करते हैं। इसी तरह सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं का जगत सूक्ष्म लोक है। उसके बाद मनः लोक है इस लोक में इच्छा शक्ति और प्राण शक्ति प्रबल होती है। जहां तक प्रश्न है प्रेतात्माओं का उनमें सिर्फ वासना की प्रबलता रहती है वासना की शक्ति ही उनकी स्व शक्ति होती है।

जहां तक मेरा विश्वास है दिव्य आत्माओं, सूक्ष्मात्माओं और प्रेतात्माओं में क्रमशः मनः शक्ति, विचार शक्ति, इच्छा शक्ति तथा प्राण शक्ति होती है। ये सभी शक्तायां मानव शरीर में विद्यमान है इसलिए सभी योनि में मानव योनि को श्रेष्ठ माना गया है। जैसा कि कहा गया है मानव शरीर असीम शक्तियों का केन्द्र है और बीज रूप में तीनों शरीर का अस्तित्व जाग्रत जीवन में भी रहता है दूध और पानी की तरह। जिसे मनः शरीर, सूक्ष्म शरीर और वासना शरीर भी कहते हैं।

प्रेतात्माओं का रहस्य– प्रेत जिस वातावरण में रहता है उसे वासना लोक कहते हैं अथवा प्रेत लोक कहते हैं। मानव का जन्म वासना के कारण ही होता है और रचना भी वासना से ही होजी है। इसलिए अवचेतन मन का सम्बन्ध वासना लोक से बना रहता है। मृत्यु के बाद आत्मा प्रेत योनि को उपलब्ध हो जाती है। उसके वासना से घनीभूत ऊर्जा और प्राण मिलकर प्रेत शरीर का निर्माण हो जाता है। आत्मा कुछ समय तक उसी में रहती है। प्रेत योनि स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर के बीच का सेतु है।

वास्तव में प्रेतों का जीवन एक प्रकार से कष्टमय होता है। भौतिक शरीर के अभाव और वासना के वेग के कारण कष्ट का सामना करना पड़ता है। नर्क यातना इसी को कहते हैं। देखा जाये तो देवताओं में भाव प्रधान और पितरों में मंत्र प्रधान है और मानव में कर्म प्रधान होता है और प्रेतों में वासना प्रधान होती है। उनके नाम से दी गयी वस्तु दान पूजा आदि उनके वेग को शान्त करते हैं और अपरोक्ष रूप से प्राप्त भी होता है इसी से उन्हे संतुष्टि भी मिलती है।

मैंने अपने जीवन में जो अनुभव प्राप्त किया या विभिन्न आत्माओं से सम्पर्क किया। इन सबसे निष्कर्ष यही निकालता है कि मृत्यु जीवन का अन्त नहीं बल्कि एक नये जीवन का प्रारम्भ है। जैसे परिश्रम के बाद मनुष्य थक कर सो जाता है और जब पुनः उठता है तो अपने आपको तरोताजा अनुभव करता है। उसी प्रकार जब आत्मा थक जाती है जीवन भर के दौड़भाग से तब वह भी विश्राम चाहती है। इसे ही आत्म विश्राम कहते हैं। मेरे विचार से मृत्यु एक गहरी नींद है और जागने के बाद नया जीवन, नया वातावरण को हम होते हैं उपलब्ध। एक नयी ताजगी के साथ फिर हमारी नयी यात्रा प्रारम्भ हो जाती है। अगर देखा जाये तो स्वर्ग और नर्क केवल कल्पना मात्र हैं। स्वर्ग नर्क सब यहीं है इसी लोक में है। शास्त्रों में इसका विवरण इसलिए मिलता है। ताकि नर्क के भय से गलत कार्य न करें एवं पाप से बचे और सतकर्म करें, पर सेवा करें, दुखियों की सहायता करें, ईश्वर के प्रति भक्ति भाव रखें। यही सद्भावना मृत्यु के बाद वैसा वातावरण बनायेगी जिसे हम वासना कहते हैं और आत्मा को जल्दी मुक्ति मिल जाती है अतृप्त वासना से। इसीलिए पाप-पुण्य, स्वर्ग-नर्क की बात कहीं गयी है हमारे धर्म शास्त्रों में। जब तक वह जीवित है सतकर्म करे और अगला जीवन उसका सुखमय व्यतीत हो।

व्यंतर देव : व्यंतर देव का तंत्र ग्रन्थों में अक्सर प्रसंगवश जिक्र मिलता है। लेकिन पूर्ण व्याख्या नहीं मिल पाती है। अपने शोध के दौरान जो तथ्य पाया उस पर प्रकाश डालने का प्रयास कर रहा हूँ।

मानव जाति आदिकाल से देवताओं के अस्तित्व से परिचित रही है। कुछ लोगों को विश्वास है और कुछ लोगों को नहीं जो कि चर्मचक्षु से परे है। उन पर नकारना भी स्वाभाविक है लेकिन ये सब अनुभूति है। अगर आप अनुभूति करेंगे और करेंगे विश्वास तो आपको उनके अदृश्य अस्तित्व पर होगा विश्वास। लेकिन बहुत से धर्म ने देव के अस्तित्व को स्वीकार किया। जिनमें से हिन्दू, बौद्ध और जैन धर्म हैं। जिनके अनुसार इनकी चार अवस्थाएं बतलायी गयी हैं। भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क और वैभानिक। ये चार श्रेणियां हैं। इन्हे अपदेवता के अनुरूप माना गया है। इसी प्रकार

व्यंतर की आठ श्रेणियां हैं। पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरूष, भहोरम और गन्धर्व ये सभी ज्यादातर मानव जाति के निकट रहते हैं। इनका अदृश्य अस्तित्व हर समय मानव के आसपास बना रहता है। इनका मुख्य स्थान समुद्र, पर्वत, गुफा, कन्दराओं, राजमार्ग, चौराहों, बन्द घर, खण्डहर, जलाशय, वृक्ष और देव स्थान आदि है। मानव इनसे डरता भी है और इनसे लाभ भी उठाता है। इनकी साधना कर लाभ और सिद्धी तथा कृपा भी प्राप्त करता है।

इनमें अनेकों रूपों के निर्माण की क्षमता होती है। वे एक साथ कई जगह दिख जाते हैं। ये अपने शरीर को सूक्ष्म से सूक्ष्म और बड़ा से बड़ा बना सकते हैं। कभी सुन्दर रूप धर कर मानव के सामने आ जाते हैं और अपनी इच्छा पूर्ण कर फिर अदृश्य हो जाते हैं। ये एक क्षण में कहीं भी आ जा सकते हैं। ज्यादातर व्यंतर देव कौतुहल प्रिय होते हैं। कोलाहल, नृत्य, शोर शराबा आदि जहां होता है वहां पहुंच जाते हैं। ये इनके मुख्य आकर्षण होते हैं। इनका चित्त काफी चंचल होता है। मनुष्यों को सताना इनका आचरण नहीं होता फिर भी कभी-कभी ऐसे आचरण कर देते हैं जिससे उनको कौतुहल और क्रीड़ा प्रिय स्वभाव को मिलता है आनन्द। इनके चंचल स्वभाव से कभी-कभी मनुष्य फंस भी जाता है और उसे कष्ट का सामना करना पड़ता है। ये कभी-कभी भावावेश में आकर मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। तब मनुष्य का शरीर सहन नहीं कर पाता और आवेश अथवा विक्षिप्त सा हो जाता है।

कभी-कभी किसी मनुष्य को स्वप्न के माध्यम से अपनी पूजा या प्रतिमा भी स्थापित करवाते हैं। ऐसा गांव आदि में सुनने को मिलता है जिसे डीह के नाम से जानते हैं। जो उसकी पूजा करते हैं वे उसका कल्याण करते हैं।

जो लोग मंदिर में जाते हैं और याचना करते हैं भगवान के सामने कभी-कभी उनकी मनोकामना पूर्ण हो जाती है। यह सब व्यंतर देव ही कर देते हैं ताकि उनकी भावना न हटे देवता से और विश्वास बना रहे। बड़े-बड़े साधक इसका रहस्य जानते हैं और जानते हैं उनको प्रसन्न करने की क्रिया भी। जब ये प्रसन्न होते हैं तो साधक को मार्ग बतलाते हैं और कृपा भी करते हैं। अगर ये कुपित हो गये तो साधक का नाश भी कर देते हैं। इसलिए पेड़, नदी, कूप, मंदिर सुनसान स्थान पर मल-मूत्र त्याग नहीं करना चाहिए और न ही मांस, मदिरा का सेवन करना चाहिए। ये जब कुपित हो जाते हैं तो इन्हे उस व्यक्ति का सर्वनाश करने में देर नहीं लगती। इसलिए हमारे धर्म शास्त्रों में कहा गया है कि पूजा-पाठ, ध्यान-धारणा से मनुष्य स्वस्थ रहता है और दूषित आत्माओं से रहता है दूर।

क्या वह प्रेत लीला थी- यह घटना वर्ष ६०-६१ की है। मेरे परम मित्र रतनलाल सुरेका कलकत्ता में रहते थे। उनके यहां मेरा आना जाना अक्सर होता था। उनको किसी ने बतलाया कि यहां देव दोष है। इस कारण से आपको वंश वृद्धि नहीं हो रही है। एक दिन उन्होने अपना विचार बनाया और काशी में मंदिर बनवाने की सोचा। भगवान श्रीराम के परम भक्त थे। मैंने कहा यह तो अच्छी बात है। जो सहयोग होगा मैं करूंगा। उस समय बनारस में मेरा काफी अधिकारियों से परिचय था। जो बन सका मुझसे मैंने उनका सहयोग कर दिया और आज वह मंदिर मानस मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है। सहयोग करने के कारण सुरेकाजी का स्नेह और भी बढ़ गया। लेकिन मेरा उद्‌देश्य तो कुछ और ही था। बस साधु सन्तों को खोजता फिरता और अपनी जिज्ञासा को शान्त करता। एक दिन पता चला मुर्शिदाबाद में कोई सन्त रहते हैं। उस समय मैं कलकत्ता में ही था। बस निकल पड़ा उस सन्त की खोज में। सन्त तो मिले नहीं लेकिन मैं एक ऐसी भयानक प्रेत लीला में फंस गया कि बस माँ की कृपा थी जो आज सकुशल हूँ।

उस घटना को मैं आज तक नहीं भूल पाया। आज भी जब उस घटना को याद करता हूँ तो एकबारगी मन सिहर उठता है। उस अजीबोगरीब घटना को मैं अपनी भाषा में यहां वर्णन कर रहा हूँ।

अमावस की रात। धीरे-धीरे रात गहरी होती जा रही थी। मुझे मयूराक्षी नदी पार करके बस स्टेशन तक जाना था। उस नाव का मैं अकेला यात्री था। यदि सात बजे के पहले नहीं पहुंचता तो बस छूट जायेगी। मैं नदी में था लेकिन नाव वाला नाव अपनी ही गति से चला रहा था। उससे कुछ कहना या समझाना बेकार था। मन में अजीब-अजीब से ख्याल आ रहे थे लेकिन क्या करता विवश जो था। वह मल्लाह काफी बातूनी था। रास्ते भर बक-बक करता रहा। उसे मेरी चिन्ता नहीं थी। उसकी बातों पर मेरा ध्यान नहीं था मैं तो बस जल्दी से जल्दी पहुंचना चाहता था। लेकिन नियति को कुछ और मंजूर था। देर तो होनी ही थी और हुआ भी वही। जब नाव नदी के किनारे पर लगी तो किनारे पर एक भी आदमी नहीं थे। चारो तरफ घना जंगल व घोर निस्तब्धता व्याप्त थी। आकर पछतावा हो रहा था। मैं नाव से उतर तो गया लेकिन हिम्मत नहीं हो रही थी आगे जाने की। जो रास्ता बस अड्‌डे तक जाता था वह बीच का रास्ता काफी घने जंगलों से होकर गुजरता है। जंगली जानवरों का भी डर था और साथ में नक्सली लोगों का भी। जो कि अनजान आदमी को देखते तो लूटपाट करते और यहां तक की हत्या भी कर देते थे। नाव जिस किनारे खड़ी थी वहीं पास में एक बास का मचान सा था। उस स्थान को जहाज घाट कहते हैं। उस

मचान पर चढ़कर चारो तरफ देखा कि मयूराक्षी नदी का निस्तब्ध जल चुपचाप बह रहा था। बहाव में कोई गति नहीं थी। बहाव मन्द-मन्द था लगता था कि बहाव जमकर रूक गया हो और ऐसा लग रहा था कि उस नदी के काले पानी की अतल गहरायी में असंख्य जीव मेरी तरफ ताक रहे हों। नदी के उस पार भगीरथपुर गांव था।

मुझे पता था कि गांव बहुत ही अच्छा है। वहां के लोग भी सम्पन्न और मिलनसार हैं और आबादी घनी है। लेकिन इस वक्त यहां से गांव की कोई चीज दिखलायी नहीं दे रही थी।

घाट पार करने के बाद गांव की ओर जाने वाली पगडण्डी का रेतीला आभास थोड़ी ही दूर जंगल के घने अन्धकार में जाकर कहीं खो सा गया था। दोनों ओर घने वृक्षों की अनन्त श्रृंखला थी। किन्तु उन वृक्षों की शाखा और लताओं ने ही मानों अपने पीछे उस गांव को छिपा लिया हो। रोशनी की एक रेखा तक दिखलायी नहीं दे रही थी। जब उस पार की ऐसी हालत थी तो इस पार का अंदाजा लगाना और भी कठिन था। जहां तक मुझे पता था बस सीधे इसी घाट के किनारे तक आती है। सारे यात्री भगीरथपुर चले जाते हैं। मेरा भी यही लक्ष्य था।

उस दिन ऐसा कोई यात्री नहीं उतरा था जिसे इस पार कहीं जाना हो। पार आने जाने के लिए एक ही नाव थी किन्तु आखिरी बस जाने के बाद से उस पार से किसी की भी आने की उम्मीद नहीं थी। शायद यही सोचकर घाट का ठेकेदार बहुत पहले ही नाव को उसी पार बांध कर घर जा चुका था। बाबूजी किराया- मल्लाह की आवाज सुनकर मेरी तन्द्रा भंग हुई और साथ ही साथ पहले से अधिक व्याकुल हो उठा। कैसा किराया। इस अंधेरी रात में यहां कहां रहूंगा। तूने तो घण्टे भर के रास्ते को तीन घण्टे लगा दिया। मैं तो मुसीबत में फंस गया। खैर जो हुआ उसे छोड़ो बस किसी तरह उस पार पहुंचा दो। दुगना किराया दूंगा। शायद उस पार ही रात बिताने की जगह मिल जाये। इस पार रह गया तो किसी जंगली जानवर का शिकार बन जाऊंगा।

उसने तपाक से बोला- वहां दोबारा नहीं जाऊंगा। मैंने पूछा- क्यों? मल्लाह बोला- बाबूजी यहां का ठेकेदार काफी खराब आदमी है। उसी के अनुसार हम लोगों को चलना पड़ता है। अगर दोबारा गया तो मेरी नौकरी गयी समझो। मैंने काफी समझाने की कोशिश की लेकिन वह तो टस से मस नहीं हुआ।

उस समय मुझे काफी क्रोध आया तब मैं क्रोध में बोला- अगर तुम उस पार नहीं जाओगे तो नाव किनारे बांध। आज रात तुम्हारी नाव पर ही रात बिताऊंगा। बाबूजी मैं यहां नहीं रह सकता इतना कहते ही उसने नाव की दाड़ से नाव को एक झटके के साथ ढकेला और नाव को किनारे से दूर हटा ले गया और बोला बाबूजी

पैसा फेंक दीजिए। मुझे उस मल्लाह पर इतना गुस्सा आ रहा था जितना शायद जीवन में कभी भी नहीं आया था। खैर, असहाय उसे देखता रहा। उसके बार-बार चिल्लाने पर पैसा फेंक दिया जो कि उसके नाव पर ही गिरा और एक पल में ही वह अन्धेरे में क़हीं विलीन हो गया। मैं रह गया नितान्त अकेला। नजर दौड़ायी दूर-दूर तक कहीं कोई व्यक्ति नहीं दिखा। अन्धेरी रात होने पर वातावरण और भी भयानक लग रहा था। उस पार के रहस्यमय घने जंगल की कालिमा मानो सामने नदी के अतल जल में घनीभूत हो गयी हो। इस पार भी विकराल दैत्यों की तरह मेरे चारो ओर खड़े वृक्ष मानो डरावने अन्धकार का विस्तार कर जमीन ही नहीं आकाश तक को अपने शिकंजे में जकड़ लिया था।

बस जिस जगह रूकती थीं वहीं पर थोड़ी सी खुली जमीन थी। वह तो जैसे और भी भयानक लग रही थी। जैसे कोई बड़ा सा अजगर कुण्डली मार कर बैठा हो। तभी फड़फड़ाते हुए कोई पक्षी उड़ गया और सूखे पत्तों के बीच से सांप की सरसराहट सुनायी पड़ी। आवाज धीमी होते हुए भी स्पष्ट थी। मेरी हालत तो और भी खराब हो रही थी। पता नहीं बिना सोचे समझे क्यों चला आया यहां। अच्छा खासा कलकत्ता में रह रहा था, मति मारी गयी थी। मुझे यह सब सोचकर अपने ऊपर ही गुस्सा आ रहा था। पर करता क्या, गलती तो हो चुकी थी। बस अपना मन कड़ा कर माँ का स्मरण करने लगा। पैर भी थक गये थे खड़े-खड़े। अपने सूटकेस को जमीन पर रखकर बैठ गया और सुस्ताने लगा। आगे क्या करना है बस यही सोच विचार कर रहा था।

तारों की फीकी रोशनी में इधर-उधर देखने का प्रयास कर रहा था। मैं हर वक्त एक टार्च रखता था लेकिन संजोग से वह भी मेरे पास नहीं था। उस वक्त बड़ी ही मुश्किल से कलाई घड़ी को देखा। अन्दाजा लगाया शायद रात का नौ बज रहा था। ख्याल आया कि कलकत्ते में तो अभी शाम शुरू हुई होगी लेकिन यहां ऐसा लग रहा था जैसे कि आधी रात का सन्नाटा छा गया हो। अभी भी मुझे लम्बे समय तक प्रतिक्षा करनी पड़ेगी। न जाने कितने घण्टे बाद जाकर सुबह होगी। ठेकेदार की जब नींद टूटेगी तब नाव इस पार सवारी लेकर आयेगा तब जाकर मुझे कहीं आदमियों के चेहरे देखने को मिलेंगे। एक बस सुबह आठ बजे आती है जो शाम की बस है वह पास के किसी गांव में खड़ी रहती है। सुबह सात बजे फिर यहां आकर खड़ी होगी। यानि अभी बारह घण्टे और हैं। मन ही मन सोचने लगा कि अगर पैदल ही चल पड़े तो कैसा रहेगा? बस वाली सड़क पकड़ कर चलते-चलते शायद किसी निकट के गांव

में पहुंच सकता हूँ। दूसरा ख्याल भी आने लगा। यदि मुझे कोई रात भर के लिए जगह देने को तैयार न हुआ तो? दोनों ओर घना जंगल भी तो है। कहीं कोई हिंसक जानवर न मेरे ऊपर टूट पड़े। मुर्शिदाबाद में अक्सर जंगली जानवरों के आक्रमण का समाचार मिलता रहता है। तब मैंने सोचा दस-ग्यारह घण्टे की बात है कोई जरूरत नहीं है। किसी तरह कट ही जायेगा। फिर मैंने वहीं रूकने का विचार बनाया। तभी पीछे से एक आवाज उभरती है उस सन्नाटे को चीरते हुए- कहिए जनाब बस छूट गयी है शायद आपकी। लगता है कि आपको कहीं ठहरने की जगह नहीं मिली आपको। मैं एक हल्की सी चींख के साथ चौंक पड़ा या कहिए आतंकित हो उठा। कब कैसे कौन चुपचाप आकर खड़ा हो गया मुझे तो इसका बिल्कुल पता ही नहीं चल पाया। कुछ क्षण तो मैं भय से ठिठक कर बैठा रहा। मेरी हिम्मत उस समय नहीं हो रही थी कि मैं गर्दन घुमा कर एक बार पीछे की ओर देख सकूं। वह रहस्यमय व्यक्ति ठीक मेरे पीछे ही आकर खड़ा हो गया था। उसने इतनी तेजी से इतने सारे प्रश्न कर डाले कि उसका जवाब देते नहीं बना मुझे।

आखिर मैंने हिम्मत जुटा कर पीछे घूम कर देखा। एक पतला दुबला, मध्यम कद, गेहुंए रंग का आदमी था। जिसके उलझे बिखरे बाल, घनी दाढ़ी उस अन्धेरे में भी साफ दिख रही थी और कमर में एक लाल रंग की छोटी सी धोती जो घुटने तक थी। फिर उसने बोला- जनाब मैं आप ही से पूछ रहा हूँ। शायद रात बिताने के लिए कोई जगह नहीं मिल रही है। यही बात है न। अगर आपको कोई आपत्ति न हो तो पास ही में मेरी छोटी सी झोपड़ी है चाहें तो आप अपनी रात वहीं काट सकते हैं। इस खुले स्थान में तो काफी खतरा है।

उसके प्रश्न के उत्तर देने से पहले यही सोच रहा था कि इतनी भयानक आकृति वाला व्यक्ति कहीं पागल तो नहीं है। इसकी बात मानकर कहीं कोई और नयी मुसीबत न खड़ी हो जाये।

क्या सोच रहें हैं चलेंगे?

आप....यहां..... मतलब....मेरी जबान जैसे तालू से चिपक गयी हो। जैसे आवाज फंस गयी हो बस हकला कर रह गया मैं।

मेरी यहीं पर झोपड़ी है देखिये वह रही कह कर उस रहस्यमय पागल जैसे व्यक्ति ने उंगली उठा कर ईशारा किया। वास्तव में सामने एक झोपड़ी दिखलायी पड़ रही थी। इस जगह पर प्रायः घासफूस की जैसी ही झोपड़ी हुआ करती है ठीक वैसी ही है। लेकिन आश्चर्य की बात तो यह है कि अभी तक तो उसे देखा नहीं था। उस

पर तो पहले ही नजर पड़नी चाहिए थी मेरी। ऐसा कैसे हो गया। खैर, अपने दिमाग पर ज्यादा जोर न्हीं दिया। शायद वह व्यक्ति मेरे मनोभाव को ताड़ गया। उसने हँसते हुए बोला- झोपड़ी में रोशनी नहीं है इसलिए अन्धेरे में आपको पता नहीं चला होगा। मैं भी झोपड़ी में नहीं था। नदी के किनारे जरा टहलने निकल पड़ा था। मुझे अन्धेरे में घूमना बड़ा अच्छा लगता है। बड़ा ही आनन्द आता है। अपार शान्ति का करता हूँ अनुभव।

मैंने पूछा- क्या यहां जंगली जानवर नहीं आते? आते क्यों नहीं है पर मुझे डर नहीं लगता। मैं मरने से नहीं डरता और जरा आप ही बतलायें कि डरने से भला क्या लाभ। एक न एक दिन तो सभी को मरना है। मैंने सोचा यह आदमी तो पागल नहीं समझदार लगता है। थोड़ी हिम्मत आयी। चलो एक से भले दो तो होंगे। इसी से बातें करके रात काट लेंगे।

आईये चलें। झोपड़ी में बैठ कर आराम से बातचीत करेंगे। बरसों हो गये किसी से बात किये हुए।

इसका क्या मतलब- मैंने पूछा।

रहस्यमयी हँसी के साथ बोला- मैं यहां साधना करता हूँ दिन भर साधना चलती है। बस रात में निकलता हूँ। जब मैं निकलता हूँ तो चारो तरफ सन्नाटा रहता है। कोई मिलता ही नहीं किससे बातें करूं। अभी-अभी आप पर नजर पड़ी मैंने सोचा चलो कोई तो मिला बात करने वाला। आईये जनाब चलते हैं- इतना कह कर वह आगे-आगे चलने लगा और मैं भी यंत्रवत् उसके पीछे-पीछे लगा चलने। वह अनवरत बस बोलता जा रहा था। जब मैं झोपड़ी के पास पहुंचा तो देखा झोपड़ी के अगल-बगल दो छोटे-छोटे कमरे थे। सामने की ओर छोटा सा बरामदा था। भीतर की ओर और क्या था मैं देख नहीं सका।

लेकिन बरामदा खूब साफ सुथरा था। वह आगे का रास्ता दिखलाता हुआ बारामदे तक पहुंचा तो झट से बोला- जनाब जरा रूकें अन्दर दिया जला दूं। इतना कह कर मुझे बरामदे में ही छोड़ कर दरवाजा खोल कर भीतर जा घुसा।

धक्का देते ही दरवाजा एक अजीब सी आवाज करते खुल गया। भीतर घुस कर आश्चर्यजनक ढंग से उसने जल्दी से एक दिया जलाते हुए कहा- आईए भीतर आईए। कमरे में कोई विशेष सामान नहीं था। एक कोने में माँ काली का फोटो, सामने कुछ तंत्र मंत्र सम्बन्धित सामान बिखरा था। एक कोने में तख्त पर मैली सी चटाई बिछी हुई थी लेकिन कमरे में अजीब सा माहौल था। सारा कमरा रहस्यमय लग रहा था। एक बार तो मन हुआ बाहर निकल जायें लेकिन बाहर जाकर क्या करता। यहां

तो कम से कम सुरक्षित तो था। लेकिन उस व्यक्ति के हाव भाव पर ध्यान रखे रहा और था सतर्क। सामने दीवाल पर एक दो पुराने कपड़े पड़े थे लाल रंग के शायद उस व्यक्ति के साधना पूजा के होंगे। फोटो पर माला सूख चुकी थी। पूजा पाठ के सामान बिखरे पड़े थे। एक कोने में मिट्टी का घड़ा रखा हुआ था ऐसा लग रहा था अभी-अभी भर कर रख गया हो। एक कोने में मिट्टी का दीपक जल रहा था। पीली मन्द रोशनी कमरे के वातावरण को और भी रहस्यमय बना रही थी। जब उस व्यक्ति का चेहरा देखा उस पीली रोशनी में तो वह और भी भयानक लग रहा था। उलझे बाल, काली दाढ़ी जो उसके गले तक फैली थी, वही लाल धोती आधा पहने और आध लपेटे हुए, आंखे गूलर की तरह लाल धंसी हुई, उन काली दाढ़ी के बीच सफेद दांत कभी-कभी दिख जाते जब वह बोलता। उसने जरा गम्भीर होकर बोला- बैठिये जनांब बस यही चौकी है ईशारा किया उस ओर।

फिर कुछ देर चुपचाप खड़े रहने के बाद मैं चौकी पर बैठ गया। शरीर को थोड़ा आराम मिला। फिर वह व्यक्ति दोनों हाथों को रगड़ते हुए और रहस्यमय तरीके से मुस्कुराते हुए कहा- मेरे पास बढ़िया बिस्तर नहीं है। आपको अपने ही सूटकेश को सिरहाने लगा कर सोना पड़ेगा। आपके खाने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है क्या आप शराब पीते हैं? वहीं सामने पड़ा है। मैंने नजर घुमा कर देखा तो जहां पूजां-पाठ का सामान पड़ा था उसी के पास देशी शराब की आधी बोतल खाली पड़ी थी। उस पर धूल पड़ी थी। मैंने कहा नहीं मैं नहीं पीता। शायद मेरी बात उसे अच्छी नहीं लगी। मैंने तुरन्त कहा- आपको परेशान होने की जरूरत नहीं, जगह मिल गयी रात गुजारने के लिए यही मेरे लिए बहुत है।

बिल्कुल ठीक कहा आपने। चलिए कम से कम जंगली जानवरों से तो आप सुरक्षित हैं। वैसे जगह आपको अच्छी मिल गयी है कमरा कोई खास बुरा नहीं है। कहिए क्या ख्याल है आपका। यह कह कर वह हँस पड़ा और चमचमाते हुए सफेद दांत काली दाढ़ी के बीच से झिलमिला उठे।

मुझे उसके हाव भाव कुछ पसन्द नहीं आ रहे थे। मन ही मन फिर वही शंका उठ खड़ी हुई। कहीं मैं किसी पागल साधु के चंगुल में तो नहीं फंस गया।

आप यहां क्या करते हैं- मैंने पूछा।

फिलहाल तो कुछ भी नहीं, हाँ कुछ वर्षों तक साधना आदि किया। अब आराम करता हूँ। बीच में बात को काटते हुए उसने कहा- अच्छा आप बैठिए मैं अभी आया। तब तक आप हाथ मुंह धो लें। इतना कहते वह बिजली की तरह बाहर निकल गया। मैं स्तब्ध बैठा रहा। एक अजीब से घुटन भरी बैचेनी का कर रहा था अनुभव। उस

पल मेरे सामने एक के बाद एक कई प्रश्न उभरते जा रहे थे मेरे मानसपटल पर। यह आदमी अकेले क्यों रहता है? यहां क्या करता है? कमरे खाने की कोई चीज नहीं फिर वह खाता क्या है। कहीं यह चोर डाकू तो नहीं। अनजान राहगीर को लाकर लूटता होगा या मार देता होगा। ऐसे कई प्रश्न मन को भयभीत कर दे रहे थे उस समय।

वह आदमी कब मेरे सामने आकर खड़ा हो गया मुझे पता ही नहीं चला क्योंकि मैं तो खुले हुए दरवाजे की ओर देख रहा था लेकिन घोर आश्चर्य लग रहा था मुझे कि यह कहां से आया होगा। एक झटके साथ बोला- अभी ही सो जायेंगे क्या आप। उसकी आवाज ने मेरी तन्द्रा और विचार को एक झटके के साथ तोड़ दिया। अगर नींद आ रही है तो कोई बात नहीं। कई दिनों से कोई व्यक्ति मिला नहीं यदि आप इजाजत दें तो एक दो बातें करके मन का हल्का कर लूं। वैसे इधर कोई आदमी भी नहीं रहता और कोई आता भी नहीं। बस मैं अपनी बात सुनाना चाहता हूँ और सदा के लिए चला जाना चाहता हूँ। अगर आप मेरी बात सुन लेंगे तो मुझे काफी राहत मिलेगी। एक श्वांस से उसने अपनी इतनी सारी बातें कर डालीं। मरता क्या न करता उस व्यक्ति के हाव भाव पहले ही अजीब लग रहे थे और डर के कारण मैं सोना भी नहीं चाह रहा था। मैंने सोचा चलो इस पागल की कथा ही सुन ली जाये। समय भी कट जायेगा और जैसे ही उजाला होगा यहां से भाग जाऊंगा।

मैंने उसे उलझाते हुए पिछली बातचीत का सिलसिला जारी रखा और पूछा कि आप इस भयानक और सुनसान जगह पर झोपड़ी बना कर क्यों रह रहे हैं? उसके चेहरे पर फिर वही रहस्यमयी हँसी खिल गयी वही नीरव हँसी।

डरिये मत। मैं कोई चोर-डाकू नहीं हूँ और न ही कोई पागल। मेरे कमरे में कोई चीज इसलिए नहीं कि अब मुझे कोई चीज की जरूरत ही नहीं पड़ती। न मुझे गर्मी लगती और न ठंड। दिन भर तो यहां रहता हूँ और जब कोलाहल शान्त हो जाता है तो नदी किनारे घूमने निकल जाता हूँ। बड़ी शान्ति मिलती है। शान्त वातावरण में रात में कोई व्यक्ति नहीं मिलता जिससे मैं कुछ पल बात कर सकूं और सुना सकूं अपनी कहानी। खैर, छोड़िये आप जानना चाहते हैं तो सुनिये।

मैं एक तंत्र साधक हूँ। यहां आया था शव साधना करने। जगह मेरे लिए अनुकूल थी। सोचा अपनी अधूरी साधना पूर्ण कर लूंगा लेकिन एक ऐसी घटना घटी कि मेरे जीवन कर दिया स्वतंत्र और आज मैं पूर्णरूप से स्वतंत्र हूँ। पूर्ण स्वतंत्र यह कह कर वह साधक बड़ी ही जोर से हँसा। एकबारगी तो मेरा मन घबड़ा ही गया

उसकी बातें सुन कर।

आप संन्यासी हैं? मैंने अविश्वास के साथ कहा।

नहीं संन्यासी से मेरा तात्पर्य दीक्षित संन्यासी से नहीं है फिर भी मैं साधक जरूर हूँ- इतना कहकर वह निर्विकार भाव से पाल्थी मारकर जमीन पर आराम से बैठ गया। कुछ देर तो वह चुप रहा फिर पता नहीं क्या सोचते हुए उसने बोलना शुरू किया। तो फिर मैं आपसे सब कुछ कह डालूं। आज तक मैंने अपनी बात किसी को नहीं बतायी और आज तक किसी से कुछ कहने का अवसर भी नहीं मिला। चलिए आपको सुनाता हूँ अपनी कथा। मन भी हल्का हो जायेगा जो बरसों से एक बोझ की तरह मेरी आत्मा पर है उससे भी मुक्त हो जाऊंगा।

मैं बचपन से ही तरह-तरह के पुस्तकों का पढ़ने का शौक रखता था। खासकर तंत्र-मंत्र से सम्बन्धित तांत्रिक संन्यासियों की अद्भुत क्षमताओं की कहानियां। पढ़ते-पढ़ते मेरा भी झुकाव उस ओर होने लगा सोचा कि एक दिन मैं भी वैसी ही साधना करके सिद्धी प्राप्त करूंगा। फिर बहुत सारा पैसा ऐशो आराम और खूब प्रसिद्धी भी मिलेगी। उस समय जब सब कुछ मेरे पास होगा तो मेरी बराबरी कौन कर सकता है।

कुछ उदास होते हुए वह साधक बोला- उस समय मुझे क्या पता था कि भोग की लालसा से साधना के चक्कर में सिद्धी मिलना तो दूर धीरे-धीरे अपना सब कुछ गवां देना पड़ेगा। इतना कह कर उसने निराशाभरी एक लम्बी श्वांस ली और शायद अतीत के उस पल में खो गया। मेरी उत्सुकता बढ़ने लगी धीरे-धीरे मैं भी आगे की बात जानने के लिए इन्तजार करने लगा। उस आदमी के हाव भाव और बातचीत से प्रतीत हो रहा था कि वह जो कह रहा है वह सत्य ही कह रहा था।

उसने आगे कहना शुरू किया- बाबूजी मेरा घर इधर नहीं है। पांचभूपी के पास गांव में मेरा मकान है। स्कूल की पढ़ाई में मेरा मन नहीं लगता था। स्कूली किताबों की जगह मैं तंत्र-मंत्र से सम्बन्धित किताबें पढ़ता था। धीरे-धीरे मेरी रूचि और बढ़ गयी और अब मैं गुरु बनाने के बारे में सोचने लगा। इस मार्ग में बिना गुरु के कैसे सफलता मिलेगी। पास में ही एक मंदिर था वहां गया एक बाबा रहते थे। लेकिन मेरा विश्वास उन पर नहीं था। केवल भजन कीर्तन करते रहते थे उन्हे इन सब चीजों से कोई लेना देना नहीं था। मेरा मन हर समय बेचैन रहने लगा। घर में माता-पिता थे बड़ा भाई था काफी जमीन जायदाद थी लेकिन मेरा कोई लेना देना नहीं था। मैं तो अपने ही धुन में खोया रहता था। कभी घर में डांट पड़ती तो सुन लेता। जब थक

हार कर आता तो दो रोटी खाकर चुपचाप सो जाता। कहीं मेरा मन ही न लगता बस तंत्र-मंत्र का ऐसा भूत सवार हुआ कि उतरने का नाम ही नहीं ले रहा था। बाबूजी एक दिन क्या हुआ कि सुबह-सुबह एक दो कपड़े लिए और घर से कुछ पैसे लेकर गुरु की तलाश में निकल पड़ा। उस समय मेरी उम्र चौबीस-पच्चीस के लगभग थी। वक्रेश्वर के श्मशान के बारे में काफी कुछ सुन रखा था। वहां काफी सिद्ध संन्यासी रहते हैं। जल्दी ही किसी को अपना शिष्य नहीं बनाते। अगर खुश हो गये तो जीवन ही बदल जायेगा। बस फिर क्या था वक्रेश्वर की ओर चल पड़ा। जब वक्रेश्वर पहुंचा तो थका था और था भूखा। सबसे पहले मैं हाथ पैर धोकर माँ जगज्जननी का दर्शन किया। सफलता के लिए कामना भी की लेकिन मेरी कामना तो स्वार्थवश थी माँ कहां सुनती। उस समय तो इन सब बातों का ख्याल ही नहीं आया।

बाहर निकला तो पास में ही किसी मारवाड़ी बन्धू ने साधु संन्यासी के लिए भण्डारा चला रखा था। वहीं जाकर खाना खाया और पास के पेड़ के नीचे आराम करने लगा। पता नहीं कैसे नींद आ गयी और जब नींद खुली तो देखा हो हल्ला हो रहा था। एक मोटे से बाबा ने जटाजूटधारी लाल लुंगी पहने, बहुत सारे रूद्राक्ष की माला से उनका ऊपर का शरीर ढका था। देखने में सिद्ध साधक लग रहे थे। अपने किसी भक्त को डांट रहे थे। उन्ही की आवाज से मेरी नींद खुल गयी। पास में खड़े एक आदमी से पूछा बाबा के बारे में। वह बोला बाबा सिद्ध साधक हैं और हैं बड़े चमत्कारी। गुस्से वाले भी हैं इनसे दूर ही रहना। इतना सुनते ही मेरे मन की मुराद जैसे पूरी हो गयी। सोचा बाबा चाहे जितना भी मारे पीटे अब इन्ही के शरण में रहना है और सिद्धी प्राप्त करनी है किसी भी तरह से। एक दो दिन बस उनके आस पास ही रहा बस समय का इन्तजार कर रहा था बाबा कब प्रसन्न रहते हैं या उनका दिमाग कब शान्त रहता हैं यही सब देखता रहता। हिम्मत कर एक दिन बाबा के पास पहुंचा। जैसे ही पैर छूकर कुछ कहना चाहा तभी बाबा ने मेरी ओर देखा लगा जैसे चिता की लपट निकल रही हो। बोले- भाग यहां से स्वार्थवश आया है साधना करने। श्मशान की लकड़ी उठाकर दो तीन लकड़ी से मार दिया। लेकिन मैं भी टस से मस नहीं हुआ। बस बोला बाबा आपके शरण में आया हूँ। आप चाहे जो करें मैं आपको छोड़ कर नहीं जाऊंगा। बाबा गुस्से में बोले तू नहीं हटेगा ले तो मैं ही चला जा रहा हूँ। बस बाबा उठे और चले गये। पता ही नहीं चला दो तीन दिन तक खोजता रहा।

एक दिन दिख ही गये। मंदिर के पास जब पहुंचा तो मेरी ओर उन्होने देखा और कुछ बोले नहीं। फिर कुछ देर बाद बोले- सुना तेरी समस्या क्या है? मैंने अपनी सारी समस्या सुना दी। उन्होने ध्यान से मेरी बातें सुनीं। उसके बाद डांटते हुए बोले-

यदि भला चाहता है तो तंत्र-मंत्र के चक्कर में मत पड़। दो अंगुल की छाती लेकर चला है साधना करने। यह तेरे वश की बात नहीं हैं। समझा! जान से हाथ धो बैठेगा। मैं तेरे मन की बात जानता हूँ। जो लोग भोग की लालसा से साधना करते हैं उनका लोक परलोक दोनो गये बच्चे। समझ में आया तेरे को कुछ या फिर कायदे से समझाऊं। मैं चुप रहा और बाबा अपने जिद पर अड़े थे वे मुझे भगाना चाहते थे या मेरे अन्दर साधक बनने की योग्यता नहीं थी। शायद यह वो जानते थे। काश उस दिन बाबा की बात मान लेता तो आज मेरी इतनी दुर्गति नहीं होती। इतना कह कर वह आदमी कुछ पल के लिए उदास हो गया और आंखों से बरबस आंसू छलक आये। बड़ी दया आयी मुझे लेकिन मैं शान्त रहा। बस उसकी ओर देखता रहा। आगे बोला- मैंने भी हार नहीं मानी पीछे लगा रहा लेकिन सफलता नहीं मिली।

एक दिन निराश भाव से श्मशान के नजदीक एक पीपल के पेड़ के नीचे बैठा था। तभी एक भयानक संन्यासी बड़े-बड़े घने बाल और दाढ़ी, लाल रंग का कुर्ता और लुंगी पहने, हाथ में बड़ा सा पीतल का त्रिशूल लिए बगल में बैठ गया। जब मेरी नजर उस पड़ी तो एकबारगी घबड़ा सा गया लेकिन उस संन्यासी के हाव भाव से लग रहा था कि वह सिद्ध संन्यासी और ज्ञानी भी है। मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए वह बोला-तुम क्यों परेशान हो रहे हो। बाबा साधक हैं वो अपनी साधना में लगे रहते हैं किसी से उनका कोई लेना देना नहीं रहता तुम बेकार में अपना समय नष्ट कर रहे हो। यहां बहुत से लोग आये बाबा का शिष्य बनने लेकिन बाबा ने सबको भगा दिया। तुम्हे यदि सीखना है तो चलो नौहाटी के पास मेरी कुटिया है। तब मैंने अपनी सारी कथा उस संन्यासी को सुना डाली। वह बोला- बस इतनी सी बात है कुछ चीजें बतला देता हूँ सिद्ध कर लो। जाओ खाओ और कमाओ। बस मेरे मन की मुराद पूरी होने की आशा मन में जाग गयी। बाबा का पीछा छोड़कर उस संन्यासी के साथ नौहाटी चला आया। जब उसकी कुटिया में पहुंचा तो देख कर दंग रह गया। माँ काली की पत्थर की छोटी सी प्रतिमा, सामने नर कपाल में मदिरा भरी थी। एक कोने में तंत्र-मंत्र की पुस्तकें, फूल माला, मानव हाथ के अंगुली की माला एक प्रकार से सम्मोहित सा हो गया बस बाबा की सेवा में लग गया।

बाबा ने छोटी मोटी तंत्र की सिद्धियों के बारे में बतलाया और अभ्यास भी कराया। लेकिन सन्तुष्टि नहीं हो पा रही थी। मैं तो ऐसी सिद्धी चाहता था जिससे सारे सुख वैभव मिल सकें। बाबा मेरे मनोभाव को समझ गये। बोले- जितना मैंने तुम्हे सिखलाया है उससे तुम्हारा काम चल सकता है लेकिन जो तुम चाह रहे हो वह बड़ी

ही विकट। वह है शव सिद्धि। शव सिद्धि मतलब पिशाच सिद्धि। पहले श्मशान साधना करना होगा। दो अमावस्या तक उसके बाद तीसरे अमावस्या को करना होगा शव साधना। शव साधना पूर्ण होते ही पिशाच सामने खड़ा होगा। बस तुम डरना मत। जब वह सिद्ध हो जायेगा। तब तुम जब भी एक नींबू की बलि दोगे और कपाल खप्पर में मदिरा चढ़ाओगे तुम जो चाहोगे तुम्हारी इच्छा पूर्ण कर देगा। लेकिन इस साधना में धैर्य, अपार हिम्मत और एकान्त चाहिए। मैं मंत्र बतला देता हूँ जा कर। लेकिन स्थान देख कर करना। बस मैं इतनी ही सहायता कर सकता हूँ आगे का रास्ता तुम्हे अकेले ही तय करना है।

उस समय मैं उस संन्यासी का मतलब नहीं समझा। इतनी विकट साधना बतलाने के पीछे उसका क्या मकसद था और आज तक पता नहीं चला।

खैर, मेरे अन्दर उतावलापन था। सारी विधि और मंत्र लिख कर एक दिन मैं वहां से भाग निकला। मेरा काम जो हो गया था। अब उस संन्यासी से मेरा क्या लेना देना। बाबूजी मैं बस एक के बाद एक भूल करता ही जा रहा था। तंत्र साधना को एक साधना न समझ कर अपने स्वार्थ पूर्ति का साधन बनाना चाहता था। वही एक गलती ने मुझे आज तक पन्द्रह साल से भटकने को कर दिया मजबूर। जहां आप बैठे हैं उसी के आगे श्मशान है। इस गांव में आया, जगह पसन्द आयी। साधना के अनुकूल स्थान मिल गया जैसा कि मैं चाहता था। धीरे से श्मशान के पास अपनी एक कुटिया बना ली गांव वालों पर प्रभाव डालने के लिए। कभी-कभी झाड़ फूक कर देता जिससे किसी को शक न हो मेरे ऊपर। गांव पर अच्छा खासा प्रभाव पड़ चुका था। वे लोग मेरे क्रियाकलाप पर ध्यान नहीं देते थे। बस यही तो मैं चाहता था। बस फिर क्या था बाबूजी अपने काम में लग गया। सारा सामान इक्ट्ठा किया। दो अमावस्या तक श्मशान साधना की। उस संन्यासी द्वारा बतलाये मंत्र का जप करता रहा और विधि विधान से बलि भी कर देता। तीसरी अमावस्या आने वाली थी। कपाल पात्र का भी इन्तजाम करना था। एक खोपड़ी मिल गयी उसे तोड़ कर कपाल पात्र बना लिया। मदिरा की व्यवस्था कर चुक था। मदिरा मुझे रोज पीनी पड़ती थी। उससे यही फायदा होता था कि मन एकाग्र हो जाता और डर इत्यादि नहीं लगता था। क्योंकि मेरी साधना रात में होती थी और दिन में अपनी झोपड़ी में रहता था। रात्रि में मेरे अलावा श्मशान में दो चार कुत्ते ही रहते थे वे भी अभ्यस्त हो चुके थे। मेरी ओर ध्यान नहीं देते। मैं जब भी श्मशान में आता वे सब भूकते-वूकते नहीं बस एक बार मेरी ओर देख कर सो जाते। सबसे बड़ी समस्या थी शव का इन्तजाम करना। संयोगवश

सांयकाल का समय था। वैसे एक बात बतला दूं कि मैं रोज नदी के किनारे जाता था लाश के लिए। संजोग से एक दिन सफलता मिल गयी। एक दस से बारह वर्ष के बालक की लाश बहते हुए मिल गयी। शायद सांप काटा होगा। सांप काटने से जिसकी मृत्यु हो जाती है उसे यहां के लोग नदी में बहा देते हैं। बस मेरा काम हो गया। उसे निकाल कर मैं पास की झाड़ी में छिपा दिया। रात हुई चारो तरफ शान्ति थी उस बालक का शव लेकर अपने झोपड़ी में ले आया और छिपा दिया चौकी के नीचे। जब वह बोला चौकी के नीचे शव को छिपा दिया तो मेरे रोंगटे खड़े हो गये। उसकी भयानक और दिलचस्प कथा सुनकर एक तरफ तो मुझे डर लग रहा था और दूसरी तरफ रोमांच भी हो रहा था और साथ में आगे की कथा जानने की जिज्ञासा भी। उसकी आवाज गूंजी कहां खो गये बाबूजी। मैंने कहा ऐसी कोई बात नहीं। हाँ अपनी कथा आगे सुनाओ। उसने कथा आगे सुनानी शुरू की। साधना तो निर्विघ्न चल रही थी मेरी। उत्सुकता तो केवल पिशाच सिद्धि की थी। दो दिन बाद अमावस्या थी। सब सामान इक्ट्ठा कर शुरू कर दिया। उस बालक के मृत शरीर में इत्र और तेल लगा दिया कहीं बदबू न पैदा हो जाये।

अमावस्या की रात में बोतल बगल में रख दिया कहीं मदिरा घट न जाये। चना और कपाल पात्र में मदिरा डाल कर रख दिया और माँ काली की निशा पूजा कर अपने साधना में लग गया। चारो तरफ सन्नाटा पसरा था। किसी भी आदमी की आवाज दूर-दूर तक से नहीं आ रही थी। बाबूजी जहां आप बैठे हैं बस यहीं श्मशान की तरफ मुख कर उस बालक के शरीर का पूजन किया और उसके सिर पर लाल टीका लगाया, लाल माला पहनायी। उसे देखकर एक भय तो हुआ। पहली बार जो शव साधना करने जा रहा था वह भी नितान्त अकेले। अगर किसी कारण वश किसी को बुलाता भी तो कोई आता नहीं। क्योंकि मेरी झोपड़ी गांव से काफी दूर थी।

लेकिन बाबूजी आप विश्वास नहीं करेंगे एक के बाद एक विघ्न पड़ने लगे। पहले तो माँ का दीपक बुझ गया फिर जलाया जो इस समय भी जल रहा है आपके सामने। यही दीपक था। फिर जैसे ही मैंने मंत्र पढ़ कर उस शव के मुख में मदिरा डाली कपाल पात्र ही हाथ से छूट गया। किसी प्रकार फिर से मदिरा भर कर डाला मुख में और स्वयं भी पीना था मंत्र पढ़ते जाना था। पहले शव को मदिरा चढ़ाता और भीगा हुआ चना डालता और स्वयं वही काम करता। शव और शरीर को एकाकार करना था। जल्दीबाजी में एक और गल्ती हो गयी। मैं जमीन और अपने शरीर के रक्षा हेतु बांधने की क्रिया उस समय भूल गया। मंत्र तो याद था लेकिन जल्दीबाजी कर दी।

क्योंकि उस क्रिया को पहले करना था जो नहीं किया।

एक गहरी श्वांस लेते हुए वह बोला- पता नहीं क्यों एक बार तो मन किया कि साधना न करूं खतरा है। मेरी आत्मा और मेरा मन बार-बार किसी अनजान खतरे से अगाह कर रहे थे। लेकिन मेरी लालच उन सबके ऊपर हो गयी। बस यही सोच कर तीन महीने से यहां तपस्या कर रहा हूँ जब सही समय आयेगा तब करूंगा। यह विचार मन में आते लेकिन मदिरा के प्रभाव से मैंने अपने मन का कड़ा किया और पुनः उस क्रिया में लग गया। मैं अनजाने में कुछ सरक कर बैठ गया और बोला आप किस तरह के विघ्न की चर्चा कर रहे थे। वह कुछ नहीं बोला कहीं आप डर तो नहीं गये थे। उसकी बातों में मैं इतना मशगूल हो गया था कि न समय का आभास रहा न उस अनजान स्थान का। मैंने सुना है कि इस तरह की साधना में तरह-तरह की आवाजें आकृति आकर डराते हैं साधक को। ताकि साधक डर कर साधना बीच में ही छोड़ दे। वास्तव में यह सब होता है। आपको भी तो यह सब बात मालुम रही होगी फिर आपके अन्दर क्यों भय उत्पन्न होने लगा।

वह आदमी फिर हँसा पड़ा। उसकी हँसी में काफी भयानकता थी। किसी बच्चे जैसी बातें करते देख कर जैसे बड़े लोग हँसते हैं कुछ उसी तरह लगा मुझे।

वह बोला- जानते तो सभी हैं किन्तु सुनी सुनायीं बात कुछ और होती है और प्रत्यक्ष अनुभव कुछ और ही होता है। अगर बाबूजी आपको प्रत्यक्ष अनुभव हुआ होता तो आप समझते। बताऊं आपको कि कैसा अनुभव हुआ मुझे। शव पर आसन लगा कर बैठ गया था। कपाल पात्र में रखी शराब को चढ़ाता और खुद मदिरापान करता जाता। डर नाम की कोई चीज होती है वह पूरी तरह भूल चुका था। ऐसा लगा जैसे हजारों की संख्या में आदमी लोग मेरी झोपड़ी के आस पास हैं। उस वक्त इसे अपना भ्रम समझ कर टाल गया। पहले तो खिलखिलाने की आवाज आने लगी फिर सब क्रमशः बढ़ता ही गया। जैसे एक दो नहीं हजारों आदमी खिलखिलाकर हँस रहे हों। कुछ तो फुसफुसा रहे थे। मानो आपके लिए ही यह हजारों आदमियों की फुसफुसाहट हो। एकाएक आपके सामने कोई ऐसी आवाजें आने लगे तो कैसा लगेगा आपको। लेकिन उस समय मैं स्थिर होकर दृढ़तापूर्वक बैठा रहा। हिला तक नहीं हाँ कभी-कभी शव जरूर हिल जाता। हाँ यह बात तो सही है कि मंत्र जपते समय मन को एकाग्र नहीं कर पा रहा था।

फिर पता है क्या हुआ बाबूजी। ऐसा लगा एक झटके में जैसे श्मशान के अन्दर से हजारों मुर्दे उठ खड़े हो गये हों। जाने कब के मरे हुए तो सभी का चेहरा इतना विभत्स लग रहा था, विकृत लग रहे थे। सभी के चेहरे पर रोग यंत्रणा की झलक

साफ दिखलायी दे रही थी। जो जिस हालत में मरे थे वे सब उसी हालत में जमीन से निकल रहे थे। किसी के हाथ कटे थे तो किसी के गले में फांसी का फंदा झूल रहा था। तो किसी को डाकुओं ने मार डाला था। वैसे ही क्षत-विक्षत या हाथ पैर टूटा हुआ। सबके चेहरे से क्रोध टपक रहा था और आंखों से आग बरस रही थी। सभी मेरी ओर उंगली दिखा दिखा कर मुझे धमकाने लगे। पापी नराधम यहां क्यों आया है? श्मशान अपवित्र करना चाहता है, भाग जा दूर हो यहां से जानता नहीं हम लोग यहां के पहरेदार हैं। भाग जा यहां से, लोभ व लालच से साधना करने आया। बड़ा आया बड़का तांत्रिक बनने लालची कहीं का। अपने भी परेशान होगा और हम शान्ति से हैं हम लोगों को भी परेशान करेगा। मन में पाप लेकर श्मशान सिद्धि चाहता है भाग जा यहां से.....।

तभी उन आत्माओं की भीड़ से एक लम्बा सा नर कंकाल सबको ढकेलेते हुए मेरे नजदीक आ गया एकदम पास और बड़े जोर से बोला। उसकी आवाज एक कुंए के अन्दर से आ रही थी। दूर हो छोड़ अपना आसन शव की ओर अपनी लम्बी और पतली उंगली से ईशारा करते हुए बोला- तू तो नरक जायेगा और इस मासूम को भी फंसायेगा। मैं बेहद डर गया था उस समय लेकिन मैं यह भी जानता था कि एक बार विचलित होते ही प्राण भी जा सकते हैं और हमेशा के लिए हो जायेगी छुट्टी इस संसार से। मैं भी पूरे जोर से चिल्ला उठा- नहीं जाऊंगा और न तो आसन से उठूंगा। बस फिर क्या था उस कंकाल ने अपनी अस्थिमय उंगलियों से मेरी गर्दन कस कर पकड़ ली। उफ कितनी भयंकर थी वह पकड़। मानो बज्र से भी ज्यादा कठोर। मैंने छूटने का भरसक प्रयास किया और पूरी ताकत लगा दी लेकिन असफल रहा। धीरे-धीरे मेरी आंखों के सामने अन्धेरा छाने लगा। मेरी श्वांस बन्द हो रही थी। छाती में असीम पीड़ा का कर रहा था अनुभव। ऐसा लगा जैसे मेरे दिमाग की नस-नस एक-एक कर फटती जा रही हो। मैं श्वांस लेने के लिए तड़पने लगा। हवा मेरे चारो ओर थी लेकिन पूरी कोशिश करने के बाद भी श्वांस नहीं ले पाया। यही नहीं सड़सी जैसी उन उंगलियों की पकड़ मेरी गर्दन पर और भी मजबूत होती गयी और चली गयी फंसती।

फिर क्या हुआ। मैंने सांस रोक कर पूछा। फिर...? पुनः वही हँसी। फिर क्या मुक्ति हो गयी। तभी से मैं यहीं घूमता रहता हूँ। न कोई काम और न तो कोई काम का झंझट मुझे इस स्थान से बहुत मोह हो गया है। छोड़ नहीं पा रहा हूँ इसे। सबसे बड़ा कष्ट तो यही है कि मुझसे बातचीत करने के लिए आदमी ही नहीं मिलता।

किसी अज्ञात आशंका से मेरी आत्मा जैसे कांप उठी। लेकिन फिर भी हिम्मत

जुटा कर पूछा- आपको मुक्ति कैसे मिली? वह रहस्यमय व्यक्ति बोला- यह तो मुझे मालुम नहीं जब मेरी आंखें खुली तो मैंने देखा कि मैं अपने ही पूर्व आसन यानि शव के पास खड़ा हूँ और मेरा शरीर एक ओर लुढ़का पड़ा था। मदिरा की आधी बोतल पड़ी थी। उसने इशारा किया बाबूजी वो देखिए अभी भी आधी मदिरा है बोतल में और जो आत्माएं मेरे आस पास थीं और नर कंकाल इन लोगों का कहीं अता पता नहीं था। शायद उनका काम पूरा हो गया था और वे अपनी-अपनी जगह में विलीन हो गये थे। बस बाबूजी यही समझिये। एक पल में सब कुछ शान्त हो गया और मैं बेहद हल्का और तनावरहित अनुभव करने लगा। सारा दर्द और सारी पीड़ा से एक झटके में मिल गयी मुक्ति।

सारी बात समझने में मुझे कुछ देर लगे। फिर भी आशंका को निर्मूल करते हुए फिर पूछा- इसका मतलब है आप उस समय मर चुके थे? क्या आप......

प्रश्न का शेष अंश मेरी चीख में बदल गया। मैं प्रश्न किससे पूछ रहा हूँ मैं तो बस अकेले ही उस कमरे में बैठा हुआ था। सभी वस्तुएं यथावत थीं। मिट्टी का दीपक जल रहा था बस सामने बैठा व्यक्ति जो अपनी कहानी सुना रहा था वह कमरे में नहीं था।

मैंने अपने आपको तसल्ली देनी चाही कि अगर वह कोई अशरीरी आत्मा होती तो रोशनी में कैसे बैठी होती। आत्मा तो प्रकाश से दूर भागती है। हो सकता है मुझे डराने के लिए मन गढ़न्त कहानी सुना रहा होगा और जैसे ही मेरी नजर घूमी वह ओझल हो गया होगा। उस समय असीम भय का होने लगा अनुभव। फिर मैंने सोचा क्यों न अन्दर से दरवाजा बन्द कर दिया जाये। बड़ी ही मुश्किल से मैं उठ कर खड़ा हुआ लगा जैसे हाथ पैर में शक्ति ही नहीं है किसी तरह उठ कर दरवाजा बन्द कर दिया भाड़ से और भीतर की ओर से सिटकनी थी तुरन्त उसे भी चढ़ा दिया। कुछ निश्चिन्तता मिली। जैसे ही मैं दरवाजा बन्द करके पलटा यह क्या सहसा दीपक एक झटके से बुझ गया। हे ईश्वर! अब तो जान की खैर नहीं। जेब में माचिश तक नहीं। सूटकेश कहां गया और चौकी किधर है वह भी ठीक से याद नहीं। चारो तरफ गहन अन्धकार और स्तब्ध नीरवता। उस शान्त और सन्नाटे में केवल मेरे श्वांस की मद्धिम आवाज सुनायी दे रही थी। किन्तु कुछ क्षण शान्त खड़े रहने के बावजूद भी मेरी मनोदशा काम नहीं कर रही थी। तभी अपने ऊपर हँसी आयी कि अभी तो दरवाजा बन्द किया है उसे खोल दें ताकि तारों की कुछ रोशनी तो अवश्य आयेगी।

कुछ देर पहले जिधर दरवाजा था हाथ बढ़ाया लेकिन यह क्या दरवाजा किधर

गया? अभी-अभी तो दरवाजा बन्द कर घूमा था और तभी दीपक बुझ गया। मैंने अन्दाज से आगे बढ़ा और सोचा छोटा सा तो कमरा है दीवाल पा जाने पर दीवाल के सहारे ही टटोलते-टटोलते दरवाजा खोज ही लूंगा। मैं डरते-डरते आगे बढ़ा यथा सम्भव चुपचाप एक-एक कदम रखता हुआ आगे बढ़ता ही जा रहा था। अरे यह क्या बीस कदम रख चुका था जहां तक मुझे याद है दस से बारह फुट का ही कमरा था लेकिन अब तक कुछ समझ में नहीं आ रहा। कमरे का ओर छोर ही पता नहीं चल रहा है। यह कैसे हुआ? न तो खिड़की का पता न तो दरवाजे का नामोनिशान। बस मैं चारो ओर चक्कर लगा रहा था अन्धेरे में।

अब धीरे-धीरे विश्वास होने लगा कि कुछ तो गड़बड़ है। गहरे निस्तब्ध वातावरण में गहन अन्धकार के अलावा कुछ भी नहीं था। मेरा शरीर पसीने से तरबतर हो गया। क्या वह व्यक्ति वास्तव में अशरीरी था? क्या मैं किसी प्रेत लीला के चक्कर में तो नहीं फंस गया। मैं विह्वल होकर सोचता रहा। असहाय एकदम असहाय......इतना कमजोर और असहाय मैं अपने जीवन में कभी भी नहीं हुआ।

बस गुरुदेव और माँ का स्मरण लगा करने। तभी लगा कोई कमरे में है। मैं सर से पांव तक सिहर उठा। हाथ पैर ठण्डे पड़ने लगे। चारो तरफ दूषित और तीव्र गरम श्वांसे मेरे शरीर से टकराने लगीं। चारो तरफ बहुत सारे लोग हैं उनकी आंखें अन्धेरे में मुझे घूर रही थी और मेरे नजदीक आती जा रही थी। एक अजीब सी सड़ान्ध कमरे के चारो तरफ फैल गया। तभी किसी का हाथ मेरे गर्दन को लगा कसने। ऐसा लगा जैसे मेरी श्वांस भीतर के भीतर और बाहर के बाहर रूक गयी हो। असीम वेदना का करने लगा अनुभव। बस एक पल में मेरे प्राण निकल जायेंगे। उस असीम वेदना का वर्णन मैं नहीं कर सकता। धीरे-धीरे मेरी चेतना शून्य होने लगी मैं उस समय अपने गुरुदेव और माँ का करने लगा स्मरण। तभी एक झटके से कोई दूर हट गया। बस इतना ही आभास रहा और मैं चेतना शून्य हो गया।

सवेरा हो गया था। मच्छर और मक्खियों का होने लगा आक्रमण। तभी बस की आवाज और लोगों के कोलाहल से मेरी तन्द्रा भंग हुई। एक पल के लिए मैंने अपने आपको देखा और चारो तरफ नजर दौड़ायी। सोचा जिन्दा हूँ या नहीं लेकिन आभा स हुआ कि जिन्दा हूँ। सूटकेश एक कोने में पड़ा था। हाँ न तो कोई चौकी थी और न ही कोई दीपक बस था तो एक टूटी फूटी काफी पुरानी झोपड़ी थी। चारो तरफ जंगली पेड़ पौधे थे। न तो दरवाजा और न ही कोई खिड़की। बस मैं एक दीवाल के सहारे एक कोने में पड़ा था। मिट्टी की वजह से मेरे कपड़े धूल से सन गये थे। काफी

कमजोरी का अनुभव हो रहा था किसी तरह सूटकेश उठाया और बाहर की ओर चल पड़ा। बस थोड़ी ही दूर पर खड़ी थी। कुछ लोग उतर रहे थे और कुछ लोग कर रहे थे चढ़ने का प्रयास। वहां कुछ स्थानीय लोगों की नजर मुझ पर पड़ी और मेरी दशा देखकर कुछ लोग आश्चर्य और कुछ लोग भय से देखने लगे। जब मैं उनके नजदीक पहुंचा तो हिम्मत करके एक व्यक्ति ने पूछा- बाबूजी आप तो यहां के नहीं लगते कहीं दूर गांव से आये हैं। मैंने कहा हां काशी से आया हूँ। कुछ काम था मुर्शिदाबाद जाना था। बस छूट गयी थी काफी अन्धेरा था तो बस यहीं झोपड़ी दिखी तो रात काटने विचार किया और नींद कब लग गयी पता ही नहीं चला। लेकिन मेरी बातों का विश्वास उन लोगों को नहीं हो रहा था। हां जो घटना घटी उसे मैंने उन लोगों से जिक्र नहीं किया।

तभी दूसरा व्यक्ति बोला- बाबूजी आप भाग्यशाली थे जो बच गये। यहां रात में कोई ठहरता नहीं, यहां तो भूतों का डेरा है।

बहुत साल पहले यहां एक अघोरी रहता था। रात दिन पता नहीं क्या करता था। अपने मग्न रहता था। किसी से कुछ लेना देना नहीं था उसको। बस अपने पूजा-पाठ में लगा रहता। जो मिलता खा लेता। किसी से बोलता चालता तक नहीं था। बस एक दिन अपने झोपड़ी में मरा मिला। बहुत सारी खून की उल्टी की थी उसने पूरे कमरे में खून ही खून फैला था और साथ में एक बालक की लाश भी थी। गांव वाले उसे उठाकर और उसके सामान को नदी में बहा दिया। पुलिस के लफड़े में कौन पड़ता।

बहुत वर्ष हो गया। आज भी वह रात यहीं आस पास ही गुजरता है। उसकी छाया दिखती है इसलिए कोई रात में यहां नहीं रहता। तभी तीसरा व्यक्ति हँसते हुए बोला- शायद उस अघोरी की आत्मा को बाबूजी पर दया आ गयी इसलिए बाबूजी बच गये।

मेरे मन की जो स्थिति थी और भयानक दृश्य से जो मैं गुजरा था इन बेचारों का क्या पता।

बस किसी तरह कलकत्ता वापस आकर एक दो दिन आराम कर सीधे बनारस वापस जाना चाहता था। बस में बैठ गया। चाय पीने की इच्छा हुई। रात भर से कुछ खाया पिया जो नहीं था। बस चाय पीकर यहां से निकलना चाहता था। जितनी जल्दी हो सके। तभी एक लड़का दस बारह साल का चाय-चाय की आवाज लगाता बस के पास पहुंचा। मैंने बस की खिडकी से चाय मांगी। चाय पीने लगा। तभी उस बालक ने आवाज दी बाबूजी पैसा..... बस छूटने वाली है..... आवाज.....कुछ जानी पहचानी सी लगी। जब पैसा निकाल कर उस बालक को देना चाहा जैसे ही मेरी नजर

उस बालक पर पड़ी तो देखा कि उसकी आंखें हूबहू उस अघोरी से मिल रही थी और आवाज भी। बस उसने एक गहरी नजरों से देखा तो मैंने तुरन्त नजरें हटा लीं। शायद मेरा भ्रम था या कुछ और। खैर, उस लड़के की व्यंगात्मक मुस्कुराहट मेरी आत्मा को एकबारगी झकझोर के रख दिया। मैं तुरन्त पैसे देकर सामने देखने लगा। फिर उस ओर देखने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था। ऐसा लग रहा था कि वह अभी भी बस के बाहर खड़ा है। बस चल चुकी थी। बस के चलते ही ठण्डी-ठण्डी हवा का एहसास हुआ। बस कब नींद आ गयी पता ही नहीं चला।

बाबूजी उतरिये बसअड्डा आ गया। जब सुरेका के निवास पर पहुंचा। शायद वे बाहर निकल रहे थे। मेरी मुलाकात दरवाजे पर ही हो गयी। मुझे देख कर बोले शर्माजी लगता है रात भर बस में लग गया। मैं उनसे क्या बोलता हाँ कह कर अपने कमरे में चला गया। जब स्नान करने गया तो देखा रूद्राक्ष की माला को किसी ने खींच कर तोड़ने की कोशिश की थी लेकिन शायद टूटी नहीं। बाबा का दिया हुआ रूद्राक्ष की माला आज भी मेरे गले में है। उसे कभी भी अपने से अलग नहीं करता शायद माला ने ही मेरी जान बचायी उस रहस्यमय व्यक्ति से। बनारस वापस आ गया। महीनों तक मन में उस रात की घटना का आभास होता रहा। लेकिन एक बुरा स्वप्न समझ कर भूल गया और फिर अपनी खोज में जुट गया।

कुछ दिनों बाद उस आत्मा के बारे में पुनः चिन्तन किया। काश वह लालच न करता तंत्र-मंत्र की पुस्तकें पढ़ कर उसकी जिज्ञासा जाग्रत न हुई होती कि साधना द्वारा पिशाच सिद्धि करके अपार धन दौलत और नाम कमाने की। साधना के सारे नियम ताक पर रख कर वह व्यक्ति जल्दी से सिद्धि प्राप्त करने की लालसा आज तक भटकने को मजबूर कर दिया उसकी आत्मा को। उन कथित साधको के लिए एक संदेश है कि तंत्र-मंत्र की पुस्तकें पढ़ कर या कम ज्ञान होने वाले तांत्रिक साधु के चक्कर में पड़ कर अपना सर्वनाश कर बैठते हैं। उनके लिए न तो यह लोक ठीक होता और न ही वह लोक। इस संसार में अपने नियम होते हैं। उन नियम और निर्देशों का पालन कर आगे बढ़ना ही सही कदम है। तंत्र साधना एक विकट साधना है। मैं बार-बार कहता हूँ। इष्ट और सद्गुरु की बार-बार आवश्यकता पड़ती है। उस साधक का न तो इष्ट था और न तो कोई मार्गदर्शक गुरु ही था। अंजाम क्या हुआ उपरोक्त विवरण पढ़ कर आप स्वतः जान चुके होंगे।

क्या आत्माओं से सम्पर्क किया जा सकता है आगे प्रसंगवश आत्मा के विषय पर विविध चर्चा हुई है। लेकिन हिन्दू मान्यता के अनुसार आत्मा अपने कर्मों के द्वारा स्वर्ग और नर्क लोक में विचरण करती है। शायद अन्य धर्म और हिन्दू धर्म के विचार

से सहमत न हो। लेकिन आत्मा की शान्ति के उपाय सभी धर्मों में हैं। ईसाई धर्म के लोग भी गत् आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना करते हैं। मुस्लिम धर्म में मृत्यु के बाद फातिया पढ़ने और धर्म के अनुसार आत्मा की शान्ति के लिए अन्य संस्कार करते हैं। इन संस्कारों को श्राद्ध अथवा तर्पण के निकट ही समझा जाता है। उसी तरह अन्य धर्मों में भी है। अपने-अपने धर्म के रिवाज व नियम एवं पूजा पाठ करते हैं ताकि मरने के आत्मा को शान्ति मिल सके। सभी धर्मों में आत्मा सम्बन्धित अपनी व्याख्या और दर्शन है लेकिन हिन्दू धर्म में काफी विस्तार से वर्णन मिलता है और साथ ही आत्मा के आवाहन का भी वर्णन मिलता है।

आत्मा भौतिक शरीर त्याग करने के बाद कुछ समय तक प्रेत योनि में रहती है और जब आत्मा प्रेत योनि में रहती है तो उसे प्रेतात्मा कहते हैं। आकस्मिक रूप से शरीर छूट जाने की वजह से या कोई कार्य पूर्ण न होने के कारण आत्मा स्वप्न अथवा किसी अन्य माध्यम से अपने बन्धु जन से सम्पर्क करना चाहती है। इस तथ्य को देखते हुए हिन्दू धर्म में आत्मा से सम्पर्क करने की प्रेरणा दिया जन्म।

प्रेतात्माओं का स्वरूप क्या होता है। जिस तरह स्थूल स्वरूप होता है उसी तरह प्रेत शरीर भी होता है। मृत्यु के पूर्व पुरूष अथवा स्त्री की इच्छाएं, वासनायें रहती है तो उसी वासना को लेकर भटकती है। स्थूल शरीर दृश्य है और प्रेत शरीर वायुमय है जो दृश्य नहीं होता। जैसे हम वायु को देख नहीं सकते लेकिन उसके चलने का आभास जरूर कर सकते हैं। प्रेतात्माओं के अस्तित्व का पता तब चलता है जब वे अपनी वासनाओं की पूर्ति के प्रभावित करती हैं। दूसरी बात यह है कि क्या आत्माओं का आवाहन किया जा सकता है? यदि किया जा सकता है तो किस प्रकार और कैसे? वैसे तो पाश्चात्य पद्धति है प्लेन चिट और किसी को माध्यम बनाकर उस पर आवेशित करना। इसमें थोड़ा खतरा है। जिस आत्मा का आप आवाहन कर रहे हैं उसकी जगह कभी-कभी अन्य आत्मा भी आ जाती है। जो कि अनेक समस्या पैदा कर देती है।

लेकिन हिन्दू धर्म में जिस प्रकार ईश्वर पर आस्था है उसी प्रकार गत् आत्मा और पितरों पर भी करते हैं विश्वास और यथा समय उन्हे प्रसन्न करने के लिए विविध पूजा पाठ श्राद्ध और तर्पण भी करते रहते हैं उनकी तिथि के अनुसार।

योग और तंत्र में मंत्र, ध्यान, आकृति, स्मरण आवाहन है लेकिन तंत्र में मंत्र द्वारा आवाहन ज्यादा प्रचलित है और है सुरक्षित।

आवाहन के प्रकार- पहली पद्धति है जिसे हम मंत्र सिद्धि से आत्मा का आवाहन कर सकते हैं। दूसरी पद्धति है मन को आत्मा पर केन्द्रित करने का मार्ग।

आत्मा के सांसारिक नाम अथवा उसकी आकृति पर ध्यान केन्द्रित करने से उस आत्मा का आवाहन किया जा सकता है। यह आवाहन उन लोगों के लिए सरल है जो उस आत्मा से सम्बन्धित हैं। लेकिन किसी जानकार की सहायता से ही यह आवाहन करना चाहिए। इसका कारण यह है कि जब आत्मा का भौतिक शरीर छूटता है तब भी उसका अपने पूर्व सम्बन्धियों से तब तक प्रेम और सम्बन्ध बना रहता है जब तक उसकी वासना क्षय नहीं हो जाती या अगला जन्म नहीं हो जाता। हिन्दू धर्म ग्रन्थों में आत्माओं का आवाहन करने के लिए मन को केन्द्रित करने की क्रिया तो प्रचलित है ही परन्तु तंत्र में मंत्र योग द्वारा आत्मा की आवाहन करने क्रिया भी है। साधक अपने सामने आवेशक को बैठाता है और मंत्र क्रिया द्वारा उक्त आत्मा को माध्यम पर आवेशित कराता है और जो उसे प्रश्न करना होता है प्रश्न करता है और इस प्रकार उसका उत्तर उसे प्राप्त हो जाता है। लेकिन यह क्रिया काफी कठिन है। साधक मंत्र द्वारा उस स्थान को मंत्र पूरित करता है और ध्यान केन्द्रित कर आत्मा का आवाहन बहुत देर तक नहीं रहता। जब तक आपका मना एकाग्र है तभी तक लेकिन मंत्र योग द्वारा आत्मा काफी देर तक रूक सकती है। वह भूत भविष्य के बारे में रहस्य खोलती है। ऐसी बहुत सी क्रियाएं हैं तंत्र में। लेकिन उनका रहस्य कम ही साधक को पता है। भारतीय पद्धति में बहुत सारी क्रियाएं लुप्त हो गयी बस कुछ ही क्रियाएं प्रकाश में हैं।

पश्चिम के वैज्ञानिकों का दावा है कि आत्मा की आकृति पर ध्यान केन्द्रित कर आत्माओं का आवाहन कर सकते हैं। यह अकेले या समूह के साथ भी कर सकते हैं। लेकिन प्रश्न यह है कि केन्द्रीकरण पद्धति से आवाहन की गयी आत्मा क्या वास्तविक में आती है। यह पद्धति वास्तविकता की कसौटी पर कभी भी खरी नहीं उतरी। अब प्रश्न यह उठता है कि केन्द्रीकरण पद्धति से आत्मा को बुलाया जाना संदिग्ध क्यों है। इसका कारण यह है कि केन्द्रीकरण की पद्धति आत्माओं को बुलाने के पूर्व ध्यान के केन्द्रीकरण का उच्चस्तरीय विकास का नहीं होना है। यह एक कठिन कार्य है अगर मन का केन्द्रीकरण उच्चस्तर पर नहीं है तो यह होगा कि आवाहन कर्त्ता आत्मा को बुलाने के स्थान पर अपने मन को केन्द्रित करने की शक्ति का प्रदर्शन मात्र करके रह जायेगा। अब प्रश्न यह उठता है कि वह कौन सा स्तर है जिस स्तर पर पहुंच कर मन का केन्द्रीकरण इतना हो जाता है कि वह आवाहन कर्त्ता आत्मा को अवश्य आवाहन कर सकता है अथवा बुला सकता है।

इसकी विधि योग के द्वारा सम्भव है। मन की चरम एकाग्रता है। आपको ज्ञात होना चाहिए कि आत्मा को बुलाने से सरल है जीवित व्यक्ति को बुलाना। मन को इतना

साध लिया जाये या केन्द्रीकरण कर लिया जाये कि अपने परिचित व्यक्ति पर मन एकाग्र कर उसे अपने पास बुला लें। जिस व्यक्ति को भी चाहे फिर वह व्यक्ति चाहे दूर हो या हो नजदीक। अगर आवाहन करके उसे बुला सकते हैं तब समझे कि आपके मन का केन्द्रीकरण हो गया है। अगर इसमें सफलता मिलती है तो फिर आत्मा का आवाहन कर उसे अपने पास बुला सकते हैं। अब प्रश्न यह है कि यदि एक क्षण के लिए मान भी लिया जाये कि केन्द्रीकरण के अभ्यास से किसी व्यक्ति को यह शक्ति प्राप्त हो जाती हैं जिससे वह आत्मा को बुला सकता है। परन्तु इस बात को वह कैसे सिद्ध करेगा कि आत्मा का आवाहन सच में होता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि आत्मा का आवाहन नहीं हो पाता और आवाहन कर्त्ता के मन में जो आकृति है या काल्पनिक चित्र है आत्मा के नाम पर उभर आता है उसके मानसपटल पर एवं उसे आभास होने लगता है। कभी-कभी मन केन्द्रीकरण की स्थिति में इतना डूब जाता है कि उसे स्वतः आभास होने लगता है आत्मा का। लेकिन इसे परखने की भी विधि है।

१. आत्मा जब अपने निकट सम्बन्धियों के बारे में बतलाये।

२. आवाहन कर्त्ता के पास व्यक्ति की जानकारी दे देता है लेकिन उसके बारे में आवाहन कर्त्ता को पता न हो।

३. आवाहन कर्त्ता से यह पूछा जाये अमुक पुस्तक के कौन से पृष्ठ में क्या लिखा है। अगर वह बतला देता है तब समझना चाहिए कि आत्मा का सच्चा आवाहन हो चुका है। आत्मा की उपस्थिति है। तब जो भी जिज्ञासा या प्रश्न होंगे आत्मा तुरन्त जवाब देगी। ऐसे तो बहुत सारी विधि है लेकिन केन्द्रीकरण एक सरल विधि है। जिससे आत्मा की इच्छा की जानकारी प्राप्त किया जा सकता है और उसके मुक्ति का मार्ग भी जानकर विधिपूर्वक पूजन आदि कर देने से आत्मा मुक्त भी हो जाती है। सारी विधि और जानकारी होने पर भी आज आत्मा का अस्तित्व है यह सत्य है। लेकिन जो रहस्य है परलोक जगत का वह तो आज भी रहस्य है और रहस्य ही रहेगा। मैंने अपना सम्पूर्ण जीवन दे दिया आत्माओं के रहस्य को जानने के लिए लेकिन एक परत खुलती है तो दूसरी परत विशाल रहस्यमय घेरे में मुझे ले लेती है। आज भी मेरे लिए यह जगत और अभौतिक जगत दोनों रहस्यमय है।

***

चतुर्थ अध्याय
जन्म मृत्यु और पुनर्जन्म

मैं अपनी मृत्यु के समय को जान गया हूँ। जिस प्रकार सैंकड़ों बार अनुभव किया है मैंने मृत्यु का। उसी प्रकार फिर होगा मृत्यु का अनुभव।

मगर मृत्यु किसकी?

मेरा या मेरे शरीर की?

नहीं मेरा नहीं। मैं तो शाश्वत आत्म स्वरूप हूँ। न मेरी मृत्यु है न तो है मेरा जन्म अथवा पुनर्जन्म। मृत्यु का सम्बन्ध तो शरीर से है। शरीर मृत होता है हर बार।

रोज की तरह आज भी चिन्तन कर रहा हूँ श्मशान में बैठा हुआ मृत्यु का। सामने घाट पर एक साथ चितायें जल रही हैं धूं-धूं कर। गालो पर हाथ धरे सोच रहा हूँ सचमुच शरीर के भीतर एक परमचेतन तत्व है जिसे आत्मा कहा जाता है जिसका मुझे स्वयं पता नहीं। मृत्यु भी उससे अपरिचित रह जाती है। जिसकी मृत्यु घटित होती है जो मरता है। यह जरा अजीब है क्योंकि जो मरता है मृत्यु उससे अपरिचित रह जाती है यानि जो मरकर भी नहीं मरता है।

मृत्यु जब घटित होती है तो कौन मरता है? कोई भी नहीं मरता क्योंकि शरीर सदा से मरा हुआ है। उसके मरने का कोई उपाय नहीं और जो शरीर के भीतर स्थित है, बैठा हुआ है वह सदा से अ-मृत है, यदि 'अ' माने नहीं 'मृत' माने मरा हुआ। उसके मरने का कोई प्रश्न ही नहीं है केवल सम्बन्ध टूटता है अ-मृत का मृत से यानि आत्मा का शरीर से। आत्मा 'अ-मृत' है कभी न मरने वाली है। शरीर 'मृत' है हमेशा ही मरने वाला लेकिन आश्चर्य की बात तो यह है कि मृत्यु इतने समीप आकर भी अ-मृत यानि आत्मा से अपरिचित रह जाती है। इसीलिए तो हम और आप कितनी बार मर चुके हैं और हमें व आपको अबतक पता न चल सका कि हमारे आपके भीतर वह भी है जो मरता ही नहीं। इस अपरिचय की प्रक्रिया ही यही है कि निकट आकर भी भीतर देखना नहीं हो पाता। मरते हुए व्यक्ति को जरा ध्यान से देखिये। मरा हुआ है लेकिन बाहर की तरफ ही देखता रहता है। अभी भी भीतर जाने का मन नहीं हो रहा है उसका। मृत्यु उसे शरीर से हटाती है लेकिन वह जकड़ रहा है,

जोर से पकड़ रहा है.इतने जोर से पकड़ रहा है कि उसके पहले कभी नहीं पकड़े था शरीर को।

रात और अधिक काली हो गयी है। जली हुई तमाम चितायें अब धीरे-धीरे बुझने लगी हैं। वातावरण में गहरी निस्तब्धता छा गयी है। मृत्यु का चिन्तन करते-करते अचानक मेरे मानसपटल पर निशा का चेहरा एकबारगी उभर आया है और उसी के साथ अतीत के तिमिराच्छन्न अन्धकार में डूब जाता हूँ मैं।

पचास वर्ष पूर्व परिचय हुआ था निशा से मेरा। बड़ा ही सुन्दर रूप और बड़ा ही आकर्षक व्यक्तित्व था निशा का। जो भी देखता बस देखता ही रह जाता उसे। मेरा और निशा का परिचय धीरे-धीरे प्रगाढ़ प्रेम में परिवर्तित हो गया और हम दोनों ने विवाह करने का निर्णय कर लिया।

क्या हम दोनों का विवाह हुआ? नहीं। यदि हो गया होता तो इस खोजपूर्ण पुस्तक का जन्म कैसे होता और कैसे होता मेरे सामने पारलौकिक तत्वों के गहनतम् रहस्यों का उद्घाटन?

विवाह के एक महीने पूर्व अचानक बीमार हो गयी निशा। कौन सी बीमारी थी? अन्त तक यह समझ में नहीं आया डॉक्टरों को। पूरे एक महीने मृत्यु शैया पर पड़ी असह्य वेदना और अपरिमित पीड़ा भोगती रही निशा। अन्त में उसने दवा आदि लेना बन्द कर दिया। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर क्या हो गया निशा को? सिर थामे घण्टो उदास मन लिये बैठा रहता मैं निशा के पास। वह अपनी धुन में बड़बड़ाती रहती। कभी-कभी उत्तेजित होकर बोल उठती ओह! कितना सुन्दर.... कितना रमणीक। मैं विस्मित था और चिन्तित भी। डॉक्टर को बतलायी यह बात तो वह निशा के केबिन में आ गये। बाहर निशा के भाई और माता-पिता उदास और गमगीन चेहरा लिये किसी अघटित की प्रतीक्षा कर रहे थे।

मैं निशा के पास बैठा था। डॉक्टर को देखकर निशा निर्विकार रही। कोई भाव नही उभरा उसके चेहरे पर। केबिन के एक ओर बड़ी सी खिड़की थी जो बाग की ओर खुलती थी। वह अपलक उसी खुली खिड़की की ओर देखती रहती थी।

पच्चीस वर्षीय उस नवयुवती के सुडौल संगमरी देह का अज्ञात रोग ने सर्वनाश कर दिया था? दारूण यंत्रणा के कारण उसके क्लान्त और म्लान चेहरे पर न जाने कैसी काली छाया घिर आयी थी। केवल उसकी आंखे किसी अपूर्व आनन्द से चमक रहीं थीं। धीरे-धीरे कांप रहे थे निशा के सूखे होंठ। ऐसा लग रहा था कि किसी अदृश्य अस्तित्व के बारे में किसी से धीरे-धीरे बातें कर रही हो। कभी-कभी तो वह अपने आप से ही बातें करने लग जाती।

निशा के और पास आकर मैंने उन अस्फुट बातों को सुनने की कोशिश की। वह बहुत ही धीरे-धीरे कह रही थी कैसा अपूर्व प्रकाश है वहां, कैसी गहरी शान्ति है वहां के वातावरण में।

कितना सुन्दर है? कैसा प्रकाश है? कैसी शान्ति है निशा? तुम क्या देख रही हो? किससे बातें कर रही हो? बोलो, बतलाओ मुझे निशा? मैंने उसके मस्तक पर आहिस्ते से हाथ रखते हुये पूछा।

अचानक निशा की चेतना वापस लौटी। उसने सिर घुमाकर मेरी ओर देखा। मैंने देखा कि उसके निवर्ण मुख पर अपूर्व सन्तोष की छाया है। मैंने निशा के हाथ पर अपना हाथ रखा। निशा ने परम निर्भरता और पूर्ण सन्तोष से मेरा हाथ पकड़ लिया। फिर वह क्षीण स्वर में बोली- मैं वहां जाना चाहती हूँ शर्माजी! वहां लोग मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मुझे बुला रहे हैं सब वहां। कहां जाओगी? कौन सी है वह जगह? कौन हैं वे सब लोग? बोलो, कुछ बतलाओ मुझे, कातर और विगलित स्वर में पूछा मैंने। पास खड़े डॉक्टर ने सोचा जरूर उसे बोलने में कष्ट हो रहा है। उन्होने बड़े ही स्नेह से निशा के बदन पर चादर ठीक कर दी और बोला कि आप ज्यादा न सोचें और शान्त रहने का प्रयास करें।

यह सुनकर निशा एकाएक बिगड़ गयी और बोली- ओफ! आप मुझे बहुत परेशान करते हैं डॉक्टर रमन। क्यों आप मुझे वहां नहीं जाने देते। जाने दीजिये मुझे रोकिये मत! आपकी दवायें मुझे वहां जाने से बार-बार रोकती हैं। इसीलिए दवा लेना मैंने बन्द कर दिया। मुझे रोक सकने में आप सबको क्या मिलेगा।

डॉ. रमन बहुत बड़े अनुभवी डॉक्टर थे। पूरे सात साल अमेरिका में रह कर वापस लौटे थे वह। निशा को वह भी न रोक सके थे। उसका उपाय भी न था उनके पास लेकिन सुन्दर दृश्य देखने के बाद से निशा आश्चर्यजनक ढंग से शान्त हो गयी थी। उसकी शरीरिक पीड़ा भी मानो बहुत कम हो चली थी। मगर हां! कोई उसके पास खड़ा होता तो वह अवश्य परेशान होने लगती। वह एकान्त में ही अधिक रहना पसन्द करती थी। लेकिन आश्चर्य की बात तो यह थी कि मैं जब कभी भी हटने की कोशिश करता तो वह अपनी बन्द आंखे धीरे-धीरे खोलकर अपलक निहारने लग जाती थी और तब मेरे कदम अपने आप थम जाते और फिर अपने स्थान पर वापस लौट आता। चुपचाप उसके सिर पर हाथ फेरने लगता पहले की तरह।

उस समय रात के शायद ग्यारह बजे थे। रोज की तरह मैं निशा के सिरहाने बैठा था। डॉ. रमन दो बार आकर उसे देख चुके थे। सांझ से ही निशा मौन साधे निर्विकार भाव से पड़ी थी बिस्तर पर आंखे बन्द किये हुये। अचानक चैतन्य हो उठी

वह। तकिया के सहारे उसने सिर घुमाया और मेरी ओर देखकर कहने लगी वह सुनो- जहां से मैं अभी लौटी हूँ वह.बहुत ही सुन्दर और रमणीक स्थान है। शान्ति तो इतनी है कि बतला नहीं सकती। इतना बोलकर हांफने लगी निशा फिर थोड़ा रूककर आगे कहने लगी, पहली बार मुझे अनुभव हुआ कि मैं शरीर में नहीं हूँ। कितने मूर्ख व पागल हैं वे लोग जो शरीर को लेकर अस्तित्व का बोध करते हैं। थोड़ी देर पहले न जाने कैसे मैं अपने शरीर से अलग हो गयी थी। मैं अपने शरीर को उसी तरह देख रही थी जैसे तुम्हारे शरीर को देख रही हूँ। शरीर से अलग होने पर सोचने लगी अरे! मैं तो बिना शरीर के भी जीवित हूं। बिना शरीर के भी मेरा अस्तित्व बना हुआ है। किसी भी तरह का अन्तर नहीं आया है मेरे व्यक्तित्व में।

फिर क्या हुआ, मैंने उत्सुकता से पूछा।

उस वक्त केवल मैं अपने शरीर को ही देख रही थी। शरीर के अलावा मुझे और कोई चीज नहीं दिखलायी दे रही थी। इस बात का बोध होते ही 'मैं' बिना शरीर के भी जीवित हूँ शरीर के प्रति मेरे मन में मोह और आकर्षण तुरन्त समाप्त हो गया। उसी समय किसी अज्ञात आकर्षण के वशीभूत होकर आकाश में उड़ने लगी। कभी मैं बादलों के बीच होती तो कभी गगन में। अपने आपमें मैं काफी हल्कापन और तरोताजा अनुभव कर रही थी उस समय। ऐसा लगता था कि मैं किसी भारी बन्धन से मुक्त हो गयी हूँ। ....सच, शर्माजी शरीर एक भारी बन्धन के सिवाय और है ही क्या?

उसके बाद, मैंने पूछा।

मैं उड़ती रही, उड़ती रही। फिर मैं एक ऐसे प्रकाशमय जगत में पहुंची। उस आलोकमय जगत में पहुंचने के लिए एक काफी ऊंचा दरवाजा था। जब मैंने उस दरवाजे के भीतर प्रवेश किया उस समय मुझे अपूर्व आनन्द का अनुभव हो रहा था। उस जगत में चारो ओर विभिन्न रंगों के फूल ही फूल खिले थे। चारो ओर बिखरा हुआ प्रकाश हर क्षण अपना रंग बदल रहा था। कभी गुलाबी रंग कभी नीला तो कभी लाल या पीला रंग हो जाता उस प्रकाश का।

इतना कहने के बाद निशा जोर-जोर से खांसने लगी। जिसकी आवाज सुनकर डॉ. रमन केबिन में चले आये। उस समय निशा जोर-जोर से सांस ले रही थी। एक प्रकार से हांफ रही थी। दूसरे ही क्षण वह शान्त हो गयी। चेहरे का भाव निर्विकार हो गया। डॉ. रमन ने इन्जेक्शन लगाया। उसी समय निशा ने फिर आंखें खोल दी और कातर स्वर में कहने लगी, मुझे क्यों रोक रहे हैं डॉक्टर। आप लोग सुन नहीं

रहे हैं कि वह प्रकाशमय जगत मुझे आने के लिए कह रहा है। फिर निशा ने कहा कि अपना वादा पूरा न कर सकी तुम्हारी पत्नी न बन सकी। क्षमा करना मुझे तुम। मैं जानती हूँ कि तुम मेरे बिना नहीं रह सकोगे। टूट जाओगे, बिखर जाओगे। मगर क्या कर सकती हूँ मैं? नियति के सामने लाचार हूँ, हार रही हूँ मैं। बहुत ही जल्द ठीक हो जाओगी निशा ऐसा मत कहो- करूण स्वर में कहा मैंने। तुम्हारे बिना मैं नहीं रह सकता इस संसार में। तुम्हारे अभाव में मेरा जीवन शून्य हो जायेगा। सारा भविष्य अन्धकार में डूब जायेगा।......बोलो निशा! साथ नहीं छोड़ोगी न तुम? मगर मेरे इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए निशा की आत्मा वहां थी कहां?

डॉ. रमन अभी भी वहीं खड़े थे। उन्होने जांच की। फिर मेरी ओर निराशा भरी दृष्टि से देखा। उनकी आंखों में आंसू निकल आये थे।

निशा इस नश्वर लोक को छोड़कर उसी अज्ञात आलोकमय लोक में चली गयी थी मेरे जीवन में अन्धकार भरकर। उस समय मेरी मानसिक स्थिति कैसी थी बतला नहीं सकता।

दूसरे दिन डॉ. रमन से मेरी भेंट हुई। उनके साथ उस समय एक और सज्जन थे। नाम था डॉ. मिल्टन। डॉ. मिल्टन अंग्रेज थे। जब मैं मिला उस समय उन दोनों डॉक्टरों के चेहरे पर घोर आश्चर्य के भाव थे।

डॉ. रमन ने बतलाया कि निशा मृत होते हुये भी एक प्रकार से अभी भी जीवित है। जब मैंने पहली बार उसका निरीक्षण किया था उस समय उसका सारा शरीर बर्फ की तरह शीतल हो चुका था। जीवन का कहीं कोई चिन्ह शेष नहीं था। लेकिन जब मैं दो घण्टे बाद लाश को केबिन से हटाने के पहले उसकी जांच की तो एकबारगी चौंक पड़ा मैं। निशा का सारा शरीर पहले की तरह शीतल है लेकिन मस्तिष्क गर्म है। उसका टेम्परेचर धीरे-धीरे बढ़ रहा है। जीवन के सभी लक्षण समाप्त हो जाने के बाद दो घण्टे के अन्दर मस्तिष्क क्यों फिर गर्म हो गया और क्यों उसकी गर्मी धीरे-धीरे बढ़ रही है? यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है। यह मेरा पहला अनुभव है। इस रहस्य को समझने के लिए मैंने फोन कर डॉ. मिल्टन को बुलाया है। सचमुच यह एक अत्यन्त रहस्यमय और आश्चर्यजनक बात है- मैंने कहा। चिकित्सा शास्त्र के अनुसार निशा की मृत्यु को पूरे आठ घण्टे हो चुके हैं। मगर एक हिसाब से वह जीवित भी है। निशा अपने आपमें एक विचित्र रहस्य बन चुकी है। थोड़ा रूककर डॉ. मिल्टन ने आगे कहा- जिस गति से मस्तिष्क का टेम्परेचर बढ़ रहा है उससे मस्तिष्क का रक्त सूख जाना चाहिए। नसें फट जानी चाहिए। मगर ऐसा कुछ भी नहीं है।

मैं जब दोनों डाक्टरों के साथ अस्पताल पहुंचा तो वहां निशा की लाश के पास निशा के परिजनों के अलावा स्टाफ के कुछ विशिष्ट लोग भी थे। सभी के चेहरे पर कौतूहल और आश्चर्य के मिले-जुले भाव थे।

डॉ. मिल्टन ने लाश को फिर चेक किया। उनकी मुख मुद्रा गम्भीर थी उस समय। गम्भीर स्वर में वह बोले- इस समय जो स्थिति है उसे न गहरी नींद कहा जा सकता है, न कोमा कहा जा सकता है। चिकित्सा शास्त्र के अनुसार मृत भी कहा जा सकता है। लेकिन मस्तिष्क में टेम्परेचर है इसीलिए हम सब मृत घोषित नहीं कर पा रहे हैं।

पूर्ण मृत हो जाने के दो घण्टे बाद अचानक मस्तिष्क का हद से ज्यादा गर्म हो जाना सचमुच सभी के लिये आश्चर्य की बात थी। पूरे ग्यारह दिन उसी विचित्र और रहस्यमयी स्थिति में रही निशा की लाश। बारहवें दिन उपस्थित सभी लोगों को घोर आश्चर्य में डालकर निशा ने धीरे-धीरे आंखें खोली।

इतने दिनों तक वह युवती एकदम मृत स्थिति में अन्य लोक में समाहित थी। वहां से लौटने के बाद उसने उत्सुकता से पूछा- आप सब लोग यहां क्यों खड़े हैं? क्या मुझे कुछ हो गया था? भला उसके इस प्रश्न का उत्तर कौन देता। सभी मौन रहे और एक-दूसरे का मुंह ताकते रहे।

मुझे कितनी खुशी हुई थी उस समय। आपको बतला नहीं सकता। मगर मेरी वह प्रसन्नता क्षणिक ही थी। ग्यारह दिन बाद किसी अज्ञात लोक अथवा किसी अज्ञात स्थिति से लौटकर निशा ने फिर आंखें खोलकर देखा। सचेतन होकर बातें की। उस आश्चर्यजनक और अकल्पनीय स्थिति में डॉ. मिल्टन उत्तेजित हो उठे। उनके मन में अनेक जिज्ञासायें थीं। अनेक प्रश्न थे। मगर वे केवल दो चार प्रश्न ही कर सके निशा से। उन्होने प्रश्न किया- क्या आप ग्यारह दिनों तक किसी स्वप्न की दुनिया में थी? वह कैसा स्वप्न था? बतलाइए न आपने क्या देखा? क्या सुना और समझा? क्या आपकी बन्द आंखों के आगे सब कुछ अन्धकारमय था या प्रकाशमय? अब विस्तार से बतलाइए किस परिस्थिति में थीं आप? बहुत देर तक निशा उदास और विषण्ण दृष्टि से डॉ. मिल्टन की ओर देखती रही। उसके बाद उसने दूसरी तरफ मुंह फेर लिया। कुछ भी हो निशा के उस अभूतपूर्व रहस्यमय अप्रत्यावर्तन का कोई कारण डॉ. मिल्टन समझ नहीं पा रहे थे। उनकी दृष्टि में चिकित्सा शास्त्र में एक अभूतपूर्व अलौकिक घटना थी। वे अपने चेम्बर में लौटे। मैं भी उनके साथ था। उन्होने तुरन्त अपने एक मित्र को फोन किया। जिनका नाम था जेम्स। जेम्स सम्मोहन विद्या के ज्ञाता

और परा मनोवैज्ञानिक थे और अमेरिका के साइकोलॉजिकल सोसायटी से सम्बन्धित थे उस समय में वो भारत में ही थे।

फोन पर डॉ. मिल्टन द्वारा निशा की रहस्यमयी कथा सुनकर मि. जेम्स पहले तो चौंक पड़े। फिर बोले- यह तो अति रहस्यमय है डॉ. मिल्टन। मैंने जीवन में ऐसी घटना न देखी है, न सुनी है। मैं अभी तुरन्त आता हूँ।

मि. जेम्स ने आते ही निशा को देखा। उस समय सिर और छाती को छोड़कर सारा शरीर शीतल था। निश्चिंत रहो। रोगिणी जब बातें कर रही है तब चिन्ता की कोई बात नहीं। हम उसे अपने ढंग से सम्मोहित कर उसके अवचेतन मन की एक-एक बातें जान समझ लेंगे। ठीक है! मैं सहमत हूँ आपके विचार से डॉ. मिल्टन ने कहा। डॉ. जेम्स की बात सुनकर एक बार मुझे रोमांच हो आया। मेरे सामने किसी अलौकिक जगत का रहस्य खुलने जा रहा था। कभी मैं डॉ. जेम्स की ओर देखता तो कभी डॉ. रमन की ओर। खैर, निशा को एक शीत ताप नियंत्रित और ध्वनि रोधक कक्ष में लाया गया। उस समय रात के नौ बजे थे। उस कक्ष में किसी को जाने की अनुमति नहीं थी। उन दो लोगों के अलावा सिर्फ मैं था उस कक्ष में।

प्रयोग शुरू हुआ। मि. जेम्स ने अपनी विशेष पद्धति से निशा की आत्मा को सम्मोहित करना शुरू किया। उस समय निशा धीरे-धीरे सांस ले रही थी। उसके चेहरे पर कोई भाव नहीं था। ऐसा लगा कि मानो वह किसी को पहचान नहीं रही है।

मिस. निशा! आप मेरी ओर देखिये, मि. जेम्स का गम्भीर स्वर ध्वनि रोधक कमरे में गूंजा। आप मिस निशा शर्मा हैं। आपकी उम्र पच्चीस वर्ष है। अहमदाबाद में आपका जन्म हुआ था। हाँ! आप धीरे-धीरे सांस लीजिए। आप मेरी बात सुन रही हैं न? सुन रही हूँ, निशा ने धीमे स्वर में कहा। आप पूरे एक महीने तक किसी अज्ञात बीमारी के कारण जीवन और मृत्यु के बीच थीं और उसके बाद फिर आप पूरे ग्यारह दिनों तक मृत्यु की अंधेरी घाटियों में थीं। इस दुनिया में आपका अस्तित्व नहीं था। बतलाइए! उस स्थिति में आपने क्या-क्या देखा और क्या-क्या अनुभव किया? आत्म सम्मोहन की उस स्थिति में लगा कि निशा के अन्दर से मानो कोई बाधा आ रही है जो उसे बोलने नहीं दे रही है। उस समय उसकी आंखें बन्द थीं और चेहरे पर किसी भी प्रकार के विकार का भाव नहीं था। लेकिन उसके लिए मि. जेम्स के आदेश का उल्लंघन करना असम्भव था। उसके मस्तिष्क में मि. जेम्स का आदेश बार-बार ध्वनित होने लगा। मिस निशा शर्मा! याद रखिये....याद रखिये! मैं आपसे जवाब मांग रहा हूँ। आप बतलाइए।

आत्म सम्मोहन की इस आरम्भिक स्थिति में ही निशा की बाह्य चेतना पूरी तरह लुप्त हो गयी और उसी के साथ-साथ जाग्रत हो गयी आन्तर चेतना। निशा के होंठ हिले। कहने लगी वह- मैं अपने शरीर को छोड़ना नहीं चाहती थी। उससे अलग भी होना नहीं चाहती थी। मगर कोई अज्ञात शक्ति मुझे खींच रही थी अपनी ओर। उस समय मैं असहाय अनुभव कर रही थी अपने आपको। सिर, छाती और नाभि के पास भयानक जलन और दर्द हो रहा था। देखने, सुनने और समझने की ताकत खत्म हो चुकी थी। फिर मेरे चारो तरफ अन्धेरा छा गया। अंधेरे के कारण मैं घबराने लगी और सांस लेने में तकलीफ होने लगी। मेरी काफी सोचनीय स्थिति थी उस समय। मेरा ध्यान बस सांस लेने में ही केन्द्रित था। यदि सांस भीतर जाती तो बाहर निकालने में तकलीफ होती। यदि सांस बाहर जाती तो भीतर ले जाने में तकलीफ होती। उसी अवधि में अचानक मुझे क्या हो गया मैं नहीं जानती। पर हां! मैं अपना नाम जाति और जागतिक स्थिति एकदम से भूल गयी थी लेकिन मैं पच्चीस वर्ष की युवती नहीं थी। उस लम्बी अवधि में मैं धीरे-धीरे छोटी होती चली गयी थी।

जरा इस बात को और स्पष्ट करो मि. जेम्स का स्वर गूंजा। निशा क्षण भर खामोश रही। फिर कहने लगी- मैं छोटी से छोटी होती गयी, जन्म से मृत्यु की ओर नहीं, मृत्यु से जन्म की ओर मैं बढ़ती गयी थी। अन्त में बिल्कुल छोटी बच्ची बनकर अपनी मां की गोद में खेलने लगी। उसके बाद और भी छोटी और भी सूक्ष्म होते-होते बिल्कुल गायब हो गयी। इतना कहकर निशा चुप हो गयी।

याद करने की कोशिश करिये मिस निशा शर्मा! मि. जेम्स का गम्भीर स्वर फिर कमरे के शान्त वातावरण में गूंजा, अभी तो आपने बतलाना शुरू किया है। अभी आपको और बहुत कुछ बतलाना है। बतलाइए, याद करने की कोशिश करिये।

'बतलाती हूँ.....बतलाती हूँ'। मैं अपनी माँ के गर्भ में पहुंच गयी थी। चारो तरफ घना अन्धकार था। मगर मैं उस घने अन्धकार में रहकर भी माँ की आवाज साफ सुनती थी। माँ की मानसिक स्थिति को साफ-साफ समझती थी। वह कब और क्या सोचती थी, वह मुझे मालूम हो जाता था। कभी-कभी माँ के आस-पास होने वाली आवाज और वार्तालाप को भी सुन लेती थी। मेरा हर समय ध्यान अपने अतीत की ओर रहता था। वर्तमान जन्म में माँ के गर्भ में आने से पहले तुम कौन थी? कहां थी और कैसे मरकर गर्भ में आ गयी? मि.जेम्स एक-एक शब्दों पर जोर देकर बोले।

कुछ देर तक गहरी निस्तब्धता छायी रही। फिर निशा की मद्धिम स्वर वातावरण में तैरने लगा। मैं जरा जीर्ण वृद्धा थी। मृत्यु के समीप थी। मेरे पास अपार धन था। मेरा काफी बड़ा परिवार था। सब कुछ रहते हुए भी मेरे मन में शान्ति नहीं थी। मैं

हमेशा अशान्त रहकर छटपटाया करती थी। मैंने अपने पति के साथ आधे से ज्यादा विश्व भ्रमण किया था। धन-वैभव के कारण मेरे अन्दर अहंकार भरा था। मैं जब चालीस साल की थी, उस समय मेरे पति की मृत्यु हवाई जहाज की दुर्घटना में हो गयी। पति की मृत्यु के बाद मेरा सारा जीवन एकांकी और अशान्त व्यतीत हुआ। अन्त में मुझे कैंसर हो गया। उसी बीमारी में अस्सी वर्ष की अवस्था में मेरी मृत्यु हो गयी।

तुम्हारा नाम क्या था- मि. जेम्स ने पूछा?

मालती देशमुख।

फिर क्या हुआ- मि. जेम्स ने फिर प्रश्न किया?

निशा चुप रही। कोई जवाब नहीं दिया।

मि. जेम्स ने फिर तीव्र स्वर में उससे कहा- रूक क्यों गयीं? बतलाइए, चुप रहने से नहीं चलेगा! तुमको बतलाना ही पड़ेगा।

हां! हां! बता रही हूँ.....बता रही हूँ.....!

मृत्यु के समय मैं बेहोश हो गयी थी। जब होश आया तो देखा कि नदी के किनारे मेरी लाश को लोग जला रहे हैं। वहां मैंने लोगों से बात करनी चाही मगर ऐसा सम्भव न हो सका। हमारे और उनके बीच कोई ऐसी चीज थी जिससे मैं न अपने परिवार के लोगों की बात सुन पाती थी और न तो मेरी बात वे लोग ही सुन पाते थे। मुझे जीर्ण-शीर्ण काया को जलते हुए देखकर पहले तो क्लेश हुआ लेकिन जब मुझे इस बात का अनुभव हुआ कि मैं बिना शरीर के भी रह सकती हूँ तो वह क्लेश और शरीर के प्रति मोह तुरन्त खत्म हो गया। फिर मैं किसी ऐसी महिला की खोज में भटकने लगी जो मुझे धारण कर सके। जिस स्त्री को मैं गर्भवती देखती उसी के पीछे लग जाती। मगर फिर स्वयं मुझे ऐसा लगता कि वह स्त्री मुझे धारण करने योग्य नहीं है। अन्त में एक महिला मिली जो मेरे संस्कार, विचार और भावनाओं के अनुकूल थी। उसका प्रसव का समय आ गया था। मैं तुरन्त उस महिला के मुंह के जरिये भीतर प्रवेश कर गयी। उसके बाद किसी बात का ज्ञान नहीं रहा। उसी महिला की पुत्री को आप निशा शर्मा कह कर पुकार रहे हैं।

निशा के बारे में हम जानते हैं। आप अपने बारे में बतलायें मालती देशमुख! आप मालती देशमुख के पहले क्या थीं? मालती देशमुख के रूप में जन्म लेने से पहले किस शरीर में थीं?

मैं अब और अतीत में नहीं जा सकती। मुझे भारी कष्ट हो रहा है दयनीय रूप में निशा ने कहा।

आपको जाना ही पड़ेगा। जाना ही पड़ेगा- मि. जेम्स का आदेश भरा स्वर सुनायी दिया।

मालती देशमुख के पहले मैं वाराणसी में थी, निशा ने धीरे-धीरे कहना शुरू किया। लगभग एक सौ पच्चीस वर्ष पहले मैं वाराणसी में रहती थी। मेरा नाम सुधा जोशी था। मेरा परिवार बड़ा सम्पन्न और सुसंस्कृत था। मेरे पिता यशवन्त जोशी ब्रिटिश सेना में अधिकारी थे। जब मैं अपनी मां गर्भ में थी तभी मेरे पिताजी की मृत्यु युद्ध स्थल में हो गयी। मेरी मां पिता जी की याद में हमेशा रोती रहती थी। गर्भ में रह कर भी मैं मां की रूलायी सुनती रहती थी। फिर कब और कैसे मेरा जन्म हो गया मुझे पता ही न चला।

निशा फिर चुप हो गयी। मि. जेम्स ने फिर आगे बोलने के लिये आदेश दिया।

लड़खड़ाते स्वर में निशा ने कहना शुरू किया- मैं बहुत सुन्दर थी। जब कोई सौन्दर्य और रूप रंग की चर्चा करता तो मैं फूली न समाती। धीरे-धीरे मैंने यौवन में प्रवेश किया। रंगीन सपनों और सुनहरी कल्पनाओं में हर वक्त डूबी रहने लगी मैं। अभी मैंने अठारह बसन्त देखे थे कि मुझ पर से मेरी माँ का साया हट गया और मैं अनाथ हो गयी। उस रात खूब रोयी थी मैं। मरते समय माँ ने कहा था मुझसे कि सुधा अपनी पढ़ाई बन्द मत करना। कितनी ही कठिनाइयों का सामना करना पड़े। कितना ही कष्ट झेलना पड़े। मगर पढ़ाई पूरी करना।

मैंने माँ के अन्तिम आदेश को पूर्ण किया और हिन्दी से एम. ए. किया और पी.एच.डी. की उपाधि भी ली। उस जमाने में उर्दू मिश्रित हिन्दी का बोलबाला था। मैं हिन्दी को उसके शुद्ध रूप में लाने की कोशिश करने लगी और उसी सिलसिले में कविता भी करने लग गयी। हिन्दी कविता ने मुझे हद से ज्यादा कल्पनाशील और भावुक बना दिया था। हर समय कल्पना लोक में विचरण करती रहती। आखिर कल्पना ने और भावुकता ने मुझे उन लड़कियों की लाईन में लाकर खड़ा कर दिया जो अरमानों के दरिया के किनारे सपनों का घरौंदा बना तो लेती है किन्तु कठोर यथार्थ के एक ही झोंके में सब कुछ बिखर जाता है। फिर राह नहीं सुझती मिलते हैं सिर्फ आंसू। इतना कहकर निशा, सिसकने लगी और सारा वातावरण बोझिल हो उठा एकबारगी। निश्चय ही निशा के मानस पटल पर अतीत के जीवन का कोई दुखद दृश्य उभर कर साकार हो गया था। अन्त में वह न जाने कहां डूब गयी। उसका चेहरा एकदम स्याह हो गया।

मि. जेम्स परेशान हो उठे। एक-दो उन्होने प्रश्न किया। लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। तब उन्होने डॉ. रमन से कहा- मि. रमन तुम जरा निशा की नब्ज तो देखो।

डॉ. रमन ने निशा की नब्ज देखकर कहा- नब्ज काफी तेज चल रही है। जरा सावधान होना पड़ेगा। मैं देख रहा हूँ कि जैसे-जैसे निशा एक-एक जन्म पीछे लौट रही है इनमें दारूण प्रक्रिया हो रही है।

डॉ. मिल्टन बोले- मि. जेम्स इस समय यह परीक्षण खत्म किया जाये। रोगिणी को आराम करने की जरूरत है। ठीक है मि. जेम्स ने कहा आप यहीं रहें। मैं तब तक लेबोरेटरी में जाकर इनके मस्तिष्क का 'फोलोग्राम रिकार्डिंग' देख लूं।

मि. जेम्स चले गये। केवल डॉ. मिल्टन और डॉ. रमन वहां रह गये। निशा बिस्तर पर निश्चेष्ट, निश्चल पड़ी हुई थी। वातावरण में पहले जैसी ही निस्तब्धता छायी हुई थी। अब तक मैंने जो कुछ देखा, सुना और समझा था उसने मेरे अन्तराल में एक भयानक तूफान पैदा कर दिया था। अनेक प्रश्नों और जिज्ञासाओं की सृष्टि कर दी थी। उस घटना ने मेरे विचारधारा को ही एकदम बदल दिया था। यह बात मेरी समझ में अब अच्छी तरह से आ गयी थी कि जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म का सम्बन्ध आत्मा से नहीं बल्कि शरीर से है। शरीर ही जन्म लेता है। शरीर ही मरता है और शरीर ही पुनर्जन्म स्वीकार करता है। आत्मा का अस्तित्व स्वतंत्र है। वह न तो मरती है और न तो जन्म ही लेती है और न तो उसका पुनर्जन्म ही होता है। इस विराट विश्व ब्रह्माण्ड में आत्मा की यात्रा अनन्त है और उस यात्रा का दीर्घ इतिहास है। मृत्यु केवल उस अनन्त इतिहास को परिच्छेद में विभक्त कर देती है। हर परिच्छेद में मनुष्य का नया शरीर होता है। नयी सामाजिक व पारिवारिक व्यवस्था होती है। निशा के पिछले दो जन्मों की कथा इस कठोर सत्य का साक्षी था मेरे लिये।

बिस्तर पर निश्चेष्ट पड़ी निशा की ओर अपलक निहार रहा था मैं। डॉ. रमन उसके पास बैठकर उसके थके शरीर को पूरा आराम देने की कोशिश कर रहे थे। उन्होने निशा को जगाने की कई बार कोशिश की लेकिन असमर्थ रहे। थोड़ी देर बाद डॉ. जेम्स लौट आये तो डॉ. मिल्टन ने प्रश्न किया कि तुमने क्या देखा? डॉ मिल्टन ने कहा कि जिन्दगी में ऐसा रिकार्ड मैंने कभी नहीं देखा। उस फिल्म के बीच-बीच में धब्बे हैं लग रहा है जैसे फ्लैश लाइट का प्रकाश पड़ा हो। लग रहा है जैसे सूर्य के चारो ओर आलौकिक प्रकाश का वृत्त बना है। निशा के एक-एक जन्म में पीछे लौटते समय तीव्र प्रतिक्रिया हो रही थी।

निशा दो दिनों तक नींद में ही रही। तीसरे दिन मि. जेम्स ने फिर से अपना प्रयोग शुरू किया। उस दिन भी हम चारो व्यक्ति ही थे। रात की स्याह चादर फैल चुकी थी। कमरे में सिर्फ नीले रंग का बल्ब जल रहा था। वातावरण में गहरी खामोशी बिखरी हुई थी।

निशा की आत्मा को सम्मोहित होने में इस बार अधिक समय नहीं लगा। आप कौन हैं? मि. जेम्स ने प्रश्न किया।

निशा शर्मा!

मैं आपको आदेश देता हूँ कि आप एक सौ पांच वर्ष पीछे अतीत में चली जायें। लगभग पन्द्रह मिनट बाद प्रश्न किया मि.जेम्स ने- आप कौन हैं?

सुधा जोशी!

मुझे बतलाइये आपके साथ ऐसा कौन सा हादसा हुआ जिसकी वजह से आपकी जिन्दगी उन लड़कियों जैसी हो गयी जिन्हे आंसू के सिवाय और कुछ नहीं मिलता।

सुधा जोशी ने कहना शुरू किया- धीरे-धीरे माँ की जमा पूंजी खत्म हो गयी। सुधा को नौकरी की जरूरत महसूस हुई। जल्द ही उसे नौकरी मिल गयी। उसी के कार्यालय में एक अनुराग शर्मा गरीब युवक भी काम करता था। वह युवक सुधा को पसन्द करने लगा। एक दिन सुधा बीमार हो गयी और काम पर नहीं आयी तो वह युवक सुधा के घर पहुंच गया यह देखकर सुधा के मन में भी उसके प्रति कोमल भावनायें उठने लगीं। अनुराग ने उसको अच्छे डॉक्टर से इलाज कराया जिसकी वजह से दो ही दिन में सुधा ठीक हो गयी।

फिर इसी तरह उनका प्यार परवान चढ़ता गया और फिर छः महीने बाद ही दोनों ने शादी कर ली। दोनों का वैवाहिक जीवन सुखपूर्वक व्यतीत होता गया और अनुराग ने नौकरी छोड़कर व्यवसाय कर लिया। अब वह व्यापार के सिलसिले में हवाई जहाज से यात्रा करने लगा और एक यात्रा के दौरान हवाई जहाज की भयानक दुर्घटना में अनुराग की मृत्यु हो गयी।

सुधा का जीवन अन्धकारमय हो गया। वह बेसहारा हो गयी। जीवन यापन के लिये किसी चीज का अभाव न था लेकिन अकेलापन उसे विचलित कर देता। इसी प्रकार एक दिन सुधा अपने लॉन में बैठी कविता गुनगुना रही थी। तभी कमलेश नाम का युवक वहां से गुजरा तो उसने सुधा की कविता सुनी तो प्रशंसा किये बिना नहीं रहा गया उससे। बहुत अच्छा गाती हैं आप।

सुधा ने उसे देखा और उसकी बातें सुनी जो उसे बहुत ही अच्छी लगी। कमलेश ने कहा आप चुप हैं? बुरा मान गयीं क्या?

मैं....मैं....क्षमा....।

नहीं....नहीं...आपने तो मेरी तारीफ की है बुरा नहीं कुछ अच्छा ही लगा है। आप कौन हैं और कहां रहते हैं। सुधा जल्दी-जल्दी बोली। फिर दोनों का इसी तरह

कविताओं के बहाने मिलने का सिलसिला चलता रहा। कमलेश की अभी शादी नहीं हुई थी। सुधा, कमलेश को सच्चे मन से चाहने लगी थी लेकिन अनजाने डर की वजह से वह चुप ही रही और उसने अपने विधवा होने की बात कमलेश से छुपाती रही।

कुछ दिनों तक कमलेश और सुधा इसी तरह मिलते रहे और सुधा ने पूर्ण समर्पित कर दिया था कमलेश को। कमलेश जब भी शादी करने की बात कहता सुधा उसे टाल देती। एक दिन सुधा के विधवा होने की बात कमलेश को मालूम पड़ गयी और वह सुधा का छलावा देखकर उससे दूर रहने लगा। कमलेश उससे अचानक ही बहुत दूर चला गया और सुधा एक बार फिर अकेली हो गयी। कमलेश जाते-जाते दर्द दे गया। इसी गम की वजह से सुधा ने अपने आपको घर में कैद कर लिया और एक दिन जहर खाकर कर आत्महत्या करने का प्रयास किया लेकिन उसे बचा लिया गया। कमलेश को यह बात मालूम हुई तो वह सुधा से आकर मिला। कमलेश और सुधा का प्रेम प्रसंग फिर चल पड़ा। इसी बीच वह गर्भवती हो गयी। यह सुनकर कमलेश अचानक ही दो तीन महीने के लिये गायब हो गया। एक दिन आया तो उसने साफ-साफ कह दिया कि वह उसे कभी नहीं अपनायेगा और ठुकरा कर चला गया हमेशा-हमेशा के लिये। उसके जाने के बाद सुधा ने अपनी वसीयत एक अनाथालय के नाम कर दी और फांसी लगाकर मर गयी।

हर व्यक्ति अज्ञात रूप में अपने पिछले जीवन की न जाने कितनी पीड़ाओं, व्यथाओं और वेदनाओं का बोझ ढोता रहता है उसे स्वयं पता नहीं होता। निशा के पिछले जन्म की दर्द भरी कथा सुनकर हम लोगों पर उदासी छा गयी थी। मैं तो एकबारगी स्तब्ध और किंकर्तव्यविमूढ़-सा हो गया था। मि.जेम्स न जाने क्या सोचते रहे। उसके बाद निशा पूरे दो दिनों तक गहरी नींद में सोयी रही। मि. जेम्स का विचार था कि एक और सिटिंग करेंगे और निशा के उसके पहले जीवन का पता लगायेंगे। मगर इसका मौका उनको नहीं मिला। दो दिन की गहरी नींद के बाद कुछ समय के लिये जागी, चारो ओर नजरें घुमाकर देखा और फिर हमेशा-हमेशा के लिए सो गयी वह और उसकी आत्मा अपनी अनन्त यात्रा पर निकल गयी।

मेरे एक परिचित थे नाम था राम स्वरूप चतुर्वेदी। वैसे तो चतुर्वेदी जी पिछले तीन साल से बड़ी भयंकर क्षय रोग से पीड़ित थे उस जमाने में क्षय रोग को असाध्य माना जाता था। अपने सामर्थ्यवश चतुर्वेदी जी ने इलाज में कोई कसर नहीं छोड़ी थी लेकिन एक दिन खांसते-खांसते खून की उल्टी हुई और उनका देहान्त हो गया। रात अधिक होने की वजह से शवदाह के लिए सवेरा होने का इन्तजार करने

लगे। परम्परानुसार शव को नहलाया गया उसी समय एक अविश्वसनीय चमत्कार हुआ। चतुर्वेदी जी की सांस अचानक चलने लगी। चेकअप कराया तो डॉक्टर ने बतलाया कि जीवित हैं और कुछ ही क्षणों बाद चतुर्वेदी जी ने आंखें खोल दीं। जब उनकी आंखें खुली तो यह मालूम हुआ कि उनकी अन्तयेष्टि की तैयारी की जा रही थी क्योंकि उनकी मृत्यु छः घण्टे पूर्व ही हो चुकी थी तो उनके आश्चर्य की सीमा न रही। इस घटना के लगभग तीन वर्ष बाद चतुर्वेदी जी की मृत्यु हुई। खैर,

निशा के बाद मेरे जीवन में वह दूसरी घटना थी। मेरे यह पूछने पर कि आपको मृत्योपरान्त क्या अनुभव हुआ तो इसके उत्तर में चतुर्वेदी जी ने बतलाया वह सचमुच आश्चर्यजनक था। चतुर्वेदी जी ने कहा कि मुझे जब खून की उल्टियां हो रही थी उसके कुछ ही समय पश्चात मेरे सामने घोर अन्धेरा हो गया।

फिर क्या हुआ?

मुझे कुछ पता नहीं।

कुछ सोचते हुए बोले- जब होश आया तो देखा खाट पर मेरा शरीर पड़ा है और परिवार के लोग मेरी खाट के चारो ओर बैठे हुये हैं। मुझे आश्चर्य हुआ कि आखिर बात क्या है? तभी दो व्यक्ति आये और मुझसे कहने लगे चलो मेरे साथ। यहां अब तुम्हारा कोई काम नहीं है।

वे दोनों आदमी कैसे थे?

दोनों सामान्य रूप-रंग और आकार-प्रकार के थे। उनके चेहरे पर शान्ति थी और आंखों में था तेज।

मैं बिना कोई प्रतिवाद किये उनके साथ चलने लगा। वे मुझे कहां ले जा रहे थे मेरी समझ में नहीं आया। काफी दूर जाने के बाद मुझे सामने एक बहुत बड़ा पुराना किला दिखलायी दिया। किले के विशाल फाटक पर काफी भीड़ थी मगर भीड़ में कोई किसी से बोल नहीं रहा था। सभी खामोश थे। सहसा मेरी नजर नरोत्तम पाण्डेय पर पड़ी।

कौर नरोत्तम पाण्डेय?

मेरा पटिदार था। कुछ दिन पहले उसकी शादी हुई थी। न जाने किस बात पर उसने जहर खाकर आत्महत्या कर ली थी। तब मैंने उससे पूछा कि नरोत्तम तुमने जहर क्यों खा लिया था। उसने कहा नहीं मेरी पत्नी ने दूध में जहर मिलाकर खिला दिया था। तब से यहीं खड़ा हूँ। फिर थोड़ी ही देर बाद फाटक खुला। भीड़ भीतर जाने लगी। मैं और नरोत्तम भी भीतर चले गये। भीतर काफी लम्बा चौड़ा मैदान था जो चारो ओर दीवारों से घिरा हुआ था जेल की कमरों की तरह। हर कमरे का अपना-अपना फाटक

था और उनके ऊपर कुछ लिखा हुआ था जो मैं पढ़ न सका। सभी लम्बी कतार बना कर खड़े हो गये। एक लम्बा चौड़ा पहलवान जैसा व्यक्ति एक ऊंचे मंच पर खड़ा होकर जोर-जोर से चिल्ला कर कह रहा था कि जिन लोगों ने जहर खाकर, फांसी लगाकर अथवा पानी में डूबकर आत्महत्या की है वे लोग फलां कमरे में चले जायें। इसी प्रकार जो लोग भयानक रोगादि से मरे हैं वे लोग फलां कमरे में चले जायें।

मैंने देखा कतारों से निकल-निकल कर लोग अपने-अपने कमरे में जा रहे थे। रोग से मरने वाले अपने कमरे में चले गये। अपने-अपने भयानक रोगों और बीमारियों की असहनीय पीड़ा से सभी रोगी कराह रहे थे। एक तरफ दवा की गंध तो दूसरी तरफ मल-मूत्र की गंध फैल रही थी। यही हालत अन्य जगहों की भी थी। मरते समय जो पीड़ा जिसे थी वह स्थायी बन गयी थी उनके लिये। मैं अपने कमरे में गया तो दूसरे लोगों की तरह मैं भी रोने कलपने लगा। तब वे दोनो व्यक्ति आये और कहने लगे तुम यहां से जाओ फिर आना। उनका इतना कहना था कि मुझे गर्मी लगने लगी और मैंने आंखे खोल दीं। अन्त में चतुर्वेदी जी बोले वह सब सपना सा लगता है लेकिन इस बात का पता अवश्य लगाया कि सचमुच नरोत्तम ने जहर खाया था कि उसकी पत्नी ने दिया था। बात सच निकली उसकी पत्नी ने ही प्रेमी के चक्कर में जहर दे दिया था। इससे यही साबित होता है कि वह सब कुछ सपना नहीं यथार्थ था। इतना कहकर चतुर्वेदी जी आकाश की ओर शून्य में देखने लगे।

चतुर्वेदी जी ने जो विवरण दिया था उससे इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि मृत्यु के समय जो शारीरिक स्थिति रहती है वह मृत्योपरांत स्थायी हो जाती है। यह पीड़ा अथवा कष्ट तबतक बनी रहता है जबतक कि आत्मा कहीं जन्म नहीं ले लेती।

मरणासन्न व्यक्ति को किसी न किसी रूप में अपनी मृत्यु का आभास हो ही जाता है। सबसे पहले मरणासन्न व्यक्ति जिस धर्म और संस्कार का होता है उससे ही सम्बन्धित आत्मायें उसे घेर लेती हैं। जिन्हे देखकर मरणासन्न व्यक्ति यह कल्पना कर लेता है कि यम के दूत हैं जो उसे लेने आये हैं।

वह एक अंगेज युवक था उसे एक क्षय रोग हो गया था। बम्बई के एक मशहूर अस्पताल में अपनी अन्तिम सांसे ले रहा था। उसका नाम था काल्टन। काल्टन और उसके सम्बन्धी जीवन की आशा त्याग चुके थे। काल्टन हमेशा अपने पास बैठे लोगों से प्रार्थना करने का अनुरोध करता था। एक दिन अचानक काल्टन ने कहा कि देखो सीढ़ी पर रखा गिलास टूट गया है और कोई देव पुरूष मुझे अपने साथ ले जाने के लिये आया है। वहां बैठे लोगों ने देखा तो ऐसा कुछ भी नहीं हुआ था वहां कोई आकृति नहीं दिखी लेकिन गिलास अपने स्थान पर ही रखा फटकर बिखरा हुआ था। इधर

काल्टन अपने बिस्तर पर ही बेसुध होकर गहरी नींद में हो गया। उस समय उसके चेहरे पर शान्ति और पवित्र सौम्य आभा थी। वह शरीर और संसार को छोड़कर हमेशा के लिये जा चुका था शायद उसी अदृश्य देव पुरूष के साथ।

मगर कुछ लोग ऐसे होते हैं जो मृत्यु के संकेत मात्र से भयभीत हो जाते हैं और मृत्यु से संघर्ष करने लग जाते हैं और उन्हे लम्बे समय तक उस संघर्ष का परिणाम भोगना पड़ता है। उदाहरण के रूप में मैं अपने रिश्तेदार चन्द्रशेखर जो कि कैंसर से पीड़ित था उनकी चर्चा करूंगा। चन्द्रशेखर जी की बाह्य चेतना लुप्त हो गयी थी एक प्रकार से मुर्च्छित अवस्था में थे। परन्तु अचानक वे उठे और कहने लगे यमदूत मुझे लेने आ रहे हैं तुम लोग मुझे छुपा दो ताकि मुझे ले न जा सके।

उनके साथ के लोगों ने बाहर एक पेड़ की ओर देखा जिसकी ओर इशारा किया था चन्द्रशेखर ने। इशारा करते ही पेड़ पर बैठे कौवे उड़ गये मानो पेड़ पर कोई आकर बैठ गया हो। पेड़ पर कहीं कुछ नहीं दिखायी दिया। इसे एक विचित्र संयोग ही कहा जायेगा। मरणासन्न व्यक्ति ने इशारा किया और कौवे उड़ गये और मरीज बेहोश हो गया। कुछ ही क्षणों में उसके प्राण निकल गये।

मेरे इन दोनों प्रत्यक्ष विवरण शरीर विज्ञान द्वारा मृत्यु को परिभाषित करने के इस प्रयास पर एक चिन्ह लगाते हैं। हृदय में रक्त संचार प्राणों के द्वारा होता है। प्राणों में शिथिलता आने पर उस रक्त संचालन क्रिया में भी शिथिलता आने लगती है। अन्त में हृदय शरीर में रक्त प्रवाहित करना बन्द कर देता है तो मस्तिष्क को पोषण मिलना बन्द हो जाता है और उसका तीव्र गति से क्षय होने लग जाता है और उसी के साथ व्यक्ति का अस्तित्व भी धीरे-धीरे समाप्त होने लग जाता है। सीढ़ी पर रखे गिलास टूटना और पेड़ पर बैठे कौवों का उड़ जाना दोनो व्यक्तियों की मृत्यु को मात्र संयोग नहीं कहा जा सकता। वास्तव में मृत्यु पूर्व के ये अनुभूतियां मृत्यु की परिकल्पना को और अधिक रहस्यमय बना देती है। दोनों घटनाओं हमारे देश की हैं। इसलिए आप यह कह सकते हैं कि भारतीय मानस के अवचेतन पर भारतीय धार्मिक विचारों व अन्धविश्वासों के प्रभाव के कारण भी मैं इन संयोगों को महत्व दे रहा हूँ। परन्तु तकनीकी और वैज्ञानिक दृष्टि से उन्नत देश अमेरिका से भी कुछ ऐसे ही विवरण प्राप्त हुये हैं।

अमरीका के इदाही शहर में १२ अप्रैल १९७५ के प्रातः मार्था ईगन नामक एक महिला ने रोज की तरह अपने दिन की शुरूआत की थी। वे अपने परिवार के साथ नाश्ते के लिये बैठी ही थी कि उन्हे दिल का दौरा पड़ गया। अस्पताल ले जाया गया।

अस्पताल पहुंचते ही वह मर गयी लेकिन डॉक्टरों ने प्रयास जारी रखा। परन्तु मार्था इन सारे प्रयासों को उपयुक्त स्थान से देख रही थी। आम लोगों की तरह उसे मरने का दुख नहीं सता रहा था। उसे इस बात की चिन्ता थी कि उसकी माँ को जब उसकी मौत के बारे में पता चलेगा तो वह कितनी दुखी होगी। माँ का ख्याल आते ही मार्था के सामने वार्मेट शहर के उसके घर में कुर्सी में बैठी उसकी माँ की आकृति उपस्थित हो गयी। पुनर्जीवित होने के बाद मार्था ने बताया कि मेरी माँ कुर्सी पर बैठी हुई थी मैं भी अस्पताल के इमरजेन्सी वार्ड में थी और साथ ही माँ के शयन कक्ष में भी थी। दूर-दूर की दो जगहों पर एक साथ अपनी उपस्थिति का एहसास हो रहा था। मैंने माँ से कहा- माँ मुझे दिल का दौरा पड़ा है जिससे मेरी मृत्यु हो गयी है। मैं चाहती हूँ कि तुम दुखी मत होना लेकिन उसने न तो मेरी तरफ देखा और न तो कोई बात ही सुनी। मैं उसके समीप बैठ गयी लेकिन माँ पुस्तक पढ़ने में तल्लीन थी। मैं उनका ध्यान अपनी ओर खींचना चाहती थी लेकिन मुझे डर था कि कहीं उनकी मृत्यु न हो जाये मेरे इस तरह ध्यान खींचने की वजह से। अचानक जैसे सब कुछ लुप्त हो गया और मैंने अपने आपको इमरजन्सी वार्ड में पाया। उसे जब होश आया तो उसने अपने परिवार जनों के साथ ही अपने भाई को भी पाया और मार्था ने जब पूछा कि उसे कैसे पता चला मेरी बीमारी का तो उसने कहा कि माँ ने बतलाया कि मार्था के साथ कुछ अनहोनी घटने वाली है। उसका अहसास उन्हे कैसे हुआ यह वे न बतला सकीं।

क्या मृत्यु के बाद मार्था ने अमरीका की दो-तिहाई दूरी तय करके अपनी माँ से सम्पर्क किया था?

इस प्रश्न के उत्तर में मैं निःसन्देह यह कहूंगा कि आत्मा जिसे चेतना भी कहते हैं सूक्ष्मतम् से सुक्ष्मतम् तत्व है। उसके लिए टाईम यानि स्पेस कोई महत्व नहीं रखता है। आकाश में सर्वत्र एक प्रकार का सूक्ष्मतम् वायु जिसे वैज्ञानिक 'ईथर' कहते हैं विद्यमान है। उसमें प्रवेश की गयी ध्वनि अथवा शब्द के लिए काल और स्थान का महत्व नहीं है। जैसे रेडियो स्टेशन के स्टूडियों में होने वाले संगीत की ध्वनि उसी समय सर्वत्र रेडियो में सुनायी देती है समय व स्थान उसमें बाधा नहीं उत्पन्न करते। उसी प्रकार आत्मा भी उस सूक्ष्मतम् वायु जिसे योग की भाषा में प्राण वायु कहते हैं और वैज्ञानिक भाषा में कहते हैं ईथर में मिलकर समय और स्थान से शून्य हो जाती है और ऐसे ही स्थिति में वह एक ही समय में कई स्थानों का दृश्य देख सकती है। मृतावस्था में जब आत्मा शरीर छोड़कर बाहर निकलती है तो उसी समय सूक्ष्मतम् वायु अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है और मृत व्यक्ति को हल्केपन का भी अनुभव होता है।

मूर्च्छा तीन तरह की होती है शारीरिक, मानसिक और आत्मिक मूर्च्छा। मनुष्य प्रायः आत्मिक मूर्च्छा से मरता है। शरीर छोड़ते समय उसे इस बात का ज्ञान नहीं रहता है कि वह मर रहा है। उसी मूर्च्छा के कारण मरने के बाद भी उसकी अज्ञानता बनी रहती है दीर्घकाल तक। जब कभी वह मूर्च्छा भंग होती है तभी उसे इस बात का एहसास होता है कि वह मर चुका है अब संसार में कोई सम्बन्ध नहीं है।

संयोगवश यदि आत्मिक मूर्च्छा में किसी व्यक्ति की मृत्यु नहीं हुई तो वह मार्था की तरह मृत शरीर को अपने परिवार के सदस्यों की तरह स्पष्ट रूप से देख सकता है और अपना संदेश भी देने की कोशिश करता है लेकिन ईथर में पहुंची ध्वनि साधारण कानों से सुनायी नहीं पड़ती। उसी प्रकार सूक्ष्मतम् वायु में प्रविष्ट आत्मा की आवाज शरीरधारी के पास नहीं पहुंच सकती है।

योग शास्त्र के अनुसार हमारे शरीर में भी कई शून्य स्थान हैं। जिनमें ईथर का अस्तित्व तत्व मात्र विद्यमान रहता है। ऐसे शून्य स्थानों को योग की भाषा में चक्र अथवा शक्ति केन्द्र कहते हैं। योग विज्ञान के अनुसार उन सातों चक्रों का सम्बन्ध सम्पूर्ण विश्व ब्रम्हाण्ड से है। विशेष यौगिक क्रियाओं द्वारा आत्मा जिस केन्द्र से सम्पर्क स्थापित करती है उस केन्द्र से सम्बन्ध रखने वाला लोक-लोकान्तर का अवलोकन योगीगण एक स्थान पर बैठे ही बैठे कर लिया करते हैं क्योंकि शरीरस्थ ईथर का सम्बन्ध विश्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त ईथर से है। आत्मा शरीरस्थ केन्द्र के ईथर में पहुंच कर विश्व ब्रह्माण्डीय ईथर से अपना सम्बन्ध जोड़ लेती है।

इस सम्बन्ध में हम यहां पाश्चात्य घटना का विवरण देंगे। मार्था की कथा तो दूसरों को एहसास दिलाने पर ही समाप्त हुयी परन्तु अमरीका के अकीसस के एक गर्वनर श्री डेविड प्राइअर की ३६ वर्षीया पत्नी बारबरा की अनुभूतियों ने तो अपनी प्रामाणिकता तक सिद्ध कर दी।

सन् १६४१ में फेफड़े में खून जम जाने के कारण वाशिंगटन के अस्पताल में दाखिल होना पड़ा। जहां उपचार करते समय उनकी मृत्यु हो गयी और डॉ. डोनाल्ड पेन के प्रयासों ने उन्हे पुनर्जीवित कर दिया। मृत्यु के कुछ क्षणों में हुई अनुभूतियों के बारे में बतलाया कि अचानक मेरा अस्तित्व हवा में तैरने लगा, मैं शान्त थी। मैं अपना शरीर बिस्तर पर पड़ा हुआ देख रही थी। पर मैंने अपने आपको उससे बिलकुल अलग महसूस किया। मैंने देखा कि डॉ. पेन मेरे छाती की मालिश कर रहे थे और मैं हैरान थी कि वे इतनी मेहनत क्यों कर रहे हैं? मैं तो पूरी तरह से प्रसन्न थी। तभी एक डॉ. ने मेरे सीने में एक सुई लगायी। तभी मुझे अहसास हुआ कि मैं अपने भाई

के पास पहुंच गयी हूँ जिसकी मृत्यु तीन साल पहले हो चुकी थी।

बारबारा ने आगे कहा कि जैसे ही वह भाई को देखने के लिये मुड़ी तभी डॉ. पेन की आवाज सुनायी दी। वे जोर-जोर से बोल रहे थे 'सांस लो, बारबारा जोर से सांस लो।'

'नहीं-नहीं! डॉ. पेन आप मुझे सांस लेने के लिए विवश न कीजिये। बारबारा अपने सीने से उठते हुए पीड़ा से कराह रही थी। मुझे स्वर्ग से अलग मत कीजिए। बारबारा ने बतलाया कि वह पुनर्जीवित होना नहीं चाहती थी। अगर उसके वश में होता तो वह डॉक्टरों को ऐसा करने से रोक लेती परन्तु वह जीवन में फिर लौट आयी।

बारबारा के इस मामले में उल्लेखनीय बात यह है जो बाद में खोजबीन से पता चला कि डॉ. पेन ने उसी प्रकार उपचार किया जिस तरह बारबारा ने देखा था। बारबारा अचेत मृतप्राय सी अस्पताल के बिस्तर पर पड़ी थी तो वह क्या था जिससे बारबारा की चेतना के माध्यम से सारी गतिविधियों का अवलोकन किया।

यदि मृत्यु के बाद व्यक्ति का अस्तित्व समाप्त हो जाता है तो फिर बारबारा का अनुभव इतना सच क्यों है? यही वह स्थान है जहां आत्मा के विषय में और उसके अस्तित्व के विषय में हमें सोचने के लिये विवश कर देता है। खैर, यह तो प्रमाणिक अनुभूतियां हैं लेकिन कुछ अनुभूतियां नितान्त व्यक्तिगत होती हैं जिनका प्रमाण खोजने से भी नहीं मिलता। इस सम्बन्ध में हम यहां कुछ उदाहरण दे रहे हैं।

वह भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का युवा सदस्य था। नाम था बृजबिहारी (काल्पनिक)। साम्यवादी होने के कारण वह द्वन्दात्मक भौतिकवाद पर विश्वास करता था। अन्धविश्वासों में जरा सी भी आस्था न थी। लेकिन अपनी गंभीर बीमारी के दौरान उसने जो कुछ अनुभव किया उसने काफी परेशान कर दिया। कुछ क्षणों तक उसकी हृदयगति रूक गयी। उन कुछ क्षणों में उसे लगा जैसे वह आकाश में बादलों के बीच उड़ रहा है और वह हवा के समान हल्का है। उड़ते-उड़ते वह एक बहुत ही सुन्दर स्थान में पहुंच गया। उस समय मधुर संगीत गूंज रहा था। लेकिन कुछ ही क्षणों बाद एक झटके के साथ डाक्टर उसे वापिस खींच लाये और वह सब कुछ तुरन्त ही गायब हो गया। इस प्रकार बृजबिहारी को भी पुनर्जीवन में विश्वास हो गया।

इसी सन्दर्भ में एक दूसरा उदाहरण भी लीजिये- रामसेवक नाम का एक किसान था। उसकी आयु साठ वर्ष के लगभग थी। वह एक लम्बी बीमारी के कारण कुछ समय के लिये मर गया। उस अवधि में वह एक भव्य महल में पहुंच गया जिसकी दीवारें सोने चांदी की थीं। उसी महल में आभूषण पहने हुए युवतियां एक तालाब में स्नान

कर रही थीं। वायु मण्डल में सुगन्ध भरा बीच में एक मण्डप था जिस पर पांच महात्मा बैठे हुए थे। सारा माहौल किसान को सम्मोहित कर दिया था। वह आनन्द में डूबा ही था कि जैसे किसी ने उसे जमीन पर पटक दिया हो। वह झल्ला उठा और उसके मुंह से ये शब्द निकले गये थे- 'तुमने मुझे क्यों बचा लिया?' खैर,

अपने इस प्रसंग में जिन पात्रों का उल्लेख किया है। उनमें कुछ भारतीय तो कुछ विदेशी थे। इससे यही सिद्ध होता है कि आत्मा के अस्तित्व को कहीं न कहीं स्वीकार करना ही पड़ेगा। यदि मृत्यु के बाद अस्तित्व समाप्त हो जाता तो कौन सी वस्तु थी जिसने मार्था और बारबारा के मुंह से उनका उन क्षणिक और सत्य घटनाओं का अनुभव कराया।

जहां तक पारलौकिक जगत का प्रश्न है उसके अस्तित्व को इन्कार नहीं किया जा सकता उसका अस्तित्व है। उसमें कल्पना का कोई स्थान नहीं है। अब वैज्ञानिकों ने भी पारलौकिक जगत की सत्ता को स्वीकार कर लिया है। उनका कहना है कि इस दुनिया से कहीं अधिक सुन्दर वह दुनिया है। मगर वह कहां है? यह नहीं बतलाया जा सकता है। एक बात अवश्य है वह यह कि मनुष्य जैसी विचारधारा और जैसा धार्मिक और सामाजिक संस्कार होता है उसी के अनुसार मरणोपरान्त अनुभव तथा उस पारलौकिक जगत के अस्तित्व का साक्षात्कार होता है।

मरने के बाद मनुष्य में विशेष रूप से दो मोह रहते हैं। पहला अपने पार्थिव शरीर के प्रति मोह तथा दूसरा अपनी किसी खास वासना के प्रति मोह। यदि पहला मोह या आकर्षण है तो मनुष्य तत्काल किसी गर्भ में प्रवेश कर शरीर को उपलब्ध हो जाता है। यदि दूसरा मोह या आकर्षण है तो वह पारलौकिक सत्ता में अपना अस्तित्व बनाये रखेगा। जब तक कि उसकी वासना क्षय नहीं हो जाती।

दूसरे प्रकार का मनुष्य को कोई सगा सम्बन्धी या परिचित मरता है तो उस मनुष्य की आत्मा तत्काल वहां पहुंच जाती है। जिसे देखकर मृतक को काफी राहत मिलती है। वह समझने लगता है कि ऐसी स्थिति में भी उसका कोई सम्बन्धी उसके पास है और वे लोग आपस में बातें करते हैं एवं नयी-नयी परिस्थियों से परिचित भी कराते हैं। इसी संदर्भ में मैं एक दो उदाहरण देना चाहूंगा।

मुरारी नाम का युवक था। उसको रक्त दोष की भयानक बीमारी थी। वह मृत्यु शैया पर पड़ा था। उसकी माँ काफी समय पहले मर चुकी थी। मुरारी को अपनी माँ से काफी लगाव था। एक दिन उसने अपने पिता से कहा- मेरा समय अब पूरा हो गया है। माँ मुझे बुला रही है। देखिये वह बाहें पसारे मेरी प्रतीक्षा में खड़ी है। आप

उसे नहीं देख रहें? यह सब कहते समय मुरारी पूरे होश में था। फिर उसने कहा- देखिये उधर मेरी माँ बुला रही है मुझे और यही कहते-कहते उसने अपने हाथ बढ़ाये और एक तरफ लुढ़क गया। वह अपनी माँ की गोद में हमेशा के लिये समा गया था।

मरणोपरान्त ऐसी अनुभूतियों के परिणाम काफी लाभदायक भी होते हैं। एक अधेड़ महिला को निमोनिया हो गया था। वह मरणासन्न अवस्था में अचेत हो गयी थी। बाद में होश आने पर उसने बतलाया कि वह स्वर्ग पहुंच गयी थी। वहां कई मकान बने थे परन्तु एक मकान अधूरा था। मैंने यमदूत से पूछा कि यह मकान अधूरा क्यों है तो उसने कहा तुम्हारे लिये है। अभी तुम्हारा समय पूरा नहीं हुआ है तुम्हे अपने बेटे की शादी करके पोते के जन्म के बाद ही तुम्हारे दिन पूरे होंगे। इतने में ही वह महिला मृत्यु से वापस आकर स्वस्थ जीवित रही और पोते के जन्म के बाद ही उसकी मृत्यु हुई।

इस प्रसंग से प्रेरित होकर मैं अपनी एक अविश्वसनीय अनुभूति लिपिबद्ध कर प्रस्तुत कर रहा हूँ। इन्ही सब से प्रेरित होकर मैंने मरणोपरान्त जीवन के विषय में शोध और अन्वेषण करने का निर्णय लिया और बाद में मरणोत्तर जीवन का रहस्य शीर्षक से पुस्तक लिखी।

निशा की आकस्मिक मृत्यु के वज्राघात ने मेरे मन मस्तिष्क को एकबारगी झकझोर दिया था। दो तीन वर्षों तक मेरी मानसिक स्थिति ठीक नहीं रही और जीवन शून्यवत् हो गया।

आत्मा अमर है इस तथ्य में कोई संदेह नहीं। आत्मा एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को उपलब्ध हो जाती है। आत्मा द्वारा काया प्रवेश की अद्भुत, अविश्वसनीय घटनायें भारतीय योगियों और साधकों के जीवन में घटी हैं।

सन् १९५० नवम्बर का महीना था। उस महीने की १८ तारीख मुझे हमेशा याद रहेगी। वह दिन मेरे जीवन की एक अद्भुत और आलौकिक दिन था। उस दिन मैंने आत्मा की अमरता का अनुभव किया था। मृत्यु के क्षणों का अनुभव किया था और तभी से मुझे जीवन को देखने और समझने का नया दृष्टिकोण मिला। उस दिन अचानक मेरे सीने में दर्द होने लगा। सोचा कि वायु के कारण भी सीने में दर्द हो रहा होगा लेकिन दर्द बढ़ता ही गया। जब असह्य होने लगा तो मैंने अपने मित्र जिनका नाम चन्द्रशेखर स्वामी से कहा कि शीघ्र डॉक्टर को बुलाओ। मेरा दर्द बढ़ता ही जा रहा था। कुछ क्षण बाद मेरा बायां अंग शिथिल पड़ गया और एकाएक अन्तर्मन में ऐसा लगा कि अब चलने की तैयारी है मेरी जीवन यात्रा समाप्त होने वाली है। यह

अनुभूति होते ही मुझे अपने शरीर के प्रति मोह और आकर्षण होने लगा। मेरी यह दशा देखकर मेरे मित्र व परिजन भयभीत और चिन्तित होने लगे।

मृत्यु की काली छाया ने मेरे शरीर को घेर लिया था। तब मुझे अपनी इष्ट देवी माँ काली का स्मरण हो आया। मैंने अपने जीवन में कई विकट अवसरों पर उनके अद्भुत चमत्कार के साक्षात्कार किये हैं। उन्ही अलौकिक शक्ति का स्मरण किया और मन ही मन में कहने लगा माँ मुझे इतनी जल्दी इस संसार मत अलग करो। मैं जिस उद्देश्य को लेकर और जिस लक्ष्य की सिद्धी के लिए संसार में आया हूँ उसे पूरा करने दो। मुझे संसार में रह कर बहुत कुछ करना है। माँ मैंने तो अपना सारा जीवन तुम्हारे चरणों में अर्पित कर दिया है।

इतना कहकर मैंने अपनी आंखे खोलीं। मेरे पास खड़े लोगों के चेहरे स्याह पड़ गये थे। वे सभी गहरे शोक में डूबे हुये थे। मैंने अपने निकट खड़े स्वामीजी से कहना चाहा कि मेरी अन्तयेष्टि, श्राद्ध वगैरह अच्छे से कराना ताकि प्रेत मुक्ति हो सके। लेकिन अन्तिम वाक्य नहीं कह पाया चेतना शून्य हो गया और उसी पल मेरी आत्मा शरीर से अलग हो गयी। निकट में सभी लोगों की आंखों से आंसू छलक रहे थे।

क्षणभर के लिये मेरी चेतना शरीर में लौटी थी। जब मुझे अस्पताल ले जाया जा रहा था और हृदय रोग विशेषज्ञ डॉ. कपूर ने ३०-३५ मिनट उपचार किया। उसी समय मैं संज्ञा शून्य हो गया। फिर मैं अपने पार्थिव शरीर को अलग होकर देखने लगा। अस्पताल में क्या हुआ, यह तो मुझे मालूम नहीं लेकिन डॉक्टरों ने मुझे मृत घोषित कर दिया।

मैं कमरे में एक ओर खड़ा यह सब कुछ देख सुन-समझ रहा था। उसी समय स्वामी कैवल्यानन्द परमहंस देव को अपने शरीर के निकट देखा मैंने। शायद स्वामी ने उन्हे सूचना दे दी थी। परमहंस देव नगवां में गंगा किनारे रहते थे। बहुत बड़े योगी थे। मुझ पर बराबर कृपा बनाये रहते थे। मैं बराबर उनके आश्रम जाया करता था। परमहंस देव गंभीर मुद्रा में मेरे शरीर के निकट कुछ मिनट तक खड़े रहे। उस समय मुझे अजीब सी शान्ति का अनुभव हो रहा था। उन्होने मेरे शरीर को स्पर्श किया। फिर नाभि व हृदय की मालिश की। उसके बाद मेरा मुंह खोलकर 'ऊं' मंत्र के साथ अपने मुंह से उसमें हवा भरना शुरू किया। अन्त में मेरी नाभि को अपने अंगूठे से कसकर दबाया। जब वे ये सारी चेष्टा कर रहे थे उस समय मुझे अपने आप में एक विचित्र सा अनुभव हो रहा था। फिर मैं अचानक अचेतन अवस्था में चला गया। आश्चर्य की बात तो यह है कि जब मेरी चेतना लौटी तो उस समय मेरा हृदय जोर-जोर से

धड़क रहा था। डॉ. कपूर ने हृदय की धड़कन जारी रखने के लिये तुरन्त इन्जेक्शन दे दिया और कहा कि रोगी के बचने की दो प्रतिशत से ज्यादा की आशा नहीं है। शायद स्वामीजी के प्रयासों की वजह से मैं फिर जीवित हो रहा था लेकिन क्षणभर बाद ही मैं दुबारा शरीर से अलग हो गया और तब मैंने देखा कि मेरे सामने कोई भौतिक दृश्य नहीं है बल्कि चारो ओर कुहरा सा छाया हुआ है और उसी कुहरे के भीतर से दो दिव्य महापुरूष निकले तथा दोनों ओर चुपचाप खड़े हो गये। वे दोनो मनवाकृति में थे तो अवश्य मगर उनमें विलक्षणता भी थी। उनके कान बड़े-बड़े, आंखें लम्बी, माथा काफी चौड़ा, बाल गर्दन तक और लम्बाई ७ फुट से कम न रही होगी। उनके सामने बौना सा लग रहा था मैं। उनकी देह से गुलाब के फूल की सी सुगंध निकल रही थी। वे दोनों दिव्य पुरूष मुझे चुपचाप अपने साथ लिये आकाश की ओर चलने लगे। मैं भी उनके साथ तीव्र गति से आकाश में चलने लगा। मेरा शरीर पार्थिव नहीं था मगर कैसा था वह भी नहीं बतला सकता हूँ। बहुत दूर जाने पर देखा चारो ओर गहरी नीलिमा फैली है, सामने विशाल सागर देख रहा था। दिव्य पुरूषों ने बतलाया कि अब तुम भू मण्डल की सीमा पर हो। अब तुम मनोलोक में प्रवेश करोगे। उनके इतने कहते ही काले स्याह पानी वाले सागर में विशाल हिमखण्ड तैरता हुआ नजर आया। उसी हिमखण्ड में महल और उसी में सुन्दर फूलों के बागीचे थे और असीम शान्ति का अनुभव हो रहा था। न घर, न परिवार सब कुछ विस्मृत हो चुका था। उसी समय मैंने देखा कि जगमगाता हुआ तेजस्वी प्रकाशपुञ्ज मेरे निकट आ रहा है। मेरी आंखें चकाचौंध हो गयीं। विविध प्रकार के रत्नों से जड़ित वह बहुत ही सुन्दर विमान था। उसी विमान में सुसज्जित सिंहासन था जिसमें माँ महामाया जगदम्बा जैसी कोई नारी बैठी हुई थी। उनका गंभीर मुख लावण्यमय था।

मैं प्रसन्नता और आत्म भक्ति से विभोर हो गया उस समय। उस देवी का वैभव देखकर रोमांचित हो रहा था। उन दोनों दिव्य पुरूषों की ओर संकेत किया और वे दोनों मुझे पकड़े आकाश की ओर उड़ने लगे। लगा कि मैं भी उनके साथ आकाश में उड़ रहा हूँ और अद्भुत अलौकिक आनन्द की अनुभति हो रही थी उस समय मुझे। उसी समय मेरे कानो में धुन सुनायी पड़ी मैंने उनसे पूछा कि ये ध्वनि कहां से आ रही है तो वे बोले कि यह नाद संगीत है। फिर आगे बढ़ने पर दिव्य आत्मायें दिखी जो कि धरती पर जन्म लेने के लिये अनुकूल और योग्य गर्भ खोज रही हैं।

हम धीरे-धीरे नीचे उतरते जा रहे थे। मैंने देखा चारो तरफ घना कुहरा छाया हुआ है। उसी समय मुझे यह भी अनुभव हुआ कि मेरी आत्मा मेरे मृत शरीर में प्रवेश

कर रही है। मेरी सुषुप्त चेतना धीरे-धीरे लौट रही है। मेरी आंखें बन्द थीं। भोर के समय जब मैं पूर्ण चैतन्य हुआ तो सब कुछ स्वप्नवत् लग रहा था। जैसे मेरा पुनर्जन्म हो गया हो। मेरी आत्मा की आलौकिक यात्रा खत्म हो चुकी थी। मैंने सिर घुमाकर चारो तरफ देखा- मेरी देह के अगल-बगल रबर की नलिकायें लगीं थीं। इलेक्ट्रिक मॉनिटर चल रहा था·। मुझे ग्लूकोज और ऑक्सीजन दिया जा रहा था। मुझे जीवित होते देखकर डॉक्टरों को भी आश्चर्य हुआ।

सन् १६४५ से सन् १६५० तक की अवधि में मैंने मृत्यु और पुनर्जन्म विषय पर जो अन्वेषण किया। उसने मुझे एकबारगी चमत्कृत कर दिया इस रहस्यमयी दिशा में। स्वयं मृत्योपरान्त का विचित्र अनुभव और साथ ही योगी परमहंस देव के यौगिक चमत्कार ने मुझे बहुत कुछ सोचने समझने को बाध्य कर दिया। परामनोविज्ञान के साथ-साथ योग विज्ञान के गूढ़ और गोपनीय रहस्यमय विषयों पर भी चिन्तन-मनन करने लगा मैं।

व्यक्ति अपने जीवन काल में जिस इन्द्रिय से अधिक से अधिक कार्य लेता है। मृत्यु के समय उसी इन्द्रिय के मार्ग से वह शरीर का त्याग करता है और त्याग करते समय इन्द्रिय का मार्ग फिर खुला का खुला ही रह जाता है।

मानव जीवन में दो महत्वपूर्ण घटनायें हैं पहली जन्म की और दूसरी मृत्यु की। पहली घटना के समय भौतिक शरीर में वायवीय शरीर का प्रवेश होता है और दूसरी घटना के समय भौतिक शरीर से वायवीय शरीर अलग होता है। प्रकृति का यह बहुत ही बड़ा ऑपरेशन है। दोनों घटनाओं के समय व्यक्ति चेतना शून्य हो जाता है। भले ही कुछ क्षणों के लिए ही हो।

भौतिक शरीर से अलग होने के बाद वायवीय शरीरधारी आत्मा उसके निकट पुनः शरीर में प्रवेश करने के उद्देश्य से चक्कर लगाती है। इस प्रयास में असफल होने के बाद वह निराश हो जाती है। लेकिन दोबारा प्रवेश करने के लिए पुनः शरीर के आस-पास चक्कर लगाने लगती है। जब उसे विश्वास हो जाता है कि वह कभी भी पार्थिव शरीर में प्रवेश नहीं कर सकती है तो वह फिर अन्तरिक्ष में नये शरीर की खोज में चली जाती है।

मुझे अन्वेषण से इस बात का भी पता चला कि आत्माओं की तीन कोटियां हैं। पहली कोटि की आत्मायें दिव्य और उच्च आत्मायें कहलाती हैं। दूसरी कोटि की आत्मायें निम्न और अधम कहलाती हैं। वैसे अधम आत्मायें तत्काल अपने लिये शरीर की व्यवस्था कर लेती है। लेकिन जबतक उनको अपनी वासना के अनुकूल स्थानों व वातावरण का निर्माण नहीं कर लेती तबतक वे पृथ्वी के बाहर किसी अन्य लोक में

विचरण नहीं करती। जिस आत्मा में आत्मबल और मनोबल का चरम विकास हुआ रहता है वे ही आत्मायें पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण के बाहर निकलकर अन्य लोकों में संचरण करती हैं। ऐसी आत्माओं का शीघ्र इस संसार में वापस लौटना भी नहीं होता।

मध्यम कोटि की आत्मायें वे हैं जिन्होने जीवनकाल में आत्मोन्नति और मनोबल की वृद्धि की दिशा में किये गये अपने प्रयास में कुछ सीमा तक ही सफलता प्राप्त की होती है। इस प्रकार की आत्मायें जबतक उन्हे अनुकूल गर्भ नहीं मिलता तबतक विचारों, भावों और संस्कारों के अनुसार निजलोक का अन्तरिक्ष में निर्माण कर लेती है। वैज्ञानिकों के अनुसार मरणासन्न रोगियों को दी जाने वाली दर्दनाशक दवाओं और सुइयों के कारण भी वे मतिभ्रम के शिकार हो सकते हैं पर वे इसे नितान्त मतिभ्रम मानकर अस्वीकृत नहीं करते। अपने शोधों के बाद वे अपने जिन निष्कर्षों पर पहुंचे उसके अनुसार अधिकांश मामलों में मरणोपरान्त अस्तित्व की अनुभूति की अवधि बहुत ही कम होती है और इस अवधि में अधिकतर प्रेतात्मायें दिखलायी देती हैं। जिन्हे वे देवदूत या यमदूत समझ लेता है। जिनका मुख्य कार्य मृतात्मा को अपने साथ ले जाना होता है। दूसरे लोक के बारे में मरणासन्न रोगियों ने जब अनुभूति की है तो प्रायः वह लोक शान्त और आकर्षक स्थान के रूप में सामने आया है। दवाओं या मानसिक विकृतियों का प्रभाव रोगियों की इन अनुभूतियों पर नहीं पड़ता है। परन्तु गहन शोध एवं अध्ययन के बाद वैज्ञानिकों ने अन्तिम रूप से कहा कि मरणासन्न व्यक्तियों की ये अनुभूतियां विज्ञान और मनुष्य को निरन्तर चुनौती देती रही है और भविष्य में भी बराबर देती रहेगी।

इस प्रसंग में मैं अपनी उपलब्धि के आधार पर यही कहूंगा कि मरणासन्न व्यक्ति अपनी संस्कृति, सभ्यता और अपने विचार एवं धार्मिक प्रवृत्ति के अनुसार अनुभूति करता है और उसकी आत्मा भी उसी के आधार पर अपने लोक या जगत का निर्माण कर लेती है।

प्रायः सभी प्रमुख धर्म मानते हैं कि शरीर की मृत्यु ही अन्तिम नहीं। जीवात्मा उसके बाद भी अपना अस्तित्व बनाये रखती है। गीता के अनुसार- शरीर की मृत्यु वैसे ही है जैसे पुराने वस्त्र त्याग कर नये वस्त्र धारण करना। नया शरीर अच्छा मिले इसके लिये आदमी जप, तप, पूजा-पाठ आदि करता है।

तीसरे कोटि की आत्मायें ऐसे ही चतुर्थ आयामी लोक में विश्राम करती हैं। आकालग्रस्त होकर मरने वाले लोग भी इसी चतुर्थ आयामी लोक को उपलब्ध होते हैं। किन्तु जो लोग अपने शरीर के प्रति आशक्त होते हैं उनकी आत्मायें तीन घण्टे, तीन दिन अथवा तेरह दिन के अन्दर कुछ क्षण धरती पर स्थित उस चतुर्थ आयामी

रहस्यमय लोक में व्यतीत करने के बाद नये शरीर में प्रवेश कर जाती है। धरती स्थित चतुर्थ आयामी परलोक के अस्तित्व के सम्बन्ध में लगातार बीस वर्षों तक खोज करने पर जो नवीन तथ्य सामने आये वह निश्चय ही आश्चर्यजनक और चमत्कारपूर्ण है।

प्रत्येक पदार्थ के तीन रूप हैं पहला ठोस, दूसरा है तरल और तीसरा रूप है ऊर्जा का। इन तीनों रूपों के आधार पर मुख्य रूप से तीन जगत या लोक हैं। वैसे आयाम की संख्या सात है। उन सातों आयामों के अपने-अपने स्वतंत्र जगत हैं। वे जगत अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखते हैं। एक जगत का दूसरे जगत से सम्बन्ध होते हुए भी नहीं है। दो जगतों के बीच प्रकृति की रहस्यमयी अगोचर दीवार है। एकमात्र आत्मायें ही ऐसी शक्ति होती है जो उस रहस्यमयी प्राकृतिक दीवार का भेदन कर एक लोक से दूसरे लोक में संतरण कर सकती है।

पदार्थ के आधार पर तीन मुख्य जगत हैं- स्थूल जगत, सूक्ष्म जगत और कारण जगत। पहला जगत पदार्थ के ठोस रूप से बना है इसीलिए इसे पार्थिव जगत भी कहते हैं। दूसरा जगत पदार्थ के तरल रूप से बना है अतः सूक्ष्म जगत कहते हैं। तीसरा जगत ऊर्जामय है इसीलिए उसे कारण जगत कहते हैं। तीन मुख्य जगत की तरह तीन मुख्य शरीर भी हैं। स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर। वैसे शरीरों की भी संख्या सात है लेकिन मुख्य ये ही तीन हैं। जीवात्मा हर अवस्था और हर स्थिति में अपने आवरण के रूप में उन तीनों मुख्य शरीरों को धारण किये रहती है। स्थूल जगत, सूक्ष्म जगत और कारण जगत से सम्बन्धित तीनों क्रमशः स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर है। आत्मा इन तीनों जगतों में से जिस समय, जिस जगत में जीवनयापन करती है उस समय और उस अवस्था में उसी जगत से सम्बन्धित शरीर मुख्य हो जाता है। शेष दो शरीर का अस्तित्व गौण हो जाता है।

प्रत्येक मनुष्य के पास पार्थिव शरीर के अलावा सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर भी है। जिन सात शरीर की चर्चा ऊपर की गयी है वे हैं-१. स्थूल शरीर २. आकाशीय शरीर ३. सूक्ष्म शरीर ४. मनोमय शरीर ५. आत्म शरीर ६. ब्रह्माण्डीय शरीर ७. निर्वाण शरीर। इन सातों शरीरों का मुख्य शरीरों के साथ इस प्रकार योग अथवा तादात्म्य है। पार्थिव शरीर के साथ वासना शरीर, प्रेत शरीर और आकाशीय शरीर का अस्तित्व है। इन्ही शरीरों के गुण धर्म के कारण मनुष्य तरह-तरह के विकार तथा घृणा, क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या आदि भाव पैदा होते हैं।

सूक्ष्म शरीर के साथ प्राण शरीर, मनोमय शरीर और आत्म शरीर का तादात्म्य रहता है। इन्ही शरीरों के गुण धर्म के कारण मनुष्य चिन्तन, मनन, विचार, कल्पना

आदि करता है। उसमें आकर्षण, अभिलाषा, कल्पना का भी आविर्भाव होता है।

इसी प्रकार तीसरे शरीर के साथ यानि कारण शरीर के साथ ब्रह्माण्डीय शरीर और निर्वाण शरीर का तादात्म्य है। उन्ही दोनों शरीरों के कारण मनुष्य में मोक्ष, आध्यात्म, परम वैराग्य की भावना का जन्म होता है। मनुष्य के इन तीनों शरीर के केन्द्र क्रमशः नाभि, हृदय और मस्तिष्क का तीसरा भाग 'अधो लघु मस्तिष्क' है। शेष दो मस्तिष्क, मुख्य मस्तिष्क और लघु मस्तिष्क का सम्बन्ध नाभि केन्द्र व हृदय से है। मनुष्य की आत्मिक चेतना तीन भागों में विभक्त होकर तीन केन्द्रों में बंटी है। जब व्यक्ति की मृत्यु होती है उस समय पहले नाभि केन्द्र चेतना शून्य होता है जिसके फलस्वरूप शरीर के नीचे का अंग शीतल हो जाता है। उनमें प्राण नहीं रह जाता। उसके बाद दूसरा केन्द्र यानि हृदय चेतना शून्य और निष्क्रिय होता है जिससे कि हृदय धड़कना बन्द कर देता है। अन्तिम चरण में मस्तिष्क में खून जमने लगता है और ज्ञान तन्तु सूखने लगते है।

सात शरीर की तरह उनसे सम्बन्धित सात लोक भी हैं लेकिन तीन ही मुख्य हैं। स्थूल लोक के अन्तर्गत हमारी पृथ्वी लोक के अलावा और कितने पार्थिव लोक या जगत हैं यह ठीक-ठीक नहीं बतलाया जा सकता। लेकिन यह निश्चित है जिस प्रकार तीन शरीरों में शेष चार शरीर समाहित है उसी प्रकार मुख्य तीनों लोक में शेष चार लोक अन्तर्निहित है।

पृथ्वी के अलावा अन्य जितने पार्थिव लोक हैं उनमें हमारी पृथ्वी जैसे ही प्राकृतिक वातावरण और प्राणी है- यह तो निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता है। लेकिन एक बात अवश्य है और वह यह कि हमारे पुराण ग्रन्थों में जिन यक्ष गन्धर्व, किन्नर आदि मनुष्योचित प्राणियों की चर्चा की गयी है- वे उन्ही रहस्यमय पार्थिव जगत में है। जहां तक हमारे पार्थिव जगत की बात है उसकी सीमा के भीतर तीन लोक हैं शून्य लोक, वासना लोक और प्रेत लोक। जैसे आकाश में कहीं-कहीं भारी वायु शून्यता पायी जाती है उसी प्रकार हमारी धरती पर भी बहुत सी ऐसी जगहें हैं जहां प्रबल भू-शून्यता है। भू विज्ञान का कहना है कि जहां-जहां शून्यता है वहां-वहां चतुर्थ आयामी वातावरण का भी अस्तित्व है। इस प्रकार दो स्थानों पर चतुर्थ आयामी वातावरण है पहला आकाश में और दूसरा पृथ्वी पर।

वायु शून्यता के चतुर्थ आयामी वातावरण को ही आकाशीय लोक अथवा अन्य लोक कहा जाता है। वहीं मध्यम कोटि की दिव्यात्मायें निवास करती हैं जो पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण के बाहर निकलने में असमर्थ हैं। लेखकों, बुद्धिजीवियों, कलाकारों,

नृत्यकारों तथा अध्ययनशील व्यक्तियों की मृतात्मायें उसी शून्य लोक में विचरण करती हैं संस्कार के अनुरूप योग्य गर्भ की खोज में। जबतक उन्हे योग्य गर्भ नहीं मिल जाता तबतक वे अपने अनुरूप योग्य व्यक्तियों की अदृश्य रूप से सहायता मानसिक रूप से करती रहती हैं। लेकिन जीवित व्यक्ति को इस बात का पता भी नहीं चलता है।

इसके बाद वासना लोक आता है। वहां प्रबल शून्यता है जो व्यक्ति जीवित अवस्था में जीवन भर जिस वासना की पूर्ति में लगा रहता है वह उसी के वशीभूत होकर इस लोक को उपलब्ध होता है। ऐसी स्थिति में वासना डूबी हुयी आत्मा का भारी कष्ट होता है और वह अपने अनुरूप पृथ्वी पर ऐसा व्यक्ति खोजती रहती है और मिलने पर आत्मा तत्काल उससे तादात्म्य स्थापित कर उस व्यक्ति के इन्द्रियों की सहायता से अपनी वासना की पूर्ति करने लग जाती है।

वासना लोक से मिलता ,जुलता प्रेत लोक भी है। इस लोक में निम्नस्तर की निम्नकोटि, निम्न भावनाओं, संस्कारों तथा वासनाओं वाली आत्मायें निवास करती हैं। शरीर के प्रति मोह शून्य लोक और वासना लोक की आत्मा को भी रहता है लेकिन प्रेतात्माओं में जितना रहता है उससे कम। प्रेतात्माओं को शरीर के प्रति मोह मरते समय ध्यान शरीर पर ही रहता है और इसी वजह से मरणासन्न व्यक्ति के भीतर अन्तर्द्वन्द पैदा हो जाता है वह न मरने देता है और न ही जीने देता है। ऐसी स्थिति में वह व्यक्ति लगातार कई दिनों तक भयानक शारीरिक व मानसिक यातनायें सहन करता है।

यही वह स्थान है जहां तुलसी-गंगा जल पिलाने व भगवान के नाम का स्मरण करने को कहा जाता है ताकि मरणासन्न व्यक्ति का ध्यान भगवान के तरफ चला जाये और वह व्यक्ति शांतिपूर्वक शरीर छोड़ सके।

शरीर के प्रति, जीवन के प्रति, हर प्रकार, हर श्रेणी और हर विचार के व्यक्तियों में मोह व आकर्षण होता है केवल एक ज्ञानयोगी को छोड़कर। ज्ञानयोगी केवल परमात्म तत्व को महत्व देता है। उसका मोह व आकर्षण आत्मा के प्रति होता है।

यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर केवल मात्र भोग शरीर है। एक में 'मन' और दूसरे में 'आत्मा' की प्रधानता है। तत्काल शरीर की प्राप्ति की चेष्टा, तत्काल अनुकूल शरीर की खोज की प्रवृत्ति, तत्काल योग्य शरीर की उपलब्धि की लालसा तीनों प्रकार की आत्माओं में हुआ करती है। यहां शरीर से मेरा सम्बन्ध गर्भ से है। शिशु के जन्म के तीन घण्टे पूर्व आत्मा गर्भस्थ शिशु के शरीर में

प्रवेश करती है। इसके पहले नहीं।

कभी-कभी ऐसा संभव होता है कि यदि किसी व्यक्ति की अकाल मृत्यु हुई रहती है तो मृत्यु के बाद भी एक-दो घण्टे तक शरीर की आन्तरिक व्यवस्था में कोई परिवर्तन पैदा नहीं होता तो ऐसी अवस्था में आत्मा उसमें प्रवेश कर जाती है और उस परकाया को ही अपनी काया समझने लग जाती है। वह परकाया से वही व्यवहार करती है जैसा कि अपनी देह के साथ करती थी। क्योंकि आत्मा को अपने शरीर परिवर्तन का आभास किसी भी अवस्था में नहीं होता। चाहे वह गर्भस्थ शिशु के शरीर में प्रवेश कर नया जन्म ग्रहण करे या किसी के मृत शरीर में प्रवेश कर इस संसार में अवतरित हो। मगर यहां एक बात जान लेना चाहिए कि आत्मा के परकाया प्रवेश की स्थिति में और गर्भस्थ शिशु के शरीर में प्रवेश कर जन्म लेने की स्थिति में अन्तर है। पहली स्थिति में आत्मा अपना पूर्ण ज्ञान और पूर्ण अनुभव लेकर परकाया में प्रकट होती है। जबकि दूसरी स्थिति में केवल मूल संस्कार ही विद्यमान रहता है। मैं यहां पहली स्थिति का उदाहरण दे रहा हूँ।

कुछ वर्ष पूर्व पाली (राजस्थान) के एक पुलिस आफिसर थे। उनका एक अर्दली भी था। सहूलियत के लिये मैं यहां दोनो का नाम काल्पनिक गौरी शंकर वैष्णव और राम शरन रख लेता हूँ। वैष्णव साहब जहां बदली होकर जाते उनका अर्दली भी साथ आता। वैष्णव साहब की एक लड़की थी नाम था कमला। राम शरण की भी एक लड़की थी नाम था विमला। दोनों अन्तरंग सहेलियां भी थीं। दोनों एक ही स्कूल में पढ़ती थी और उनकी एक सहेली विमलेश भी वहीं पढ़ती थी। तीनों लड़कियां एक नाव दुर्घटना की शिकार हो गयी। तीनों को अस्पताल लाया गया। कमला और विमला की हालत बिगड़ गयी और दोनों ने दम तोड़ दिया लेकिन विमलेश बच गयी। कमला की लाश को प्रज्जवलित करके विमला की लाश को जलाने के लिए उठाया जा रहा था तभी कुछ गरमाहट और हलचल महसूस हुई। देखा गया तो विमला की सांस उखड़ी सी चल रही थी। लोग आश्चर्यचकित रह गये। विमला को पुनः अस्पताल ले जाया गया और उपचार करने पर वह जीवित हो उठी। लेकिन आश्चर्य की बात तो यह थी कि जैसे ही विमला जीवित हुई विमलेश की मृत्यु हो गयी जबकि उसकी हालत काफी अच्छी थी। विमला होश में आते ही अपने सामने राम शरण और उसकी पत्नी को पाया तो पूछा कि मेरे पापा-मम्मी कहां है?

जब वैष्णव साहब अपनी पत्नी के साथ विमला को देखने गये तो विमला ने उन्हे मम्मी पापा कहकर सम्बोधित किया। उसके बाद आश्चर्य की बात तो यह है कि उसने

अपनी सहेली कमला के बारे में न पूछकर विमला के बारे में ही पूछ रही थी। लोगों को यह सुनकर घोर आश्चर्य हुआ। राम शरन जब विमला को अपने घर ले आया तो वह चिल्लाने लगी और कहने लगी मुझे मेरे बंगले में ले चलो। मेरे पापा-मम्मी को बुलाओ। राम शरन ने समझाया कि बेटी तेरा घर तो यही है। तू भूल गयी है क्या। तेरी सहेली कमला तो मर चुकी है तू तो मेरी बेटी विमला है। तुम पागल हो गये हो तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है काका। तुम मेरे माता-पिता को बुलाओ। मैं वैष्णव साहब की लड़की कमला हूँ। कैसे समझाऊं तुमको काका।

जब यह खबर वैष्णव साहब और उनकी पत्नी को मिली तो वे राम शरण के घर आये और विमला एकदम से उठकर दोनों से लिपट गयी और जोर-जोर से रोने लगी। बोलो पापा-मम्मी आपने मुझे काका के यहां क्यों भिजवा दिया? यही कहकर हिचक-हिचक कर रोती रही। आखिर में वैष्णव साहब की पत्नी ने कुछ जांचने के लिये विमला से पूछा- अगर तू सचमुच कमला है तो यह बता कि गोदरेज की आलमारी की चाभी कहां है। पापा के आफिस बाक्स के ऊपर ड्रापर के लिफाफे में रखी है- विमला बोली। यह सुनकर वैष्णव साहब और उनकी पत्नी घोर आश्चर्य में पड़ गये। विमला को वैष्णव साहब अपने बंगले में ले आये। कमला के कमरे में न सुलाकर अलग कमरे में सुला दिया गया तो विमला बोली माँ मैं तो अपने कमरे में लेटूंगी। फिर विमला उठकर तत्काल अपने कमरे में चली गयी और सामान आदि के मिलने पर उसी प्रकार इस्तेमाल करने लगी जैसे कभी कमला करती थी।

इन सारी बातों से वैष्णव साहब और उनकी पत्नी को यह समझते देर न लगी कि विमला के शरीर में कमला की मृतात्मा प्रवेश कर गयी है। यह भी एक रहस्य ही है कि जिस समय कमला की आत्मा में प्रवेश किया तभी उसी समय विमलेश ने दम तोड़ दिया। खैर वैष्णव साहब ने कमला के स्थान पर विमला को पूर्णरूप से अपनी पुत्री मानकर उसका विवाह किया और आज वह दो बच्चों की माँ के रूप में अपने पति के साथ रह रही है।

इस घटना से इस तथ्य पर प्रकाश डाला है कि मृतात्मा को यदि तत्काल अनुकूल परकाया मिल जाती है तो वह उसमें पूरा का पूरा तीनों संस्कार शारीरिक, मानसिक, और आत्मिक लेकर प्रवेश करती है। ऐसी स्थिति में आत्मा को न तो अनुभव होता है न तो पता ही चलता है कि जिस शरीर को उसने उपलब्ध किया है किसी और आत्मा के शरीर का है। आत्मा एक स्वतंत्र सत्ता है। बचे दो मन और शरीर। मन शरीर पर आश्रित है और शरीर मन पर। शरीर में कुल दस इन्द्रियां हैं

पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां। पांच कर्मेन्द्रियों द्वारा जो कर्म किये जाते हैं उसे शारीरिक संस्कार और पांच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जो कर्म किये जाते हैं उसे मानसिक संस्कार कहते हैं। इसी प्रकार आत्मा का भी संस्कार है। ज्ञान-विज्ञान, उच्च विचार, विवेक, बुद्धि आदि को आत्म संस्कार कहते हैं। मानसिक संस्कार का जितना प्रभाव आत्म संस्कार पर पड़ता है उतना ही आत्मा मानसिक संस्कार को भी स्वीकार करती है। शरीर से छूटते समय शरीर तो यहीं छूट जाता है लेकिन मन आत्मा में लीन हो जाता है। यही कारण है कि पूर्वजन्म के शरीर का ज्ञान आत्मा को नहीं रहता और न तो रहता है मानसिक स्थितियों का। केवल दोनों के संस्कार ही रहते हैं बीज रूप में। यदि पूर्वजन्म में शरीर स्वस्थ्य होता है तो अगले जन्म में भी शरीर स्वस्थ्य व सुन्दर मिलने की आशा रहती है। तीन संस्कार की तरह तीन प्रकार की मूर्च्छा भी होती है। शरीर की मूर्च्छा यानि निद्रा भी एक प्रकार से मूर्च्छा ही है। मन की मूर्च्छा जिसे कोमा भी कहा जाता है। आत्मा की मूर्च्छा को मृत्यु कहा जाता है। मृत्यु आत्मा की गहरी मूर्च्छा ही है। इतनी गहरी कि आत्मा जब कहीं जन्म लेती है तभी वह टूटती है। उसी गहरी बेहोशी के हालत में आत्मा एक शरीर छोड़ती है और दूसरा स्वीकार करती है। वह बेहोशी एक घण्टे या एक वर्ष या उससे भी अधिक की हो सकती है। उस बेहोशी का सबसे ज्यादा असर स्मृतियों पर पड़ता है। जैसे जागने पर सपनों की स्मृति समाप्त हो जाती है उसी प्रकार शिशु के जन्म के दो एक वर्ष बाद पूर्वजन्म की स्मृति समाप्त हो जाती है।

मस्तिष्क का एक भाग जिसे घूसर भाग यानि ग्रे-मैटर कहते हैं। इसमें पिछले कई जन्मों की स्मृतियां 'टेप' की तरह भरी रहती है। जिन्हे सम्मोहन विद्या द्वारा आत्मा को सम्मोहित कर जाग्रत किया जाता है। इस विषय में काफी प्रयोग भी हुए जो सफल रहे। परामनोविज्ञान स्मृति कहता है- वह वास्तव में स्मृति नहीं बल्कि स्मृतियों के शेल हैं। पिछले जन्मों की स्मृतियों का जागरण और परकाया प्रवेश दो अलग-अलग घटनायें हैं। मृत्यु के समय में आत्मा का पूरी तरह से मूर्च्छित न होना तथा कुछ मात्रा में चेतना का बने रहना है। जब ऐसी स्थिति में आत्मा शरीर का त्याग करती है तो पिछले जन्म की कुछ खास स्मृतियां उसके साथ रहती हैं। यदि उस आत्मा ने तत्काल कहीं जन्म ले लिया तो वे साथ आयी हुई स्मृतियां कुछ समय के लिए जाग्रत हो जाती है बाद में धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है।

पिछले जन्म की स्मृतियों के जागरण तथा परकाया प्रवेश इन दोनों घटनाओं के मूल में अप्राकृतिक अथवा अकाल मृत्यु है। यदि ऐसी मृत्यु के समय आत्मा मूर्च्छाग्रस्त

न हुई तो वे दोनों संस्कार अपनी-अपनी स्वतंत्र सत्ता में ज्यों का त्यों आत्मा के साथ आ जाते हैं। ऐसी अवस्था में आत्मा तत्काल किसी के सद्यः मृत शरीर में प्रवेश कर जाती है। अगर आत्मा का पिछला शरीर स्त्री का है तो स्त्री के शरीर में और यदि पुरूष का है तो पुरूष के शरीर में प्रवेश करेगी। आत्मा अपने संस्कार को लेकर शरीर में प्रकट हो जाती है। उसको यह पता ही नहीं चलता कि वह शरीर किसी और का है। कहने की आवश्यकता नहीं कमला व विमला के साथ ऐसा ही सब कुछ हुआ था। जीवनभर वह विमला के शरीर में रही उसे आभास तक नहीं हुआ।

फर्रूखाबाद जिले में शरीफपुर गांव के निवासी छोटेलाल सिंह की बहू जिसका नाम सुमित्रा था की लम्बी बीमारी के बाद मृत्यु हो गयी। सुमित्रा को मरे आधे घण्टे हो गया। परिवार के लोग अर्थी की तैयारी करने में जुट गये। तभी अचानक शव की आंखें पलकें झपकने लगीं। लोग डर के मारे भूत-भूत चिल्लाते हुये बाहर आ गये और फिर धीरे-धीरे पूरे शव में हरकत होने लगी। कुछ ही देर बाद मृत सुमित्रा सिर उठाकर इधर-उधर देखने लगी और कहने लगी तुम सब कौन हो....मुझे यहां कौन लाया है... । तभी छोटेलाल सिंह ने अपनी बहू से कहा कि तुम्हारा ससुराल है और मैं तुम्हारा ससुर हूँ। उसी समय उसके पति जगदीश ने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया। सुमित्रा तुरन्त अपना हाथ छुड़ाते हुए बोली किसी परायी औरत का हाथ पकड़ते हुए तुम्हे शर्म नहीं आती। यह अविश्वसनीय घटना १६ अक्टूबर १६८५ की है। फिर सुमित्रा ने आगे कहा कि मेरा नाम शिवा है। मेरा मायका इटावा में है और ससुराल दिवियापुर है। मेरे पिता का नाम रामसिया त्रिपाठी है। यह कहकर सुमित्रा ने कागज में एक चिट्ठी लिखना शुरू कर दिया जबकि सुमित्रा तो अनपढ़ थी।

जब यह बात समाचार पत्र में छपी तो उसके पिता रामसिया त्रिपाठी स्तब्ध रह गये। वह इटावा में आध्यपक थे। जिस व्यक्ति से रामसिया त्रिपाठी को यह समाचार मिला उनका नाम रामप्रकाश था। उन्ही के कहने पर त्रिपाठीजी शरीफपुर गांव गये और उनको देखते ही सुमित्रा पिताजी कहकर गले से लिपटकर रोने लगी।

यह देखकर छोटेलाल और जगदीश सिंह आश्चर्य में पड़ गये। त्रिपाठी जी को भी कम आश्चर्य नहीं हुआ। वहां खड़े सभी लोग समझ गये कि यह परकाया प्रवेश का मामला है।

त्रिपाठीजी की विवाहिता पुत्री शिवा की अकाल मृत्यु के बाद उसकी भटकती हुई आत्मा ने सुमित्रा के शरीर में निश्चय ही प्रवेश कर गयी थी। सुमित्रा एक साधारण देहाती युवती है लेकिन शिवा की आत्मा ने उसमें प्रवेश किया तब से शहरी परिवर्तन

आ गया। यह सब देखकर शिवा के पिता ने उसके परिवार के सदस्यों के फोटो भी दिखाये जिसे उसने तुरन्त पहचान लिया। लेकिन अपनी ननद रमाकान्ति का चित्र देखकर क्रोधित होकर कहने लगी- पापा इसी ने तो मुझे मारा था। त्रिपाठी जी ने उसे अपने घर ले आया और सभी घर वालों को नाम सहित पहचान गयी थी। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि शिवा की आत्मा ने सुमित्रा के मृत शरीर में प्रवेश किया था।

यहां एक सत्य घटना और है और वह है काशी की। सन् १९५५, काशी के हरिश्चन्द्र घाट के ऊपर स्थित धर्मशाला में एक साधु निवास करते थे। उनका नाम पूर्णागिरी था। आयु लगभग अस्सी साल की थी। पूर्णागिरी एक सच्चे साधु थे उनका सारा समय भजन कीर्तन और कथा वार्ता में ही व्यतीत होता था। वे केवल रात्रि में ही भोजन करते थे। गर्मी, जाड़ा, कैसा भी मौसम हो केवल एक लुंगी तथा एक चादर को छोड़कर कुछ भी नहीं रहता था उनके शरीर में।

दिसम्बर का महीना। कड़ाके ठण्ड। रोज की भांति बाबा भोर में गंगा स्नान करने गये लेकिन ठण्ड लग गयी और वे पूरे तीन महीने बीमार रहे। काफी दवा करने के बाद भी उनकी मृत्यु हो गयी। जब मुझे यह समाचार मिला तो मैं तुरन्त घाट पहुंच गया। हरि कीर्तन हो रहा था। बाजे बज रहे थे। बाबा के शव को फूलों से सजाकर पद्मासन की मुद्रा में बिठाया गया। उस समय बाबा के चेहरे में तेज था लगा कि बाबा अभी उठकर बैठ जायेंगे। फिर बाबा को पत्थर की टंकी में बिठाकर गंगा की गोद में अर्पित करने के लिये ले जाया गया। मैं भी नाव पर बैठ गया। तभी वहां एक नवविवाहित युवक की लाश आयी। उसके परिवार के लोग शोकाकुल थे। उसकी पत्नी बहुत व्यथित हो गयी थी और अपने पति को छोड़ने के लिये कदापि तैयार नहीं हो रही थी। इधर बाबा का शव अचानक से हिलने लगा। उनकी आंखे झपकने लगीं। यह देखकर कुछ तो भयभीत हो गये और कुछ वहां से भागने लगे। चारो ओर काफी भीड़भाड़ इक्कट्ठा होने लगी। कुछ देर बाद हम सब लोगों ने देखा बाबा के मृत शरीर में पूरी तरह से चेतना आ गयी है। यह देखकर सभी लोगों को घोर आश्चर्य हुआ कि बाबा पुनर्जीवित हो गये। उन्हे धर्मशाला में लाया गया। थोड़ी देर शान्त लेटे रहे फिर सकपका कर चारो तरफ देखने लगे। उनके हावभाव से ऐसा लग रहा था कि वे किसी दूसरे स्थान पर आ गये हों। उनके बोलने का ढंग और भाषा के बदल जाने से हम सभी लोग आश्चर्य में पड़ गये।

बाबा को क्या हो गया? किसी की भी समझ में नहीं आ रहा था। बाबा की आवाज किसी देहाती युवक से मिल रही थी। बाबा बोले कि हम यहां कैसे आ गये

और मेरी पत्नी शान्ति भी रो रही होगी। तभी सभी लोगों ने बाबा को समझाया यह आपकी कुटिया है। लेकिन बाबा बोलते रहे कि हम किसी को भी पहचान नहीं रहे हैं। वे बोले कि हमारे गांव हमें पहुंचा दो। सब लोग पूछे कि आपका गांव कहां है तो वो बोले कि नेवादा गांव है। मेरा नाम गोविन्द है और मेरी पत्नी का नाम शान्ति है। यह सब सुनकर सब-लोग समझे कि बाबा के शरीर में कोई प्रेत घुस गया है लेकिन मैं यह बात समझ गया था इसलिए मैंने तत्काल पुनर्जीवन और उनकी परिवर्तित गतिमति की सूचना मि. जेम्स को दी। मि. जेम्स उन दिनों दिल्ली में रहते थे। दूसरे ही दिन बनारस आ गये और आते ही उन्होने सबसे पहले अपनी दृष्टि बाबा पर डाली और बोले कि बाबा के मृत शरीर में किसी आत्मा का प्रवेश हो गया है।

क्या यह परकाया प्रवेश का मामला है? मैंने पूछा।

हां! मि. जेम्स ने सिर हिलाकर जवाब दिया।

मि. जेम्स अपनी सम्मोहन विद्या के माध्यम से वस्तु स्थिति की विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो उठे। मगर हम लोगों ने इस बात को गुप्त रखा कि यहां के लोग वास्तविकता से परिचित हो चुके हैं। उसी दिन बाबा को धर्मशाला से मैं अपने यहां लाकर एक कमरे में तख्त पर लिटा दिया। बाबा के शरीर में प्रविष्ट उस अज्ञात आत्मा न जाने क्या-क्या बड़बड़ा रही थी जो मैं क्या कोई नहीं समझ सकता था। उस समय रात्रि के १० बजे थे। कमरे का वातावरण शान्त था हल्के नीले रंग का बल्व जल रहा था। मि. जेम्स के अलावा तीन लोग और थे जिनका सम्बन्ध स्थानीय समाचार पत्रों से था।

कुछ देर बाद मि. जेम्स ने पूछा कि आप कौन हैं? तो उसने बताया कि मैं राम गोविन्द हूँ। मेरी पत्नी का नाम शान्ति है। उस समय जमीन के विवाद के कारण ब्राह्मणो और ठाकुरों में लड़ाई हो रही थी। कुछ लोग गड़ासा आदि लेकर आये और मैं लड़ते-लड़ते जमीन में अचेत हो गया और तभी मैंने देखा कि मैं अपने शरीर से अलग हो रहा हूँ। मुझे यह बात समझ में नहीं आ रही थी कि मेरी मृत्यु हो गयी है। मैंने अपनी पत्नी को समझाने की कोशिश की लेकिन मैं असफल रहा। मेरे मन में न जाने कहां से इतना मोह पैदा हो गया माँ और पत्नी के लिए कि मैं बेचैन होकर इधर उधर टहलने लगा। फिर जब श्मशान ले जाया जा रहा था तो मैं सोचने लगा काश शरीर को फिर प्राप्त कर लेता! फिर शरीर मेरा अपना हो जाता। मेरे भीतर शरीर के प्रति मोह और आकर्षण बढ़ता जा रहा था। तभी शंख, घण्टा बजने की आवाज सुनायी दी। मैंने देखा एक बाबाजी का मृत शरीर गंगाजी में विसर्जित करने के लिए ले जा रहे हैं। मेरी तरह वे बाबाजी भी अपनी लाश के पास बैठे थे। उनकी नजर

मुझ पर पड़ी वे मेरे पास आये और बोले- बेटा, तुमको शरीर और जीवन के प्रति भारी मोह हो गया है। अभी तेरी आयु शेष है। तू अब अपने शरीर में नहीं जा सकता क्योंकि वह क्षत-विक्षत हो गया। इसलिए तू मेरा शरीर स्वीकार कर ले। वह अभी भोगने योग्य है। इतना सुनते ही न जाने कैसे मैं बाबा के शरीर में प्रवेश कर गया। प्रवेश करते ही मुझमें जो हल्कापन और शान्ति थी वह समाप्त हो गयी। मैं गर्मी महसूस करने लगा। 'क्या संसारी जीवन और मरणोपरान्त जीवन में तुम्हे कोई अन्तर समझ में आया? मि. जेम्स ने प्रश्न किया?

नहीं, कोई खास नहीं। हाँ मैंने मरणोपरान्त जीवन में एक शान्ति का अनुभव अवश्य किया जो इस संसार में दुर्लभ है।

इसके बाद मि. जेम्स ने अपना सम्मोहन प्रभाव हटा लिया। स्थिति सामान्य हो गयी। बाबा पूर्णागिरी आंखे खोलकर चारो तरफ आश्चर्य से देखने लगे। उसी दिन जब यह समाचार रामगोविन्द के परिवार वालों को मिला और जब वे यह जाने की रामगोविन्द की आत्मा बाबा के शरीर में प्रवेश कर गयी है तो सहसा उनको विश्वास नहीं हुआ। बाद में बाबा को परिवार वाले अपने गांव ले आये। बाबा के माध्यम से गोविन्द फिर से अपने परिवार वालों के साथ रहने लगा।

मि.जेम्स ने पुनर्जीवन अथवा परकाया प्रवेश की इस प्रामाणिक घटना के सम्बन्ध में अपनी जो टिप्पणी लिखी उसका सारांश यह है कि मृतात्माओं के पास केवल मन रहता है इन्द्रियां नहीं। इसीलिए वे अपनी भूख, प्यास और अन्य वासनाओं की पूर्ति तत्काल अपनी प्रबल इच्छाशक्ति के द्वारा कर लिया करती हैं। वे भौतिक पदार्थों को तो ग्रहण नहीं कर सकते पर उसके सूक्ष्मांशों को अवश्य ग्रहण कर सकते हैं। मृतात्मा को काफी समय तक मृत्यु का बोध नही होता। वे सांसारिक घटनाओं और वस्तुओं को उसी प्रकार देखती है जैसे जीवित अवस्था में देखती थीं।

मरणोपरान्त मृतात्मा का शरीर के प्रति और जीवन के प्रति प्रबल लालसा, प्रबल कामना और प्रबल आकर्षण ही उसे तत्काल शरीर उपलब्ध करा देती है। कभी-कभी परकाया के लिए प्रेरित भी करती है।

विश्व में प्रायः सभी धर्म यह स्वीकार करते हैं कि शरीर की मृत्यु ही अन्तिम नहीं है। जीवात्मा का अस्तित्व उसके बाद भी रहता है। गीता धर्म में कहा गया है कि शरीर की मृत्यु आत्मा के लिए वैसी ही है जैसे पुराने वस्त्र त्यागकर नये वस्त्र धारण करना। परलोक सुखमय हो इसके लिए इस लोक में अच्छे कार्य किये जाते हैं।

तमाम धार्मिक पुस्तकें पढ़ने के बाद भी व्यक्ति यह विश्वास नहीं कर पाता कि

मृत्यु के बाद नया जीवन मिलता है या नहीं। चिन्तन और वैज्ञानिक प्रगति के बाद भी यह प्रश्न शाश्वत सा ही बना है कि मृत्यु के बाद क्या होता है?

कहने की आवश्यकता नहीं आज यह प्रश्न तमाम धार्मिक ग्रन्थों व पुस्तकों से निकल कर वैज्ञानिकों के प्रयोगशाला में पहुंच चुका है। वैज्ञानिकों ने इस तथ्य को स्वीकार कर लिया है कि जीवन पहले भी था और बाद में भी रहेगा। पिछले जीवन से वर्तमान जीवन में कोई खास अन्तर नहीं होता। हमारे कर्म, विचार, भाव और सोचने समझने की क्षमता पूर्ववत् है। देश काल के अनुसार कहीं-कहीं कुछ अन्तर अवश्य आ जाता है।

हमारे मस्तिष्क के घूसर भाग में करोड़ों सेल ऐसे हैं जिनमें पिछले कई जन्मों की स्मृतियां निर्जीव पड़ी हैं। यदि सजीव किया जाये तो हमारे दीर्घकालीन जीवन का एक लम्बा इतिहास सामने प्रकट हो सकता है।

क्या मनुष्य में छठी इन्द्रियां भी हैं – 'भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनम् कुतः' जिस समय का यह श्लोक है उस समय लोग शरीर को महत्व न देकर आत्मवाद को प्रमुखता देते थे। मगर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यदि शरीर कमजोर और शिथिल है तो आत्म चिन्तन भी सम्भव नहीं। शरीर का अपना मूल्य और महत्व है। वह केवल हांड़ मांस से बना पुतला ही नहीं बल्कि ज्ञानेन्द्रियों से भी उत्पन्न है। जिनके द्वारा वह अपने आस-पास के जगत की जानकारी पाता है। वह यह भी जानता है कि प्रत्येक जीव में सभी ज्ञानेन्द्रियां अथवा सभी कर्मेन्द्रियां नहीं होती। जीवों में चेतना के स्तर भिन्न-भिन्न होते हैं।

इस धरती पर ८४ लाख प्रकार के विभिन्न जीव हैं। जिनमें चेतना का क्रमिक विकास होता है। चेतना का स्तर क्रम से विकसित होता हुआ मनुष्य में आकर समाप्त हो जाता है। मनुष्य में चेतना का पूर्ण विकसित रूप होता है। यहां यह बता देना आवश्यक है कि चेतना का यही पूर्ण विकसित रूप ही 'आत्मा' है। पूर्ण विकसित चैतन्य का नाम ही आत्मा है। चूंकि उसके साथ-साथ पूर्ण विकसित मन और बुद्धि भी है। इसलिए उसे मनुष्यात्मा या जीवात्मा भी कहते हैं। यह जाने लेना आवश्यक है कि चेतना के विकास क्रम के अनुसार ही मन और बुद्धि का भी विकास होता है। जब वे दोनों मानव की चेतना परिधि में आते हैं तो उनके आपसी योग से एक विलक्षण तत्व का आविर्भाव होता है और वह विलक्षण तत्व है विचार। विचार तत्व का उदय केवल मनुष्य में ही सम्भव है अन्य प्राणियों में नहीं। विचार जब घनीभूत होता है तो उसके परिणाम स्वरूप एक पूर्ण मौलिक वस्तु जन्म लेती है और वह वस्तु है विवेक।

विचार की तरह विवेक भी केवल मनुष्य में ही होता है। मनुष्य एक विचारवान और विवेकशील प्राणी है। विचार व विवेक के मूल में मन और बुद्धि का ही चरम विकसित रूप है। जहां तक इन्द्रियों का प्रश्न है। पंच ज्ञानेन्द्रियां और पंच कर्मेन्द्रियां मन की अवस्थाओं को प्रकट करने के एकमात्र साधन हैं। मन साध्य है और इन्द्रियां साधन हैं। आत्मा का सम्बन्ध इन्द्रियों से नहीं है। इन्द्रियां मन पर आश्रित हैं। जहां तक आत्मा की बात है वह अपने आप में स्वतंत्र है। जैसे मन इन्द्रियों के माध्यम से अपने को प्रकट करता है। उसी प्रकार आत्मा अपने अस्तित्व को अन्तःकरण के माध्यम से प्रकट करती है। वास्तव में अन्तःकरण मनुष्य की छठी इन्द्रिय है। वह मन से नहीं बल्कि आत्मा से सम्बन्ध रखती है। मनुष्य को अपनी इस छठी इन्द्रिय का साधारणतः पता नहीं होता मगर वह अपना काम बराबर करती रहती है। अन्तःकरण एक ऐसी इन्द्रिय है जो आत्मा और मन के बीच काम करती है। लेकिन आत्मा के अधिक समीप होती है। इसीलिए मन को उसका पता नहीं होता। अन्तःकरण एक अति शक्तिशाली वस्तु है। उसके पीछे मानव का दीर्घ अतीत और सामने मानव का विस्तृत भविष्य होता है। अन्तःकरण के दर्पण में मनुष्य का भूत और भविष्य दोनों देखा जा सकता है। मन में जबतक कोई चमत्कार पैदा नहीं होता तबतक वह इन्द्रियों से सम्बन्धित रहता है। मन में तभी चमत्कार पैदा होता है जब उसका सम्बन्ध अन्तःकरण से जुड़ता है।

मन जितना अन्तःकरण के भीतर प्रवेश करता जायेगा उतना ही मन में आत्मशक्ति जाग्रत होगी और उतना ही वह चमत्कारपूर्ण कार्य भी करेगा। यही कारण है कि मन के चमत्कार सामान्य इन्द्रियों के समझ से परे है। मन को इन्द्रियों से हटाकर अन्तःकरण से उसका सम्बन्ध जोड़ने का एकमात्र साधन है-'ध्यान योग'। मगर कभी-कभी अपने आप मन का सम्बन्ध इन्द्रियों से हटकर अन्तःकरण से जुड़ जाता है कुछ समय के लिए। ऐसी क्षणिक स्थिति में मनुष्य भूत या भविष्य की बातें या घटनायें साधरणतः जान लेता है। ऐसी ही क्षणिक स्थिति में वह कभी-कभी अपने पूर्वजन्म की बातें या घटनायें भी जान लेता है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

एक ही आत्मा कभी पुरूष के रूप में तो कभी स्त्री के रूप में : पैथागोरस को अपने पिछले कई जन्मों की याद थी। एक बार वह योद्धा था और युद्ध में उसकी मृत्यु हुई थी। एक जन्म में वह हमोटिमस था। वह अपने भौतिक शरीर को छोड़कर मनचाहा विचरण करता था। एक जन्म में वह लिडिगा में दुकानदार की पत्नी था और एक जन्म में वेश्या भी था। हांलाकि यह आश्चर्य की बात है पुरूष शरीर धारण करने वाली आत्माएं हमेशा पुरूष रूप में ही जन्म लेती है और स्त्री शरीर वाली आत्मा हमेशा

स्त्री रूप में जन्म लिया करती है। उनका योनि परिवर्तन अथवा लैंगिक परिवर्तन हजारों सैंकड़ों जन्मों के बाद शनैः-शनैः हुआ करता है। पश्चिमी जगत प्रसिद्ध उपन्यासकार जानग्रान्ट का दावा है कि उनके सभी सात उपन्यास उनके स्वयं के पूर्वजन्मों की आत्मकथायें हैं। १६३७ में जब वह तीस वर्ष की थी। उनका पहला उपन्यास 'विग्ड फरोआ' में मिश्र की सभ्यता, इतिहास का जो विशद वर्णन है विद्वानों के अनुसार वह सही साबित हुआ है।

पर मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि कभी-कभी मरते समय व्यक्ति अपने पूर्वजों को देखता है और मिलने के लिए छटपटाता है और कभी-कभी अतीन्द्रिय बोध भी होता है। वास्तव में पूर्वजन्म की स्मृति अतीन्द्रिय बोध के सिवाय और कुछ नहीं है। विज्ञान को किसी कार्य का कोई कारण नहीं मिलता वहां उसे कार्य की सत्यता में ही सन्देह हो जाता है। मगर यह विज्ञान भी मानता है कि पदार्थ अविनाशी है। पंचभूतों से बना यह शरीर पंचभूतों में ही विलीन हो जाता है और उन पंचभूतों से फिर से नये जीवन की सृष्टि होती है।

चेतना, स्मृति और मन : इतना तो सत्य है कि भौतिक पिण्ड में इन अपार्थिव अथवा अभौतिक वस्तुओं का अस्तित्व है। चेतना का सम्बन्ध शरीर से है और स्मृति और मन का भी सम्बन्ध शरीर से है। अब प्रश्न यह है कि जब भौतिक शरीर मृत होकर पंचभूतों में विलीन हो जायेगा तो चेतना, स्मृति और मन का क्या होता है। मरने के साथ ही चेतना या मन नहीं रहता। स्मृति भी नहीं रहती। मस्तिष्क की कोशिकाएं विकृत होकर नष्ट हो जाती है। शरीर के पंचभूतों में विलीन होने के पूर्व ही ये उसे छोड़कर चली जाती है। विज्ञान के अनुसार चेतना, स्मृति और मन नष्ट हो जाते हैं। परन्तु यह विचित्र बात है कि भौतिक शरीर से उत्पन्न ये अभौतिक सत्ताये विनष्ट हो जाती है। प्रकृति का यह कैसा नियम है? जिस प्रकृति ने भौतिक शरीर को नष्ट नहीं होने दिया वह उस अभौतिक चेतना अथवा सूक्ष्म शरीर को क्यों नष्ट हो जाने देती है। लेकिन शायद चेतना भी किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है और जब कभी उस चेतना का संयोग सचेतन शरीर की चेतना से होता है तो उसमें अद्‌भुत और विचित्र परिवर्तन हो जाता है। शायद पुनर्जन्म, पूर्वजन्म की स्मृतियों और अलौकिक घटनाओं का यही रहस्य है। लेकिन निश्चित नहीं है जिस दिन निश्चित हो जायेगा उस दिन यह प्रश्न शाश्वत नहीं रह जायेगा कि मृत्यु के बाद क्या होता है। ऊपर के विवेचना से यह स्पष्ट है कि एक भौतिक सत्ता और दूसरी अभौतिक सत्ता है। पहली सत्ता काया है और दूसरी सत्ता के अन्तर्गत चेतना, स्मृति और मन है। भारतीय परा मनोवैज्ञानिक इन तीनों के ऊपर एक और सत्ता की बात करता है वह है आत्मा। आत्मा इन तीनों

को अपने साथ रखती है। जब वह नया शरीर धारण करती है तो वे तीनों नाभि, हृदय और मस्तिष्क को अपना-अपना केन्द्र बना लेती है।

मृत्यु के सम्बन्ध में दार्शनिक चिन्तन- जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म के सिलसिले में जिन योग विभूतियों से मिला उनमें एक थे स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती। सरस्वती काशी के ही विभूति थे। वह दशाश्वमेध घाट के ऊपर निवास करते थे। योगमाया ने ही परिचय कराया था उनसे मेरा। योगमाया स्वामीजी कहती थी इसलिए मैं भी स्वामीजी कहने लगा। उनको जब यह मालूम हुआ कि मैं मृत्यु पर शोध और अन्वेषण कार्य कर रहा हूँ तो वे बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्हे स्वयं पूर्वजन्म की स्मृति थी इसी कारण वे संन्यास ले लिए। सर्वप्रथम जब मैंने उनसे पूछा कि मृत्यु क्या है? तो वे मुस्कुराकर बोले- मृत्यु के सम्बन्ध में नहीं जीवन के सम्बन्ध में पूछें। क्योंकि मैं मृत्यु नहीं जानता। मृत्यु का मुझे कोई अनुभव नहीं है।

यह सुनकर आश्चर्य हुआ मुझे। लेकिन जब उनके ठोस विचारों से अवगत हुआ तो सब कुछ समझ में आ गया। जिस वस्तु या तथ्य को जान लेते हैं उससे हम तत्काल मुक्त हो जाते हैं। उस पर हमारी विजय हो जाती है। हमारी जय और पराजय हमारे अज्ञान के अलावा और कुछ नहीं है। मृत्यु को ही लें। इस संसार में मृत्यु से अधिक असत्य और कुछ भी नहीं है। लेकिन अज्ञान के कारण मृत्यु ही सत्य मालूम पड़ती है और यही कारण है कि मनुष्य की सारी सभ्यता मृत्यु पर आधारित है। हमारे सामने जीवन का जो रूप है उसके मूल में मृत्यु का भय ही है। मृत्यु के कारण ही देश समाज और परिवार का निर्माण हुआ। धनी बनने की लालसा और आकांक्षा का एकमात्र कारण भय ही है। मृत्यु के भय के कारण ही भगवान की कल्पना की और मन्दिर का निर्माण कर डाला। लेकिन मृत्यु का असत्य हमें कैसे मालूम होगा और यह भी कैसे ज्ञात होगा कि मृत्यु नहीं है? मैंने प्रश्न किया। स्वामीजी बोले- जबतक हमें इन दोनों प्रश्नों का उत्तर नहीं मिलता तबतक मृत्यु के प्रति हमारा भय खत्म न होगा। मृत्यु की याद न आये इसलिए श्मशान आदि गांव के बाहर बनाते हैं। जब हम किसी की मृत्यु पर रोते हैं तो हम अपनी भावी मृत्यु की वजह से भी रोते हैं। क्योंकि एक न एक दिन हमारी मृत्यु भी होगी। मगर कैसे माने कि मृत्यु असत्य है? हम तो रोज मरते हुए देखते हैं। साधारणतः कोई भी व्यक्ति होश में नहीं मरता। अगर मरते समय वह होश में मरे तो उसके लिए मृत्यु का भय हमेशा के लिए समाप्त हो जायेगा। हमने अनेकों बार जन्म लिया है और अनेकों बार मरे हैं लेकिन बेहोश मरे हैं। मरने से हम इतना डर जाते हैं कि स्वेच्छा से बेहोश हो जाते हैं। वह बेहोशी हमें मृत्यु के बीस

या तीस मिनट पहले प्राप्त होती है। उसी बेहोशी में हमारा शरीर छूट जाता है। फिर बेहोशी में ही हमारा नया जन्म भी हो जाता है। इसीलिए यह हम कभी नहीं समझ पाते कि जीवन शाश्वत है। जीवन की शाश्वता को समझने के लिए मृत्यु के रहस्य को पहले समझना आवश्यक है।

'मृत्यु के समयं हम होश में रहें और मृत्यु का साक्षात्कार कर सकें इसके लिए क्या किया जा सकता है?' प्रश्न किया मैंने। स्वामीजी बोले कि मृत्यु को समझना और अनुभव करना आवश्यक है लेकिन यह तब होगा जब हम मरेंगे।

होशपूर्वक मृत्यु में प्रवेश का एकमात्र मार्ग ध्यान ही है। क्या कोई ऐसा उपाय है जिससे मृत्यु का अनुभव प्राप्त हो सके। हाँ एक उपाय है। वह है एकमात्र ध्यान या समाधि। जो एक दिन शरीर छूटने पर घटना अपने आप घटित होगी वह हम अभी स्वेच्छा से शरीर के भीतर छोड़कर हट जा सकते और जान सकते हैं कि मृत्यु हो गयी। मृत्यु का साक्षात्कार कर सकते हैं क्योंकि मृत्यु की घटना से इतना ही मतलब है कि हमारा शरीर और हमारी आत्मा उस यात्रा के भेद का अनुभव कर ले।

ध्यान में मृत्यु का क्रमिक साक्षात्कार- ध्यान में धीरे-धीरे ऐसे ही भीतर प्रवेश करना पड़ता है और धीरे-धीरे एक-एक चीज छूटती चली जाती है। फिर वह क्षण आता है कि सब कुछ दूर पड़ा है हमारा शरीर भी पड़ा हुआ होता है लेकिन फिर भी मैं हूँ। बिल्कुल अलग और भिन्न का बोध रहता है। जैसे ही हमें मृत्यु का साक्षात्कार होता है। तब मृत्यु आती रहेगी लेकिन भय समाप्त हो जायेगा। ध्यान एक प्रकार से मरने के समान ही है इसलिए कई लोग ध्यान से भी घबड़ाते हैं। ध्यान की पूर्ण अवस्था में हम वहीं पहुंच जाते हैं जहां मरा हुआ आदमी पहुंचता है। फर्क केवल इतना ही है कि मरा हुआ व्यक्ति बेहोशी में पहुंचता है हम ध्यान की अवस्था में होशपूर्वक पहुंच जाते हैं।

समाधि में मृत्यु का पूर्ण साक्षात्कार होता है। जो मृत्यु से भयभीत होते हैं वह समाधि में प्रवेश नहीं कर पाते। मृत्यु के साक्षात्कार से परम जीवन की प्राप्ति होती है। मृत्यु का ज्ञान ही शक्ति कहा जाता है। ज्ञान से ही मुक्ति है। मृत्यु का ज्ञान ही मृत्यु को विलीन कर देता है तब हम पहली बार जीवन से सम्बन्धित हो जाते हैं।

वास्तव में जिसे हम जीवन कहते हैं, जिसे हम मृत्यु कहते हैं वह दोनों एक ही महाजीवन के अंग हैं। सांस का आना जीवन है सांस का बाहर जाना मृत्यु है। स्वामीजी ने कहा- समाधि शब्द बड़ा अद्‌भुत है। ध्यान की पूर्णता को भी समाधि कहते हैं। मृत्यु अनिवार्य है। इसलिए मृत्यु को एक दार्शनिक रूप में स्वीकार करना चाहिए। आत्मा

एक स्वतंत्र सत्ता है। आत्मा की दृष्टि में जन्म और मृत्यु एक महत्वपूर्ण घटना के सिवाय और कुछ नहीं है। इसीलिए दोनों घटनाओं का बोध हमें नहीं होता और उन दोनों महत्वपूर्ण घटनाओं से भी अधिक महत्वपूर्ण और रहस्यमयी वस्तु है मृत्यु और पुनर्जन्म के बीच की अवस्था। वास्तव में यह जीवन अत्यन्त रहस्यमय और तिमिराछन्न है। इसका रहस्य अभी तक अनावृत्त नहीं हो सका। मरने के बाद जो लोग पुनर्जीवित हो जाते हैं और अपने अनुभवों का वर्णन करते हैं उसका आधार धार्मिक भावना और विचार, संस्कार ही है। प्रकृति के अनुसार मरणोपरान्त, पारलौकिक अथवा लोकोत्तर जीवन कैसा है यह एक समाधि अवस्था प्राप्त योगी या साधक ही बता सकता है।

मुख्य रूप से तीन प्रकार की समाधि है। उन तीनों प्रकार की समाधियों का सम्बन्ध शरीर, मन और आत्मा से है। इन तीनों को एकसूत्र में पिरोने वाला एकमात्र प्राण है। शरीर से प्राण सूत्र जब टूट जाता है तो उस अवस्था को मृत्यु कहते हैं। एक प्रकार से वह शरीर की मृत्यु होती है मन और आत्मा तो फिर से नया शरीर खोज लेते हैं। यही कारण है कि गर्भ में प्राण क्रिया भी संचालित होने लगती है और वह मन को आकर्षित करती है। जिससे मन फिर बंध जाता है शरीर से। इसी को पुनर्जन्म कहते हैं। यह क्रिया-प्रक्रिया साधारणतः प्राकृतिक है। जैसे ही शरीर के साथ मन का सम्बन्ध टूटता है तो वह आत्मा से भी टूट जाता है। जैसा कि मैंने पहले बतलाया कि प्राण ही मन और आत्मा को एकसूत्र में बांधे रहता है। इसी को दर्शनशास्त्र में जीवभाव कहते हैं।

दूसरी मन की समाधि है जिसे सकिल्प समाधि कह सकते हैं। वास्तव में मन शरीर को नहीं खोजता। वह तो बिना शरीर के भी अपनी इच्छा की पूर्ति कर लेता है। वह अपनी इच्छानुसार शरीर खोज भी लेता है और त्याग भी कर देता है। उस पर किसी प्रकार का प्रकृति का बन्धन नहीं होता। इसकी कई अवस्थाएं हैं लेकिन जो सबसे अन्तिम अवस्था है उसे निर्विकल्प समाधि कहते हैं। योगी के संकल्प बल से मन शरीर में वापस लौटता है। इस अवस्था में मन भू मण्डल के अलावा भू सीमा को भी पार कर अनन्त ब्रह्माण्ड में विचरण करता है।

तीसरी आत्मा की समाधि है इसे निर्विकल्प समाधि की भांति समझना चाहिए। इस अवस्था में मन का आत्मा से सम्बन्ध टूट जाता है और आत्मा विशुद्ध रूप धारण करती है। ऐसी स्थिति में मन की तरह आत्मा भी अखिल ब्रह्माण्ड में विचरण करती है। मन भी विचरण करता है लेकिन दोनों के विचरण में अन्तर है। शरीर से जो अनुभव प्राप्त होता है उसे ज्ञान कहते हैं लेकिन उस ज्ञान का कोई मूल्य नहीं। मन

विचरण कर जिस ज्ञान को उपलब्ध होता है उसे यथार्थ ज्ञान अथवा प्रकृष्ट ज्ञान कहते हैं। इसी प्रकार आत्मा विचरण कर जिस ज्ञान को उपलब्ध होती है उस ज्ञान को परम ज्ञान कहते हैं।

इस प्रकार समाधि का दो उद्देश्य है। शरीर से मन का और मन से आत्मा के सम्बन्ध को तोड़कर तीनों को स्वतंत्र करना और परम ज्ञान को प्राप्त करना।

क्या तीनों प्रकार की समाधियों की स्थितियों में मरणोत्तर अथवा लोकोत्तर अनुभव होता है। स्वामीजी ने कहा कि मरणोत्तर अनुभव और लोकोत्तर अनुभव में भारी अन्तर है। लेकिन सामान्यतः मनुष्य को मरणोत्तर अनुभव ही होता है। योगी को दोनों अनुभव होता है मरणोत्तर भी और लोकोत्तर भी। मरणोत्तर जीवन का मतलब मरने के जीवन को इसी संसार में रहकर जीना और लोकोत्तर जीवन का तात्पर्य है कि शरीर छूटने के बाद इस संसार से परे के संसार के जीवन में जीना।

मन की तीन अवस्थाएं हैं ठोस, तरल और ऊर्जा। भौतिक जीवन में जाग्रत अवस्था में मन अपनी ठोस अवस्था में रहता है। स्वप्नावस्था में या मृतावस्था में मन अपनी तरल अवस्था में रहता है लेकिन समाधि की अवस्था में वह अपनी ऊर्जावस्था में रहता है।

मरण के क्षण, मरणोत्तर के क्षण और मरणोत्तर जीवन के क्षणों का अनुभव क्रमशः जड़ समाधि में ही होता हैं इसीलिए कि उस समाधि का सम्बन्ध पार्थिव शरीर से है और इसी कारण से उसका नाम जड़ समाधि है। जड़ समाधि का सम्बन्ध केवल जड़ शरीर और जड़ जगत से है।

क्या जड़ समाधि सभी को उपलब्ध हो सकती है? मैंने प्रश्न किया।

हाँ क्यों नहीं। इसके लिए अभ्यास ही सब कुछ है। पहले प्राणायाम का अभ्यास फिर शरीर को साधने का अभ्यास करो।

क्या आप मुझे यह अभ्यास करा सकते हैं? स्वामीजी से बोला मैं। कहने की आवश्यकता नहीं मैंने स्वामीजी के निर्देशन में प्राणायाम का अभ्यास करना शुरू कर दिया। जो पूरे दो महीने चला। जब उन्हे पूर्ण संतोष हो गया तो स्वामीजी ने मुझे जड़ समाधि में ले जाने का प्रयास किया। स्वामीजी ने भू गर्भ में मुझे बिठा दिया। भीतर जाने के बाद मुझे जिस यौगिक क्रिया को करने का संकेत दिया गया वैसा ही मैंने किया। भूगर्भ जब बन्द हो गया तो मुझे काफी बेचैनी होने लगी। फिर मैंने दीर्घ कुम्भक किया। फिर रेचक किया। इसी प्रकार धीरे-धीरे प्राण वायु को विशेष क्रिया के बल पर ब्रह्माण्ड में ले गया और उसी क्षण मेरे शरीर का तापमान बढ़ गया और सारा शरीर जलने

लगा। फिर धीरे-धीरे तापमान नीचे आकर सामान्य से भी कम होता गया और अन्त में सारा शरीर बर्फ की तरह शीतल हो गया। लेकिन ब्रह्माण्ड हद से ज्यादा गर्म हो गया। अबतक मैं अपने शरीर के इन परिवर्तनों को बराबर अनुभव करता रहा। फिर अचानक बिजली के करेन्ट जैसा झटका लगा और झटके साथ मेरा सम्बन्ध टूट गया अपने शरीर से। मेरा शरीर पतली सी रस्सी से नाभि से जुड़ा हुआ था। जिसके कारण मैं परतंत्रता का अनुभव कर रहा था लेकिन शरीर से मोह नहीं कर रहा था।

मेरा शरीर आलोकमय और हल्का था। लेकिन मेरी इन्द्रियों को प्रत्यक्ष अनुभव नहीं हो रहा था। फिर भी मेरी आवश्यकताएं अपने आप पूरी होती जा रही थी। आश्चर्य की बात तो यह थी कि मुझे संसार की कोई ध्वनि सुनायी नहीं पड़ रही थी। मैं धीरे-धीरे धरती के सुरम्य प्राकृतिक स्थानों को देखता हुआ बढ़ता जा रहा था। जिस स्थान की कल्पना करता उसी स्थान पर पहुंच जाता। तभी अचानक से ऐसा लगा कि मेरे अस्तित्व को कोई अज्ञात शक्ति खींच रही है। उसी के साथ मेरे सामने अन्धेरा सा छा गया और सब कुछ लुप्त हो गया। जब मेरी चेतना वापस लौटी तो मुझे अपने शरीर में असहनीय गर्मी का आभास हुआ। फिर धीरे-धीरे मेरी आंखें खुल गयी। उस समय मुझे भू गर्भ से निकाला जा रहा था। थोड़ी देर बाद सामान्य स्थिति में हो गया मैं। पूरे चालीस घण्टे जड़ समाधि की अवस्था में था।

स्वामीजी ने बताया कि इतने समय तक मैं जिस अवस्था में था, वह चैतन्य मृत्यु की अवस्था थी। साधारणतः एक शरीर के छूटने और दूसरे शरीर की उपलब्धि की यात्रा गहन अन्धकार और गहन मूर्च्छा की यात्रा के सिवाय और कुछ नहीं है।

सबसे जटिल और कठिन प्रश्न है कि अपने आकार-प्रकार और रूप-रंग व गुण आदि जैसे ही सन्तानें पैदा कर चले जाना ही जीवन है। फिर उसके बाद भी मनुष्य को तुष्टि और शान्ति क्यों नहीं मिलती? जीवनकाल में और मृत्यु के बाद भी फिर क्यों वह अशान्त और व्याकुल रहता है? मैंने जब इस विषय पर शोध व खोज कार्य शुरू किया तो घण्टो एकान्त स्थान में बैठा रहता। उसी चेष्टा के क्षणों में कभी-कभी श्रीकृष्ण की गीता का यह वाक्य- **जीवनं सर्व भूतेषु** यानि समस्त प्राणियों में जीवन 'मैं ही हूँ'। मेरे अन्तराल में गूंज जाया करता था। तब मैं यह सोचने के लिए बाध्य हो जाता था कि डी. एन. ए. जीवित प्राणियों में है उसी प्रकार मृत प्राणी में भी तो पाया जाता है। तो फिर वह क्या था? जो एक निर्मोही की तरह हमेशा के लिए शरीर में छोड़ कर चला गया। क्या वह यही था जो सभी में व्याप्त है? **'व्याप्तं येन चराचरम्'** यानि आत्मा। आत्मा जो सबको दिख नहीं रही, मिल नहीं रही फिर ऐसे रहस्यमय

जीवन को विज्ञान अपनी सीमा में अथवा अपनी परखनली में कैसे बांध सकेगा? कैसे कैद कर सकेगा? यह उसके लिए कभी सम्भव नहीं होगा। यह तो निर्विवाद सत्य है कि मृत्यु के क्षण का अनुभव प्रत्येक मरणासन्न व्यक्ति को अलग-अलग होता है। इसके तीन मुख्य कारण हैं। पहला है आयु, दूसरा है धर्म व संस्कार और तीसरा है मृत्यु का मुख्य कारण·। जैसा कि हमने पहले बताया है कि मृत्यु के समय गहरी मूर्च्छा छा जाती है लेकिन मरणासन्न व्यक्ति को निश्चित ही अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो जाता है। स्वाभावतः मनुष्य भीतर से यही प्रयास करता है कि उसका शरीर छूटे न, वह मरे न। उसका ज्ञान बना रहे। लेकिन जब इस प्रयास में असफल हो जाता है तो समझ जाता है कि सब व्यर्थ है अब वह बच नहीं सकेगा। ऐसे समय में उसके चेहरे पर दायलुता, विवशता और कातरता का मिलाजुला भाव सा छा जाता है। उसकी आंखें स्थिर होने लगती हैं वह शून्य में निहारने लगता है। सारी कोशिश करता रहता है और अन्त में वह गहरी मूर्च्छा में चला जाता है और वह कब मर जाता है उसे स्वयं पता नहीं चल पाता।

वैज्ञानिकों का कहना है कि मृत्यु का कोई एक क्षण नहीं है। मृत्यु होने की एक पूरी और स्वाभाविक प्रक्रिया होती है। वैज्ञानिकगण जीवन को समाप्त होने और मौत होने के बीच की अवधि को लाक्षणिक मृत्यु कहते हैं। यह अवधि एक मिनट की भी हो सकती है और एक से तीन घण्टे की भी हो सकती है। वैज्ञानिकों का कहना है कि लाक्षणिक मृत्यु की अवधि में यदि मौत के चक्र को विपरीत दिशा में घुमाया जाये तो मरणासन्न व्यक्ति पुनः जीवित हो सकता है। सामान्य मनुष्य की शरीर की रचना ऐसी है कि उसे १५० वर्ष तक जीवित रहना चाहिए। ठीक उसी तरह जैसे मशीन की आयु होती है और चलते-चलते मशीन के पुर्जे टूट जाते हैं तो उसे हम फिर से ठीक करके चलाने लगते हैं। हम जिस शरीर से ज्यादा काम लेते हैं वह अंग घिसेगा और जल्द ही कमजोर पड़ जायेगा। वास्तव में वही कमजोर और शिथिल अंग ही हमारी मौत का कारण बनता है। वैज्ञानिकों का कहना है कि ऐसे अंगों को पुनः शक्तिशाली बनाया जा सकता है। विदेशों में लगभग २०० ऐसे केन्द्र खुले हैं जो पुनर्जीवन पर कार्य कर रहे हैं। उन्ही केन्द्रों से यह निष्कर्ष निकला है कि मृत्यु होने पर शरीर की अनिवार्य क्रियाएं एक साथ नहीं रूकती। सबसे पहले मस्तिष्क कांटेक्स का कार्य रूकता है। जिससे चेतना यानि देखने, सुनने, बोलने, पहचानने की शक्तियां चली जाती हैं। फिर मस्तिष्क सेतु काम करना बन्द कर देता है। उसके बाद श्वांस प्रणाली, फिर हृदय और अन्त में दूसरे अंग काम करना बन्द करते हैं।

अबतक के विवेचना से स्पष्ट है कि आत्मा ही सब कुछ है। उसी की शक्ति

से शरीर क्रियाशील होता है। वही शरीर की जीवनी शक्ति भी है। शरीर एक यंत्र के सिवाय और कुछ भी नहीं मात्र हड्डी, मांस मज्जा और नाड़ी तन्तु जाल से बना एक यंत्र ही है जो किसी अदृश्य शक्ति से संचालित होता है। जैसे ही वह संचालन बन्द हो जाता है फिर शरीर का कोई महत्व नहीं रह जाता।

सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि शरीर में जो धातुयें और पदार्थ हैं उन्ही सबके कारण शरीर का सम्बन्ध सौर मण्डल से है। उन्ही के कारण ग्रह, नक्षत्र भी अपना प्रभाव डालते हैं शरीर पर। वास्तव में मानव शरीर अदृश्य डोर से पूरे सौर मण्डल और पूरे ग्रह मण्डल से बंधा है। जिसके फलस्वरूप व्याधि और आरोग्यता प्रकट होती है। मानसिक विकार, अशांति पैदा होती है। दूसरी ओर मानसिक चेतना की उत्पत्ति और मानसिक शान्ति की भी उपलब्धि होती है। सबसे पहले यह जान लेना आवश्यक है कि इस जगत से और मृतात्माओं के जगत में कोई खास अन्तर नहीं है। यदि प्राकृतिक अन्तर है तो केवल इतना ही कि वहां उस जगत में हमेशा प्रातः काल जैसा प्रकाश बना रहता है। जिससे काल एवं समय की गति का अनुभव नहीं होता। मृतात्माओं को इस बात का कभी भी पता नहीं चलता कि वह कितने समय से उस जगत में है। मृतात्माओं से सम्पर्क करने के तीन चीजे हैं गंधमय फूल, इत्र और संगीत। हम मृतात्माओं से सम्पर्क कर सकते हैं लेकिन बातचीत नहीं कर सकते। लेकिन हमारे भीतर प्राणों का जो कम्पन है वे कम्पन अवश्य उनकी ध्वनियों की तरंगों को पकड़ लेती हैं। जिसके फलस्वरूप हम यह समझ जाते हैं कि मृतात्मा क्या कहना चाह रही है। हमने अपने विशेष साधनों के द्वारा जिस मृतात्मा को सम्मोहित किया था उसने सिर्फ तीन घण्टे पहले ही शरीर त्याग किया था। जिस व्यक्ति की वह मृतात्मा थी वे मेरे परिचित थे और उनका नाम था केशव चन्द्र गुप्त।

सर्वप्रथम सम्पर्क में आते ही केशव बाबू की मृतात्मा ने कहा- उफ! मैं कहां आ गया। मुझे अजीब सी स्थिति का अनुभव हो रहा है। चारो तरफ अन्धकार है। मेरी तबीयत घबड़ा रही है। ऐसा लगता है कि मैं धुंए के गुबार में फंस गया हूँ। आप मर गये हैं-क्या आपको इसका अनुभव हो रहा है- मैंने पूछा।

क्या मैं मर गया हूँ, मगर मुझे ऐसा नहीं लग रहा है। हाँ कुछ अजीब-अजीब सा हल्का सा जरूर महसूस कर रहा हूँ मैं। मृतात्मा ने कहा।

कैसा? जरा बतलाइये और क्या अनुभव हो रहा है?

गहन खामोशी, उदासी और एकाकीपन से जैसे घिर गया हूँ मैं। लगभग एक घण्टे बाद श्मशान में जब उनकी चिता जलने लगी तो उन्होने बतलाया कि मैं उसी खामोशी में भटक रहा हूँ लेकिन ऐसा जरूर लग रहा है कि मेरा नाता रिश्ता दुनिया से खत्म हो गया है।

क्या आपको अपने परिवार की याद आती है या किसी सदस्य की मोह माया आपके मन में है- मैंने फिर प्रश्न किया।

नहीं, पहले था अब नहीं है। पहले परिवार के लोगों की बहुत याद सताती थी मगर अब नहीं सताती।

क्यों, इसका कारण क्या है?

यह सुनकर मृतात्मा हँस पड़ी और फिर बोली-इसका कारण साफ है कि मेरे परिवार के लोगों में मेरी प्रति आकर्षण और मोह माया का कम हो गयी है। लोग मुझे भुलाने लगे हैं। अब मैं बहुत दूर जा रहा हूँ। लौटने पर फिर मिलूंगा। यह कह कर केशव चन्द्र गुप्त की मृतात्मा चली गयी। लगभग छः महीने बाद एक रात केशव बाबू की मृतात्मा से हमारा सम्पर्क हो गया। उसने बताया कि वह भटकते हुए गिरिनार की ओर चला गया था। वहां मेरे मन को काफी शान्ति मिली। गिरिनार के जंगल में बहुत से महात्मा बैठे हुए हैं। वे लोग आपस में धर्म और साधना की चर्चा कर रहे हैं। मैं वहां बहुत दिनों तक रहा। एक दिन उन महात्माओं के दर्शन करने के लिए अहमदाबाद का एक धनी युवा जोड़ा आया। पति-पत्नी दोनों में न जाने क्या आकर्षण था कि वे जाने लगे तो मैं भी उनके पीछे-पीछे चला गया। उन दोनों के विचार, भाव और संस्कार मेरे से मिलते जुलते थे। पति का नाम था महेश भाई और पत्नी का नाम था मेनका बेन। मेनका बेन उस समय गर्भवती थी। ऐसा लगता था कि मैं उन्ही के गर्भ से जन्म लूंगा। क्या आप अपने भावी माता-पिता का पूरा पता बता सकते हैं? प्रश्न किया मैंने।

मैं पूरा पता तो नहीं बता सकता लेकिन इतना अवश्य बतला सकता हूँ कि उनका मकान बहुत ही बड़ा था। मैंने पूछा कि क्या आप इस समय गर्भ में हैं। तो उसने कहा कि नहीं। क्योंकि अभी शिशु का शरीर पूरी तरह तैयार नहीं है। मैं इन्तजार कर रहा हूँ और मेरे साथ अन्य आत्माएं भी। हम सभी लोग मेनका बेन के आस पास रहते हैं। लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि मैं ही मेनका बेन के शिशु के रूप में जन्म लूंगा। अब तक केशव बाबू को मरे हुए पूरे एक साल हो चुके थे। इस अवधि में मैंने कई बार सम्पर्क किया केशव बाबू से।

मेरा अन्तिम सम्पर्क तब हुआ जब उस मृतात्मा ने गुजराती दंपत्ति के शिशु के रूप में जन्म ले लिया था। उस समय वे छः माह के थे। उन्होने कहा कि अब काफी सुख व शान्ति में है लेकिन जो स्वतंत्रता मरने के बाद थी वह समाप्त हो गयी है। लेकिन मैंने इस बात का पता लगाया तो सच साबित हुआ। केशव बाबू ने जिस घर में जन्म लिया था उन लोगों ने उनका नाम रतन भाई रखा था।

क्या मृत्यु के बाद मृतात्मायें भटकती हैं? उपरोक्त में आपने केशव बाबू की मृतात्मा से सम्पर्क के बारे में पढ़ा। कहने की आवश्यकता नहीं इस प्रकार हमने कई सद्यः व्यक्तियों से सम्पर्क किया। हमने यह निष्कर्ष निकाला कि एक शरीर छूटने के बाद और दूसरे शरीर की उपलब्धि तक मृतात्मायें साधारणतः घुटन भरे खामोश अन्धकारमय वातावरण में इधर-उधर भटकती रहती हैं। उनमें पार्थिव शरीर पाने की लालच बराबर बनी रहती है। इसके लिए वे हमेशा अपने संस्कार, भावना और विचार के अनुरूप गर्भ की खोज करती रहती हैं। किसी ब्राह्मण जाति के व्यक्ति में यदि शूद्र के विचार और भाव होंगे तो वह निश्चित ही शूद्र परिवार में जन्म लेगा। इसके विपरीत यदि शूद्र में भाव विचार और संस्कार ब्राह्मण की तरह होंगे तो वह ब्राह्मण जाति के परिवार में जन्म लेगा।

वास्तव में हमारा अगला जन्म हमारे विचार, संस्कार और भाव एवं आत्मिक योग्यता पर निर्भर करता है। यदि कोई जीवन से उदास, निराश और दुखी है तो उसका जन्म काफी अन्तराल के बाद होगा। यदि हमारे में जीवन के प्रति प्रेम, मोह और आकर्षण है तो हमारा अगला जन्म अति शीघ्र हो जायेगा। हमें एक प्रकार से सभी मृतात्माओं ने बताया कि उनका शरीर छूटते समय मूर्च्छा में था। यदि शरीर से छूटते समय वह मूर्च्छा या निद्रा न टूटी तो उसी स्थिति में पुनर्जन्म भी हो जाता है। मृतात्मा को कभी भी पता नहीं चलता कि कब उसका शरीर छूटा और कब उसे यह दूसरा शरीर प्राप्त हो गया। उन दोनों अवस्थाओं के बीच यदि नींद या बेहोशी टूट गयी तो उसे मृतात्मा की जागरण अवस्था कहते हैं। ऐसी ही मृतात्मा को प्रेत कहते हैं। उनके पास प्राकृतिक शरीर न होने के कारण तुरन्त वे अपनी वासना की पूर्ति हेतु अपने लिए शरीर का निर्माण कर लेते हैं। प्रेत वासना शरीरधारी होता है जिसमें आकाश तत्व और सूक्ष्मतम् वायु तत्व ही रहता है। जिसके फलस्वरूप प्रेत तत्काल किसी भी स्थान पर पहुंच जाते हैं। एक क्षण में हजारों मील की दूरी तय कर लेते हैं। आंधी तूफान में प्रेतों को भारी कष्ट होता है। वायु तत्व होने के कारण उनका शरीर अनियंत्रित हो जाता है। आकाश तत्व की विशेषता के फलस्वरूप प्रेत शून्य एकान्त अथवा निर्जन स्थानों में रहना अधिक पसन्द करते हैं। सूर्य की किरणें उन्हे भारी कष्ट पहुंचाती हैं। इसलिए अन्धकार उनको प्रिय है। प्रेतों के वासना शरीर में केवल मन रहता है और शेष इन्द्रियां नहीं रहती। तमाम अतृप्त वासनायें मन में रहती हैं। मन अपनी वासना की पूर्ति चाहता है। लेकिन इन्द्रियां न रहने के कारण वासना की पूर्ति असम्भव होती है। यही प्रेतों का कष्ट है। एक ओर वासना का वेग और दूसरी ओर इन्द्रियों का

अभाव। ऐसे में प्रेतों की स्थिति पागलों जैसी हो जाती है। वास्तव में एक प्रेत और पागल में कोई अन्तर नहीं। दोनों की मति-गति समान होती है।

संक्षिप्त में इस सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि प्रेत उस चेतना को कहते हैं जिसका शरीर तो छूट गया है मगर मन नहीं छूट पाया है। मन शरीर की मांग करता है। क्योंकि शरीर के द्वारा ही मन की पूर्ति हो सकती है। इसलिए प्रेत अपनी इच्छा, कामना और वासना की पूर्ति के लिए किसी स्त्री या पुरूष को माध्यम बना लेते हैं और उनकी इन्द्रियों की सहायता से अपनी पूर्ति कर लेते हैं। इसी को प्रेत बाधा कहते हैं। हमारे शरीर का निर्माण पांच प्रमुख तत्वों से होता है। जिनमें वायु तत्व और आकाश तत्व भी है। शरीर में आठ स्थान वायु के और पांच स्थान आकाश के हैं। इन्ही दोनों की सहायता से हम बातचीत करते हैं। हमारे शरीर के भीतर से ध्वनि, स्वर या शब्द निकलते हैं। वासना शरीर में इन्ही दोनों तत्वों के रहने के कारण प्रेत किसी भी स्त्री या पुरूष के शरीर के भीतर स्थित इन्हीं तत्वों पर आक्रमण करते हैं। जिसके फलस्वरूप प्रेत बाधित व्यक्ति की सांसे तेज-तेज चलने लगतीं हैं। देह गर्म हो जाता है। आवाजें लड़खड़ाने लगती हैं। सिर भारी हो जाता है। एक प्रकार की बेहोशी छा जाती है। मन में उन्माद सा पैदा हो जाता है।

जो प्रेतात्मा किसी कारणवश अपनी वासना की पूर्ति के लिए किसी के शरीर को माध्यम नहीं बना पाती वे हमेशा इधर-उधर भटकती रहती है। प्रेतात्मायें कभी-कभी मृत शरीर में भी प्रवेश कर जाती हैं। लेकिन इन्द्रियों के नष्ट हो जाने के कारण वे ज्यादा देर तक मृत शरीर में स्थित नहीं रह पाती हैं। कभी-कभी ये प्रेतात्मायें किसी पशु-पक्षी का भी रूप धारण कर लिया करती हैं कुछ समय के लिए।

जिस किसी स्त्री या पुरूष पर प्रेतात्मायें आक्रमण करती हैं उनकी आंखें हमेशा स्थिर व लाल रहती हैं व पलकें बहुत देर बाद झपकती हैं। गला सूखता है प्यास बार-बार लगती है। आलस्य बना रहता है लेकिन नींद नहीं आती। अकेले व सुनसान स्थान में रहने की इच्छा होती है। कभी-कभी तो आत्महत्या करने की इच्छा भी होने लगती है। भोजन की मात्रा या तो बढ़ जाती है या कम हो जाती है। बुद्धि विभ्रम हो जाती है। जब उन पर प्रेतात्माओं का आवेश आता है तो वे एक प्रकार से गहरी मूर्च्छा में चले जाते हैं। उस अवस्था में प्रेतात्मायें शरीर के माध्यम से सारे कार्य करती हैं। एक प्रकार से शरीर उनके लिए अन्धकार से प्रकाश में यानि प्रेत लोक से मानव लोक में आने का साधन बन जाता है। यही कारण है कि प्रेतात्मायें शीघ्र शरीर से हटना पसन्द नहीं करती।

मृतात्माओं का परा मनोवैज्ञानिक रहस्य- मृतात्माओं द्वारा तरह-तरह की

रोमांचक, चमत्कार पूर्ण और अविश्वसनीय रहस्यमयी घटनाओं की कहानियां प्रायः देखने और सुनने को मिलती है।

इस प्रकार की रहस्यमयी चमत्कार पूर्ण घटनाओं के विषय में प्रायः लोगों की यही धारणा होती है कि अवश्य उनके पीछे किसी अदृश्य शक्ति का हाथ है। निश्चय ही कोई दुष्ट प्रेतात्मायें ये सब उत्पाद कर रही है। इन्ही सबकी वजह से लोग ओझा, तांत्रिक के चक्कर में पड़ जाते हैं। मैंने पूरे आठ वर्षों तक शोध किया और निष्कर्ष निकाला कि इस प्रकार के घटनाओं और उत्पातों के तीन मुख्य कारण हैं।

मनुष्य के भीतर जो सबसे शक्तिशाली है वह है मन। जब कोई व्यक्ति अपने विचारों, भावनाओं का दमन करता है तो ऐसी स्थिति में कभी-कभी आन्तर मन का एक भाग अलग होकर सम्बन्धित स्थानों पर 'ईथर' में अदृश्य शक्ति का केन्द्र बन जाता है। जो बराबर उत्पात मचाता है और रहस्यमय ढंग से चमत्कार पूर्ण कार्य भी करता है। यह पहला कारण है।

ईथर में ऐसे अदृश्य मानसिक शक्ति केन्द्र यदि स्थाई रूप ले लेते हैं तो उनका प्रभाव सैंकड़ों सालों तक बना रहता है और वह स्थान तबतक अभिशप्त और तमाम रहस्यमयी घटनाओं का केन्द्र बना रहता है। ऐसे स्थानों को लोग भुतहा कहने लगते हैं। मृत्यु प्रायः एक ऐसी सरल और प्राकृतिक क्रिया है कि बहुत से मृतक प्राणी तो सहसा इस परिवर्तन को ठीक से महसूस ही नहीं कर पाते। सांसारिकता में अधिक लिप्त और आशक्त आत्मायें जीवित व्यक्तियों की ओर बराबर खिंची रहती हैं और अज्ञानता से उत्पात मचाती रहती हैं। रोग व्याधि पैदा करती हैं। पागल अथवा विक्षिप्त बना देती हैं यहां तक की अपराधी भी बना देती हैं। मैं यहां एक घटना का उल्लेख करूंगा। एक व्यक्ति ने अपराध स्वीकार करने के बाद एक स्त्री की हत्या का खण्डन करते हुए बतलाया- कि मैं हत्यारा नहीं हूँ। उस रात जब मैं स्त्री के पास पहुंचा तो मुझे उसके पीछे एक बड़ा सा आदमी दिखाई दिया। मेरे मस्तिष्क में अजीब सी उथल-पुथल होने लगी। किसी ने मेरा गला दबाया और मैं होश खो बैठा। जब मेरी चेतना पुनः वापस लौटी तो वह व्यक्ति बोला कि मैंने इस स्त्री की हत्या कर दी। वह व्यक्ति पिछले एक माह से मेरे पीछे लगा था। लेकिन यह मैंने कभी भी नहीं जाना कि वह मात्र एक मृतात्मा है।

विश्वविख्यात खगोल शास्त्री केमिली फलेमेरियन ने एक ऐसी महिला का उल्लेख किया है। जिसके मन में बार-बार आत्महत्या करने का विचार आता था। उसे वह मकान ही बदलना पड़ा। उसे यह ज्ञात नहीं था कि इस मकान के पिछले मालिक की

पत्नी ने उसी मकान की खिड़की से कूद कर आत्महत्या कर ली थी। वही उसे प्रेरित कर रही थी।

मृत्यु, अन्त जीवन का या शरीर का – मृत्यु क्या है? जीवन का अन्त या या है शरीर का अन्त? शरीर के अन्त के साथ क्या जीवन का भी अन्त हो जाता है? अगर हो जाता है तो अन्य लोकों की बात क्या मात्र ढकोसला है।

वैज्ञानिकों का कहना है कि जब हृदय रूक जाता है तो मस्तिष्क को मिलने वाला रक्त भी रूक जाता है। रक्त के अभाव में मस्तिष्क बड़ी तेजी से नष्ट होने लगता है। इसको नष्ट होने में ज्यादा से ज्यादा पन्द्रह मिनट लगते हैं। तब व्यक्ति की मृत्यु को स्वीकार कर लिया जाता है।

मृत्यु के समय व्यक्ति क्या देखता है? क्या हमेशा मृत व्यक्तियों के ही प्रेत दिखायी देते हैं? क्या उसे हमेशा अलौकिक दृश्यों का ही अनुभव होता है या वह इस दुनिया से सम्बन्धित चीजें भी देखता है? एक मरीज एक गरीब किसान था। दिल का मरीज था। उसे सुबह-सुबह स्वप्न दिखायी देते या आधी रात को। वह कहता कि उसे गांव के मरे हुए व्यक्ति जीवित दिखायी देते हैं। कभी-कभी वह बिस्तर गीला कर देता और कहता कि मैंने कुछ नहीं किया वह व्यक्ति आया था उसने मुझे बिस्तर से ढकेल दिया और वही बिस्तर गीला करके चला गया।

इसी तरह एक महिला मधुमेह से पीड़ित थी। उसने बताया कि उसकी माँ कई वर्षों पहले मर चुकी है वह उसे बुला रही है। वह महिला मरने से पहले बार-बार यही कहे जा रहे थी और यह भी उम्मीद किये जा रही थी कि शायद वह ठीक हो जाये। और अन्त में वह मर गयी।

इस तरह के मामलों में वैज्ञानिक या चिकित्सा शास्त्रीय व्याख्या बड़ी आसानी से दी जा सकती है। जब शरीर नष्ट होने लगता है तो मस्तिष्क भी विकृत होने लगता है। इसलिए उस मरीज को उलजलूल स्वप्न आते रहते हैं।

प्रेत का दिखायी देना डॉक्टरों के लिए अविश्वास की बात हो सकती है। लेकिन मरीज के लिए उसका अस्तित्व होता है। कई बार तो प्रेत की उपस्थिति मरीज को भी आश्चर्यचकित कर देती है। पिछले कुछ वर्षों में इस क्षेत्र में पर्याप्त शोध कार्य हुए। सन् १९७५ में आयी पुस्तक- एलिजाबेथ क्यूबलर रास द्वारा लिखित- 'डेथः द फाइनल स्टेज आफ ग्रोथ' का मूल विषय था जीवन के बाद जीवन। मृत्यु के बाद जीवन समाप्त नहीं होता। यह शोध खासतौर से पाश्चात्य जगत में हुआ है। जहां आत्माओं, भूतों, प्रेतों की बात करना हमेशा अन्धविश्वास करार दिया जाता रहा है। भारत में भी

धीरे-धीरे यही स्थिति आती जा रही है। इस पुस्तक ने मृत्यु के बाद के जीवन को एक ज्वलंत प्रश्न बना दिया है।

शांति देने वाले सपने- दुस्वप्न और स्वप्न में बहुत बड़ा अन्तर है। दुस्वप्न प्रायः विकृत मस्तिष्क की उपज होती है। रोगी बेचैन हो जाता है। दुस्वप्न में चीजें गड़बड़ रूप में नजर आती हैं। किन्तु मृत्यु पूर्व स्वप्न रोगी को शान्त कर देता है। दुस्वप्न में नजर आने वाले व्यक्ति मृत और जीवित दोनों हो सकते हैं। उसमें दिखायी देने वाली चीजों का सम्बन्ध इसी दुनिया से होता है। जबकि मृत्यु स्वप्न का सम्बन्ध पारलौकिक वस्तुओं और जीवों से होता है। मृत व्यक्तियों की आत्मायें मरीज को अपने साथ ले जाने के लिए आती हैं। अधिकतर आत्माओं के दिखायी देने के बाद मरीज की हालत अच्छी होते हुए भी उसके लिए जीवित रह पाना असम्भव हो जाता है। जो चिकित्सकों को परेशान कर जाती है। मृत्यु की घड़ियों का अहसास और अनुभव इस ओर स्पष्ट संकेत करते हैं कि मृत्यु के बाद जीवन होना चाहिए। परन्तु उस दुनिया की एक झलक मात्र प्राप्त कर लेने से यातनाग्रस्त व्यक्ति मृत्यु को अंगीकार करने को तैयार न होता। मृत्यु के क्षण में व्यक्ति को दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है।

मृत्यु, अंधकार में प्रकाश की रेखा : आदिकाल से मानव को मृत्यु के बारे में जिज्ञासा रही है। सर्व साधरण को मृत्यु अप्रिय और डरावनी प्रतीत होती है। परन्तु दार्शनिक सदा ही मृत्यु का रहस्य जानने की कोशिश करते आये हैं। एक अनुसंधानकर्त्ता श्री रेमंड मुडी जो कि मनोवैज्ञानिक हैं। इनके द्वारा किये गये मृत्यु विषयक कुछ जानकारी यहां मैं दे रहा हूँ।

यह अनुसंधान ऐसे व्यक्तियों पर आधारित है जिन्होने मृत्यु को बहुत ही करीब से साक्षात्कार किया है। ऐसे अनुभव तीन प्रकार के होते हैं।

१. उन व्यक्तियों के अनुभव जिन्हे डॉक्टर अपनी दृष्टि से मृत घोषित कर चुके हों। परन्तु बाद में उनके प्राण वापस आ गये हैं।

२. उन व्यक्तियों के अनुभव जो गंभीर चोट या बीमारी के कारण मृत घोषित कर दिये जाने के बावजूद लौट आये।

३. मरने वाले व्यक्तियों द्वारा बताए गये अनुभव जो सत्य साबित हुए।

एक व्यक्ति यह वर्णन करता है कि उस घटना के समय मैं नौ साल का था पर सत्ताइस साल बाद भी वह घटना पूरी तरह याद है। उस समय मैं गंभीर रूप से बीमार था। इसलिए डाक्टरों ने मुझे बेहोश करने का निर्णय लिया। और न जाने कैसे

कुछ समय के लिए मेरी हृदय गति रूक गयी। मुझे अजीब सी आवाजें सुनायी देने लगी। साथ ही अंतरिक्ष की ओर खिंचा चला जा रहा था। जहां काफी अंधेरा था। लेकिन कुछ ही क्षण बाद उसी बेहोशी की अवस्था से होश में आ गया।

इस अनुभव का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग है तीव्र प्रकाश रेखा का दिखना। शुरू में यह प्रकाश मन्द होता है पर शीघ्र ही उसमें एक अलौकिक तेज आता है। इस प्रकाश का रंग स्फटिक के समान होता है। फिर भी आंखों को कोई बाधा नहीं आती। यह प्रकाश वस्तुतः एक जीव होता है। इस जीव में जो प्रेम और गरमाहट की धारा निकलती है मरने वाला व्यक्ति उसकी ओर खिंचा चला जाता है।

पुनरागमन- मृत्यु के पश्चात कुछ क्षणों तक व्यक्ति अपनी मृत्यु के कारण दुखी हो जाता है। अपने शरीर में लौटना चाहता है। किन्तु अपने अनुभव की गहरायी में पहुंचने के बाद साधारणतया वह व्यक्ति लौटना नहीं चाहता। कुछ स्त्रियां तो लौटना नहीं चाहती लेकिन कुछ स्त्रियां अपने बच्चों के बारे सोच कर वापस आने का प्रयास करती हैं। कुछ व्यक्ति बताते हैं कि शरीर के बाद का जीवन ज्यादा आनन्ददायक है। पुनरागमन के बाद जीवन से गुजरे हुए व्यक्तियों को पूरी तरह विश्वास है कि उनका अनुभव सत्य था। वह केवल स्वप्न व कल्पना मात्र नहीं था। ऐसे व्यक्ति शांत व विचारशील बन जाते हैं। ऐसे व्यक्ति दार्शनिक दृष्टि से विचार करने लग जाते हैं। क्योंकि वे जीवन का सच्चा मूल्य जान जाते हैं। इस अनुभव से गुजरे व्यक्ति मृत्यु से नहीं डरते। उन्हे पता होता है कि मृत्यु के बाद भी अस्तित्व का अन्त नहीं होता। यह अनुभव उनके लिए कल्पना न होकर एक प्रत्यक्ष अनुभव बन जाता है। ऐसे व्यक्ति का कहना है कि मृत्यु के बाद भी ज्ञान साधना चलती रहती है। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि पुरागमन के पश्चात के व्यक्ति सभी प्राणी से प्रेम करने लग जाते हैं। उस अनुभव के उपरान्त उनका जीवन परिपक्व, अर्थपूर्ण तथा प्रेममय बन जाता है।

मौत का इन्तजार कितना पीड़ामय है : मौत के समय मनुष्य के अनेक रहस्य अंधविश्वास और चमत्कार जुड़े है। मनुष्य जानता है कि हर जीव को मरना है। किसी को मार डालना कोई जटिल कार्य नहीं है। लेकिन प्राकृतिक मौत एक बहुत बड़ा रहस्य है। जो व्यक्ति किसी गंभीर बीमारी से ग्रस्त होकर मौत के करीब होते हैं। वे मौत को स्वीकार करने से पहले पांच अवस्थाओं से गुजरते हैं।

पहली अवस्था में वह ठीक होने का अथक प्रयास करता है और वह स्वीकार नहीं कर पाता कि वह मरने वाला है डॉक्टरों के चक्कर लगाता है।

दूसरी अवस्था में पहुंचकर वह अपनी बीमारी को स्वीकार करता है। वह जीवन

ऊर्जा और गति के सम्बन्ध में रोष प्रकट करता है। वह कुछ क्रोधी भी हो जाता है।

तीसरी अवस्था में जब वह आता है तो वह समझ जाता है कि उसका अन्त अब नजदीक है तो अपने लिए साल दो साल और मांगने लग जाता है ईश्वर से। वह शांति की अवस्था में तो नहीं होता पर भावनात्मक रूप से ठीक होता है।

चौथी अवस्था में वह चिन्तामग्न हो जाता है। वह निश्चित रूप से स्वीकार कर लेता है कि उसकी मौत तय है। वह ज्यादा से ज्यादा चुप रहने लगता है। फिर वह अपने निकट सम्बन्धियों को ही अपने करीब चाहता है।

पांचवी अवस्था में उसे पता ही नहीं चल पाता और वह इस संसार से विदा हो जाता है हमेशा-हमेशा के लिए।

जिन्होने मौत को जिन्दादिली से गले लगाया : करीब दो शताब्दी पहले की बात है। अंगेजी के प्रसिद्ध कवि टॉमस ग्रेकम मृत्युशैया पर पड़े हुए थे। अपने भतीजे की ओर मुख करके बोला- 'आइ शैल डाइ' यानि मैं मरूंगा। इसी प्रकार दार्शनिक हॉलने जो एक डाक्टर भी था जीवन के अन्तिम क्षणों में अपनी नब्ज पकड़ कर पास ही बैठे एक मित्र से कहा- मेरे दोस्त मेरे धमनियों की गति रूक गयी है और जब उनके मित्र ने चेक किया तो वास्तव में वह रूक चुकी थी। मृत्युशैया पर पड़े हुए लेखकों, विचारकों, दार्शनिकों, सन्तों तथा साधकों ने हमेशा अपनी वाक्पटुता, विनोदी स्वभाव और जिन्दादिली का सबूत दिया है।

इसी प्रकार महान गणितज्ञ जिन्होने १८वीं शदी के शुरूआत में वर्गमूल निकालने की एक नयी पद्धति की खोज की वो भी बेहोशी की हालत में बिस्तर पर पड़े थे। मरने के क्षण करीब थे। वे अपने परिचितों को भी पहचानने में असमर्थ थे लेकिन जब मिस्टर लैंगनी ने १४४ का वर्गमूल पूछा कि क्या है तो उन्होने झट से उत्तर दिया कि बारह है। जो कि बिल्कुल सही था।

कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो मरते वक्त पूर्णरूप से मृत्यु में तल्लीन हो जाते हैं जैसे कि कवि गेटे की माँ के बारे में कहा जा सकता है। कहते हैं कि उनकी माँ के लिए एक निमंत्रण आया था लेकिन उन्होने ने अस्वीकार कर दिया और कहा कि मैं मरने में व्यस्त हूँ कृपया मुझे न आने के लिए क्षमा करें। इतना कहकर कुछ घण्टों में वो इस दुनिया से विदा हो गयीं हमेशा-हमेशा के लिए।

फ्रांस के हास्य लेखक फ्रैंकक्वाइस रेबेलेस ने मरते दम तक अपने विनोदी स्वभाव का परिचय दिया। मौत के बिस्तर पर पड़े जब उनसे किसी ने पूछा कि अपनी तबियत के बारे में आपको कैसा लग रहा है तो उन्होने हँसकर कहा- मैं अपनी

अन्तिम यात्रा अब शुरू करने वाला हूँ। मेरे जूतों पर पॉलिश हो चुकी है और अब मैं हमेशा के लिए जाने वाला हूँ। ऐसे लोग भी हैं जिन्होने अपनी मौत को हमेशा के लिए अमर बना दिया और अन्त तक खुशमिजाज बने रहे न तो वे घबड़ाये और न ही वे रोये व दुखी हुए।

इसी प्रकार के हँसते-हँसते मौत के घाट उतरना कितनी बड़ी बात है। मनुष्य रोते हुए इस दुनिया में प्रवेश करता है। उसे मुस्कुराते हुए और शान्ति के साथ इस दुनिया से विदा लेना चाहिए। लेकिन कितने ही लोग ऐसे हैं जो मिस मेरिया मिटशेल जो कि ज्योतिष शास्त्र की प्रथम महिला प्रोफेसर थीं ने कहा- 'आदमी के लिए मरते वक्त दुखी होकर चीखना चिल्लाना उचित नहीं है। यहीं से तो जीवन की दूसरी यात्रा प्रारंभ होती है। मुस्कुराते हुए मौत को गले लगाना चाहिए।' इतना कहकर मिस मेरिया मिटशेल अपने मृत्यु को हँसते-हँसते गले लगाया और हमेशा के लिए इस दुनिया से विदा हो गयीं। हम इन सब घटनाओं के बारे में बस इतना ही कहना चाहते हैं कि मृत्युशैया पर पड़े ये सब विचारक, कवि आदि ने जैसे जिन्दादिली का सबूत दे दिया है। क्या हम और आप भी इनकी तरह नहीं मर सकते या इन्ही की तरह मौत को हँसते-हँसते गले नहीं लगा सकते। मेरा मानना है कि मौत तो होनी ही है। इसलिए उससे भय कैसा। यह तो एक जीवन चक्र है। कभी मौत तो कभी जन्म चलता ही रहेगा। खैर अब आगे के विषयों की चर्चा कर लेते हैं।

वैज्ञानिकों के लिए पुनर्जन्म एक पहेली- सबसे सारगार्भित प्रश्न अगर हैं तो वे है इस देश के उपनिषदों में हैं। अस्तित्व क्या है? क्यों है? किसने शुरूआत की? इस देश में तीन हजार वर्ष पूर्व ही पूछ लिए गये थे। खेताश्वतोपनिषद पूछता है- मन चंचल क्यों है? वृहदारण्यक उपनिषद का प्रश्न है कि मनुष्य जब सो जाता है तो बुद्धि कहां खो जाती है? केनोपनिषद का प्रश्न- आदमी किसकी इच्छा से बोलता है?

अद्वैत वेदान्त के अनुसार- ब्रह्म का अर्थ है जो निरन्तर विकसित होता चला जाये अथवा निरन्तर विद्यमान रहे। अद्वैत के वेदान्त ने इसे दो भागों में बांटा- ब्रह्म और माया। ब्रह्म को इस जगत का निमित्त और उपादान दोनों का कारण बताया और कहा कि सृष्टि रचना के लिए ईश्वर माया को माध्यम बनांता है। माया की बहुत ही सीधी परिभाषा हो सकती है। जो दिखे तो मगर हाथ न आये उसका नाम माया है। माया उस गलतफहमी का नाम है जिसकी वहज से आदमी इस संसार में पड़ा है और कर्म कर रहा है।

माया सत, रत और तम तीन गुणों वाली होती है। आकाश से, वायु से, अग्नि से, जल से, पृथ्वी के उत्पन्न होने तक की क्रिया में यही तीन गुण माया द्वारा क्रियाशील

होते हैं। वेदान्त इन पांच महाभूतों को सूक्ष्म तत्व या तन्मात्रा कहता है। इन पंच तन्मात्राओं में जब सात्विक अंश की प्रधानता होती है तब आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी से क्रमशः श्रोत्र, स्पर्श, चक्षु, जिह्वा और घ्राण नाम वाली पांच ज्ञानेन्द्रियां पैदा होती हैं। इन्ही के कारण स्पर्श, रस और गन्ध का बोध होता है।

पांच तन्मात्राओं के सात्विक अंश के द्वारा बुद्धि, मन, चित्त और अहंकार जैसी आन्तरिक वृत्तियां बनती हैं। जिनमें ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का प्रेरक बनता है मन। पंचकृत भूतों से पैदा स्थूल देह का नाम है अन्नमय कोश। जो देह के साथ नष्ट हो जाता है। शरीर में स्थित पांच वायु और पंच कर्मेन्द्रियों के योग का नाम है प्राणमय कोश। यह कोश भी आत्मा से भिन्न है। पांच ज्ञानेन्द्रियों के योग को मनोमय कोश कहा गया है। जबकि बुद्धि तत्व युक्त पांच ज्ञानेन्द्रियों को विज्ञानमय कोश सत् गुणवाली अविद्या से संचालित होने वाली आनन्दमय कोश है। भारतीय दृष्टि के अनुसार देहान्त के बाद भी न मरने वाला सूक्ष्म शरीर पांच ज्ञानेन्द्रियों, पांच कर्मेन्द्रियों और पांच प्राण एक बुद्धि और मन के योग से बना है। यही वह सूक्ष्म शरीर है जो प्रारब्ध और संचित कर्मों के कारण देहान्त के बाद फिर जन्म ले लेता है।

पिछले वर्षों में भारत अमेरिका कनाडा और ब्रिटेन में पुनर्जन्म के इतने उदाहरण सामने आये हैं कि वैज्ञानिक और विशेष रूप से परामनोवैज्ञानिक इस विषय पर लगभग एक मत है। पिछले जन्म का विवरण देने वाले ये तमाम व्यक्ति सही और खरे हैं। प्रमात्र भौतिक सिद्धान्त तो यही मानता है कि जड़ और चेतन अलग-अलग है। जबकि आज का तरंग विज्ञान यह सिद्ध कर चुका है कि पृथ्वी से पहाड़ तक जड़ नहीं है बल्कि तरंग है। इस देश में सबसे पहले महावीर ने कहा कि संसार प्रवाह की तरह है यहां कुछ भी स्थिर नहीं है। सूक्ष्म शरीर की अवधारणा केवल भारतीय ही नहीं है। 'द ईजिप्शियन बुक आफ डेड' और 'द तिब्बेतियन बुक आफ डेड' में भी सूक्ष्म शरीर की चर्चा मिलती है। स्थूल शरीर से अलग हुए अनुभवों के कुछ आंकड़े अभी हाल में अमेरिकी सोसायटी फार सायकिकल रिसर्च ने एकत्रित किया है। मनोविज्ञान की भाषा में इन्हे 'ओवे इक्सपीरियन्स' कहा जाता है। इसी प्रकार के एक शोध में सामने आया है कि स्थूल शरीर के सामान्तर कोई सूक्ष्म सत्ता है जो तमाम सांसारिक अथवा दैहिक बन्धनों के बावजूद कभी-कभी दूर चली जाती है। हांलाकि यह स्थूल शरीर की नाभि से एक रूपहले डोर के माध्यम से हर हालत में जुड़ी रहती है। जब कभी यह डोर टूट जाती है तो आकस्मिक मृत्यु हो जाती है। जिसे छद्म मृत्यु कहते हैं।

हाल की खोजों से पता चलता है कि अणु के भीतरी भाग में एक तरह का निर्वात है। वैज्ञानिकों का कहना है अणु के भीतर इस शून्य से ही सूक्ष्म शरीर की रचना होती

है। मगर सूक्ष्म शरीर का एक झटके के साथ चला जाना और वापस स्थूल शरीर में आना अब भी वैज्ञानिकों के लिए पहेली बना हुआ है।

पूर्वाभाष की एक दिलचस्प घटना : किलिक और उसकी पत्नी ने इस्कान नामक एक पुत्र को जन्म दिया। उसके जन्म के पूर्व किलिक की पत्नी को स्वप्न दिखायी दिया कि अहमद डेलीविल्टा नामक एक आदमी ने आकर उसे एक उपहार दिया जिसमें देखा कि अहमद नामक एक व्यक्ति उसके और उसकी पत्नी के बीच में लेट गया है। वह उस आदमी को पहचानती तो थी पर उससे उसे किसी भी प्रकार का कोई लगाव न था। इस कारण उसे स्वप्न पर बहुत ही आश्चर्य हुआ। उसने अपने पति से इसका जिक्र किया और पूछा कि यह आदमी इस प्रकार उसके स्वप्न में क्यों आया? उसके पति ने कहा कि हो सकता है वह अपने होने वाले बच्चे के बारे में सोच रहा हो और इसीलिए उसे ऐसा स्वप्न दिखायी दिया। खैर, कुछ दिन बाद खबर आयी कि अहमद नामक व्यक्ति हवाई जहाज की दुर्घटना में मारा गया। इस घटना के लगभग एक सप्ताह बाद किलिक की पत्नी ने इस्कान को जन्म दिया। देखा कि लड़का जब बोल भी नहीं पाता था तो भी हवाई जहाज से बहुत डरता था। फिर लगभग दो तीन साल के बाद उसने पुनर्जन्म के बारे में बताना शुरू किया। वह कहने लगा कि वह उसकी माँ नहीं है उसका नाम तो अहमद है। जो कुछ भी उसने बताया वह लगभग सही था। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि अहमद को पूर्वाभाष हो गया था।

महाराजा बलरामपुर का पुनर्जन्म- २८ जुलाई १९६८ को जिला गोंडा उ. प्र. की एक तहसील बलरामपुर के अन्तर्गत कस्बा शिवपुरा में पन्नालाल स्वर्णकार के घर उनकी पत्नी तारामती ने पुत्र रत्न को जन्म दिया। दोनों पति-पत्नी धार्मिक थे। उन्होने अपने पुत्र का नामकरण संस्कार किया। उसका नाम पुण्डरीक रखा। शादी के बीस वर्ष बाद सन्तान हुई थी। ग्रामीण औरते तारामती को अपशकुन मानने लगी थीं। एक दिन तारामती ने सुना कि कच्चे बाबा के यहां भण्डारा है। वहीं एक औरत ने बताया कि जो भी कच्चे बाबा से सच्चे मन से दुआ मांगता है उसकी मुराद अवश्य पूरी होती है। यह सुनकर तारामती ने तुरन्त ही कच्चे बाबा की समाधि के निकट जा पहुंची और विनती की। इस घटना के तीन माह बाद तारामती गर्भवती हो गयी और सन्तान का जन्म हो गया। जल्दी ही पुण्डरीक अन्य सामान्य बच्चों से अलग दिखने लगाा और कुछ विशिष्ट व्यवहार करने लगा। उसकी आवाज में तुतलाहट लेशमात्र भी नहीं थी। जब तीन वर्ष का हुआ तो माँ से बोलने लगा कि यहां तो हाथी घोड़ा कुछ भी नहीं है। तुम्हारा घर बहुत गंदा है तुम मेरा घर देखोगी तो खुश हो जाओगी। मेरे

घर में तो बहुत सारे दास व दासियां हैं। एक दिन तारामती सरसों का साग और बाजरे की रोटी बना रही थी। उसने आवाज लगायी पुण्डरीक चल आके खा ले। तब उस बालक ने कहा हां माँ आता हूँ। मेरी माँ भी कभी-कभी जाड़े में बनाती थी। तारामती ने कहा कि क्या तेरी और भी कोई माँ है। तो उस बालक ने बोला कि मेरी माँ बलरामपुर में रहती है। उनका नाम लाल कुवंरी है। अपने बेटे पुण्डरीक से यह बातें सुन कर तारामती चिन्तित हो उठी। पन्नालाल जी ने सुना तो हँस कर टाल दिया। एक दिन पन्नालाल ने कपड़े लाकर दिये तो उस बालक ने कहा कि मैं ऐसे कपड़े नहीं पहनता। ऐसे कपड़े से मेरे यहां नौकर पहनते हैं। तो पन्नालाल जी ने कहा कि यहां नौकर कहां हैं। यह तू कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहा है। इस पर पुण्डरीक ने साफ-साफ कह दिया कि वह बलरामपुर का महाराजा है। यह सब सुनकर पन्नालाल औ़र उनकी पत्नी घबड़ा गये। कहीं प्रेत तो नहीं घुस गया है बच्चे के शरीर में। तब ओझा आदि आयें झाड़ा फूका लेकिन कोई अन्तर नहीं पड़ा। तब वे लोग कच्चे बाबा की समाधि पर पुण्डरीक को लेकर गये। वहां के स्वामीजी ने कहा- बेटा चिन्ता मत कर। इसको पूर्वजन्म की बातें याद आ रही हैं। बलरामपुर के राजा पाटेश्वरी प्रसाद सिंह ने इस बालक के रूप में पुनर्जन्म लिया है। बालक होनहार है। तुम्हे खुश होना चाहिए। उसके अन्दर राजाओं वाले सारे गुण अपने आप ही आ गये। जैसे बन्दूक चलाना, शिकार करना, तैरना आदि। कुछ साल बाद पुण्डरीक का मुण्डन संस्कार कराया गया। तभी बालक ने कहा कि माँ मुझे नील कोठी यानि राजमहल में जाना है। उन लोगों ने कहा ठीक है बेटा। राजमहल में पहुंचने से पहले ही सब को यह पता हो गया था कि महाराज का पुनर्जन्म इस बालक के रूप में हो गया है। तब महारानी के आदेश पर बालक को राजमहल लाया गया। रानी ने कहा कि महाराज के लिए शर्बत लाओ तो दासी ने चांदी की गिलास में शर्बत ला कर रख दिया। तभी पुण्डरीक ने कहा कि रानी तुम्हे तो पता है कि मैं सोने के गिलास में पीता हूँ। तब महारानी ने कहा हाँ महाराज आपका वह गिलास आज भी सुरक्षित है। मैं उसी में आपके लिए शर्बत लाती हूँ। पुण्डरीक ने राजा की भांति ही एक दो घूट शर्बत पिया और फिर रख दिया। इसके बाद राजमाता ने अनुरोध किया कि वह यहीं रह कर शिक्षा ग्रहण करें। लेकिन पुण्डरीक ने मना कर दिया राजमहल में राजा पाटेश्वरी प्रसाद सिंह की प्रतिमा थी जैसे ही तारामती ने प्रणाम करना चाहा तभी पुण्डरीक ने हाथ पकड़ लिया। कहा- क्या कर रही हो माँ मेरे पैर तुम्हे नहीं छूना चाहिए। मेरे दादाजी दिग्विजयजी के पैर छुओ।

इसके बाद वे सब अपने घर आ गये और बालक ने जो-जो बातें बतलायी वह अक्षरशः सत्य साबित हुआ। पुण्डरीक के रूप में महाराजा बलरामपुर स्व. पाटेश्वरी प्रसाद सिंह के पुनर्जन्म की चर्चा गोंडा में आज तक होती है।

पाठकों के मन में विचार उठ सकता है कि पुनर्जन्म की बातें सबको स्मरण क्यों नहीं रहती। हमारे शास्त्रों ने इस बात को विचित्र ढंग से समझाया है। लेकिन मैंने जितने भी पूर्वजन्म के वृत्तान्त सुने। ज्यादातर लोगों की आकस्मिक मृत्यु हुई थी। सहसा मर जाने पर और पूर्व जीवन से तृप्त न होने पर जीवात्मा सद्यः जन्म पाने के बाद अपने पूर्व जीवन के कुछ तथ्यों को भूल नहीं पाता। इस जन्म में उसे प्रसंग विशेष के आते ही स्मरण हो आता है।

परिवर्तन एवं विकृति- दो जन्मों में एक ही नाम। गायत्री की मृत्यु १६३१ में हुई थी और उसका पुनर्जन्म १६६२ में हुआ था। दोनों जन्मों में एक ही नाम था गायत्री। सन् १६८२ में मेरी पहली भेंट गायत्री से, वैद्य श्री राम नारायण मिश्र के माध्यम से हुई।

उस समय इस बालिका को अपने दो जन्मों के पहले की सारी बातें याद थीं। वह एक साधिका थी नाम था स्वर्णा। सावन भादों का महीना था। थोड़ी देर बाद यहां वहां की बात करने के बाद उसे न जाने क्या हो गया। वह शराब की मांग कर बैठी। स्वर्णा कहने लगी प्यास लगी है शराब लाओ। मैं घबड़ा गया। क्योंकि उस समय मैं शराब पीना तो दूर उसे छूता भी नहीं था। उस समय मेरे पास पैसे भी नहीं थे कि किसी को भेज कर मंगवा लेता। शायद वह मेरे मन के मनोभाव को जान गयी थी। एक बार गहरी दृष्टि से देखा और हवा में हाथ हिलाते हुए उसने न जाने कहां से विलायती शराब की बोतल ले आयी।

मैं स्तब्ध था। मुंह बाये शराब की ओर देखता रहा। कुछ क्षणों में उसने सारी शराब पी ली। उसके इस रहस्य को जानने के लिए मैं उत्कण्ठित था। योगी अथवा साधकों द्वारा किसी वस्तु की सृष्टि तीन प्रकार से हुआ करती है। योगबल, विज्ञानबल और प्रेतबल से। यह मैं जानता था और यह भी जानता था कि प्रेतबल से इस प्रकार का कार्य करना निम्नकोटि की सिद्धि है। न वह यथार्थ होता है और न तो स्थायी ही।

सहज भाव से मैंने पूछा कि आपने शराब की बोतल किस शक्ति से मंगवायी है। आन्तरिक मनोबल की सहायता से। जिसे विज्ञानबल भी कहा जाता है। आन्तरिक मनोबल ही एकमात्र विज्ञानबल है।

फिर योगबल क्या है? जिस प्रकार मन में आकर्षण-विकर्षण है। उसी प्रकार

प्राण में भी आकर्षण-विकर्षण है। यह वेद विज्ञान का विषय है। वेद में प्राण के आकर्षण-विकर्षण को 'येति च्-प्रेति च्' कहते हैं। श्वांस-प्रश्वांस उसके भौतिक रूप हैं। प्राणबल ही एकमात्र योगबल है।

क्या दोनों की सहायता से सृष्टि अथवा निर्माण सम्भव है?

हाँ, जहां आकर्षण तत्व की मात्रा समान होगी वहां उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। फिर भी योगबल सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि उससे मौलिक सृष्टि होती है।

मौलिक सृष्टि से आपका क्या तात्पर्य है समझा नहीं मैं?

शरीर में बहुत से ऐसे स्थान हैं जहां शून्य के सिवाय और कुछ नहीं है। योगियों का कहना है कि जहां शून्य अथवा अभाव है वहां शक्ति का केन्द्र समझना चाहिए। शरीर में दस-बारह शक्ति केन्द्र हैं। जिनमें कुछ मनः शक्ति केन्द्र हैं, तो कुछ प्राण शक्ति केन्द्र हैं। विद्युत शक्ति की तरह उस शक्ति की भी दो धारायें हैं धनात्मक और ऋणात्मक। पहली धारा में आकर्षण क्रिया और दूसरी धारा में विकर्षण क्रिया है। मैंने कहा कि जैसा कि बतलाया गया है मन और प्राण के दो रूप हैं। पहला बाह्य और दूसरा आन्तरिक रूप। आपके सिद्धान्त का सम्बन्ध किस रूप से है।

दोनों के आन्तरिक रूप से है। आन्तरिक मन और प्राण को ही सूक्ष्म प्राण कहते हैं। बाह्य मन और प्राण के संयम से सूक्ष्म मन और प्राण पर अधिकार किया जाता है। प्राण पर अधिकार योग का और मन पर अधिकार तंत्र का विषय है। सूक्ष्म प्राण पर अधिकार हो जाने पर उसकी आकर्षण-विकर्षण शक्ति की सहायता से किसी भी वस्तु की मौलिक सृष्टि की जा सकती है। मगर किसी भी वस्तु की सृष्टि में दो तत्व काम करते हैं चेतन तत्व और जड़ तत्व। जिसे वैदिक विज्ञान में देव तत्व अथवा शक्ति तत्व कहते हैं। मैंने पूछा कि इन सबके साथ ही भूत तत्व भी तो अनिवार्य है।

अवश्य, वायु मण्डल में सभी प्रकार के भूत तत्वों के अणु-परमाणु विद्यमान हैं योगी सूक्ष्म तत्व की प्राप्ति के कारण आकर्षण-विकर्षण शक्ति के माध्यम से उन अणु-परमाणुओं को केन्द्रित कर इच्छानुसार किसी भी वस्तु की सृष्टि कर देते हैं। सभी प्रकार की भौतिक वस्तुओं में पृथ्वी तत्व मुख्य होता है। शेष तत्व गौण होते हैं। इसलिए यौगिक सृष्टि में पृथ्वी तत्व के अणु-परमाणुओं को मूल आधार बनाया जाता है। योगी की इच्छा शक्ति भी वहीं केन्द्रित होती है। शेष तत्व चेतना की सहायता से वस्तु अथवा पदार्थ के निर्माण में सहयोग देते हैं। प्राकृतिक सृष्टि और यौगिक सृष्टि के मूल में कोई अन्तर नहीं है और अन्तर है भी।

वह अन्तर क्या है? प्रश्न किया मैंने।

प्राकृतिक सृष्टि स्वयम्भू सृष्टि है। उसके आधार पर किसी की इच्छा नहीं है। इसलिए प्रकृति प्रदत्त में जहां वस्तु धीरे-धीरे नाश की ओर उन्मुख हो जाती है। प्राकृतिक में जहां नाश है वहीं निर्माण भी है। यौगिक सृष्टि में यह बात नहीं। वह स्वयम्भू शक्ति नहीं है। उसके पीछे योगी की इच्छा शक्ति काम करती है। इच्छा शक्ति मिलकर वस्तु या पदार्थ का निर्माण करते हैं। इसलिए जिस वस्तु या पदार्थ की यौगिक सृष्टि होती है उसका कभी किसी काल में नाश नहीं होता। उसके रूप गुण में भी किसी प्रकार का परिवर्तन अथवा विकृति नहीं पैदा होती।

फिर प्रश्न किया मैंने कि मनोबल से सृष्टि कैसे सम्भव है?

प्राण तो सबसे सूक्ष्म और सूक्ष्मतम् है ही मगर मन प्राण से भी सूक्ष्मतम् है। इसलिए मन की शक्ति और गति दोनों प्राण से ज्यादा शक्तिशाली है। यही कारण है कि योग से तंत्र को ऊंचा माना गया है। इतना कहकर वह साधिका मौन हो गयी और मेरी जिज्ञासाओं का भी उत्तर मिल गया था।

गायत्री के रूप में साधिका स्वर्णा ही थी। क्योंकि गायत्री तो एक सामान्य महिला थी लेकिन उसके पूर्वजन्म के संस्कार, साधना का तेज अब भी बरकरार रहा और उसी के बल पर अब भी वह जहां चाहे आ जा सकती थी एवं एक प्रकार से उस महान साधिका के लिए कुछ भी असम्भव नहीं था।

आत्म साधना- भारतीय संस्कृति प्रथम स्फुरणों से लेकर उसके वर्तमान उत्कर्ष तक का विकासक्रम मानव चेतना को जिन चिरन्तन सत्यों का वरदान दे सका है। उनमें सबसे स्थायी उपलब्धि निस्संदेह **'आत्मानं सिद्धिं'** की अनुभूति है।

इस सत्य की स्वीकृति में देश-काल का व्यवधान रहा ही नहीं। ब्रह्म को सत्य और जगत को मिथ्या मानने वाली भारतीय मनीषा और इह लोग पर ही अपने दर्शन का विशाल जगत खड़ा कर दिया। जिसका निष्कर्ष है आत्मान्वेषण को ही अपने मानव जीवन का चरमलक्ष्य मानने वालों में जैसे याज्ञवलक्य के साथ सुकरात तक का यही दर्शन है। प्रागैतिहासिक काल की समस्त साधनाओं, अनुभवों को अन्तर्लीन किए हुए है। इसलिए आत्मा को जान लेना ही सारे ब्रह्माण्ड को जानने के समतुल्य है।

हमारी आत्मा तो एक महासागर है। जिसमें न केवल उसकी चेतना की धारा है अपितु कई युगों की, कई पीढ़ियों की, कई जन्म-जन्मान्तरों की, देश व काल की चेतनाओं का अखण्ड प्रवाह समाया हुआ है। कहने का तात्पर्य इतना ही है कि अपने धर्म में स्थित रहकर भी आत्मज्ञानी के लिए सम्पूर्ण विश्व मानवता की सेवा सर्वथा सम्भव है। सत्य की खोज सभी प्राणी को है। सत्य का साक्षात्कार सभी मानव को है।

पूरे संसार का ज्ञान बटोर कर भी मानव अपने आपसे बिल्कुल अपरिचित रह सकता है। आत्मज्ञान का मार्ग क्या है? ज्ञान, कर्म, श्रद्धा और प्रेम यही आत्मज्ञान की ओर बढ़ने का पथ है। जो स्वयं की अनुभूति कर लिया और पालन में तत्पर है वही मनीषा है। वही आत्म चक्षु है। समझें कि आत्म ज्ञान की राह पर पहला पग रख चुका है। मीरा, रामतीर्थ, चैतन्य महाप्रभु, सूरदास, तुलसीदास, रैदास, रामकृष्ण परमहंस आदि जिस तत्व की उपलब्धि प्रेम मार्ग से की उसी को प्लूटो, अरस्तु, कपिल मुनि, ऋषि जैमिनी, महर्षि पतंजलि, शंकराचार्य आदि ने ज्ञान मार्ग से प्राप्त किया।

इधर प्रणय की रसेश्वरी साधना है तो उधर तत्व का सूक्ष्म प्रगाढ़ चिन्तन है। दोनों ने अपने-अपने तरीके से आत्मा को जाना और आत्मा को जान कर परमात्मा की खोज में प्रवृत्त हुए।

आत्मानं सिद्धि का सन्देश यही है कि आन्तर दर्शन करके, अपने अन्दर झांक कर अपने सामर्थ्य को टटोलो, अपनी शक्ति और सीमाओं दोनों का अनुमान लगाओ। अपने अन्दर अनथाही गहराईयों में डुबकी लगाओ। अपने स्वरूप को पहचानो, दूसरे की तरह बनने का मिथ्या मोह छोड़ो। जो अन्दर है वही आपका अपना है। उसकी खोज कहीं और न करो। जो आपके अन्दर नहीं है। वह आपके लिए कहीं नहीं है क्योंकि वह आपका नहीं हो सकता है। **'आत्मवत् सर्वभूतेषु'** यानि अपने समान सबको समझो। अपने समान सबको जानो, सबके समान अपने को नहीं। सच्चा आनन्द आपके भीतर है। स्वर्ग और नरक आत्मा के अन्दर है। यही आत्म उपलब्धि है।

शायद इस दर्शन से आप मेरे विचारों से अवगत हो गये होंगे। सारे खोज, सारे ज्ञान बस यहीं आकर ठहर जाते हैं। इस संसार में अगर कोई सत्य है तो वह है आपकी अपनी आत्मा।

पुस्तक में आत्मा को केन्द्रित कर वैज्ञानिक, आध्यात्मिक प्रमाणों के साथ मैंने यही सिद्ध करने का प्रयास किया कि आत्मा ही परम ज्ञान की सूक्ष्म कड़ी है। जबतक हम आत्मा का अनुभव नहीं कर लेते तबतक परमात्मा तक पहुंचना या उन्हे अनुभव करने का प्रयास व्यर्थ है। आत्म साधना ही सर्वोपरि साधना है। आत्म साधना का एक ही मार्ग है वह है ध्यान। ध्यान की चरम उपलब्धि ही आत्म ज्ञान है।

***

पंचम अध्याय

त्रैलोक्य मीमांसा

आवाहन पुस्तक में मैंने त्रैलोक्य मीमांसा की प्रसंगवश चर्चा की थी और अपने गुरु श्रद्धेय गोपीनाथजी से भी इस विषय पर चर्चा भी की थी। चूंकि शिवेन्द्र सरस्वती के माध्यम से कवीन्द्राचार्य ने समाधिवस्था में पुस्तक लिखवायी। वह कहीं-कहीं अपूर्ण थी या लिखते समय विषय भ्रम हो गया होगा शिवेन्द्र सरस्वती को उस समय। खैर शिवेन्द्र सरस्वती की आत्मा तो मुक्त हो गयी। लेकिन वर्षो तक उनके गुरु कवीन्द्राचार्यजी से मेरा अगोचर सम्बन्ध बना रहा। जहां तक मेरा विचार है कि इस विषय पर कवीन्द्राचार्यजी ने पुस्तक लिखने का विचार बनाया होगा और वह पूर्ण नहीं हो पायी और मृत्यु के बाद उन्हे अगोचर जगत के और रहस्य देखने को मिले होंगे। तब पुस्तक लेखन के लिए उनकी आत्मा की इच्छा और भी प्रबल हो गयी। जब तक उनके विचार इस जगत में नहीं आते तब तक उनकी आत्मा मुक्त नहीं हो पाती। इसलिए उन्होने अपने शिष्य को माध्यम तो बनाया लेकिन वह पूर्ण नहीं हो पायी। तब उन्होने मुझे माध्यम बना कर अपनी पुस्तक पूर्ण कराना चाहते थे। वैसे तो त्रैलोक्य मीमांसा पर एक वृहद पुस्तक लिखने की इच्छा है। अगर समय मिला तो अवश्य लिखूंगा।

त्रैलोक्य मीमांसा में सृष्टि क्रम के साथ-साथ देव लोक, पितृ लोक और भू लोक का वर्णन है। लेकिन इतने सूक्ष्म रहस्य से जब मैं परिचित हुआ तो एकबारगी हतप्रभ रह गया। उन रहस्यों को प्रकाश में लाना सम्भव नहीं था। जब मनुष्य प्रकृति के इतने समीप पहुंच जाता है और उसके रहस्य को जान जाता है जो प्रकृति उसे फिर संसार में रहने नहीं देती। प्रकृति का अपना रहस्य है वह कभी भी उसे उजागार नहीं होने देना चाहती। सूक्ष्म रहस्य को उस महान और दिव्य आत्मा के माध्यम से जान चुका हूँ, शायद मेरे जीवन का अन्तिम आलोकिक रहस्य है। जिसकी खोज में मैंने सारा जीवन लगा दिया। उस रहस्य का उजागर मेरे जीवन में अन्तिम समय पर हुआ। शायद प्रकृति की या माँ की इच्छा यही रही होगी। खैर, अब स्वास्थ्य भी साथ नहीं दे रहा है। लेकिन लिखने की इच्छा मेरी इच्छा शक्ति को और भी प्रबल कर देती है।

मैं यहां कुछ प्रमुख विषयों पर चर्चा करने का प्रयास करूंगा। यह दर्शन शुद्ध रूप से हिन्दू धर्म के आध्यात्म का समावेश है। विज्ञान और किसी धर्मो के साथ तुलनात्मक पहलू से विचार नहीं किया गया। यह पूर्णरूपेण भारतीय धर्म दर्शन पर आधारित है। जो भी मैंने अनुभूति की और मनन-चिन्तन किया उसी का सार तत्व प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ।

अनन्त ब्रह्माण्ड- अनन्त आकाश में अनन्त शून्य में अन्तहीन कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड है। शुद्ध ज्ञानमय ज्योतिर्मय ब्रह्म समुद्र में अनन्त ब्रह्माण्ड का तरंगों की तरह उदय और लय हो रहा है तो कहीं पर विनाश का ताण्डव चल रहा है और किसी ब्रह्माण्ड पर तो प्रलय का समय आ गया है। कहीं पर विचित्र सृष्टि देखने में आ रही है। कहीं पर जीव शून्य भूमि दिखलायी पड़ रही है। उसी प्रकार महाशून्य में अलग-अलग आवरण से अनेक ब्रह्माण्ड अनन्त काल से घूम रहे हैं अनन्त आकाश में। अगर विचार पूर्वक देखा जाये तो दस दिशाव्यापी अनन्त आकाश किस जगह जाकर अन्तहीन होगा हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। क्या हम कल्पना कर सकते हैं कि दसों दिशाओं के आकाश की कहीं कोई परिधि है? जिस प्रकार से आधाररूपी आकाश की सीमा का न तो किसी दिशा में आदि है और न तो है अन्त। उसी प्रकार दृश्यमान ग्रह, उपग्रह, सूर्य द्वारा परिव्याप्त ब्रह्माण्ड समूह भी संख्यातीत और अनन्त होंगे इसमें कोई सन्देह नहीं।

लेकिन उस विराट पुरूष अथवा परब्रह्म जो परम ब्रह्माण्ड के रचयिता हैं उसके स्वरूप का ध्यान कर हमारा मन आश्चर्य चकित हो जाता है और हो जाता है मस्तिष्क शून्य। सोचने की क्षमता ही खत्म हो जाती है एकबारगी। उस विराट ब्रह्माण्ड की कल्पना करके। ईश्वर की चित्त सत्ता और सत् सत्ता के आश्रय से महा प्रकृति का स्वाभाविक त्रिगुण तरंगमय आध्यत्मिक सृष्टि का अनन्त विस्तार है और हो रहा है। जिसकी न उत्पत्ति है और न तो है नाश। इसलिए आध्यात्मिक सृष्टि को नित्य सृष्टि कहा गया है। परब्रह्म अनादि अनन्त होने से महा प्रकृति सृष्टि स्थिति प्रलय का क्रम भी अनन्त है।

सृष्टिक्रम : प्रकृति में चार प्रकार की सृष्टि होती है। पहली सृष्टि अदृष्ट से उत्पन्न होती है और दूसरी सृष्टि विवर्त भाव से होती है उत्पन्न। तीसरी सृष्टि परिणामात्मिका है और चौथी सृष्टि प्रारम्भ सृष्टि कहलाती है। इनमें से अदृष्ट सृष्टि और प्रारम्भ सृष्टि जीव पिण्ड से सम्बन्ध रखती है। अदृष्ट सृष्टि जीव के पूर्ण कर्मो द्वारा होती है। जिससे जीव का शरीर उत्पन्न होता है। जिसके लिए जीव पराधीन है।

आरम्भ सृष्टि जीव के कर्म द्वारा होती है। दूसरी ओर विवर्त और परिणाम सृष्टि प्रकृति से सम्बन्ध रखती है। जीव सृष्टि का प्रवाह ब्रह्माण्ड में चलता रहता है वही परिणाम सृष्टि कहलाती है।

सृष्टि के जो चार भेद हैं जब वह पिण्ड और ब्रह्माण्ड के साथ मिला कर देखें जाते हैं तब सृष्टि का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार स्थूल ब्रह्माण्ड का वर्णन मिलता है। प्रत्येक ब्रह्माण्ड का केन्द्र शक्ति सूर्य ही है। तदनुसार यह ब्रह्माण्डवर्ती सूर्य ही इस ब्रह्माण्ड का केन्द्र है। समस्त ग्रह-उपग्रह उसी के आकर्षण और विकर्षण शक्ति के प्रभाव से उसी के चारो ओर प्रदक्षिण करते हैं। समस्त ब्रह्माण्ड में ज्योतिष्मान कोई भी वस्तु नहीं है। समस्त ज्योति का आधार रूप सूर्य है। ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत समस्त ग्रह-उपग्रह में सूर्यरूपी ज्योति का संचार होता है। हमारे सौर मण्डल में अब तक ऐसे २६८ ग्रह-उपग्रह का पता चला है। जो सूर्य के प्रकाश से ज्योतिष्मान होकर सूर्य के चारो ओर चक्कर लगाते रहते हैं। ग्रह सूर्य की प्रदक्षिणा करते हैं और उपग्रह ग्रहों की प्रदक्षिणा करते हैं। इन सब ग्रहों-उपग्रहों को लेकर सूर्य भी किसी अज्ञात सूर्यरूपी ध्रुव की प्रदक्षिणा करता रहता है।

सभी ग्रह-उपग्रह का स्थूल रूप पृथ्वी, जल आदि पंच महाभूतों से बना है। किसी में एक तत्व प्रधान है तो किसी में दो तत्व प्रधान है। जहां तक पृथ्वी का प्रश्न है तो इसमें पांचो तत्व की प्रधानता है। समस्त ग्रह-उपग्रह में सूक्ष्म जीवों का वास होता है। कोई भी ग्रह-उपग्रह जीव शून्य नहीं है। २६८ ग्रह-उपग्रहों में ८ ग्रह मुख्य हैं। क्षुद्र ग्रह २४० हैं और उपग्रह या चन्द्र ग्रह २० हैं। इसके अनुसार पृथ्वी का १ चन्द्रमा है और मंगल के २, गुरू के ४, शनि के ८, यूरेनस के ४ और नेपच्यून में १ चन्द्रमा का प्रमाण मिलता है। आपको ज्ञात होना चाहिए कि हमारी पृथ्वी तीन सौ पैंसठ दिनों में एक बार सूर्य की परिक्रमा करती है। इसी प्रकार अन्य ग्रह भी अपनी गति से प्रदक्षिणा कर रहे हैं। नेपच्यून के आगे अभी तक किसी भी ग्रह का पता नहीं चला है। इसलिए सूर्य को सौर परिवार का सीमा ग्रह अर्थात अन्तिम ग्रह माना जाये तो इसका व्यास और परिधि कितनी होगी हम और आप कल्पना भी नहीं कर सकते। यही अनन्त आकाश में अविराम भ्रमणशील हमारे ब्रह्माण्ड अनुमानिक परिणाम हैं। जिसकी केन्द्र शक्ति तथा समस्त प्रकाश का एकमात्र आधार रूप सूर्य ही है। अपने समस्त सौर परिवार सहित द्रुत गति से महासूर्यरूपी ध्रुव के चारो ओर प्रदक्षिणा कर रहा है। यही पंच महाभूतमय स्थूल ब्रह्माण्ड है। ऐसे अनन्त ब्रह्माण्डों द्वारा ब्रह्म का विराट स्वरूप सुशोभित है। यही अनादि और अनन्त आध्यात्मिक चमत्कार है।

सृष्टि का रहस्य- आदि देव ब्रह्मा ने समस्त चराचर जगत की मानसिक सृष्टि की थी। ब्रह्मा के द्वारा सर्वप्रथम मानसिक सृष्टि का स्थूल रूप रहा। वही अक्षय वेदमूलक धर्म परायण सृष्टि हुई थी। ब्रह्माण्ड की सभी सृष्टियों में आदि देव ब्रह्मा की ही मानस सृष्टि है। इन सब सृष्टि को दस भागों में विभाजित किया गया है। आदि ग्रन्थों में यही प्रमाण मिलता है। प्रकृति के गुण स्वभाव से पहली सृष्टि मह तत्व है और दूसरी अहं तत्व की सृष्टि है जो द्रव्यात्मक, क्रियात्मक और ज्ञानात्मक सृष्टि उत्पन्न करने वाला है। तीसरी सृष्टि सूक्ष्म तत्व अथवा सूक्ष्म तन्मात्रा की है। जिसमें द्रव्य यानि स्थूल पंच महाभूत उत्पन्न करने की शक्ति निहित है। चौथी सृष्टि ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय है। पांचवी सृष्टि इन्द्रियाधिष्ठात्री देवों तथा मन की है छठी सृष्टि। तम, मोह, महामोह, तामिस्त्र और अंध तामिस्त्र नामक अविद्या की है जो अबुद्धि पूर्वक स्वतः उत्पन्न होती है।

यह छः प्रकार की सृष्टि प्राकृतिक होती है। इसके बाद सांतवीं, आठवीं और नवीं सृष्टि जिसमें उद्भिज्ज, स्वेतज, अण्डज, जरायुज, पशु जरायुज, मनुष्य है। ये सब वैकृत सृष्टि है। दैवी सृष्टि दसवीं सृष्टि है।

ब्रह्माण्डीय गति का प्रवाह चक्रावर्त होने के कारण व्यष्टि सृष्टि का प्रवाह नीचे से ऊपर की ओर होता है अर्थात तमोगुण से सत्वगुण की ओर चलता है। परन्तु समष्टि सृष्टि का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर चलता है। इसलिए ब्रह्माण्ड प्रकृति सृष्टि के समय सत्वगुण सतयुग पहले आता है और रजोगुण और तमोगुण की अभिव्यक्ति होकर सत्ययुग के सत्-रज प्रधान त्रेतायुग और रज-तम प्रधान द्वापर युग और तम प्रधान कलयुग का उदय होता है। यही ब्रह्माण्ड प्रकृति की चक्रावर्त गति है। लेकिन देव जगत में ब्रह्माण्डीय प्राकृतिक गति अधोमुख है। जिसके कारण तामसिक शक्ति पहले उत्पन्न होगी। मानव में यही कारण देखा गया है। पैराणिक ग्रन्थों में आसुरी शक्ति जब प्रबल होती है तो उसके बाद दैवी शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। सृष्टि के विस्तार के लिए ब्रह्माजी ने सात्विक मन से निराकार ब्रह्म का ध्यान की अवस्था में ही मनन किया। मनन करते ही प्रथम मानस सृष्टि हुई। जिससे चार पुत्र हुए- सनक, सनन्दन, सनातन और सनत कुमार। ब्रह्माण्ड प्रकृति की ये प्रथम अभिव्यक्ति होने से ये चारो पुत्र उर्ध्वरेता और कर्म मार्ग से पूर्ण अनासक्त थे। जब ब्रह्माजी ने प्रजा सृष्टि चाही तो इन्होने अस्वीकार कर मोक्ष धर्म परायण होकर परब्रह्म में रम गये।

देखा जाये तो यह प्रथम सृष्टि है ब्रह्माण्ड प्रकृति की। इसका वर्णन भागवत कथा

में विस्तार से मिलता है। उसके बाद ब्रह्मा ने पुनः ध्यान किया तो प्रकृति के संचालन हेतु दस मान्स पुत्रों की उत्पत्ति हुई। जिनके नाम इस प्रकार हैं- मरिचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वशिष्ठ, दक्ष और नारद। ब्रह्माण्ड प्रकृति की गति निम्नाभिमुख होने से दस मानस पुत्रों की इच्छा भी हुई सृष्टि का विस्तार करने की। उपरोक्त चार पुत्रों की तरह निस्काम नहीं हुए। इसलिए इन्हे प्रजापति कहते हैं। ब्रह्मा के आज्ञानुसार इनके द्वारा अनेक मानसी सृष्टि की।

उत्पत्ति का रहस्य : इस प्रकार दस प्रजापतियों में ब्रह्माण्ड प्रकृति के दूसरे स्तर में उत्पन्न होने के कारण पूर्ण सत्वगुण न होकर कुछ रजोगुण का मिश्रण हो गया। परन्तु परम तेजस्वी होने के कारण उन्होने मन की ही शक्ति से प्रलय विलीन जीवों को उनके कर्मानुसार त्रिविध शरीर युक्त करके यथा देश काल में संस्थापित कर दिया।

उनके द्वारा ब्रह्माण्ड प्रकृति के तीसरे स्तर की जो मानवी सृष्टि हुई उसमें पूर्ण ब्राह्मण की सृष्टि हुई। क्योंकि ब्रह्माण्ड प्रकृति के तीसरे स्तर में सत्वगुण का विशेष और रजोगुण स्वल्प प्रभाव रहने के कारण सत्वगुण प्रधान ब्राह्मण के लिए ही ब्रह्माण्ड प्रकृति का वह देश काल अनुकूल था। इसलिए उस सष्टि में ब्राह्मण ही उत्पन्न हुए। ब्राह्मण का अर्थ जाति से नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि पूर्ण सात्विक मानव के जन्म के लिए है। हमारे धर्मग्रन्थों में कहा गया है कि जन्म के समय बालक ईश्वर का रूप होता है। उस बालक की तुलना ईश्वर से की जाती है। उस समय वह बालक पूर्ण सात्विक रहता है। फिर अपने कर्मानुसार वह आगे बढ़ता है।

जैसा कि महाभारत में वर्णन है- **'न विशेषो अस्ति वर्णानां सर्वं ब्रह्ममिदं जगत्'** प्रथम सृष्टि में चारो वर्णो की पृथकता वही थी। समस्त जगत ब्राह्मणमय था। समयानुसार ब्रह्माण्ड प्रकृति जितनी निम्नाभिमुख होती गयी उतनी उसमें रजोगुण तथा तमोगुण की प्रधानता और सत्वगुण का होने लगा क्षय। सत्वगुण प्रधान ब्राह्मण जाति के स्थान पर रजः तत्व प्रधान क्षत्रिय वर्ण। रजः तम प्रधान वैश्य वर्ण और तम् प्रधान शूद्र जाति का प्रादुर्भाव हुआ। इस तरह से चार वर्ण बन गये।

ब्रह्माण्ड प्रकृति से उत्पन्न ब्राह्मणगण क्रमशः हीन वर्ण होकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णो में विभक्त हो गये। लेकिन प्रागकाल तक धर्मानुकूल आचार नष्ट नहीं हुये थे। वे अपने अधिकार के अनुसार धार्मिक, वैदिक क्रिया आदि में संलग्न रहे। लेकिन धीरे-धीरे समय काल के अनुसार लोभ और अज्ञान फैलता गया। जो वेदानुकूल आचार में तत्पर रहे वे अपने वर्ण में स्थित रहे। उसके बाद कुछ लोग उनमें से उत्पन्न हुए। वे वेद भ्रष्ट नियम आचार भ्रष्ट होने के कारण अनेक प्रकार

से अनार्य जाति बन गये। वे सब स्वछन्द अहार विहार करने वाले ज्ञान से शून्य परमात्मा से विमुख आधि भौतिक सुखों को ही सब कुछ मानने वाले अनार्य जाति कहलाये। आर्य और अनार्य जाति का संघर्ष यहीं से शुरू हुआ। आर्य धर्मानुकूल आचार को महत्व देते थे अनार्य स्वछन्द आचार को देते थे महत्व। जो आगे चलकर आर्यो और अनार्यो का संघर्ष का कारण बना।

ब्रह्माण्ड के चौदह भुवनों का वर्णन मिलता है। भूलोक, भुवलोक, स्वलोक, महलोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक ये सात देवलोक हैं। कुण्डलिनी के सात चक्रों का इन लोकों से बराबर सम्बन्ध बना रहता है। साधना बल, तप बल से योगी भेदन कर उक्त लोक से अदृश्य सम्बन्ध जोड़ लेते हैं।

उसी प्रकार सात अधोलोक हैं। जिसमें असुरों का निवास बतलाया गया है। रसातल, पाताल आदि देखा जाये तो देव और असुर देव योनि से सम्बन्ध रखते हैं। देव सत्‌गुण प्रधान और असुर तम्‌गुण होते हैं। यही संघर्ष आदि काल से चला आ रहा है। सत् और तम् के संघर्ष से जब मानव अधोगति को प्राप्त होता है तब असुर ऊर्जा का प्रभाव पड़ने लगता है। उसमें वे सारे लक्षण दिखाई देने लगते हैं जो असुर वृत्ति में होता है। इसलिए कहा गया है कि दृश्य जगत मध्य में है ऊपर देवगण हैं और नीचे में असुरगण हैं। अपने कर्मानुसार मानव पर समय-समय पर दोनों का प्रभाव देखने को मिलता है। देखा जाये तो देव और असुर का भाव प्राय मानव जीवन में भी मिलता है। असुर के लक्षण जब मानव पर पड़ते हैं तब क्रोध, हिंसा, लालच और बात-बात पर जोर-जोर से ठहाके लगाना यह तम् मूलक तत्व है। जिसे असुर कहते हैं और सत् मूलक तत्व जिसे देव कहते हैं। आप देवता का चित्र अथवा प्रतिमा देंखे सुन्दर, सौम्य, दिव्य अस्त्र-शस्त्र और सोने के मणि मालाओं से सुशोभित रहता है। देव तत्व का तात्पर्य सत् मूलक तत्व का उदय होना है। मानव के अन्दर शान्त तृष्णाहीन धर्म परायण और अन्य की सहायता करने में तत्पर रहने वाले को अट्टहास करते नहीं पायेंगे। इसी प्रकार देवताओं को भी कभी हँसते हुए नहीं पायेंगे। चाहे राम हों या कृष्ण आदि सभी के चेहरे पर सम भाव और मन्द-मन्द मुस्कान दिखेगा। यही रहस्य है सत्-तम् तत्व का। यही सत्-तम् यानि सत् और असत् का संघर्ष है।

पंच महाभूत- पृथ्वी, आकाश, अग्नि, जल, वायु इन पंच महाभूतों की समष्टि से ब्रह्माण्ड तथा पिण्ड यानि स्थूल शरीर का निर्माण हुआ है। पृथ्वी तत्व से शरीर में यानि चर्म, नाड़ी, अस्थि, मांस आदि द्रव्य अंश है। जल अंश मूत्र, श्लेष्मा, रक्त, शुक्र और स्वेद है। उष्ण अंश तेज यानि अग्नि का है यानि क्षुदा, तृष्णा, आलस्य, मोह और

मैथुन का कारक है। संचरणशील वायु है जो कि प्राण रूप में स्थित है। आकाश तत्व का योग काम, क्रोध, लोभ, मोह भय आदि से है।

ब्रह्माण्ड प्रकृति में भी जो पंच भूतमय स्थूल जगत हैं यानि समष्टि है और व्यष्टि यानि स्थूल शरीर है। ब्रह्माण्ड का लघु रूप ही स्थूल शरीर है। जो ब्रह्माण्ड से अगोचर रूप से सदैव सम्बन्ध बनाये रखता है। पंच कर्मेन्द्रियां और पंच प्राण का समन्वय ही प्राणमय कोश कहलाता है। यह ब्रह्माण्ड और पिण्ड यानि स्थूल शरीर दोनों में व्याप्त है। पंच ज्ञानेन्द्रियां और मनस्तत्व का सम्बन्ध मनोमय कोश है। यह भी ब्रह्माण्ड और पिण्ड दोनों में व्याप्त है। पंच ज्ञानेन्द्रिय और बुध्दि तत्व मिलकर विज्ञानमय कोश कहलाते हैं। यह भी ब्रह्माण्ड और पिण्ड में व्याप्त है।

प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय इन तीनों को मिलाकर लिंग शरीर यानि सूक्ष्म शरीर कहलाता है। अशन, पिपासा, शोक, मोह, जरा, मरण ये सूक्ष्म शरीर के छः तरंग हैं। उपरोक्त चारों कोशों में ब्रह्माण्ड शक्ति का ही बीज रूप है। आनन्दमय कोश से ही कारण शरीर है। इसी कारण शरीर में ईश्वर प्रतिबिम्बित होते हैं। इस प्रकार से ब्रह्माण्ड प्रकृति में स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर बने और इसी से अन्नमय कोश, प्राणमय कोश और मनोमय कोश से सृष्टि का निर्माण होने लगा। यही त्रिविध रूप हैं।

धर्म तत्व– प्रथम सृष्टि के समय तक सभी ब्राह्मण वर्ण थे। लेकिन कालान्तर में धीरे-धीरे अपने कर्मानुसार चार वर्ण में विभाजित हो गये। यह परमेश्वर की लीला थी। जगत के संचालन के लिए इनका विभक्त होना आवश्यक था। जो दूसरे वर्ण के थे उन्हे क्षत्रिय कहा जाने लगा और देव जगत में इन्द्र, वरूण, सोम, यम ईशान इत्यादि नाम से अभिहित हुए। जब ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ण से संचालन नहीं हुआ जगत का तो तीसरा वर्ण बना। जो मनुष्य लोक में वैश्य तथा देव लोक में गण के नाम से जाना जाने लगा। अष्ट, वशु, एकादश, रूद्र, द्वादश, आदित्य, त्रयोदश, विश्वदेवा और उनचास, मरूतगण कहलाये। उसके बाद शूद्र वर्ण की उत्पत्ति सेवा के लिए हुई। चारों वर्णों की व्यवस्था हो गयी लेकिन कोई वर्ण अपने धर्म और कर्म का पालन यथापूर्वक नहीं कर रहा था। तब परमेश्वर ने मायारूपी महाशक्ति को, धर्मरूपी शक्ति को अवतरित होने को कहा अथवा उत्पत्ति की। जिसके अधीन होकर चारो वर्ण अपना कार्य धर्मपूर्वक करने लगे और जगत का संचालन समरूप से चलने लगा। धर्म द्वारा जड़ और चेतनात्मक ब्रह्माण्ड की रक्षा होती है। धर्म की यह महती शक्ति समस्त जगत में सभी जगह व्याप्त होकर सभी जड़, चेतन की रक्षा करती है। समस्त दृश्य जगत

व ब्रह्माण्ड पंच भौतिक होने से पांच प्रकार के परमाणु के भीतर आकर्षण और विकर्षण नाम की दो शक्ति विद्यमान रहती है।

सृष्टि के समय ब्रह्मा की प्राण शक्ति के बल से समस्त परमाणुओं की आकर्षण शक्ति प्रबल हो जाती है। जिसके कारण जल, स्थल, वायु, ग्रह, पिण्ड का निर्माण होने लगा और प्रलय काल में रूद्र शक्ति के प्रबल से विकर्षण शक्ति प्रबल होने लगी। तब समस्त परमाणु विछिन्न हो जाते हैं। तब ब्रह्माण्ड में न तो आकर्षण रहता है और न ही विकर्षण। सांमजस्य के द्वारा ब्रह्माण्ड और जगत में समस्त, जड़ व चेतन पदार्थ निज रूप और आकार लेकर यथास्थित रहते हैं। एक प्रकार आकर्षण और विकर्षण की समता के लिए दोनों शक्तियों की प्रेरक तथा व्यापक हो जाती है तब एक तीसरी शक्ति का प्रयोजन हुआ वह है विष्णु।

जगत में सत्गुण की वृद्धि होने से देवताओं को बल प्राप्त होता है। आसुरी शक्ति प्रबल नहीं हो पाती। इस प्रकार देवता, ऋषि और पितृगण अपने-अपने केन्द्र पर स्थित होकर ब्रह्माण्ड के संचालन में अपना-अपना योगदान करते रहते हैं अदृश्य रूप से। देवता दैवीय शक्ति के संचालक हैं और ऋषिगण आध्यात्मिक शक्ति के संचालन करने के कारण जगत में ज्ञान-विज्ञान, धर्म आदि का विस्तार किसी न किसी माध्यम से करते रहते हैं। जिससे धर्म के प्रति और ईश्वर के प्रति एवं मानव के भी प्रति श्रद्धा और प्रेम बनी रहे। इन्हे नित्य ऋषि कहा जाता है। जब ऋषि तपस्या कर आत्मोन्नति करते-करते परमेश्वर की कृपा प्राप्त कर लेते हैं तो उन्हे नित्य ऋषि कहा गया। इसी प्रकार पितृगण आधिभौतिक अंश की व्यवस्था करते हैं। पितृगण पर आगे प्रकाश डाला जायेगा।

इस प्रकार विष्णु शक्ति के अधीन रह कर समस्त जगत भिन्न-भिन्न दैवी शक्तियों द्वारा अपना कार्य करता रहता है। विष्णु शक्ति के संचालन से समस्त चराचर जगत देव, ऋषि, पितृगण अपना-अपना कार्य कर सकने में समर्थ होते हैं। इसलिए भगवान विष्णु को जगत का संचालक के रूप में जाना जाता है। दो शक्तियों में सन्तुलन रखना इन्ही के वश की बात है।

प्रलय तत्व- परब्रह्म परमेश्वर की साक्षात शक्तिरूपिणी ब्राह्मी, वैष्णवी और रौद्री शक्ति त्रिगुणमयी ब्रह्माण्ड प्रकृति में सृष्टि क्रिया के साथ-साथ प्रलय क्रिया से भी मिली रहती है। जिसकी उत्पत्ति होती है उसका विनाश भी निश्चित है। यही ब्रह्माण्ड प्रकृति का रहस्य है। ब्राह्मी शक्ति की आकर्षण क्रिया के साथ-साथ रौद्री शक्ति की

विकर्षण क्रिया भी लगी रहती है साथ-साथ। जिस प्रकार ब्रह्माण्ड प्रकृति की लय क्षीण होती चली जाती है उसी प्रकार आकर्षण शक्ति भी मंद होने लगती है। उसके बाद विकर्षण शक्ति की क्रिया प्रबल होने लगती है और अन्त में समस्त ब्रह्माण्ड में विकर्षण शक्ति यानि की रौद्री शक्ति प्रबल होकर ब्रह्माण्ड को महा प्रलय के गर्भ में कर देती है विलीन। यही सृष्टि स्थित अनन्तर प्रलय का रहस्य है।

आर्य शास्त्र के अनुसार चार प्रकार का प्रलय बतलाया गया है। नैमित्तिक, प्राकृतिक, आत्यांतिक और नित्य। ब्रह्म प्रलय को अर्थात खण्ड प्रलय को नैमित्तिक कहते हैं। प्राकृतिक प्रलय को महा प्रलय कहते हैं। जिसमें समस्त ब्रह्माण्ड का महा प्रकृति में विलय हो जाता है। अगर अध्यात्म दृष्टि से देखा जाये तो योगीगण जो ब्रह्म में लय हो जाते हैं उसी को आत्यांतिक प्रलय कहा गया है और जगत में जीव-जन्तु, मानव पदार्थों का जो हर समय क्षय हो रहा है उसको नित्य प्रलय कहते हैं।

इन चारो प्रलय में नित्य और आत्यांतिक प्रलय पिण्ड से सम्बन्धित होते हैं और नैमित्तिक तथा प्राकृतिक प्रलय, ब्रह्माण्ड से सम्बन्धित होते हैं। नित्य प्रलय जीव पिण्ड पर हर समय हो रहा है। जरा, मृत्यु उसी के रूप हैं। इसमें जीव विवश है। परन्तु आत्यान्तिक प्रलय में जीव को होता है उपलब्ध वह है वैराग्य, सत्संग, गुरु सेवा, ईश्वर सेवा, तत्व ज्ञान, आराधना तप आदि से जीव मुक्त हो जाता है। दूसरी ओर नैमित्तिक प्रलय तथा प्राकृतिक प्रलय ब्रह्मा, विष्णु और शिव के ही कारण होता है।

काल निर्णय : आर्य शास्त्र के अनुसार ब्रह्माण्ड की आयु का निर्णय और उक्त नैमित्तिक और प्राकृतिक प्रलय का निर्णय काल और रहस्य के निर्णय से किया जाता है। विष्णु पुराण में काल निर्णय का प्रमाण मिलता है।

पन्द्रह निमेषों के एक काष्ठा होती है। तीन कष्ठाओं में एक कला होती है और तीस कलाओं में एक घड़ी होती है। दो घड़ी का एक मुहूर्त होता है। तीस मुहूर्त में जगत में एक अहरोत्र होता है और छः मास में एक अयन होता है। उत्तर और दक्षिण नामक दो अयनों में एक वर्ष होता है। दक्षिणायन में देवों की रात्रि और उत्तरायण में देवों का दिन माना गया है। दैव-दिवा रात्रि के हिसाब से दैव द्वादश सहस्त्र वर्षों में सत्, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये चार युग होते हैं। मानवीय परिमाण के अनुसार सतयुग १७२८००० वर्ष का, त्रेतायुग १२९६००० वर्ष का,८६४००० वर्ष का द्वापर युग तथा कलियुग ४३२००० वर्ष का माना गया है। इन चारों युगों को सहस्त्रों वर्ष होने पर ब्रह्मा का एक दिन होता है। ब्रह्मा के एक दिन में १४ मंद होते हैं। एक दिन पूर्ण होने पर ब्रह्मा की रात्रि होती है। जिसे नैमित्तिक प्रलय कहते हैं। ब्रह्मा के जाग्रत अवस्था

में उनके प्राण और इच्छा शक्ति की प्रेरणा से ब्रह्माण्ड चक्र चलता रहता है और निद्रा के समय समस्त ब्रह्माण्डीय क्रिया बन्द हो जाती है। इसी को नैमित्तिक प्रलय कहते हैं। ब्रह्माण्डव्यापी प्रलय शक्ति को अपने भीतर समाहित कर ब्रह्मा योगनिद्रा में चले जाते हैं। संकल्प करते समय परार्ध शब्द का उच्चारण होता है। परार्ध ब्रह्मा के आयु निर्णय से अथवा उनके दिन निर्णय से सम्बन्धित है। वर्तमान समय में ब्रह्मा के समय का एक परार्ध बीत चुका है। उस परार्ध का अन्त पद्म नामक महा कल्प में हो गया। वर्तमान में द्वितीय परार्ध का प्रथम कल्प चल रहा है। जिसे वराह कल्प कहते हैं। इस वराह कल्प में भी कृष्ण वराह कल्प, रक्त वराह कल्प आदि कई कल्प बीत चुके हैं। वर्तमान में वेत वराह कल्प चल रहा है। यही आर्य शास्त्र के अनुसार काल का विभाग है।

नित्य और नैमित्तिक देवता- नित्य देवता वे हैं जिनका पद नित्य व स्थायी होता है। वायु पद, रूद्र पद, आदित्य पद, इन्द्र पद, वरूण पद आदि नित्य पद हैं। नैमित्तिक देवता वो कहलाते हैं जिनका पद किसी निमित्त से सृष्टि किया गया है और उस निमित्त के नष्ट होने पर वह पद स्वतः खत्म हो जाता है। जैसे ग्राम देवता, गृह देवता, वन देवता आदि पद हैं। ग्राम देवता का वास तबतक रहता है जबतक ग्राम रहता है जैसे ग्राम नष्ट हो जाता है वह पद स्वतः नष्ट हो जाता है। जबतक वन रहता है तबतक वन देवता का स्थायी वास नष्ट नहीं होता। वन के समाप्त होते ही उनका पद स्वतः ही खत्म हो जाता है। इसी प्रकार गृह देवता होते हैं गृह के नष्ट होते ही उनका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। नैमित्तिक देवता के कुछ और भी वर्णन मिलते हैं। उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज में भी नैमित्तिक देवता का वास होता है।

वास्तु देवता भी नैमित्तिक देव के अन्तर्गत आते हैं। वास्तु शान्ति या वास्तु पूजा ईशान कोण में मान्य है। पूजन के समय वास्तु देव के नाम से अवश्य पूजन करना चाहिए जिनके नाम इस प्रकार हैं- शिखी, पर्जन्य, जयन्त, कुलिशायुध, सूर्य, सत्य, भ्रश, आकाश, वायु, पूषा, वितथ, ग्रहक्षत, मय, गन्धर्व, भृंगराज, मृग, पितृगण आदि वास्तु देवता गण हैं।

पितरों के चार वर्णों के विषय में महाभारत में वर्णन मिलता है। सोमपा पितृगण ब्राह्मण जाति के हैं। हविर्भुक नामक पितृगण क्षत्रिय जाति के हैं। आज्यप नामक पितृगण वैश्य जाति के और सुरकालीन नामक पितृगण शुद्र जातीय हैं। इनका स्मरण अपने धर्म और कर्म के समय अवश्य करना चाहिए।

प्रेत तत्व : प्रेतों के विषय में विश्व में काफी खोज और अनुसंधान होते रहते

हैं। लेकिन भारतीय आर्य शास्त्र पुराण में जो वर्णन मिलता है। वह इस प्रकार है। प्रेत शरीर वायवीय होता है। इसलिए इन्हे किसी भी प्रकार का अवरोध नहीं होता। ये कभी भी कहीं भी प्रगट हो सकते हैं। जो जिस भाव के आवेश में प्रेत होता है उसका आचरण प्रेतयोनि में भी वैसा ही होता है। प्रेत के अनेक भाव होते हैं। काम, क्रोध, मोह, धन, लोभ आदि भाव प्रेतयोनि में बना रहता है। धन लोभी प्रेत अपने जीवित अवस्था में उपार्जित धन की ओर आंख गड़ाये रहते हैं। उनका धन उनके अनुकूल खर्च नहीं होता तो उन्हे दुख होता है। आत्मघात द्वारा प्राप्त प्रेत अन्धेरे में रहना पसन्द करते हैं और कमजोर मन वाले स्त्री पुरूषों को आत्महत्या करने को प्रेरित भी करते हैं। सब प्रेतों की प्रकृति एक सी नहीं होती। दुष्ट व्यक्ति मर कर दुष्ट प्रेत ही होता है और सदाचारी व्यक्ति किसी कारणवश प्रेत होता है तो वह अच्छा ही कर्म करता है और अपरोक्ष रूप से लोगों की सहायता भी करता है। निशाचर जन्तुओं की तरह प्रेतों की भी शक्ति रात्रि में बढ़ जाती है। एकान्त स्थान, खण्डहर, खाली पड़ा मकान, श्मशान, अन्धकारमय घर, वृक्ष आदि पर प्रेतों का निवास होता है।

सब लोगों पर प्रेत का आवेश नहीं हो सकता। दुर्बल चित्त स्त्री-पुरूष पर अधिक देखने को मिलता है। पुरूषों से अधिक स्त्री प्रेतावेश होती है। प्रेत चाहे जीवित अवस्था में किसी भी भाषा का प्रयोग करता हो लेकिन जिस पर वह आविष्ट हो जाता है। उसकी ही भाषा बोलने लगता है। क्योंकि वह आवेशित व्यक्ति के मन पर अधिकार कर अथवा प्रेरणा करके उसी जिह्ा को अपने मन मुताबिक यंत्र बनाकर बोलता है। कभी-कभी देखा गया कि किसी स्त्री पर प्रेतावेश होने पर वह पुरूष की तरह बोलने लगती है। मूर्ख पर आविष्ट होकर विद्वान प्रेत संस्कृत में बोलने लगता है। प्रेतों के भी अपने समूह और स्थान होते हैं। जिनके बाहर वे नहीं जा सकते। केवल स्वप्न के माध्यम से ही लोगों को दिख सकते हैं। लेकिन वह उस स्थान से बाहर नहीं जा सकते। यह भी प्रेत कष्ट कहा गया है। प्रत्येक स्थान अथवा समूह का एक मुखिया होता है। उसे बेताल कहते हैं। वे प्रेतों को घूमने, अनाधिकार प्रवेश करने से या किसी को कष्ट देने से रोकते हैं। अगर बात न माने तो उन्हे वहां दण्ड भी मिलता है। प्रेतों को अपने पूर्व के शरीर से बड़ा प्रेम होता है। अपने शरीर को जलते हुए देख कर काफी पीड़ा पहुंचती है। प्रेत कभी-कभी श्मशान में ही रह जाते हैं। शीत, वर्षा आदि ऋतुओं का प्रभाव उन पर नहीं पड़ता केवल मानसिक तौर पर अनुभव होता है।

बहुत से अघोरी मंत्र बल से प्रेतों को कुछ समय के लिए अपने वश में कर लेते हैं और तरह-तरह के चमत्कार दिखलाते हैं। जैसे फल लाना, नाना प्रकार की

वस्तु प्रगट कर देना। लेकिन यह सब थोड़े समय के लिए ही होता है। प्रेत कोई वस्तु ला नहीं सकते बस वह वस्तु जिस स्थान पर होती है उसे बस देख कर आ जाते हैं और चित्त की तीव्र धारणा से वह वस्तु या फल आदि प्रगट कर देते हैं। यह एक प्रकार का भ्रम है। कुछ समय बाद उक्त वस्तु की शक्ल बदल जाती है और एक प्रकार से वह गायब हो जाती है। क्योंकि प्रेत अपनी चित्त की शक्ति से उसे प्रगट कर देता है। लेकिन साधक से हर समय परेशान रहता है मुक्त होने के लिए। क्योंकि प्रेत वायवीय शरीर होने से वह बंध कर नहीं रह सकता। किसी कारणवश यदि वह मुक्त नहीं हो पाता तो साधक को ही मार देता है। प्रेत जीवन बड़ा ही कष्टमय और अशान्ति भरा जीवन होता है। जिस वासना वेग से उसे प्रेतयोनि मिलती है वह वासना भी जल्दी नहीं छूटती। बहुत समय लगता है। कामान्ध प्रेत काम वस्तु के पास, मोहान्ध प्रेत मोह के पास, धनान्ध प्रेत धन के आस पास स्थूल उपभोगों की प्राप्ति की चेष्टा करते हैं। लेकिन असफलता मिलने पर उन्हे और भी कष्ट होता है। इसलिए आत्म मुक्ति अथवा प्रेत मुक्ति का अनुष्ठान सभी धर्मों में देखने को मिलता है। वे अपने धर्म और संस्कार के अनुसार यथाविधि करते हैं। लेकिन हिन्दू धर्म में प्रेत मुक्ति के विशेष साधन और क्रिया का वर्णन है। जब आत्मा मुक्त होकर यानि प्रेत योनि से मुक्त होकर सूक्ष्म शरीर को प्राप्त कर लेती है। तो पितर लोक में निवास करती है और समय आने पर पुनः मानव शरीर धारण करती है। इसके श्राद्ध कर्म आवश्यक है। अगर श्राद्ध कर्म धर्मानुकूल होता है तो वह आत्मा कष्ट से मुक्त होकर अपने निज लोक में चली जाती है। मानव का यह परम कर्तव्य है कि अपने दिवंगत लोगों के लिए प्रार्थना, पूजा और श्राद्ध अवश्य करें।

श्राद्ध का रहस्य- **देश, काल च पात्रे च श्रद्धया विधिना च यत्।**
पितृनुद्दिश्य विप्रेभ्यो दत्तं श्राद्धमुदाहृतम्।।

इस प्रकार श्राद्ध का अर्थ है- देश, काल और पात्र में श्रद्धा द्वारा जो भोजन पितरों के उद्देश्य से ब्राह्मणों को दिया जाता है उसे श्राद्ध कहते हैं।

भारतीय दर्शन में श्राद्ध का काफी महत्व है। चाहे वह वैज्ञानिक दृष्टि से हो या हो आध्यात्मिक दृष्टि से। देखा जाये तो अपने मृत बन्धुओं के प्रति श्रद्धापूर्वक किया गया कर्म जो हमें शान्ति देता है और परलोकगत् आत्मा को भी देता है शान्ति वह है श्राद्ध। श्राद्ध कर्म आदिकाल से हिन्दू धर्म संस्कृति का मुख्य भाग रहा है। इस पर थोड़ा विचार कर लिया जाये। आत्मा की अमरता के सिद्धान्त को स्वयं भगवान श्रीकृष्ण गीता में वर्णन करते हैं। आत्मा जबतक अपने परमात्मा से संयोग नहीं कर

लेती तबतक विभिन्न योनियों में भटकती रहती है और इस दौरान उसे श्राद्ध कर्म से संतुष्टि मिलती है। श्राद्ध की बड़ी महिमा कही गयी है। श्राद्ध के विषय में कई प्रकार की बातें सामने आती हैं। लेकिन सूक्ष्म रूप से देखें तो श्राद्ध श्रद्धा का दूसरा नाम है। जिसमें पितरों के प्रति भक्ति और कृतज्ञता का समावेश होता है। श्राद्ध कर्म के विषय में अपस्तंब ऋषि कहते हैं कि जैसे यज्ञ के माध्यम से देवताओं को उनका भाग और शक्ति प्राप्त होती है, उसी प्रकार श्राद्ध और तर्पण से पितृ लोक में बैठे पितरों को उनका अंश प्राप्त होता है। हिन्दू पंचाग में पितरों के श्राद्ध कर्म के लिए विशेष समय निर्धारित किया गया है। जिसे पितृ पक्ष कहते हैं। यह पक्ष आश्विन मास के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा तिथि से अमावस्या तक रहता है। जिसमें व्यक्ति अपने दादा, परदादा, मृत पिता या माता का श्राद्ध करता है। शास्त्र में पितरों के भी कई श्रेणी बतलाए गये हैं। जिस तिथि में व्यक्ति की मृत्यु होती है उस तिथि के दिन मृत व्यक्ति का सूक्ष्म शरीर पितृ लोक से उस दिन लौट आता है जहां पर उसकी मृत्यु हुई थी। अगर उनका उस तिथि पर श्राद्ध नहीं होता तो वे भूखे प्यासे दुखी होकर लौट जाते हैं और जीवित पुत्र और पौत्रों का श्राप दे देते हैं। इससे उस घर की सुख-शान्ति चली जाती है। इनके श्राप से कुल का वंश आगे नहीं बढ़ पाता अर्थात वह व्यक्ति पुत्रहीन हो जाता है और मरने पर उसे भी अन्न जल की प्राप्ति नहीं होती।

श्राद्ध के सन्दर्भ में एक कथा यह भी है कि धर्मराज युधिष्ठिर, भीष्म से प्रश्न करते हैं कि जब व्यक्ति अपने कर्म के अनुसार अलग-अलग योनि में जन्म लेता है तब श्राद्ध की क्या आवश्यकता होती है। इस भीष्म कहते हैं कि एक बार जब मैं अपने पिता का श्राद्ध कर रहा था तो मेरे पिता मेरे सम्मुख आये और उन्होने हाथ बढ़ाकर कहा कि हे पुत्र! पिण्ड मेरे हाथ पर रख दो। मैं अपने पिता का हाथ और उनकी वाणी पहचान गया। लेकिन शास्त्र के अनुसार मैंने पिण्ड कुश पर रख दिया जिससे पिता अति प्रसन्न हुए। ब्रह्म पुराण और गरूण पुराण में श्राद्ध कर्म पर काफी विस्तार से बताया गया है। इनके अनुसार पितर चाहे किसी भी योनि में हो वे पुत्र और पौत्रों द्वारा किया गया श्राद्ध अवश्य स्वीकार करते हैं। इससे पितृगण खुश होते हैं। उन्हे नीच योनि से मुक्ति मिलती है। यह कर्म कुल के लिए कल्याणकारी है। यदि आपको अपने पितृगणों की तिथि नहीं पता है तो आप अपने पितृगणों को आमंत्रित कर कहें कि हे पितृगण मैं आपके निमित्त 'गया' शहर में जा रहा हूँ आप भी मेरे साथ चलें और अपना अंश ग्रहण कर मुक्त हों। उसके बाद आप जीवनपर्यन्त पितृगण के कर्तव्य से मुक्त हो जायेंगे।

श्राद्ध का फल : ब्रह्म पुराण के अनुसार श्रद्धा एवं विधिपूर्वक किये गये श्राद्ध

में पिण्डों पर गिरी हुई जल की नन्हीं-नन्हीं बूंदों से पशु-पक्षी की योनि में पड़े पितर तृप्त हो जाते हैं। श्राद्ध में समार्जन के जल से बाल्यावस्था में मृत पितर पुलकित हो जाते हैं। श्राद्ध करते समय ब्राह्मण के पैर धोने से, जल तथा भोजन के बाद आचमन करने के जल की विविध योनियों में पड़े पितरों को पुष्टि और तुष्टि मिलती है। बन्धु-बान्धवों के साथ विधिवत् श्राद्ध करने की बात ही क्या है। केवल श्रद्धापूर्वक शाक सब्जी मात्र से किये गये श्राद्ध से ही पितरे प्रसन्न एवं संतुष्ट हो जाते हैं।

श्राद्ध से परे जगत की संतुष्टि, **श्राद्धं श्रद्धान्वितः कुर्वन् प्रीणयत्यखिलंजगत्।** के नियमानुसार श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करने वाला पूरे जगत को संतुष्ट करता है। इससे ब्रह्मा, इन्द्र, रूद्र, आश्विनी कुमार, सूर्य, अग्नि, वायु, विश्वेदेव, पितृगण, मनुष्यगण, पशु-पक्षी एवं सरीसृप आदि सभी जीव तृप्त होते हैं। इसलिए गृहस्थ का कर्तव्य है कि वह नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य तीनों श्राद्धों को श्रद्धापूर्वक करे। क्योंकि कर्मकाण्ड में श्राद्ध ही एक ऐसा विधान है जिससे ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त समस्त प्राणियों को तृप्त किया जा सकता है। यथा- **यो वा विधानतः श्राद्धं कुर्यातु स्वविभवोचितम्। आब्रह्मस्तम्ब जगत्प्रीणति मानवः।**

श्राद्ध के हवन का विधिविधान : सनातन धर्म की परम्परा के अनुसार प्रत्येक गृहस्थ को पितृगण की संतुष्टि तथा अपने कल्याण के लिए श्राद्ध अवश्य करना चाहिए। वैदिक परम्पंरा के अनुसार विधिवत स्थापित अग्नि में वैदिक मंत्रों से दी गयी आहुतियां धूम्र और वायु के सहकार से आदित्य मंडल में जाती हैं। वहां उसके दो भाग हो जाते हैं। पहला भाग सूर्य रश्मियों के द्वारा पितृ लोकस्थ पितरों के पास चला जाता है और दूसरा भाग वर्षा के माध्यम से भूमि पर बरसता है। जिससे अन्न, फल एवं वनस्पतियां पैदा होती हैं। उनसे सभी प्राणियों का भरण पोषण होता है। इस प्रकार हवन से एक ओर जहां पितर गण तृप्त होते हैं वहीं दूसरी ओर जंगल के जीवों का कल्याण होता है।

हवन विधि : अपने माता-पिता, दादा-दादी या परदादा-परदादी के श्राद्ध के दिन नित्य नियम से निवृत्त होकर मार्जन, आचमन, प्राणायाम कर कुशा को पवित्रता से धारण कर सर्वप्रथम संकल्प करना चाहिए। तत्पश्चात भू संस्कार पूर्वक अग्नि स्थापित कर कुश कण्डिका, परिसमूह, पर्यक्षरण एवं परिस्तरण कर अग्नि प्रज्जवलित कर अग्नि का ध्यान करना चाहिए। इसके बाद पंचोपचार से अग्नि का पूजन कर उसमें चावल, जौ, तिल, घी, बूरा एवं सुगन्ध द्रव्यों से तैयार शाकल्य की निम्नलिखित मंत्रों से १४ आहुतियां देनी चाहिए। अन्त में हवन करने वाली सुरभी यानि सुर्वा से हवन का भस्म ग्रहण मस्तक आदि पर लगाकर गंध अक्षत पुष्प आदि से अग्नि का

पूजन और विसर्जन करें और अन्त मे आत्मा की शान्ति के लिए परमेश्वर से प्रार्थना करें।

ऊँ यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोश्राद्ध क्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्देतमच्युतम्।।

इस प्रकार विधिवत हवन करने से पितर प्रसन्न व सन्तुष्ट होते हैं तथा श्राद्धकर्ता अपने वंशज का कल्याण करते हैं।

तृप्ति और संतुष्टि के लिए तर्पण व श्राद्ध : पितरों की संतुष्टि के लिए तर्पण किया जाता है वही श्राद्ध कहलाता है। हिन्दु समाज में मान्यता है कि श्राद्ध करने से उनके वंशज तथा उसके परिवार का सर्वविध कल्याण होता है।

श्राद्ध के भेद : हमारे धर्म शास्त्र में श्राद्ध के अनेक भेद बतलाये गये हैं। उनमें से मत्स्य पुराण में तीन, यज्ञस्मृति में पांच तथा भविष्य पुराण में बारह प्रकार के श्राद्ध का उल्लेख मिलता है

नित्य श्राद्धः प्रतिदिन किया जाने वाला तर्पण एवं भोजन के पहले गौ ग्रास निकालना नित्य श्राद्ध कहलाता है।

नैमित्तिक श्राद्धः पितृपक्ष व महालय में किया जाने वाला श्राद्ध नैमित्तिक श्राद्ध कहलाता है।

काम्य श्राद्धः अपनी अभीष्ट कामना की पूर्ति के लिए किये गये श्राद्ध को काम्य श्राद्ध कहते हैं।

वृद्धि श्राद्धः मुण्डन, उपनयन एवं विवाह आदि के अवसर पर किया जाये तो वृद्धि श्राद्ध या नान्दीमुख श्राद्ध कहते हैं।

पार्वण श्राद्धः अमावस्या या पर्व के दिन किया जाने वाला श्राद्ध पार्वण श्राद्ध कहलाता है।

सपिण्डन श्राद्धः मृत्यु के बाद प्रेत योनि से मुक्ति के लिए मृतक पिण्ड का पितरों के पिण्ड में मिलाना सपिण्डन श्राद्ध कहलाता है।

गोष्ठी श्राद्धः गौशाला में वंश वृद्धि के लिए किया जाने वाला श्राद्ध गोष्ठी श्राद्ध कहलाता है।

शुद्धयर्थ श्राद्धः प्रायश्चित के रूप में अपनी शुद्धि के लिए ब्राह्मणों को भोजन कराना शुद्धयर्थ श्राद्ध कहलाता है।

कर्मांग श्राद्धः गर्भाधान सीमान्त एवं पुंसवन संस्कार के समय किया जाने वाला श्राद्ध कर्मांग श्राद्ध कहलाता है।

दैविक श्राद्धः सप्तमी तिथि में हविष्यान से देवताओं के लिए किया जाने वाला श्राद्ध दैविक श्राद्ध कहलाता है।

यात्रार्थ श्राद्धः तीर्थ यात्रा पर जाने से पहले और तीर्थ स्थान पर किया जाने वाला श्राद्ध यात्रार्थ श्राद्ध कहलाता है।

पुष्टयर्थ श्राद्धः अपने वंश और व्यापार आदि की वृद्धि के लिए किया जाने वाला श्राद्ध पुष्टयर्थ श्राद्ध कहलाता है।

इन सभी प्रकार के श्राद्धों के माध्यम से व्यक्ति अपने पितरों के प्रति अपनी श्रद्धा को समर्पित करता है। जिससे प्रसन्न होकर उसके पितर श्राद्ध कर्ता को अपने वंशज और उसके परिवार को फलने फुलने आदि का आशीर्वाद देते हैं। यहां पर हम नान्दी श्राद्ध और संवत्सरिक श्राद्ध के बारे में और जानकारी दे रहे हैं।

नान्दी श्राद्ध तथा संवत्सरिक श्राद्ध : नान्दी श्राद्ध को वृद्धि श्राद्ध भी कहा जाता है। यह परिवार की वृद्धि में स्त्रियों के शीश को स्वीकार करता है। भविष्य पुराण के अनुसार इसके अन्तर्गत दो श्राद्ध होते हैं। मातृ श्राद्ध और नान्दीमुख पितृ श्राद्ध। यह निम्न अवसरों पर होता है- कन्या या पुत्र का विवाह, गृहप्रवेश, नामकरण, चूड़ाकरण, सीमान्तोन्नयन, पुत्रोत्पत्ति। पद्म पुराण के वृद्धि श्राद्ध में सबसे पहले माताओं का सम्मान होता है फिर पिता, मातामह तथा विश्वेदेवों का पिता, पितामह ये सब अश्रुमुख पितर कहे जाते हैं। पर पितामह के पहले के पितर गण नान्दीमुख कहे जाते हैं। जब कर्ता के तीनों पूर्वज जीवित हों और कोई शुभ अवसर आ जाये तो पितरों के कल्याण कामना के लिए पर पितामह के तीन पूर्वज पहले के लिए किया गया श्राद्ध नान्दी श्राद्ध कहलाता है।

नान्दी श्राद्ध से पूर्व गणेश के साथ १४ माताओं का पूजन होता है। कुछ लोग सात माताओं का पूजन करते हैं। इसके बाद माता, नानी तथा परनानी तथा पितरों की पत्नियों की पूजा होती है। इस कार्य के लिए यदि ब्राह्मण न भी हो तो सधवा और संतान वाली ४ स्त्रियों को बुलाकर उनका सत्कार तथा सम्मान पर्याप्त माना जाता है।

सांवत्सरिक (वार्षिक) श्राद्ध माता-पिता की मृत्यु तिथि पर साल के एक बार किया जाता है। इसकी सम्पादन विधि पर्यावरण श्राद्ध जैसी है। तिथि, मास आदि न पता होने पर अमावस्या पर श्राद्ध किया जा सकता है। ज्यादातर लोग पितर पक्ष की अमावस्या पर श्राद्ध आदि करते हैं। इन सभी कृत्यों की गणना चन्द्र मास से होती है सूर्य मास से नहीं। वासर का अर्थ दिन नहीं तिथि से होता है।

श्राद्धकर्ता पुत्र : प्राचीन काल में १२ प्रकार के पुत्र बतलाये जाते थे। जिसमें

से क्षेत्रज, पुत्रिकापुत्र और दत्तक पुत्र महत्व रखते थे। इन सभी पुत्रों के २ पिता होते थे। एक कुदरती दूसरा वह जिसने उन्हे गोद लिया हो।

प्रश्न यह था कि ऐसे पुत्र किस पिता को पिण्ड दें? ऐसे में दोनों पिता का पिण्डदान करें। पहले वह पिता जिसने जन्म दिया है उसका श्राद्ध व पिण्ड करें बाद में जिसने पालन किया है उसका। एक साथ दो पिण्ड लें और बारी-बारी से पिण्ड दान करें। कई लोग अपनी बेटी के पुत्र को पुत्र मानकर गोद ले लेते हैं इन्हे पुत्रिकापुत्र कहा जाता है। इस प्रकार का पुत्र पहला पिण्ड अपनी माँ को, दूसरा पिण्ड अपने पिता को और तीसरा पितामह को देता है। मनु के अनुसार ऐसा पुत्रिकापुत्र अपने नाना का पूर्ण उत्तराधिकारी होता है।

महालय श्राद्ध और दान : भाद्रपद का अन्तिम पखवाड़ा जब सूर्य राशि में होता है महालय या गजछाया कहलाता है। आषाढ़ माह की पूर्णिमा के बाद जब भाद्रपद में कृष्ण पक्ष हो और सूर्य कन्या राशि में हो तो आगामी १६ दिन श्राद्ध के लिए पवित्र और उपर्युक्त माने जाते हैं। कन्या राशि के अन्तर्गत कृष्णपक्ष सम्भव न हो तो तुला राशि के अन्तर्गत सूर्य के वृश्चिक राशि में जाने से पूर्व किया ज़ा सकता है। सूर्य वृश्चिक राशि में चला जाये अगर श्राद्ध न हो तो वे पितरगण वंशजों को श्राप दे देते हैं। भाद्रपद आश्विन, कृष्णपक्ष श्राद्ध के लिए उपयुक्त माना गया है। इस मास में पितरों का वास होता है। इसलिए इसे महालय कहा जाता है। इस समय श्राद्ध किसी कारण वश न हो सके तो कार्तिक मास में कृष्ण पक्ष की अमावस्या को भी किया जा सकता है। महालय श्राद्ध की तिथि श्राद्ध काल की पहली तिथि से लेकर अमावस्या तक कभी भी हो सकती है। महालय श्राद्ध सबसे फलित माना गया है। आवाहन, होम, अर्घ्य व पिण्डदान आवश्यक है। एक या तीन ब्राह्मणों को खाना खिलाना अनिवार्य माना गया है। महालय श्राद्ध के विश्वेदेव हैं- धुरि तथा लोचन। यह श्राद्ध मातृकुल और पितृकुल के पितरों के अलावा अन्य सम्बन्धियों के लिए भी होता है। गुरु, शिष्य आदि के लिए भी इसे किया जा सकता है।

संन्यासियों का श्राद्ध महालय की द्वादशी को ही होता है। क्योंकि विष्णु के लिए द्वादशी पावन है। महालय श्राद्ध मलमास में करना वर्जित है। हर श्राद्ध के बाद कर्ता के लिए सामर्थ्यानुसार दान देने का निर्देश है। बिना दक्षिणा के श्राद्ध फलित नहीं होता है। धन, गाय, वस्त्र, शैया आदि दान हैं लेकिन शैयादान का विशेष महत्व है। शैयादान का अर्थ है कि जैसे विष्णु की शैया सागरपुत्री लक्ष्मी से कभी खाली नहीं होती उसी प्रकार मेरी शैया भी जन्म-जन्मान्तर तक भरीपूरी बनी रहे।

आभ्युदयिक श्राद्ध : पुरखों को हम श्राद्ध काल में ही नहीं वरन् अन्य अवसरों पर भी याद करते हैं। पुत्र जन्म, मुण्डन, उपनयन, विवाह जैसे मांगलिक अवसरों पर अथवा कुआं बावड़ी प्याऊ आदि बनवाने पर भी उनका स्मरण व श्राद्ध किया जाता है। श्राद्धों में जहां विषम संख्या यानि ३, ११, २१ ब्राह्मण होते हैं वहीं आभ्युदय श्राद्ध में सम संख्या यानि २, ८, १० ब्राह्मण होते हैं। प्रदक्षिणा समेत सभी कृत्य बांए से दांये की ओर किये जाते हैं। सामग्री में काले तिल के स्थान पर जौ का उपयोग होता है। अभ्युदय श्राद्ध में दक्षिण मुख की बजांय उत्तर की ओर मुख करता है और कहता है कि मैं नान्दीमुख पितरों का आवाहन करता हूँ। यथा-

मन्वादीनां मुनीन्द्राणां सूर्याचन्द्रमसोस्तथा।

तान् नमस्याभ्यहं सर्वान् पितृनप्सूदधावपि।। (मार्कण्डेय पुराण)

जो मनु आदि राजर्षियों, मुनीश्वरों तथा सूर्य और चन्द्रमा के भी नायक हैं उन सभी समस्त पितरों को मैं जल और समुद्र में भी नमस्कार करता हूँ। अभ्युदय पूजा में स्वधा के बजाए स्वाहा शब्द का प्रयोग होता है।

ब्राह्मण भोज के समय इन्द्र को सम्बोधित किया जाता है और शान्ति मंत्रों का पाठ होता है। परन्तु पितरों को सम्बोधित मंत्रों का नहीं होता है। अंत में कर्ता नान्दीमुख पितरों से आशीर्वाद मांगता है।

धर्म के चार अंग और श्राद्ध - धर्म के चार प्रमुख अंग हैं। वेद, स्मृति, सदाचार और अनुकूलता। चारो अंग ज्ञान को व्यवहारिक जगत में मनुष्य के दैनिक आचरण से गूंथते रहते हैं। निरंतरता (सनातनता) धर्म का मूल गुण है और इसी के अंतर्गत मनुष्य को अपने आप को अपनी तीन परवर्ती (पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र) और तीन पूर्ववर्ती (पिता, पितामह, प्रपितामह) पीढ़ियों के साथ एक पिंड का भागीदार माना गया है। श्राद्ध के अनुष्ठान में श्राद्धकर्ता श्रद्धापूर्वक बुद्धि और स्मृति को ठोस भौतिक आचार से जोड़कर अपने पहले की तीन पूर्ववर्ती पीढ़ियों के सूक्ष्म शरीरधारी पितरों को अन्न से बना पिंड देता है। साथ ही उस पिण्ड को सूंघ कर सूक्ष्म रूप में स्वयं भी आत्मसात करता है और प्रार्थना करता है कि इस क्रिया से उसकी आने वाली (परवर्ती) पीढ़ियां भी समृद्ध, बुद्धिमान और कर्मठ बनें। इस तरह से श्राद्ध की क्रिया भौतिक अनुष्ठान की स्मृति तथा ज्ञान से और कर्ता के वर्तमान को अतीत और भविष्य दोनों से जोड़ने वाला एक महत्वपूर्ण सेतु बन जाती है।

हमारे मृत पूर्ववर्ती जन जो पितर बन चुके हैं उनको हम स्थूल इन्द्रियों से नहीं सूक्ष्म बुद्धि से जानते हैं और करते हैं अनुभव। यह कल्पना की जाती है कि हमारे

शरीर की कोशों के रूप में हमारे पास अभी भी बने हुए हैं। उनका स्थूल शरीर भले ही नष्ट हो गया हो लेकिन उनकी संतान उनके भावना शरीर का स्मरण करती है और श्रद्धोपंरात उनकी तथा आने वाली पीढ़ियों की तृप्ति की कामना करती है। ताकि हमारा गोत्र बढ़े। हमें सुख समृद्धि देने वाले देवता बढ़ें। वेदरूप ज्ञान की वृद्धि हो। संतान की वृद्धि हो। श्रद्धा हमसे कभी अलग न हो। हमारे पास दान देने योग्य प्रचुर सामाग्री हो और अतिथि सत्कार का लाभ हमें मिलता रहे। लोग हमसे मांगें। हमें लोगों से मांगना न पड़े। यह मंगलकामना पूर्ण हो। श्राद्ध कृत्य का मुख्य कर्म श्रद्धा माना गया है। श्रद्धा यानि पवित्र आस्था। जिसमें आस्था नहीं वह श्राद्ध करने का अधिकारी नहीं होता है। कात्यायन ऋषि के अनुसार शाक सब्जी से भी किया गया श्राद्ध स्वीकार होता है। यदि श्रद्धा हो तो किसी भी चीज से किया गया श्राद्ध वह पूर्वजों के भोजन में परिवर्तित होकर उन्हे सहर्ष स्वीकार होता है। इसके विपरीत यदि श्रद्धा नहीं है तो धन खर्च करने पर भी वह पूर्वजों को स्वीकार नहीं होता है। वह निष्फल हो जाता है। प्राचीन काल में श्राद्धों में पशुबलि दी जाती थी। इसका रहस्य क्या था पता नहीं। जो कालांतर में लुप्त हो गयी। उसकी जगह अब खड़ी उड़द दाल और आटे की बनी पशु आकृति अर्पित की जाती है। माना जाता है कि पिता पुत्र का और बड़ा भाई छोटे भाई का श्राद्ध नहीं कर सकता। लेकिन यदि जरूरत पड़े तो यह श्राद्ध भी किया जा सकता है। किसी को भी किसी का भी स्नेहवश श्राद्ध करने की अनुमति है विशेषकर गया में। आपातकाल में उपनयन विहीन पुत्र भी अंत्येष्टि से जुड़े मंत्रों का उच्चारण कर सकता है ब्राह्मण के माध्यम से।

वेदों के ज्ञाता, श्रोतिय मंत्र का विशिष्ट ज्ञान रखने वाले ब्राह्मण श्राद्ध ग्रहण करने के योग्य माने जाते हैं। इन्हे ही भोजन कराने से या दान करने से अक्षय फल की प्राप्ति होती है। भान्जे को भी दान देने से अभीष्ठ फल की प्राप्ति होती है। माना जाता है कि एक भान्जा सौ ब्राह्मण के बराबर माना जाता है। रोगी, मांसाहारी, शराबी, चरित्रहीन, कुत्सित कर्म में लीन तथा अवैष्णव को श्राद्ध कार्य में बुलाना अनुचित होता है। पितृगण ऐसे व्यक्ति का श्राद्ध फल ग्रहण करते हैं तो उन्हे कष्ट का अनुभव होता है। पितृ कार्य में तिल का प्रयोग होना चाहिए। श्राद्ध कार्य में निमंत्रित ब्राह्मण को मौन रह कर भोजन करना चाहिए। भोजन लोहे के बर्तन में नहीं खिलाना चाहिए। श्राद्ध करने वाले को सफेद वस्त्र पहनने चाहिए। साथ ही बैगन की सब्जी भोजन में नहीं होनी चाहिए। सर्वपितृ श्राद्ध अपरान्ह में किया जाता है। साथ ही श्राद्ध करने वाले परिवार को प्रसन्नता और विनम्रता के साथ भोजन परोसना चाहिए। संभव हो तो जबतक ब्राह्मण भोजन ग्रहण न कर ले तबतक पुरूष सूक्त और पवनमान सूक्त आदि

का जप होते रहना चाहिए। भोजन करने के पश्चात अपने पितृ से इस प्रकार प्रार्थना करना चाहिए-

दातारो नो अभिवर्धन्तां वेदाः संततिरेव च।
श्राद्ध च नो मा व्यगमद् बहु देयं च नो अस्तिवति।।

अर्थात् पितृगण! हमारे परिवार में दाताओं, वेदों और संतानों की वृद्धि हो। हमारी आपमें कभी श्रद्धा न घटे, दान देने के लिए हमारे पास बहुत संपत्ति हो। इसी के साथ ब्राह्मण को दान प्रदान कर विदा करें। श्राद्ध करने वाले व्यक्ति को बचे हुए अन्न को ग्रहण कर उस दिन ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

मनुस्मृति, याज्ञवलक्य स्मृति धर्म ग्रन्थों के अलावा पुराणों में भी श्राद्ध को महत्वपूर्ण कर्म बतलाया गया है। रोहिणी श्राद्ध करने से संतान सुख, मृगशिरा में गुणों में वृद्धि, पुनर्वसु में सुन्दरता, पुष्य में अतुलनीय वैभव, अश्लेषा में दीर्घायु, मघा में अच्छी सेहत, पूर्वा फाल्गुनी में अच्छा सौभाग्य, हस्त में विद्या की प्राप्ति, चित्रा में प्रसिद्ध संतान, स्वाती में व्यापार लाभ, विशाखा में वंश वृद्धि, अनुराधा में उच्च पद प्रतिष्ठा, ज्येष्ठा में उच्च अधिकार भरा दायित्व व मूल नक्षत्र में आरोग्य प्राप्ति होती है।

मनुस्मृति में कहा गया है- पुं नामक नरक से त्र (त्राण) करने वाला ही पुत्र कहा जाता है। मनुष्य इसी कारण नरक से मुक्ति दिलाने वाले पुत्र की कामना करता है और पिण्डदान, श्राद्ध करने का अधिकार पुत्र को ही दिया जाता है।

यही बात वशिष्ठ स्मृमि में भी है- पुत्र होने पर पिता लोकों को जीत लेता है। पौत्र होने पर आनंत्य को प्राप्त करता है और प्रपौत्र होने पर सूर्य लोक में निवास करने का उसे स्वयं सूर्य देव आशीर्वाद देते हैं। लेकिन जिनके पुत्र नहीं हैं उनकी पत्नी के द्वारा श्राद्ध करने पर श्राद्ध फल मिलेगा। पत्नी न होने पर सहोदर भाई, सहोदर भाई न होने पर जमाता व नाती भी श्राद्ध करने के अधिकारी होते हैं। श्राद्ध प्रकरण अब यहीं समाप्त है। पाठकों के ज्ञानार्थ के लिए श्राद्ध प्रकरण पर मैंने विशेष जोर दिया। उस दिव्य आत्मा की इच्छा थी कि मैं श्राद्ध प्रकरण अवश्य लिखूं। ताकि लोग श्राद्ध के बारे में जाने और उसका महत्व भी जाने। अब आगे कुछ अन्य विषयों पर चर्चा कर लेते हैं।

वर्णाश्रम का महत्व- जीवन शक्ति के बिना नहीं चल सकता। जीवन के प्रवाह के लिए शक्ति को साधना आवश्यक है। चाहे वह शारीरिक शक्ति हो या हो आध्यात्मिक शक्ति। शक्ति का आश्रय परब्रह्म परमेश्वर को भी लेना पड़ता है माया रूप में। मानव उस परम तत्व का ही अंश है। उसमें इतना सामर्थ्य है कि वह उस

परम सत्ता से जुड़ सकता है। उसे भी जुड़ने के लिए शक्ति का ही आश्रय लेना पड़ता है। एक बार सम्बन्ध बना लेता है तो मानव स्वयं ही प्रभु अंश बन सकता है। वह सम्पूर्ण चराचर जगत शक्ति को अपने भीतर समेट सकता है। प्रकृति के सारे तत्व उसमें आविर्भूत हो सकते हैं। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है कि महाशक्तिरूपिणी त्रिगुणमयी देवी माया के चक्कर से अपने को अलग कर पाना सम्भव नहीं है। वही मनुष्य माया से बाहर निकल पाता है। जो मेरे शरण में आता है उसे माया पर विजय पाने की शक्ति मैं ही देता हूँ। परब्रह्म परमेश्वर की शक्ति माया इस चराचर जगत में सदा ही प्रगट होना चाहती है। उस विशाल झरने की तरह थोड़ा सा राह मिलते ही बड़े ही वेग से बहने लगती है। जब मानव उस शक्ति के सामने उन्मुख हो जाता है तो उसे स्वयं ही भगवत शक्ति प्राप्त होने लगती है। शक्ति से आप संघर्ष नहीं कर सकते, शक्ति को साध सकते हैं। यही सर्वोच्च साधना पथ है। मन की क्रिया मस्तिष्क द्वारा होती है। जब मन पूर्ण एकाग्रता को हो जाता है उपलब्ध तब वह सत्य प्रकाश मानव को मिलता है। जिसने अपनी सत्ता को निहित स्वार्थ की सीमा अलग कर उस परम व्यापक सत्ता से विलय कर लिया ऐसे महा मानव के स्थूल भाव नष्ट हो जाते हैं और भीतर का असीम प्रकाश निःसृत होने लगता है। आत्म सत्ता का निरन्तर विकास होना ही यथार्थ उन्नति है। इसलिए आर्य शास्त्र में मानव जीवन को चार वर्णो में बांटा है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। इन चारो आश्रमों में परमेश्वर तथा उसके भिन्न-भिन्न शक्ति और विभूतियों से मिलकर आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक इन तीनों की शक्ति प्राप्त कर सके यही इसका महत्व है। हमारे आर्य ऋषियों ने बड़े वैज्ञानिक तरीके से प्रकाश डाला है।

जिसने हमें जन्म दिया वह तो हमारी माता है ही किन्तु जो सबकी जननी है वही सर्वज्ञ विराजमान रहती है। उसका हास्य, पुष्पों के हास्य से परिलक्षित होता है। उसकी प्रेमरूपी धारा गंगा की धारा है। उसकी करूणा चन्द्रमा में सुशोभित होती है। वह सर्व व्यापिनी माता प्रकृति है। उसी के गोद में हम और हमारे माता-पिता आदि सभी प्रतिपालित हुए हैं।

पहाड़, वन के पशु-पक्षी भी उसी प्रकृति के गोद में समाये हुए हैं। हमारी तरह वो भी प्रकृति के अंश हैं। लेकिन वे अस्वाभाविक आचरण कर उस प्रकृति को नहीं छेड़ते। वे प्रकृति पर सदा निर्भर हैं और आज भी हैं। प्रकृति, जगत में छः ऋतुओं में छः भावों के अपूर्व माधूर्य रस का जो विकास करती है उसे ग्रहण करते और सीखते हैं। वे अपने को पूर्णरूप से ऋतु वातावरण में ढाल लेते हैं। सारे ऋतुओं का वेग सह

लेते हैं। इसी कारण वे कम ही रोगग्रस्त होते हैं। बचपन से सारे ऋतुओं का वेग सहना, उसके अनुसार रम जाना ही निरोग रहने का रहस्य है। यही कारण है कि दूरदर्शी महर्षियों ने ब्रह्मचर्य आश्रम की व्यवस्था की। उस समय उस आश्रम में बालकों को नाना प्रकार से प्रकृति में मिला देने की भी व्यवस्था थी। शारीरिक रूप से तप, ऋतुओं का वेग, वेग सहने के लिए उन्हे खुले बदन और खाली पांव रखा जाता था। हवन, जप, पूजा-पाठ आदि शास्त्र ज्ञान सम्बन्धित सभी उपाय प्रकृति के साथ सामन्जस्य करने का रहस्य था। पृथ्वी में जो शक्ति है उसके साथ पार्थिव शरीर का नैसर्गिक सम्बन्ध होता है।

इसी प्रकार गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में भी जितने आचार बतलाये गये हैं उनके मूल में प्रकृति के साथ सामन्जस्य रखने का ही विज्ञान है। सत्व, रज, तम प्रकृति के तीन गुण हैं। आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार वात, पित्त, कफ का भी सम्बन्ध है। सत्वगुण के साथ पित्त का रजोगुण के साथ वात का और तमोगुण के साथ कफ का सम्बन्ध होता है। इन तीनों की समता ही स्वास्थ्य है और विषमता होने पर अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

प्रकृति के नियम तथा उसकी स्वाभाविक गति में बाधा न पहुंचाने से ही स्वास्थ्य तथा आयु से युक्त सुन्दर और सुदृढ़ शरीर मिल सकता है। अधिकांश रोग हमारे शरीर के भीतर से उत्पन्न होते हैं जो कि काम, क्रोध आदि के वेग के वशीभूत होने से या अतिश्रम या आलस्य से हुआ करते हैं। स्वस्थ शरीर प्रकृति के प्रवाह में अपने को उसके लय में बहने देने से मिलता है। प्रकृति की गति में बाधा न देने से समस्त रोगों से मानव मुक्त रहता है और रहता है स्वस्थ। प्रकृति के साथ लय में रम जाना ब्रह्मचर्य आश्रम का लक्ष्य था। आगे चलकर वह बालक स्वस्थ शरीर, मानसिक और आध्यात्मिकता से संसार के प्रबल प्रवाह को सहन कर अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। लेकिन बहुत लोग ऐसे भी हुए जो गृहस्थ आश्रम में न जाकर ब्रह्मचर्य आश्रम से संन्यास आश्रम में प्रवृत्त हो गये। लेकिन गृहस्थ आश्रम भी प्रकृति के अन्तर्गत है। प्रकृति के विकास के लिए गृहस्थ धर्म आवश्यक है। इसलिए गृहस्थ आश्रम का अपना महत्व है। गृहस्थ आश्रम का कर्तव्य है अतिथि सेवा, हृदय की उदारता, भगवत् आराधना, ऋषि, देवता, पितरों की सेवा, परिवार और सभी के लिए आत्म सुख त्याग करने की शक्ति, त्याग संयम आदि सेवा और देश सेवा के लिए कालान्तर में यथार्थ उपयोगी बन सकता है। गृहस्थ आश्रम में शक्ति लाभ तथा धर्ममूलक प्रवृत्ति की चरितार्थता से निवृत्ति का परिपोषण होने से उसके बाद वानप्रस्थ में प्रवेश होता है। जो

संसार में वैराग्य का प्रतीक है। उसके बाद वैराग्यवान साधक निवृत्ति की पराकाष्ठा पार कर संन्यास आश्रम का लाभ करता है। निवृत्ति परायण संन्यासी सर्वज्ञ से चित्त हटाकर परमेश्वर के ध्यान में निरन्तर मग्न रहते हैं। इसी ध्यान के कारण समाधि को हो जाते हैं उपलब्ध। इस प्रकार ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रम के द्वारा क्रमशः स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर की शक्ति प्राप्त कर अनन्त समाधि में लीन हो जाते हैं। चारो आश्रमों का यही विज्ञान है और है परम तत्व को हो जाना उपलब्ध।

उपासना का रहस्य- मानव जीवन असीम इच्छा का दास है। एक इच्छा पूरी हुई कि दूसरी इच्छा जाग्रत हो जाती है। तब वह अपनी भौतिक इच्छा की पूर्ति के लिए ईश्वर की उपासना, आराधना करता है। उसे कहीं न कहीं विश्वास होता है कि इच्छारूपी तृष्णा को केवल ईश्वर ही पूरा कर सकता है। लेकिन अन्त में फिर क्या होता है? मानव पहले की तरह खाली का खाली ही रहता है। उसका हाथ फिर ईश्वर की ओर उठ जाता है। क्योंकि भौतिक सुख के बाद जो खाली और रिक्त स्थान है केवल उपासना से ही भर सकता है। उपासना ही उस परम तत्व के समीप ले जाती है अभाव की पूर्ति के लिए। यह मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है जिसके पास धन नहीं है वह धन प्राप्त कर धनी बनना चाहता है। जिसके पास ज्ञान नहीं है वह ज्ञान प्राप्त कर ज्ञानी बनना चाहता है। जो रोगी है वह निरोगी बनना चाहता है। जो समाज में कमजोर है वह शक्तिशाली बनना चाहता है। जीवन में वस्तुओं का अभाव सदैव बना ही रहता है। इसलिए अपनी लालसा की पूर्ति के लिए ईश्वर की उपासना करता है। उप का अर्थ है समीप और आसना का मतलब है सान्निध्य। उपासना सभी धर्म और सभी जाति में होती है। उनके रीति-रिवाज अलग-अलग होते हैं। लेकिन मूल में परमात्मा ही है। जैसे सारी नदियों का मूल समागम समुद्र है उसी प्रकार उपासना चाहे कैसी भी हो उसका समागम परमात्मा ही है। जो कि समुद्ररूपी ज्ञान लय में सर्वज्ञ व्याप्त है।

इस जगत में जो भी लय और विलय हो रहा है बिना चेतन तत्व के सम्भव नहीं है। ऐसी कौन सी अदृश्य चेतना है जो अपरोक्ष रूप से सारे ब्रह्माण्ड और जगत प्रकृति को नियंत्रण कर रही है। इस प्रश्न पर आर्य ऋषि ने जब विचार और मनन किया तब उन्हे ज्ञात हुआ कि समस्त जगत के संचालन के मूल में तीन ही शक्तियां विद्यमान है। जो पूरे विश्व ब्रह्माण्ड का संचालन कर रहीं हैं। वह परब्रह्म परमेश्वर यानि ब्रह्मा, विष्णु और महेश। इनकी शक्ति है ब्राह्मी, वैष्णवी और रौद्री। यही त्रिगुण

परम तत्व है। उसी प्रकार प्रकृति का अंश रूप देवता, ऋषि और पितृगण हैं। आध्यात्म जगत के संचालक ऋषिगण हैं। आधिदैव जगत के संचालक देवगण हैं और आधिभूत जगत के संचालक पितृगण हैं। देवता, ऋषि और पितृगण में दैवी शक्ति विद्यमान रहती है। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा कि किसी भी देवता या अपदेवता की आराधना अपरोक्ष रूप से मेरी ही पूजा होती है क्योंकि सात्विक, राजसिक और तामसिक रूप से मेरी ही विभूतियां हैं। केवल आराधना विधि निम्न और उच्च हो सकती है। पितरों का कार्य जिस प्रकार आधिभौतिक सृष्टि की रक्षा आदि के सम्बन्ध में माना गया है उसी प्रकार ज्ञानमयी सृष्टि के संरक्षण पूर्ण दायित्व ऋषिगण का है। नित्य पितरों और नित्य देवताओं की तरह नित्य ऋषिगण का पद भी जगत और ब्रह्माण्ड में है।

पितरों के अवतार नहीं होते जब उन्हे अपना कोई कार्य जगत में करना होता है। तब योग्य माता-पिता के माध्यम से जगत में आकर अपना विशेष कार्य करके फिर वापस पितृलोक में चले जाते हैं। इसी प्रकार ऋषिगण भी माध्यम बनाकर जगत में धर्म मूलक कार्य सम्पादन करते हैं। वेदों के मंत्र दृष्टा इस संसार के नैमित्तिक ऋषिगण ऋषियों के अवतार समझे जाते हैं। अतः इस प्रकार कर्म ज्ञान के संचालक नित्य नैमित्तिक ऋषि, देवता और पितरों की उपासना करना उन मानव के लिए आवश्यक है जो आत्म और भौतिक सुख चाहते हैं।

अगर विचार किया जाये तो विश्व जगत अलग-अलग प्रकृति पर नियंत्रण और संचालन करने वाले यानि जड़ और चेतन पर अलग-अलग दैवी शक्तियों के ही अधीन है या समस्त विश्व के मूल में कोई परम चेतन सत्ता है जिसकी शक्ति को लेकर इस प्रकार देवता, ऋषि और पितृगण कार्य किया करते हैं। यदि कोई इस प्रकार अद्वितीय ब्रह्माण्डीय चेतन तत्व है तो उसका अनुभव क्या हो सकता है। यहीं से हमारे आर्य ऋषियों की विचारधारा आरम्भ होती है और उन्हे ज्ञात होता है कि वह चेतन तत्व अनन्त ब्रह्माण्ड और जगत जड़ प्रकृति में सर्वत्र व्याप्त है। देवता, ऋषिगण आदि उसी परम तत्व की शक्ति है जो कि जगत कल्याण में निहित है।

प्रतिमा पूजा : पुराणों और धर्म ग्रन्थों में आठ प्रकार की प्रतिमा पूजा का रहस्य बतलाया गया है। पत्थर की प्रतिमा, काष्ठ निर्मित प्रतिमा, धातु की प्रतिमा, मिट्टी की प्रतिमा, मणियों की प्रतिमा, छवि प्रतिमा, बालू की प्रतिमा इन सबमें वैदिक अथवा तांत्रिक विधि से प्राण प्रतिष्ठा की प्रक्रिया से दैवी शक्ति आकर्षित की जाती है। आपको ज्ञात होना चाहिए कि हम लोग प्रतिमा की पूजा नहीं करते। हम प्रतिमा बनाकर उसमें

परमेश्वर की दिव्य शक्ति को आविर्भूत कर उस आचिंत्य दिव्य ऊर्जा की पूजा और स्तुति करते हैं।

प्रतिमा वेदानुकूल अथवा तंत्रानुकूल बनने से तथा प्राण प्रतिष्ठा विधिपूर्वक होने से और पूजा आराधना विशेष रूप से होने तथा भक्तों में श्रद्धा विश्वास पूरा-पूरा होने से प्रतिमा में दिव्य शक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है। इसी प्रकार पूजा और आराधना की शक्ति और भक्ति से शक्ति और ईश्वर शक्ति को प्रतिमा रूपी शक्ति आकर्षित करती है। इस प्रकार के आकर्षण से प्रतिमा में देवी शक्ति स्वतः आविर्भूत होने लगती है। कालान्तर में उनके चमत्कार स्वतः होने लगते हैं और लोगों की मनोकामनाएं भी पूर्ण होने लगती हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि ईश्वर की दिव्य शक्ति को प्रतिमा में आकर्षित करके उस दिव्य चिन्मय शक्ति की पूजा करते हैं और इस प्रकार प्रतिमारूपी आंधार द्वारा परमेश्वर के सान्निध्य में पहुंचकर हमें स्वास्थ्य, आयु, विद्या और शक्ति तथा आनन्द प्राप्त होता है और अन्त में हम परम गति को होते हैं उपलब्ध।

देव तत्व : हमारे शास्त्रों में जिन देवी-देवताओं के स्वरूप का वर्णन मिलता है वह कोई कवि की कल्पना नहीं है। समाधि को उपलब्ध योगीजन की जो अनुभूति है उस परमेश्वर की और उनके शक्ति को उस प्रगट प्रतिमा में देखने को मिलता है। रहस्य की बात तो यह है कि उन शक्तियों का प्रकृति के साथ कितना रहस्यमय और निकट का सम्बन्ध है। उसी के अनुसार ध्यानाकुल कर प्रतिमा का आविर्भाव हुआ है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव की प्रतिमा बनायी जाती है उनके सृष्टि, स्थिति और प्रलय कार्य के अनुसार है। ये तीनों रूप उस निराकार परब्रह्म परमेश्वर के ही रूप हैं। परमेश्वर प्रकृति के रजोगुण के साथ मिलकर ब्रह्मरूप से संसार की सृष्टि करते हैं और सत्वगुण के साथ मिलकर विष्णुरूप से संसार में स्थित होकर पालन और संचालन करते हैं और तमोगुण के साथ मिलकर रूद्ररूप से संसार का प्रलय करते हैं। इन्ही क्रियाओं के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और महेश की प्रतिमा बनी है। सृष्टिक्रम रजोगुण से सम्बन्धित है। रजोगुण का वर्ण रक्त है। इसलिए ब्रह्मा का वर्ण रक्त माना गया है। कोई सृष्टि पहले अन्तःकरण होती है और बाद में प्रगट रूप में होती है। अन्तःकरण के मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार ये चार अंग हैं। इसलिए ब्रह्मा के चार मुख हैं। बिना ज्ञान की सहायता से कर्म ठीक से नहीं हो सकता। कर्म में गलती हो सकती है। इसी कारण ज्ञानरूपिणी सरस्वती को हृदय में धारण कर ब्रह्मा ने सृष्टि को पूर्ण किया। योग में ज्ञान शक्ति का मूल नाभि को माना गया है। इसलिए परमेश्वर की नाभि से

सृष्टि कर्ता ब्रह्मा की उत्पत्ति बतलायी गयी है।

विष्णु स्थिति के और शिव लय के देव माने गये हैं। स्थिति विश्व यौवन दशा है यानि वर्तमान। ब्रह्मा सृष्टि कर चुके हैं यानि अतीत हैं। लय यानि भविष्य गर्भ जिसकी उत्पत्ति नहीं हुई है। इसलिए ब्रह्मा का वर्ण रक्त यानि लाल है। विष्णु का वर्ण नील है। शिव का वर्ण श्याम है। अतः विष्णु की मूर्ति यौवनमय है और ब्रह्मा की वृद्धमय है तथा शिव की वैराग्यमय है। जिनके पास समस्त जगत और ब्रह्माण्ड को नष्ट करके श्मशान रूप में परिवर्तित कर देने की शक्ति है। इसलिए उनका स्थान पहाड़ और श्मशान है। इसलिए शिव को श्मशानवासी भी कहा जाता है। जब ब्रह्माण्ड में प्रलय होता है तब वह भस्म रूप परिवर्तित हो जाता है। इसलिए शिव के भस्म लगाने का प्रतीक यही है। शिव प्रलय के देवता हैं। प्रलय का प्रतीक सर्प उनके गले की शोभा बढ़ाता है। काल का प्रतीक सिंह है। इसलिए कोई कितना ही बलशाली हो फिर भी काल यानि समय उसे नहीं छोड़ता। बाघम्बर जो भगवान शिव अपने शरीर में लपेटे हुए हैं वह उसी का प्रतीक है। श्मशान भूमि वैराग्य का प्रतीक है। भगवान शिव वैराग्यरूपी हैं। पहाड़, शान्ति और समाधि का प्रतीक है इसलिए भगवान शिव हमेशा समाधि की अवस्था में रहते हैं। यही रहस्य है प्रकृति के साथ देवों का स्वरूप का।

भगवान नारायण शेषनाग पर लेटे हुए हैं अर्धनिद्रा में निमग्न हैं। देवी लक्ष्मी उनके पैर दबा रही हैं। रत्नों से शोभायमान हैं। यह सब स्थिति शोभा और वैभव का प्रतीक है। उनके चार हाथ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के प्रतीक हैं। शंख, चक्र, गदा और पद्म इसका भी रहस्य है। चक्रयुक्त हाथ धर्म का, गदायुक्त हाथ अर्थ का, पद्मयुक्त हाथ काम का और शंखयुक्त हाथ मोक्ष का प्रतीक है। भगवान के गले में स्वर्णायुक्त मणिमाला का रहस्य इस प्रकार है। जिस प्रकार एक धागे में माला के सभी दाने पिराओ जाते हैं उसी प्रकार भगवान नारायण सूत्ररूप से सर्वत्र व्याप्त हैं और प्रकृति के सभी रूपों को मणिरूप माला में गुंथे हुए हैं। आपने नवरात्र में दुर्गा प्रतिमा देखी होगी। काफी लोग यह प्रश्न करते हैं मुझसे कि माँ के साथ लक्ष्मी, सरस्वती, गणेश, कार्तिकेय की प्रतिमा क्यों रहती है? उसका रहस्य यह है कि शक्ति परमात्मा की माया है। परमेश्वर सर्वत्र व्याप्त है और सर्वव्यापक है। इसी कारण उनकी महाशक्ति भी दसों दिशाओं में व्याप्त है और दुर्गा आदिशक्ति है। उनके दस हाथ दसों दिशाओं के नियंत्रण के सूचक हैं। शक्ति, धन, बल विद्या और बुद्धि इन चार तत्वों के बिना कोई भी कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। इस कारण महाशक्ति के एक ओर शक्ति के देवता कार्तिकेय और दूसरी ओर विद्या और ज्ञान की देवी सरस्वती तथा बुद्धि के देवता गणपति

विद्यमान हैं। अब मैं आपको महिषासुर के वध का रहस्य बतलाता हूँ। महिषासुर तमोगुण है। रजोगुण सिंह द्वारा उसे दबोचा गया है और सर्व सत्वमयी देवी दुर्गा उसका वध कर रहीं हैं। यही देवी के मूर्ति का रहस्य है और भाव एवं अज्ञान को नष्ट करने का है प्रतीक।

शक्तिपीठ का रहस्य – भारतीय अध्यात्म में शक्तितत्व की परिकल्पना अद्वितीय है। सृष्टि के प्रारम्भ में परमशिव ही दो तत्वों में विभक्त होकर शिव एवं शक्ति रूप में पारिभाषित हुए। शिवतत्व विधि रूप है और शक्तितत्व निषेध रूपा है। शिव शक्ति, विधि-निषेध के स्पन्द-विस्पन्द से ही यह समूचा दृश्यमान समस्त जगत प्रतिभासित होता है। तंत्र-योग की दृष्टि में यह पिण्डरूप मानव देह विश्वव्यापी ब्रह्माण्ड का ही प्रतिरूप है। अतः जब भी पिण्ड में शिवतत्व का प्रधानता होती है, पुरुष रूप का प्रकटीकरण स्वाभाविक है। पिण्ड में शक्ति के नारी रूप की अभिव्यक्ति है। वस्तुतः सूक्ष्मतत्व विमर्श से स्पष्ट है कि नर-नारी का सनातन स्वरूप हाड़ माँस का बना पिण्ड मात्र नहीं है। वह तो विश्वव्यापी शिव-शक्ति तत्व का ही सूक्ष्म रूप है।

दूसरे की संतुष्टि, तृप्ति एवं मांगल्य के लिए अपने को विलय कर देना नारीतत्व है। जहाँ उत्सर्ग है, न लेने की भावना है तथा अपने को दूसरे के आनन्द के लिए निरपेक्ष भाव से समर्पित करने की मनोभावना है, वहीं नारीतत्व सक्रिय रहता है। दूसरे की तृप्ति एवं आनन्द के लिए स्वयं लीन कर जाना नारीतत्व है। जहां भी अपने को लीन कर दूसरे को तृप्त करने, अनिन्द्रित करने की भावना प्रबल हो, वही नारीतत्व का प्राधान्य मान्य होना चाहिए। शास्त्रीय दृष्टि से शक्तितत्व का वास्तविक स्वरूप यही है। नारीतत्व निषेध रूपा होने के कारण उत्सर्गमय है। नारी में दूसरों के लिए स्वयं को विलय कर देने की कामना है। एक आध्यात्मिक सौन्दर्य है जो नारीरूपा शक्ति से रूपायित होती है। शक्ति की ऐसी परिकल्पना से परिचालित होकर मानव उसे विभिन्न देवियों के रूप में परिकल्पित करता है और उसके सम्मुख श्रद्धा के सुमन अर्पित करता है। विभिन देवियों एवं शक्तिपीठों की परिकल्पना मनुष्य की इसी उदात्त आध्यात्मिक चेतना का प्रतिफल है। पाश्चात्य वैज्ञानिकों एवं अध्येताओं जे. जो. फ्रेजर, विन्स्टन आदि ने यह स्पष्ट संकेत किया है कि समस्त प्राचीन पुराकथाओं में आदिम मानव की श्रद्धा मूलक प्रवृत्तियाँ संरक्षित है। क्या कारण है कि प्रायः महत्वपूर्ण शक्तिपीठों की स्थिति पर्वतीय स्थलों के अर्ध्व शिखरों पर है? इसकी तात्विक मीमांसा के पूर्व ५१ शक्ति पीठों का स्थूल और सूक्ष्म स्वरूप निरूपण आवश्यक है। पौराणिक एवं तांत्रिक वाङ्मय में ५१२ शक्ति पीठों

का वर्णन है। ऐसे शक्ति पीठों की संख्या में भेद है। तंत्र चूड़ामणि पीठों की संख्या ५२ मानता है जबकि शिवचरित में इनकी संख्या ५१ है। देवी भागवत में १०८ शक्ति पीठों का उल्लेख मिलता है। कालिका पुराण में २६ उप पीठों का भी वर्णन है। जो भी हो इतना सर्वमान्य है कि ५१ मुख्य शक्तिपीठ है और इनकी स्थिति प्रायः पर्वतों के ऊपर ही है। ५१ शक्ति पीठों की ही कल्पना क्यों है तथा उन्हें पर्वत शिखर पर ही क्यों अवस्थित किया गया है? ये प्रश्न ऐसे हैं जो शक्तिपीठों की स्थिति के स्थूल लौकिक अर्थ के साथ ही उसकी तात्विक मीमांसा की ओर भी प्रेरित करते हैं। उक्त उद्धरणों को देखने से स्पष्ट होता है कि ५१ शक्ति पीठों की परिकल्पना के पीछे ५१ आभ्यान्तर मातृकाओं का रहस्य है। ५१ बाह्य मातृकाओं अर्थात् ५१ वर्णो ('अ' से 'अः' तक १६ स्वर, एवं 'क' से 'क्ष' तक ३४ व्यंजन, तथा 'व' जोड़ और 'ल' के समन्वय से सम्भूत वर्ण है...) की स्थिति निश्चय ही भारतीय मनीषी की प्रज्ञा में रही होगी। ५१ वर्ण मातृकाओं की कल्पना को व्यक्त अव्यक्त रूप में मानव शरीर के अन्दर समाविष्ट है, यह विशिष्ट अनुशीलन की अपेक्षा रखता है।

'श्री चक्र' की प्रमुख अधिष्ठात्री देवी को 'मातृका वर्णरूपिणी' (ललिता सहस्रनाम १६७२ श्लोक) कहा गया है। इससे यह सांकेतित होता है कि वर्णमातृका रूप में श्री चक्र मानव शरीर में स्थित है। तांत्रिक दृष्टि में यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एवं पिण्ड अर्थात मानव शरीर शब्द ब्रह्म का प्रतिफल है। मानव शरीर के भीतर शब्द 'परा', 'पश्यन्ती', 'मध्यमा', एवं 'बैखरी' रूप में स्थित है। शब्द 'परा', 'पश्यन्ती' तक अपने अव्यक्त रूप में रहता है। 'मध्यमा' की स्थिति में वह मातृका रूप में मूलाधार से लेकर विभिन्न षटचक्रों के दलों पर व्यक्त होता है। अपनी चतुर्थ अवस्था में अव्यक्त मातृकाजन्य शब्द 'बैखरी' द्वारा व्यक्त वर्ण के रूप में सुनायी पड़ता है। अव्यक्त वर्णमातृका का व्यक्त वर्णो के रूप में सुनायी पड़ना मानव देह के भीतर की शक्ति का ऊर्ध्वगामी स्वरूप है। कुण्डलिनी शक्ति की जाग्रतावस्था में षटचक्रों के विभिन्न दलों पर स्थित ५१ वर्णो का प्रकटीकरण 'बैखरी' द्वारा होता है। साधना क्रम में साधक अपनी कुण्डलिनी शक्ति से पंच तत्वों, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश को लय करता है। तंत्र साधना में यह 'काम शुद्धि' से जाना जाता है। भूत शुद्धि के लिए साधक पाप पुरुष को अपने बाये कोंख में ध्यान कर प्राणायाम से उसे सुखाकर भस्म कर देता है। यहां एक प्रकार से इस देह का नाश हो जाता है। लगता है सती के भस्म होने की कथा के पीछे यह तात्विक चिन्तन अवश्य रहा होगा। भूत शुद्धि द्वारा इस देह का नाश तो हो जाता है परन्तु सहस्रार से स्रावित

अमृत द्वारा साधक शरीर को पुनर्जीवित करता है यही शुद्ध शरीर है। इसमें देवता का आह्वान होता है यह जीवन्यास है। जीवन्यास के बाद ही अन्तर्मातृका न्यास एवं बहिर्मातृका न्यास किया जाता है। अन्तर्मातृका न्यास से षटचक्रो के दलों पर वर्ण मातृकाओं की स्थापना की जाती है। बहिर्मातका न्यास से उन्हें बाह्य शरीर के सिर से लेकर उसके ५१ अवयवों पर उन्हें प्रतिष्ठित किया जाता है।

पर्वतों पर शक्ति की अधिष्ठात्री देवी की स्थापना का क्या रहस्य है? साधक देवी के दर्शन के लिए इन पर्वत शिखरों पर यात्रा करता है तब कहीं जाकर शक्तिपीठों की देवी तथा उनके भैरव का दर्शन होता है। शिव-शक्ति का समन्वित दर्शन आनन्द एवं समरसता का द्योतक है। यह समूचा पिण्ड रूप देह पर्वत है। पर्वत के उच्चतम् शिखर पर कैलास है जहां मानसरोवर की कल्पना है। देह पर्वत में आनन्दमय कोश कैलास है जो क्रम से नीचे से ऊपर की ओर विकासनशील उच्च शिखर है। मानवीय देह में चिन्तकों ने पाँच कोशों की कल्पना की है।

१. अन्नमय कोश, २. प्राणमय कोश, ३. मनोमय कोश, ४. विज्ञानमय कोश, ५. आनन्दमय कोश। देह में अन्नमय कोश निम्नतम् शिखर है। और आनन्दमय कोष उच्चतम शिखर है। व्यक्ति इस देह से ही उच्चतम् की ओर ऊर्ध्व यात्रा करने की शक्ति रखता है। परन्तु माया से आवेष्ठित होने के कारण मनोमय कोश में स्थिति जीव आनन्दमय कोश की यात्रा न कर अन्नमय कोश में ही रमण करता है। माया के चक्रों से मुक्त होना विज्ञानमय कोश से आनन्दमय कोश की ओर की यात्रा करना है। स्पष्ट है इसी सूक्ष्म भावना को पर्वतस्थलवासिनी देवियों द्वारा व्यक्त किया गया है।

शक्ति साधना का रहस्य- भारतीय संस्कृति में ज्ञान, भक्ति, कर्म की महत्ता अनन्त काल से स्वीकार की गयी है। प्रत्येक के सम्बन्ध में अनेक दार्शनिक सिद्धान्त एवं मान्यताएं स्वीकृत हुई तथा सामान्यजन के लिए बुद्धिगम्य पूजा-पाठ एवं उपासना-साधना की पद्धतियां निरूपित हुई।

यह कोई अस्वीकार नहीं करेगा कि धर्माचरण से कठिन से कठिन कार्य सम्पन्न हो सकते हैं तथा बाधाओं को दूर किया जा सकता है।

भगवती जगदम्बा को-शक्ति रूप कहा गया है। वह चैतन्य स्वरूपा है। पुराणों के अनुसार इसकी आराधना से सब प्रकार की अविद्याओं से त्राण मिलता है एवं अन्धविश्वास से छुटकारा मिलता है। विश्व निर्माण के मूल में इसी परा एवं आद्याशक्ति का वास है जो दसों दिशाओं में व्याप्त है। इसी कारण इस महादेवी को

दश-हाथो से युक्त दिखाया गया है। सर्वदेवों ने इस महाशक्ति की उपासना की है यथा राम एवं कृष्ण, अर्जुन की शक्ति उपासना सर्वविदित है।

शक्ति की निष्ठापूर्वक उपासना एक अत्यन्त सबल आध्यात्मिक मार्ग है जिससे सद्गुणों का प्रकाश एवं दुर्गुणों का विनाश होता है।

शक्ति, 'शक्' धातु से बना है जिसका तात्पर्य है बल, आधार, सामर्थ्य। इसका तात्पर्य 'पदार्थो की आन्तर शक्ति' भी है। जिसे आधुनिक विज्ञान भी मान्यता देता है। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि परोक्ष में संसार की सृष्टि, स्थिति, लय का आधर यही शक्तितत्व है। शक्ति की अधिष्ठात्री देवी दुर्गा हैं। अग्निपुराण में इस देवी को १०, १६, १८ तथा २० भुजावाली कहा है। प्रपंचसारतंत्र तथा शारदातिलक में इसे ८ भुजावाली बताया है।

शक्ति के दो रूप हैं : सौम्य तथा उग्र। उमा, गौरी, पार्वती, भवानी, अन्नपूर्णा, ललिता, अम्बिका, लक्ष्मी एवं दुर्गा सौम्य रूप में हैं तथा चामुण्डा, काली, महाकाली, कात्यायिनी, भैरवी, चण्डी एवं कपाली को उग्र रूपा कहा है। शक्ति की शरीर रचना दुर्गा सप्तशती के अनुसार सर्वदेवों के तेज से देवी के शरीर का प्रादुर्भाव हुआ था। असुरों ने देवों को पराभूत कर दिया था अतः उन्होंने अपने-अपने तेज से एकमहत् शक्ति का निर्माण किया यथा-

मुख- शिव के तेज से (तात्पर्य यह कि मुख पर ही ज्ञान प्रकाश पाता है)।

केश- यम के तेज से (यम संचयनकर्ता है। इसका वर्ण कृष्ण है। सर्ववर्णो का विलय ही कृष्ण वर्ण है। केश अंधकार का पर्यायवाची है जिसमें स्थान का प्रत्यक्षीकरण होता है)।

बाहु- विष्णु के तेज से (विचार शक्ति का प्राकट्य बाहुओं द्वारा ही होता है अतः भुजाओं की संख्या भी अनिश्चित है)।

स्तन- चन्द्र तेज से (स्तन द्वय से दुग्धधार अमृतवर्षा के समान है जिससे माता शिशु को शक्ति प्रदान करती है। चन्द्रसुधाकर)।

मध्यभाग- इन्द्र तेज से (मध्य भाग से ही सर्व ऐश्वर्य प्रकाश पाता है। सर्व देवों के ऐश्वर्य का प्रतीक - इन्द्र)।

जंघा, उरू तथा नितम्ब- वरूण तेज से (प्रकृति का अन्तिम परिणाम जल है। जड़ता का प्रतीक)।

कर्णद्वय- वायु तेज से (शब्द की उत्पत्ति का कारण तथा परिचायक)

पादद्वय- ब्रह्मा के तेज से (गति, सृष्टि रूप में गति का प्रकाश होने का प्रतीक)

पादाङ्गुलियां- सूर्य के तेज से (गति की शक्ति का परिचायक यथा पांव की उंगलियों में ही गति की चरम परिणति होती है)

हस्ताङ्गुलियां- बसुओं के तेज से (ग्रहण शक्ति का परिचायक है)

नासिका- कुबेर के तेज से (पृथ्वि तत्व के सात्विक अंश से नासिका तेज का विकास होने का तात्पर्य)

दाँत- प्रजापति (विश्व संहार-लीला का प्रकाश स्थान)

त्रिनेत्र- अग्नि तेज से (ज्ञान ही अग्निरूप है)

भ्रू- दोनों संध्याओं का प्रतीक (प्रकृति सौन्दर्य का प्रकाश है। जीव तथा ईश्वर का मिलन एक संध्या है जिसमें अज्ञान का विनाश होता है। ईश्वर तथा परमेश्वर का मिलन दूसरी संध्या है जिसमें सर्व-विशिष्ट अज्ञान का नाश होकर निर्विशेष ज्ञान की उत्पत्ति होती है) देवी के आयुध एवं वाहन तत्व।

धनुष एवं बाण (वरुण प्रदत्त)- इन्द्रियां एवं अनुराग तथा चित्तक्षेत्र में व्याप्त **विषयजन्य चंचलता** का प्रतीक।

खड्ग- भेद ज्ञान द्योतक।

ढाल- मलिनता का द्योतक।

गदा-संहार- शक्ति का परिचायक।

कमण्डलु (ब्रह्मा प्रदत्त)- सृष्टिबीज के अव्यक्त स्रोत का द्योतक।

अक्षमाल (प्रजापति प्रदत्त)- ५१ मातृकाएं-वर्णमाला अक्षर अर्थात शब्द-वर्ण की समष्टि का परिचायक।

मुण्डमाल- संसार को दग्धबीजवत् ब्रह्म में स्थिर देखने का द्योतक।

त्रिशूल (शंकरप्रदत्त)- ज्ञाता ज्ञेय-ज्ञान के त्रिपुटी भेद के समन्वय का प्रतीक।

शंख- नादशक्ति का परिचायक

सुदर्शन चक्र (विष्णु प्रदत्त)- चक्र से जगत का तात्पर्य है अर्थात क्रम से पुरुष, वेद, कर्म, यज्ञ, मेघ, अन्न, प्राणी की स्थिति, अनुलोम-प्रतिलोम भाव से चक्रवत जगत का स्वरूप ही विष्णुचक्र है अतः इस जगत चक्र को ब्रह्म में प्रतिष्ठित देखना ही सुदर्शन चक्र का तात्पर्य है।

उन्नत ध्वज- कर्तव्य-ज्ञान का परिचायक।

सिंह- शक्ति वाहन। मनुष्य, शरीर में उत्पन्न 'श्रेष्ठ पशु' जो है (हिंसाधर्मी) जब पशुत्व को पराभूत कर उस पर अपना आधिपत्य स्थापित करता है तब वह मनुष्यत्व प्राप्ति के योग्य बनता है, तभी वह सिंहधर्मी अर्थात शक्ति का संवहन करने

वाला होता है। सिंह वाहनी देवियों के तात्विक अर्थ का स्पष्टीकरण इस विश्लेषण से प्रकट होता है। यही देवी सर्वशक्ति शालिनी जगन्माता कही गयी है। जिसके वास्तविक स्वरूप का विवेचन आरम्भ की पंक्तियों में करने का प्रयास किया गया है तथा जिस देवी ने उपर्युक्त तत्व को स्वयं ही देवी उपनिषद में, देवताओं के प्रश्न करने पर, इस प्रकार प्रकट किया है-

साब्रवीदहं ब्रह्मस्वरूपिणी। अजाहमनजाहं आश्चोऽर्व च तिर्यक्चाहम्।

(अर्थात मैं ब्रह्मस्वरूपिणी हूँ। परमार्थतः अजन्मा होते हुए भी व्यवहारतः विविध देवी रूप में जन्म लेती हूँ, मैं ही ऊपर-नीचे, अगल-बगल, सर्वत्र व्याप्त हू एवं देश काल वस्तु से सर्वथा अपरिच्छिन्न हूँ।)

इस तत्वातीत आद्याशक्ति को सर्वतत्वमयी एवं प्रपंचरूपा कहा है अर्थात वह परमानन्दरूपिणी चराचर जगत की बीजस्वरूपा हैं। उसे प्रकाशात्मक शिव के स्वरूप ज्ञान का उद्बोधक दर्पणस्वरूपिणी भी कहा है। 'अहं ज्ञान' ही शिव का स्वरूप ज्ञान है और आद्याशक्ति का आश्रय लिए बिना इस आत्मज्ञान प्रकाश का दर्शन (साक्षात्) सम्भव नहीं। इसको करने के लिए यह उदाहरण दिया गया है कि जिस प्रकार स्वच्छ दर्पण में अपने प्रतिबिम्ब को देख, अहंरूप में हम अपने को पहचान लेते है उसी प्रकार से परमेश्वर को अपनी अधीन स्वकीया शक्ति को देखकर अपने स्वरूप की उपलब्धि होती है। हम यह भी कह सकते हैं कि वस्तुतः आत्मशक्ति दर्शन, आत्म स्वरूप की उपलब्धि एवं उसका आस्वादन एक ही वस्तु है। दोनों में कोई भेद नहीं है तात्विक दृष्टि से।

उपर्युक्त शब्द 'अहं' के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए एवं शक्तितत्व के अन्वेषण में, यह समझ लेना अनिवार्य है कि अन्तर अथवा बाह्य, यहां अथवा वहां, अहं अथवा इदं (शैवशाक्ततंत्र के अनुसार प्रमा अथवा ज्ञान के दो भेद) आदि द्विधा दृष्टियां वस्तुतः एक ही आत्मा के प्रकाश हैं। माया (अज्ञान आवरण रूपी उपाधि) के कारण ही एक आत्मा, द्रष्टा रूप (अपनी दृष्टि) में अपने से भिन्न, अनात्म (दृश्यरूप) में देखती है। तात्पर्य यह कि अपने मूल में प्रमेय वस्तु प्रमाता से भिन्न नहीं है किन्तु इस तत्वज्ञान का अनुभव तबतक नहीं होता जबतक प्रमाता-प्रमेय के भेद-प्रतीति का कारणीभूत मायारूप बन्धन शिथिल न हो। अतः समस्त साधना उपासना पूजा का प्रयोजन इसी मायारूपी बन्धन को तोड़ने एवं अहं रूप को जानने के निमित्त ही है। विश्वसारतंत्र कहता है- **'यदिहास्ति तदन्यत्रा यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्'**। अर्थात जो यहां है सो वहां भी है, जो यहां नहीं है वह वहां भी नहीं है।

शैवसिद्धान्त में भी इसी का प्रतिपादन इन शब्दों में हुआ है- **वर्तमानावभासानां भावानामवभासनम् अन्तःस्थितवता मेने घटते बहिरात्मना।** अर्थात जो वस्तु इस समय दिखाई देती है वह बाह्य पदार्थों के रूप में इसीलिए अवभासित होती हैं कि वे भीतर भी हैं। अतः यहाँ भी अभेद तत्व की खोज की ही साधना का प्रयोजन प्रतिपादित हुआ है।

उपासना का महत्व- उपर्युक्त विवचेन से स्पष्ट हो गया पूजा, उपासना, अन्ततोगत्वा, अपने प्राणतत्व अहं की ही है। साधना मार्ग का रहस्य ही यह है कि जो कुछ भी है (बाह्य) वह अन्तर में ही है। इसी अन्तर-बाह्य के भेद ज्ञान (अहंकार) को दूर करने के निमित्त ही बाह्य पूजा का विधान प्राचीन मनीषियों ने किया। अतः इसी अन्तर-बाह्य के रहस्य का उद्घाटन, ज्ञान, भक्ति, कर्म का एक साथ समन्वित अनुशीलन करने के ही लिए साधना से बढ़कर अन्य कोई उपाय नहीं। इसी कारण मात्र अभ्यास को बनाए रखने के लिए की गयी पूजा-उपासना फलवती नहीं होती। यह सामान्य अनुभव की बात है। क्योंकि ज्ञान, भक्ति के रहस्य का परिचय अभ्यासगत पूजा के वश की बात नहीं। वस्तुतः परिचय के अभाव में ही ऐसा होता है। अहं (आत्मा से) परिचय होने पर पूजा के सफल होने में देर नहीं लगती।

अहं का स्वरूप : 'मैं' या 'मेरा' समरूप अनुभव में है। योगी कहता है कि यह 'मैं' ही 'आत्मा' है एवं आत्मा का स्वरूप ही आनन्द अर्थात 'मैं' ही मेरा सर्वप्रिय वस्तु होने के कारण आनन्दरूप है। 'मैं' का धारण ही मनुष्यत्व का लक्षण है अन्यथा वह पशु है। साधक का इष्ट देव यही 'मैं' है तथा इसी 'मैं' रूपी सत्य में नित्य-युक्तता अनुभव करना बाह्य स्थिति कही गयी है। अतः देह, प्राण, मन, ज्ञान, आनन्द से पृथक 'मैं' का सन्धान जो पा जाता है वह देहादि ५ अवयवों के भीतर अभिन्न भाव से प्रकाश पाता है क्योंकि सन्त के अनुसार मन वह क्षेत्र है जहां अभीष्ट अनभीष्ट, प्राप्ति-अप्राप्ति इत्यादि द्वन्द भाव का अस्तित्व है ही नहीं। वहां विशुद्ध आनन्द है। यहां पर, मन की स्थिति को स्पष्ट करना आवश्यक है। सामान्यतया यह धारणा है कि शरीर के भीतर मन है किन्तु वस्तुतः स्थिति ठीक विपरीत है। अर्थात मन के भीतर देह है अर्थात मन का कुछ अंश ही घनीभूत होकर स्थूल देह का आकार ग्रहण करता है। इसी मन में ही बहुत्व की इच्छा जाग्रत होती है। बिना मन के कोई संकल्प भी असम्भव है। जीव 'मैं' अहं है, अर्थात प्रत्यक्ष है, परम 'मैं' सः है अर्थात अप्रत्यक्ष। अतः जीव का ब्रह्मरूप में प्रकाशित होना ही

'सोऽहं' की सिद्धि कही गयी है। समाधि से इस स्थिति की प्राप्ति होती है।

मूर्ति-निर्माण का रहस्य : साधक के संस्कारों के अनुरूप देवीमूर्ति (अर्थात् 'तेज') का आविर्भाव योग-तंत्र के अनुसार धारणा की विविधता से साधक को जिस मूर्ति के दर्शन होते हैं उनका स्वरूप अलग-अलग होता है। देश-काल से परे होकर यह अनुभवगम्य है। मूर्ति को प्रादुर्भाव करने वाली ऊर्जा की ही यदि प्राप्ति हो जाये तो फिर संकल्पानुसार किसी भी मूर्ति का दर्शन करना अपने वश की बात है तथा इसकी ओर अनुराग ही मूर्तियों के अनेकत्व का भेद-भाव भी दूर कर देता है। निम्नसारणी दृष्टव्य है-

मनोमय कोश रज- देवी महालक्ष्मी, तुष्टि-पुष्टि स्वरूपा, अभय, सत्य, दया, शक्ति, धैर्य की दात्री।

प्राणमय कोश तम- महाकाली, महारोग, द्वेष, कामकला, क्रोध, मोह की संहारक शक्ति।

ज्ञानमय कोश सत्- महा सरस्वती, आत्मभाव त्याग, ज्ञान की दात्री।

यही सत्,रज, तम का आध्यात्मिक रूप है।

शिवलिंग रहस्य- शिवलिंग के रहस्य के बारे में काफी भ्रांतियां होती हैं और इसका रहस्य भी जानना चाहते हैं। इस रहस्य पर भी थोड़ा विचार कर लेते हैं। अगर योग की दृष्टि से देखा जाये तो आदिब्रह्म भगवान शिव हैं। उन्हे परब्रह्म माना गया है। आज पूरे संसार में भगवान शिव की आराधना होती है। वह भी शिवलिंग के रूप में। परमेश्वर निराकार है। शिवलिंग उस परम तत्व परमेश्वर का निराकार रूप के प्रतीक हैं। लेकिन लययोग में शिवलिंग की वृहद चर्चा मिलती है। पृथ्वी, जल, आकाश, तेज और वायु इन पंच तत्वों के आधिदेव भगवान शिव हैं। कुण्डलिनी शक्ति का रहस्य भी शिवलिंग ही है। जो इस प्रकार से है। पद्य गुदा के ऊपर लिंग मूल के नीचे सुषुम्ना नाड़ी के पास रक्त वर्ण चतुशदल है। उस पद्य की कणिका नीचे यानि अधोमुख है। स्वर्ण आभा से युक्त इन दलों में प्रकाश प्रस्फुटित हो रहा है और व, श, ष, स ये चार वर्ण का स्थान है। इस पद्य कर्णिका के चारो ओर कोणरूप पृथ्वी मण्डल है। जो कि पीत वर्ण, उज्जवल, कोमल तथा अष्ट कोण द्वारा आवृत है। उस मण्डल के बीच में पृथ्वी बीज 'लं' है। आधार पद्य की कर्णिकाओं के मध्य में वज्रा नाड़ी के मुख में त्रिपुर सुन्दरी अधिष्ठानरूपी एक त्रिकोण शक्ति पीठ स्थित है। जो कामरूप, कोमल और विद्युत के समान तेज पुन्ज प्रस्फुटित है। इस त्रिकोण के मध्य में व्याप्त है। कन्दर्प नामक प्राण वायु पूर्णरूप से कामरूप त्रिकोण के मध्य में स्वयंभू लिंग विद्यमान है। सर्पतुल्य

कुण्डलीकार विद्युत प्रकाशमयी अपने मुख से स्वयंभू लिंग के ऊपर आवृत्त होकर निद्रा में रहता है। जब साधक कुण्डलिनी जागरण के समय मूलाधार पद्य देखता है तो पृथ्वी तत्व उसके भीतर त्रिकोण पीठ में उस शिवलिंग की अनुभूति करता है।

तंत्र में कहा गया है कि आकाश रूप लिंग है और पृथ्वीरूपिणी जगदम्बा उनकी पीठ है। समस्त जगत ब्रह्माण्ड और देवों का स्थान लय होने के कारण उसका नाम लिंग है। ब्रह्माण्ड से लेकर चराचर जगत सभी सृष्टि लिंग में प्रतिष्ठित है। लिंग और अर्घा की देवी जगदम्बा और साक्षात् शिव हैं। इसी में प्रकृति का विकास और लय हो रहा है। इसलिए शिव को आदिदेव परब्रह्म परमेश्वर कहा गया है।

आराधना : जब साधक मंत्र पूजा आराधना करते-करते परमात्मा के ध्यान में निविष्ट होने पर अपने भीतर सूक्ष्म शक्ति का विस्तार स्वतः करने लगता है और जितना साधक ध्यानावस्था की गहरायी में जाता है उतनी ही शक्ति उसकी बढ़ने लगती है। तब ध्यान की चरम अवस्था में ध्याता, ध्यान और ध्येय की एकता होने पर समाधि को उपलब्ध हो जाता है। जिसे मंत्र योग में भाव समाधि कहते हैं। समाधि की अवस्था में मूर्ति का दर्शन नहीं होता केवल भाव रहता है और अपार आनन्द को हो जाता है उपलब्ध। मंत्र योग और प्रतिमा पूजा की यह अवस्था सविकल्प समाधि कहलाती है। इसके बाद निर्विकल्प समाधि में साधक प्रवेश लाभ करता है। इस भूमि में प्रवेश के बाद स्थूल प्रतिमा, पूजन आदि की आवश्यकता नहीं पड़ती और साधक सर्वत्र व्याप्त निर्गुण निराकार सत् चित्त आनन्द सत्ता के साथ निर्विकल्प समाधि में प्रवेश करता है। तब उसे अनुभव होता है कि सारा विश्व ब्रह्माण्ड और जगत ब्रह्ममय है, ब्रह्मरूप है। इसके अलावा दूसरा कोई नहीं है वही सभी जगह व्याप्त है।

भारतीय शास्त्र और धर्म ग्रन्थों में ईश्वर के पंच उपासना का वर्णन मिलता है। नारायण, शिव, शक्ति, सूर्य और गणपति पंच तत्व यानि ब्रह्म तत्व हैं। ये देवगण से काफी उच्च हैं। देखा जाये तो ये देवता के अन्तर्गत नहीं आते। क्योंकि इनकी उपासना पूजा ईश्वर रूप में होती है। परमेश्वर की ऊर्जा इन पांचों देव में उपलब्ध है। इसका अर्थ है जैसा कि शास्त्रों में बतलाया गया है पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन्ही पांच तत्वों से मानव शरीर का निर्माण होता है। मानव में जिस तत्व की अधिकता होगी स्वतः उस देव की ओर आकर्षित होता है और उसकी इच्छा जाग्रत होती है पूजा आदि करने की। जैसे आकाश तत्व के साथ नारायण, अग्नि तत्व के साथ आदिशक्ति की, वायु तत्व के साथ सूर्य की, पृथ्वी तत्व के साथ भगवान शिव की और जल तत्व के साथ गणपति की मानी जाती है।

जिसमें आकाश तत्व की प्रधानता होती है उसे स्वतः विष्णु, कृष्ण, राम के प्रति रूचि होगी। जिसके अन्दर अग्नि तत्व की प्रधानता होगी वह स्वतः शक्ति की ओर आकर्षित होगा। शक्ति के किसी भी देवी रूप की साधना करेगा। जिसके अन्दर जल तत्व की प्रधानता होगी वह गणपति की आराधना करेगा। पृथ्वी तत्व होने से शिव, भैरव आदि की आराधना करेगा।

देखा जाये तो साधक की जिस देवता या देवी में स्वाभाविक रूचि होती है उसी की आराधना करना श्रेष्ठ माना गया है। जो लोग इस तत्व के रहस्य को नहीं जानते हैं स्वाभाविक ही शंका पैदा होगी।

खैर, जबतक उपासना और भक्तों की श्रद्धा-विश्वास रूपी शक्ति उस प्रतिमा पर नहीं होगी तबतक प्रतिमा में ऊर्जा का प्रवाह नहीं होगा। श्रद्धा विश्वास सात्विक शक्ति ही परमेश्वर सर्वव्यापनी दैवी शक्ति प्रतिमा के द्वारा स्वतः ही प्रगट हो जाती है और दिव्य तेज से प्रतिमा चमकने लगती है। समस्त चराचर जगत में शक्ति दो प्रकार से अपना कार्य करती है। एक स्वतः क्रियाशील होकर और दूसरी परत क्रियाशील। स्वतः क्रियाशील (एक्टिव) वह होती है जिसमें स्वयं कार्य करने की प्रकृति होती है। जिसमें स्वयं कार्य करने की प्रकृति नहीं होती केवल प्रेरणा शक्ति के अनुसार उसमें फल प्राप्त हो उसे परत क्रियाशील कहते हैं। परमेश्वर की जो दैवी शक्ति है जगत में आवश्यकता के अनुसार और किसी दैवी प्रयोजन के अनुसार अवतार अथवा दिव्य विभूति के द्वारा अपने को प्रगट करती है। स्वतः क्रियाशील होने के कारण अवतार अथवा दिव्य पुरूष संसार में धर्म स्थापना और अधर्म नाश के लिए इनके द्वारा कार्य होते हैं। परन्तु प्रतिमा में श्रद्धा, क्रिया और मंत्र द्वारा जो व्यापक दिव्य दैवी शक्ति प्रगट होती है वह स्वतः क्रियाशील नहीं होती। क्योंकि उसमें अवतार की तरह स्वतः क्रियाशीलता नहीं है। वह शक्ति केवल भाव और पूजा, आराधना के द्वारा साधक के आत्मा के अनुकूल अर्थात भाव पूजा के अनुसार फल प्रदान करती है और अपरोक्ष रूप से रक्षा भी करती रहती है।

धूप, दीप और गन्ध : शास्त्रों में गंध-द्रव्य और दीप का सम्बन्ध दैवी राज्य से होता है और इसके अद्‌भुत शक्ति के बारे में बहुत कुछ कहा गया है। मंदिर में दीप का जलना या जलाना क्यों आवश्यक है? दीपक ही उस अदृश्य दैवी शक्ति का प्रतीक है और है साक्षी आपके साधना-उपासना का। आज भारत में कई मंदिरों में केवल दीपक के प्रकाश से देवी-देवता का दर्शन होता है। अप्राकृतिक प्रकाश दैवी शक्ति पर नहीं पड़ना चाहिए। सुगन्धित धूप, दीप व द्रव्य से मंदिर व उसके

आस-पास अपदेवता, भूत प्रेत नहीं फटकने पाते। सूक्ष्म जगत पर द्रव्य-गंधों का बड़ा ही प्रभाव पड़ता है। देखा जाये तो स्थूल जगत और सूक्ष्म जगत का परस्पर सम्बन्ध है। इनके अन्तर्गत जीव और देवों का भी अदृश्य सम्बन्ध है। गन्ध-द्रव्य, धूप, दीप के सुगन्ध से देवगण स्थूल जगत की ओर आकर्षित होते हैं। साथ ही भूत प्रेत बाधा का भी असर नहीं होता।

चिन्ता, दुख, विषमता आदि नकारात्मक स्पन्दन, उन्माद आदि गन्ध-द्रव्यों से शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। देखा जाये तो सभी धर्मों में गन्ध-द्रव्य का परोक्ष-अपरोक्ष रूप में प्रयोग होता है।

आध्यात्मिक अथवा पराविद्या के ज्ञाता विभिन्न दोषों के उपचार के लिए अभिमंत्रित गन्ध, धूप आदि का प्रयोग करते थे तथा मंत्र द्वारा अभिमंत्रित द्रव्य-गन्ध का प्रभाव और भी प्रबल हो जाता था। किसी भी प्रकार का दोष जैसे दुकान में दोष, गृहदोष बाधा आदि पर इसका अनुकूल प्रभाव देखने को मिलता है। इस प्रकार मंदिर, घर, दुकान आदि में गन्ध-द्रव्य का प्रयोग शुभ होता है।

बलि का रहस्य- प्राचीन काल से शक्ति पूजा अथवा इष्ट पूजा के अन्त में बलि का काफी महत्व था और है। बिना पशु बलि के पूजा को पूर्ण नहीं माना जाता था। लेकिन इसका एक और रहस्य है। अध्यात्म की दृष्टि से देखा जाये तो काफी महत्वपूर्ण है। साधक अपने इष्ट के सामने अपना सब कुछ बलि कर दे, उपास्य देव से अपना भेद भाव मिटा दे और पूर्ण समर्पित हो जाये यानि उपास्य में विलीन हो जाये यानि **'शिवो भूत्वा शिवं भजेत्'** दासोऽहं का 'दा' नष्ट होकर सोऽहं में विलीन हो जाये तभी साधना, आराधना और पूजन की पूर्णता मानी जाती है।

पहले कोटि की बलि आत्मबलि को उच्चकोटि की बलि मानी जाती है। साधक अपनी आत्मा को ही परमेश्वर को समर्पित कर देता है यही आत्म बलि है।

दूसरे कोटि की बलि है कामरूपी बकरा, क्रोधरूपी भेड़, मोहरूपी महिष, चंचलतारूपी मुर्गा अर्थात तंत्र में इसे रिपु कहा गया है। रिपु का तात्पर्य इन्द्रिय दोषरूपी शत्रु। इनकी बलि करने से स्वच्छ और निर्मल होकर साध्य और साधक एकाकार हो जाते हैं।

तीसरे कोटि की बलि इन्द्रिय प्रिय वस्तु की बलि आती है। साधना के अन्त में जिस वस्तु के प्रति मोह और आशक्ति है इन्द्रियां बंध रहीं हैं उसे बलि कर देने से अथवा इन्द्रिय संयम द्वारा उसे त्याग कर देने से अथवा संकल्पपूर्वक त्याग करने से आत्मरूपी संयम का उदय होता है।

मैथुन, मांस भक्षण और मद्यपान इनमें लोगों की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। इसे बतलाना या प्रेरणा देना नहीं पड़ता। महर्षि मनु ने **'प्रवृत्ति भूतानां'** कह के इस बात की पुष्टि की है। किन्तु **'निवृत्तिस्तु महाफला'** अर्थात मनुष्य को प्रवृत्ति छोड़ कर मोक्ष फलदायक प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होना चाहिए।

बलि का काफी व्यापक रहस्य है। तंत्र में जो उच्चकोटि के साधक हैं बलि के द्वारा अपनी साधना उपासना को पूर्ण करते हैं। खैर, मैंने यहां पर आध्यात्मिक व सात्विक बलि पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। चूंकि मनुष्य पशु नहीं है न तो है वह मांसाहारी। वह अदृश्य दैवी ऊर्जा का प्रतीक है। साध्य और साधक की एकरूपता सात्विक है। सात्विक साधना में जितना फल है वह तामसिक साधना में नहीं है। साधक का मुख्य उद्‌देश्य अपरोक्ष सत्ता के समीप जाना और उसकी अनुभूति करना है। यही सार तत्व है सारे धर्म का, अध्यात्म का और है उपासना, आराधना का......।

नक्षत्र विज्ञान और देवी-देवता- भारतीय प्राचीन संस्कृति के अध्ययन के लिए मनुष्य को मानदण्ड के रूप में या सभी निष्कर्षों के मुख्य कोण के रूप में आकाश की ओर देखना ही होगा। अगर आप सम्पूर्ण आकाश के दिव्य मानचित्र से परिचित नहीं हैं तो आपके लिए भारत के अध्यात्मिक लय को समझना मुश्किल हो जायेगा। जिस प्रकार सूर्य अपनी वार्षिक परिक्रमा के दौरान आकाश के नक्षत्र समूहों से होकर गुजरता हैं। उसी सूर्य को अपनी दैनिक परिक्रमा से देश के नक्षत्र समूह से होकर गुजरना पड़ता है। भारत में सत्ताइस नक्षत्रों को सत्ताइस तीर्थों से होकर गुजरना पड़ता है। कहीं-कहीं एक तीर्थ में दो या तीन नक्षत्र हैं। वाराणसी कृत्तिका व रोहणी नक्षत्र के अन्तर्गत आता है। कृत्तिका है शिव और रोहिणी है माँ अन्नपूर्णा। काशी का अर्थ है चमकने वाली वर्ण+असी- वाराणसी। वर्ण का अर्थ है विभिन्न वर्णों अर्थात विभिन्न संस्कृतियों से है और असी का अर्थ खड्ग है अर्थात जिसमें बुराई को नाश करने की शक्ति है। कैलाश का अर्थ उस स्थान से है जहां से सारी शक्तियां उत्पन्न होती है। अतः कृत्तिका और रोहिणी दोनों कैलाश और वाराणसी पर अपनी ऊर्जा बिखेरती है। अन्य तीर्थों के साथ भी इसी प्रकार होता है।

भारत के सामाजिक और धार्मिक रीति रिवाज और कुछ नहीं बल्कि उन सार्वलौकिक सत्यों के वाहक हैं और इसी कारण इन्हे भारतीय शास्त्रों में साक्ष्य के रूप में माना जाता रहा है।

भारतीय ज्योतिष शास्त्र ने सर्वप्रथम उपर्युक्त सत्यों को महसूस किया और

उन्होने ग्रहों के बजाय नक्षत्रों पर अधिक ध्यान दिया। विश्व में एकमात्र ज्योतिष ने ही अपनी दिशायें नक्षत्रों के माध्यम से निकाली। जिससे भृगु संहिता की रचना हुई। सर्वोच्च के प्राप्ति की धारणा आत्मचेतना प्राप्त करने की धारणा है। भारतीय ऋषियों ने इस दिशा में काफी कार्य किया।

भारतवर्ष में प्राचीनकाल से सबसे अधिक विद्वान को ऋषि कहा जाता है। सप्तर्षि मण्डल उत्तरी ध्रुव के ध्रुव प्रदेश में अवस्थित है। सप्तर्षि मण्डल सांसारिक जीवों का मुख्य स्रोत है। वैदिक काल से ही यह ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता रहा है। इस संसार में जीवन चेतना इन्हीं ऋषियों से आती है।

सिंह राशि का मघा नक्षत्र काल पुरूष के लिए प्राण या जीवन के समान है। इससे ऊपर ही सप्तर्षि मण्डल है। मघा को सप्तर्षियों का प्रलम्बन कहा जाता है। सौर इसी कारण इस पर पितरों का शासन चलता है। सप्तर्षि जीवात्मा है। जिन्हे सामान्य तौर पर शिखी कहा जाता है। यही कारण है यह छायाग्रह शिखी जो केतु के रूप में जाना जाता है का जन्म तारा हो गया। गया एक मघा तीर्थ है और चेतना की अदृश्य जीवनधारा ही फल्गुधारा है।

विषुवीय की शुद्धता से हरेक युग में युगतारा के सामान्तर राशि का बारह स्थितियों में रहने वाला यह सप्तर्षि मण्डल एक ऐतिहासिक परिच्छेद की रचना करता है। यदि हम सप्तर्षि मण्डल की विवेचना करे तो इस संसार के सभी रहस्यों को जान सकते हैं। ज्ञान की यही प्राप्ति विज्ञान है। जिस मधु ने इन ऋषियों की उन्मत्त किया वह सोमधारा थी और जिन देवताओं ने इस सोमधारा का पान किया वे सुर कहलाये। सुरधारा की यह धारा हाथी के सूंड के शक्ल में है। जिसे गणेश के रूप में जाना जाता है। इस विराट ब्रह्माण्ड के सारे ग्रह और तारे अपने अस्तित्व के लिए इस सोमधारा पर निर्भर हैं। यह सोमधारा सृष्टि की सहायता के लिए निरन्तर गतिमान रहती है और इसी कारण यह मंगल अर्थात सब कुछ जो शुभ है। यही सृष्टि जीवन और आनन्द है। रक्त और अग्निवर्ण की सृष्टि जीवन की रक्षा के आवश्यक और फलदायक है। श्रीगणेश जो हमारी इच्छायें पूरी करते हैं उनका वर्ण लाल या अग्निवर्ण है और मंगल जो श्रीगणेश का प्रलम्बन है वह भी अग्निवर्ण है। सोमधारा का ध्रुव प्रदेश बर्फ के समान है। इसी कारण श्रीगणेश और मंगल ग्रह बर्फीले ध्रुव के हैं। ये दोनों रंग क्षुधा को बढ़ाते हैं। सारी सांसारिक सृष्टि के माता-पिता हमारे मस्तक हैं। यहीं से हमारे शरीर में सृष्टि की धारा बह रही है। यही धारा भगवती या भगीरथी है। गंगा नदी का नाम भगीरथी है। इस पृथ्वी पर छायापथ का प्रलम्बन गंगा नदी है। गंगा नदी विश्व के सबसे ऊंचे

पर्वत हिमालय से निकलती है। गंगा नदी हरिद्वार में पहाड़ों से समतल भूमि में उतरती है। हरिद्वार में एक कुण्ड है जिसे ब्रह्मकुण्ड कहा जाता है। ब्रह्ममण्डल उस दिव्य जीवन प्रवाह का वास्तविक कुण्ड है। जिसे 'क' की संज्ञा दी गयी है अर्थात यही जल यानि जीवन है। यही दोनों मिलकर कमण्डल नाम बना है। पुराणों में कहा गया है गंगा नदी भगवान के कमण्डल से निकली है। इस मण्डल में हम एक निहारिका पुंज को देखते हैं। सभी निहारिका पुंज ब्रह्माण्ड की सृष्टि में रत हैं। इस देश के वैदिक सन्तों ने इन्हे कमल के रूप में चित्रित किया है। ब्रह्माण्ड का अस्तित्व सिकुड़ने और विस्तार की क्रिया पर आधारित है। 'क' का अर्थ जल है और 'मला' का अर्थ सृष्टि या समूह है। तभी ब्रह्मा को कमलासन भी कहा जाता है और पद्मयोगी भी। भगवान विष्णु को पद्मनाभ कहते हैं। अतः ब्रह्म एक कमल हैं जो विष्णु से एक कड़ी द्वारा जुड़े हैं।

छायापथ देवताओं का पालन-पोषण करता है। उसी प्रकार गंगा हम लोगों के पोषण का मुख्य स्रोत है। जिस प्रकार आकाश के सारे क्रियाकलाप छायापथ पर निर्भर है। उसी प्रकार भारत की समृद्धि गंगा नदी पर निर्भर है। इसी तरह गंगा सुषुम्ना नाड़ी अर्थात मेरूदण्ड है और शरीर के सबसे ऊंचे स्थान मस्तक से प्रारम्भ होती है।

ब्रह्माण्ड के केन्द्रीय बिन्दु में काफी महत्व बड़ी ही ऐहिक शक्ति का केन्द्र है जो भी उसके निकट जाता है वह राख हो जाता है। यह बिन्दु स्थिर है और यही शिव है। यह एक श्मशान की तरह दिखता है। ये सारे संसार का त्याग कर राख-भभूत मल कर प्रसन्नचित्त बैठे हैं। उच्च आकर्षण के कारण संसार के सारे तत्वों को अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं। ऋषियों ने इनका उत्तरी दिशा में कृत्तिका में निर्धारित किया है। हम इन्ही कृत्तिकाओं से भगवान शिव की कल्पना करते हैं। यह एक लिंग अर्थात जननेन्द्रिय के समान है जो ज्योति से बना है इसी को ज्योर्लिंग कहते हैं।

आकाश के बाहरी वृत्त में छायापथ केन्द्रीय ब्रह्माण्डों के प्रभावों से सुरक्षित है इसी को गौरी कहा गया है। गौरी गौर शब्द से लिया गया है। यह प्रवाह अनन्त है। इसे ही अनन्तनाग कहते हैं। चूंकि इस प्रवाह ने निःसृत होने वाले भीषण ताप को ग्रहण किया है। अतः यह गरम है। यही जल प्रवाह उमा है। उमा उष्णता है। उमा इस ब्रह्माण्ड की पोषिका हैं। उमा ने आत्मचेतना प्राप्त कर अपने को शुद्ध करके एक वस्तु के साथ चिन्तन में लगा दिया है। ताकि सारी लौ या ज्योति चिरन्तन मुक्ति के लिए मुख्य स्रोत में मिल जाये।

छायापथ को केन्द्रीय बिन्दु से ब्रह्म मण्डल तक उमा या पार्वती के रूप में जाना जाता है यहीं से लौकिक संसार में उतरा है। इन्हे मनस कन्या या दुहिता भी कहा जाता

है। सरस सृष्टि की प्राण झील है अतः वह सरस्वती है। चूंकि सार्वलौकिक परिभाषा ब्रह्मण्डल के साथ प्रारम्भ और समाप्त होती है अतः पंच ज्ञानेन्द्रियां इससे आगे नहीं जा सकती। ब्रह्मा और सरस्वती कल्पना अतीन्द्रिय ज्ञान के साक्षी के रूप में की गयी है। ब्रह्म सर्वोच्च स्थान पर हैं। सरस्वती दक्षिणाकाश में जाकर विलीन हो जाती हैं। जहां असुरों का वास है। ये असुर ज्ञान से वंचित हो जाते हैं।

दक्षिणाकाश से आने वाले छायापथ को लक्ष्मी कहा गया है इसी कारण असुरों पर धन सम्पत्ति की कृपा रहती है। दूसरी ओर लक्ष्मी और सरस्वती इस बात का संकेत करती हैं कि देवताओं के पास अतीन्द्रिय ज्ञान तो है ही, धन-सम्पत्ति भी है।

महर्षि बाल्मीकि ने इस छायापथ की कल्पना सीता अर्थात लक्ष्मी के रूप में की थी। दक्षिणाकाश में पुनः वृश्चिक और धनु राशि में प्रकट होता है। धनु राशि की कल्पना लंका में रावण के रूप में की गयी है। धनु बृहस्पति का वास है जो ब्राह्मण जाति के थे। रावण ब्राह्मण थे। ब्रह्म मण्डल सदैव इस प्रवाह को एक हल के रूप में मथता रहता है। ब्रह्मा की पुत्री सीता जुते हुए यज्ञकुण्ड से निकलती है। जिस प्रदेश से इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि आरम्भ हुई।

अगर श्रीराम का जन्म नहीं होता तो रामायण नहीं लिखी जाती। अतः विष्णु ने अपने को श्रीराम के रूप में प्रगट किया। क्योंकि एकमात्र वही सर्वशक्तिमान और चिरन्तन और हैं सर्वोच्च। जबतक वे अपने को मनुष्य के रूप में नहीं लाते तबतक कोई लीला हो ही नहीं सकती थी। सबसे मोहक और आकर्षक रोहिणी नक्षत्र है जो कि संचालिका शक्ति भी है। राम के रूप में प्रकट हुई। रोहिणी छायापथ की प्रलम्बन है। अतः रोहिणी सभी चन्द्रमाओं की संचालिका है। इस महान चन्द्र ने अपने को रामचन्द्र के रूप में प्रगट किया इस धरती में। रामायण केन्द्रीय ब्रह्माण्ड यानि परम सूर्य का इतिहास है। अतः महान चन्द्र का जन्म सूर्य वंश में हुआ।

जो छायापथ रूपी मण्डल के समीप है उसे यमुना कहा जाता है। यह दक्षिण प्रदेश में जाकर लुप्त हो जाती है अतः इसे दुख की नदी भी कहा जाता है।

कृत्तिका और रोहिणी सूर्य और चन्द्र के समान है। चन्द्रमा बीज है और छायापथ जल या जीवन के सदृश्य है।

कृत्तिका नक्षत्र पर ही कार्तिक नाम पड़ा। पुराणों में कहा जाता है कि जब कार्तिक का जन्म हुआ तो कृत्तिकाओं ने ही उनका पालन-पोषण किया। कृत्तिकाओं को सप्तर्षिओं या मयूर नक्षत्र की पत्नियां कहा गया है। आठ ताराओं में उस प्रदेश में केवल छः कृत्तिकायें ही हैं। दूसरों की कमियां अरून्धती तारा पूरा करती है।

अरून्धती महर्षि वशिष्ठ की पत्नी है। वशिष्ठ इस जगत के पिता हैं। कार्तिक का वाहन मयूर है। भारतीय ऋषियों ने मोक्ष प्राप्ति के लिए नक्षत्रों से मिलते जुलते देवी-देवताओं के स्वरूप को समाधि अवस्था में प्राप्त किया। ऋषि अपने अन्तःकरण से इनकी पूजा प्रार्थना करते रहे।

उपनिषदों का महत्व- राष्ट्र की बहुत कुछ उन्नति और अवनति, उत्थान और पतन, विकास और ह्रास उसकी शिक्षा और उसकी संस्कृति पर निर्भर है। शिक्षा के ही आधार पर दैवी-आसुरी प्रवृत्तियों का बीजारोपण होता है। किसी देश, जाति, समाज के आदर्श निर्माण में सबसे बड़ा हाथ उसकी संस्कृति का होता है और जिस देश की संस्कृति जितनी अधिक लोक कल्याण की भावना से ओतप्रोत होगी, उस देश के आदर्श उतने ही चिरस्थायी होंगे यही कारण है कि भारतवर्ष ने महात्मा गांधी, स्वामी दयानन्द, शंकर और बुद्ध को उत्पन्न किया तो यूरोप ने हिटलर और मुसोलिनी को। जिस देश की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि जितनी अधिक लोक कल्याण की भावन से ओतप्रोत होगी, उस देश के आदर्श उतने ही चिरस्थायी होंगे।

प्रश्न उठता है यह संस्कृति क्या है? या यह संस्कृति सभ्यता का पर्यायवाची शब्द है? या नही। सभ्यता तथा संस्कृति में आधारभूत भेद है। सभ्यता शरीर है, संस्कृति आत्मा है, सभ्यता बाहर की चीज है संस्कृति आन्तर की चीज है, सभ्यता भौतिक विकास का नाम है, संस्कृति आध्यात्मिक विकास का नाम है। रेल, तार, रेडियो, मोटर, हवाई जहाज इत्यादि-ये सब सभ्यता के विकास के निदर्शक है, सच्चाई, झूठ, ईमानदारी, बेईमानी, सन्तोष-असन्तोष, संयम-संयमहीनता आदि ये सब संस्कृति के ऊँचे या नीचे विकास निदर्शक है।

संस्कृति का उद्भव जाति के जीवन के किसी ऐसे सशक्त विचार से होता है जो उस जाति के जीवनरूपी वृत्त का मानों केन्द्र होता है, उस जाति के विकास की सम्पूर्ण धारा उसी विचार रूपी स्रोत से मानों प्रवाहित होती है जिस जाति के पास उसे जीवन को विकसित करने वाला ऐसा सशक्त केन्द्रीय विचार नहीं होता, उस जाति को संस्कृति शून्य के बराबर होती है। जिसके पास होता है उसकी संस्कृति उस जाति की सैकड़ों में एक बना देती है। भारत सदियों तक पराधीन रहा, इस पराधीनता को भारत के शरीर ने माना, इसके आत्मा ने नहीं माना। क्यों नहीं माना? इसलिए क्योंकि भारतीय संस्कृति के आधार में कोई ऐसा केन्द्रीय विचार था, जो दबाये दब नहीं सका, मिटाये मिट नहीं सका, हटाये हट नहीं सका। और इस केन्द्रीय विचार के निर्माण से साहित्य का बड़ा भारी योगदान रहता है। भारतीय

साहित्य में उपनिषदों का इस विचारधारा के निर्माण में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान रहा है। केवल भारतीय साहित्य में ही नहीं अपितु विश्व साहित्य में भी उपनिषदों की गणना की जाती है। जिन विद्वानों ने निष्पक्ष भाव से इसका अध्ययन किया है, उपनिषदों के विषय में उनकी सम्मति और विचार अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। उपनिषद ने न केवल हिन्दू धर्मावलम्बियों पर ही अपना प्रभाव डाला अपितु उन्होंने अन्य धर्मावलम्बियों और विदेशियों को भी भारतीय विचारधारा की ओर आकृष्ट किया। औरंगजेब के बड़े भाई शाहजहाँ दाराशिकोह ने सन् १५५७ से १६७४ ईस्वी तक उपनिषदों का फारसी भाषा में अनुवाद किया। उसने उनकी भूमिका में लिखा है कि उपनिषदों का अध्ययन, आत्मा में शाश्वत शान्ति और आनन्द की उत्पत्ति करता है। कहते है कि औरंगजेब की बेटी जेबुन्निसा ने भी अपने चाचा दाराशिकोह से उपनिषदों की शिक्षा प्राप्त की और अपने जीवन में परिवर्तन कर लिया। उसके बारे में एक कथा है कि उसके पिता को एक चीनी व्यापारी ने एक सुन्दर दर्पण भेंट में दिया। यह दर्पण उसने अपनी पुत्री जेबुन्निसा को दे दिया और एक दिन उसकी दासी से वह दर्पण गिरकर टूट गया। दासी डरी हुई और सहमी हुई उसे पास आयी और कांपती वाणी में बोली- मुझे माफ कर दीजिए राजकुमारी जी। मेरी गलती से वह दर्पण जो चीन से आया था टूट गया है। मैं दण्ड की प्रतीक्षा कर रही हूँ। परन्तु जेबुन्निसा मुस्कुराकर बोली- अच्छा हुआ विलासिता का सामान था समाप्त हो गया। मैं दिन प्रतिदिन उसे देखती तो अभिमान होता। अब उसे देखूंगी नहीं तो अभिमान भी नहीं होगा।

जर्मनी के महान दार्शनिक शोवनहावर ने लिखा कि सम्पूर्ण विश्व में उपनिषदों से बढ़कर उपादेय और उदात्त अन्य कोई अध्ययन नहीं। उससे मुझे जीवन में शान्ति मिली और यह मरते समय भी मुझे शान्ति प्रदान करेगी।

मैक्समूल ने अपनी पुस्तक 'इण्डिया हाट कैन इट टीच अस' में लिखा- मैं उपनिषदों का बहुत ऋणी हूँ उनसे मुझे अपने जीवन सुधार में बहुत सहायता मिली है। ये उपनिषद ग्रन्थ सारे संसार के धार्मिक साहित्य में आत्मिक उन्नति के लिए सदा एक बहुत उच्च और समादरणीय स्थान घेरे रहे हैं और सदा घेरे रहेंगे। पालड्यूस नामक स्वीडन के एक विद्वान ने लिखा है कि उपनिषद गहन अगाध पर्वत कूप के समान हैं जिनमें उन पर्वतों का निःसृत जल भरा हुआ है, जिन पर्वतों का अनन्त हिम दिन में सूर्य रश्मियों द्वारा प्रकाशित होता रहता है और जिसको तारों भरी रजनी अपनी मृदुल किरणों से निरन्तर सौन्दर्य प्रदान करती रहती है।

श्री अरविन्द ने लिखा है यदि कोई वैदिककालीन मनुष्य, आधुनिक भारत में पदार्पण करे तो अपनी सन्तानों को जादू टोने के चिथड़े में विश्वास करते देखकर तथा सिद्धान्त को भूलकर भटकते हुए पतनोन्मुख लोगों पर दृष्टिपात करके चकित हो जायेगा। उसे उपनिषदों के वंशजों की मानसिक दरिद्रता, गतिहीनता, विज्ञान शून्यता, कलात्मक कुण्ठा तथा रचनात्मक प्रवृत्ति की दुर्बलता देखकर महान आश्चर्य होगा और होगा दुख।

वास्तव में उपनिषदों की इस महत्ता का कारण क्या है, जब हम यह विचार करते है तो हमें पता चलता है कि इन्होंने बिना सम्प्रदायिक भेदभाव के जीवन की वास्तविकताओं और मनुष्य के कर्म पर विचार किया है।

छान्दोग्योपनिषद् (७-१) में एक कथा आती है। नारद, सनतकुमार ऋषि के पास गये और कहने लगे भगवन् मैंने दुनिया का सब कुछ पढ़ डाला, चारों वेद, विज्ञान, नक्षत्र विद्या कुछ नहीं छोड़ा, परन्तु मेरी आत्मा को शान्ति नहीं मिली। मैं मंत्रवित् हो गया हूँ आत्मवित् नहीं हुआ। प्रकृति का ज्ञान मंत्र ज्ञान है, आपका ज्ञान आत्म ज्ञान है। भगवन् मैंने सुना है **'तरति शोकं आत्मवित्'** जो आत्मतत्व को जानता है, आत्मवित् हो जाता है, उसे शान्ति मिल जाती है, मुझे आत्मा का उपदेश दीजिये। सचमुच जबतक मनुष्य अपने को नहीं पहचानता तबतक उसे सुख, शान्ति और ऐश्वर्य नहीं मिलते। ग्रीक देश के विशाल डैलकिन मन्दिर के द्वार पर उस देश के साथ बुद्धिमान महापुरुषों के ज्ञान का सार- 'अपने को पहचानो, यही सफल जीवन का मूल मंत्र है' लिखा है।

कठोपनिषद में नचिकेता की कथा का उल्लेख है। उसे यम ने कहा तू हाथी, घोड़े, संसार के ऐश्वर्य, भोग विलास, प्रकृति पर शासन जो कुछ चाहे मांग, आत्म ज्ञान बड़ा कठिन है, इसे मत मांग। नचिकेता ने कहा भौतिक वासना में तो एक जन्म क्या, सैकड़ों जन्म लेते जाये तब भी नहीं मिटती। आत्म तत्व के दर्शन कर लेने पर भौतिक जगत स्वयं हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता है। भगवान मुझे आत्मा का उपदेश दीजिये। नचिकेता और यम के कथोपकथन में जीवन और मरण की समस्या हल की गयी है। द्वितीय पल्लव के ५वें मंत्र में यमराज नचिकेता से कहते हैं- अविद्या में पड़े हुए मूढ़ व्यक्ति अपने को धीर और पण्डित समझकर, अन्धे के द्वारा ले जाये जाते हुए अन्धे की तरह चारों ओर उलटी चाल चलते हैं। इसके आगे यम ने कहा है, उस दुदर्शनीय, निमूढ़, प्रच्छन्न, गुहा में छिपे हुए, गह्वर में स्थित और पुरातन आत्मा को, अध्यात्म योग के द्वारा, परमात्मा जान लेने पर बुद्धिमान

पुरुष हर्ष और शोक में छूंट जाता है।

आत्मा, जन्म और मृत्यु से रहित है। यह मेघावीय है। यह किसी से उत्पन्न नहीं। इसके समान अन्य कोई दूसरा पदार्थ नहीं। यह अजन्मा नित्य, शाश्वत और पुरातन है। शरीर के नष्ट होने पर भी यह नष्ट नहीं होता।

दर्पण की तरह आत्मा में परमात्मा को देखा जाता है। (१-३-५) कृष्ण यजुर्वेद को श्वेताश्वतरीय उपनिषद् के प्रथम अध्याय के १५वें और १६वें मंत्र में बतलाया गया है- जैसे तिल को पिरोने से तेल और दधि को मथने से मक्खन पाया जाता है अथवा नहर खोलने से पानी और अरचि काष्ठ के संघर्षण से आग उत्पन्न होती है, वैसे ही सत्य और तपस्या के द्वारा खोज करने पर अपनी आत्मा में ही परमात्मा को पाया जाता है।

जैसे दूध में मक्खन व्याप्त है, वैसे ही विश्व में परमात्मा व्याप्त है। आत्मविद्या और तपस्या ही उसके जानने के उपाय है।

ईश्वर की व्यापकता का उल्लेख करते हुए संसार में उसकी सत्ता के व्यापकत्व का प्रतिपादन करते हुए यह बतलाया गया है कि संसार में सभी प्राणी उस परमेश्वर के अंश हैं और इसलिए सबका सम्बन्ध बन्धुत्व का होना चाहिए। आगे चलकर यह बतलाया गया है इस विश्व में जो कुछ संचरणशील है, जंगम है सो सब ईश्वर द्वारा व्याप्त है। इसलिए सम्पूर्ण वस्तुओं का वैराग्य भाव से भोग करो। किसी के धन का लोभ मत करो। गांधी जी के सत्य-अहिंसा के सिद्धान्त का आधार यही मंत्र है। उनका विचार था संसार में सत्य ईश्वर है और ईश्वर सत्य है। हम सब ईश्वर के या सत्य के अंश हैं अतः हमारा सम्बन्ध वही होना चाहिये जो एक पुत्र का दूसरे पुत्र अर्थात् भाई के प्रति होता है और वह सम्बन्ध प्रेम का, स्नेह का, अहिंसा का और बन्धुत्व का होगा। गांधीजी के उद्देश्य का आधार भी इस उपनिषद का **'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः'** अर्थात वैराग्यभाव से भोग करो यह मंत्र है। गांधीजी की प्रार्थना सभा में ईशोपनिषद का पाठ होता था।

वृहदारण्यक उपनिषद में याज्ञवल्क्य तथा मैत्रेयी का संवाद आता है। याज्ञवल्क्य जब वानप्रस्थी होने लगे तब उन्होंने अपनी पत्नी मैत्रेयी को कहा- लो तुम्हे कुछ सम्पत्ति देता चलूं। मैत्रेयी बोली- **'यन्नु में इमं सर्वा प्रथवी वित्तेन पूर्णाभ्यात् स्यामहं तेनामृता'** अगर सारी पृथ्वी के भोग के पदार्थ मुझे मिल जायें तो मेरी आत्मा को शान्ति मिल जायेगी या नहीं? याज्ञवल्क्य ने कहा- नेति नेति। **'यथैव उपकरणवतां जीवितं तथैव ते ज वितं स्यात्। अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन'**

संसार के प्रकृति साधनों के मिलने से तुझे आत्मिक शान्ति प्राप्त नहीं होगी, हाँ उपकरण अर्थात् साधन सम्पन्न व्यक्तियों का जीवन जितना सुखी हो सकता है, उतना सुखी तू जरूर हो जायेगी। मैत्रेयी कहने लगी- **'येनाहं नामृता स्यां किमहं तेनकुर्याम्'** जिस वस्तु को प्राप्त करने से मेरी आत्मा को चिरस्थायी शान्ति न मिले उसके पीछे दौड़कर मैं क्या करूंगी? मुझे तो आत्मतत्व का ही उपदेश दीजिये। सचमुच यदि मनुष्य उनके पीछे भागे, वासनाओं को प्राप्त करने की चेष्टा करे तो उसे शान्ति कहां? स्वामी रामतीर्थ ने कहा- यदि हम परछाई के पीछे भागकर उसे पकड़ना चाहेंगे तो वह हमसे दूर-दूर होती चली जायेगी। यदि परछाई से मुख मोड़कर हम दूसरी ओर चल देंगे तो वह हमारे पीछे भागने लगेगी। इसी प्रकार धन, भोग-विलास और वासनाओं के भी जो पीछे भागते हैं, उनसे वे दूर हो जाती है और जो इनसे विरत रहते है उनके पीछे भागती है।

मुण्डकोपनिषद में ब्रह्म सम्बन्धी उपदेश देने के बाद बतलाया गया है **'सत्यमेव जयते नानृतम्'** सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं। इस उपनिषद में बल की महिमा मापी गयी है। दुर्बल कुछ नहीं कर सकता। एक बलवान मनुष्य आता है और सैकड़ों को झुका देता है। यदि बल न हुआ तो न हम उठ सकेंगे, न बैठ सकेंगे। यदि बल न हुआ तो घूम-फिर न सकेंगे। यदि बल न हुआ तो ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकेंगे, न अनुभव प्राप्त कर सकेंगे। न बड़ो से मेलमिलाप हो सकेगा, न गुरु की सेवा ही हो सकेगी। इसलिए इस उपनिषद में कहा गया है-**'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'** अर्थात् दुर्बल के लिए परमात्मा प्राप्त नहीं हो सकता उसके लिए दासता और दुख तैयार रहते हैं। यदि शरीर में शक्ति नहीं तो कुछ नहीं। इमारत की नींव गहरी और मजबूत होनी चाहिये। उसमें अच्छे मजबूत पत्थर डालने पड़ते हैं। चट्टानों पर खड़ी की गयी इमारत गिर नहीं सकती। बालू पर बनी इमारत टिक नहीं सकती है। शरीर सबकी नींव है। अतः कहा है **'शरीर माद्यं खलु धर्मसाधनम्'** शरीर सब धर्मो का मुख्य साधन है। अतः शरीर की उपेक्षा करना मूर्खता है, पाप है। वह समाज और ईश्वर के प्रति घोर अपराध है।

कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीयोपनिषद में सदाचार, शिष्टाचार और उत्तम व्यवहारों को करने का स्पष्ट आदेश है। इसके प्रथम पल्लव के ग्यारहवें अध्याय का प्रथम मंत्र उपदेशामृत से परिपूर्ण है। वेद शिक्षा प्राप्त करने के बाद दीक्षान्त के समय आचार्य शिष्य को कहता है-

सत्यंवद। मार्मचर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। सत्यान्न प्रमदितव्यम् धर्मान्न प्रमदितव्यम्। स्वाध्याय प्रवचनाभ्याम् न प्रमदितव्यम्। सत्य बोलना। धर्म का आचरण करना। स्वाध्याय से कभी विमुख मत होना, कभी उसमें आलस्य न करना। सत्य का कभी प्रमादवश उल्लंघन न करना। धर्म के प्रति प्रमादी मत बनना। वेदाध्ययन, सद्ग्रन्थों का पठन और दूसरों को वाणी द्वारा, लेखनी द्वारा ज्ञान वितरण करने में कभी आलस्य न करना।

आगे कहा है- **देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवोभव। पितृदेवोभव। आचार्य देवोभव। अतिथि देवोभव।** अर्थात दिव्य गुणयुक्त व्यक्तियों, आदरणीय गुरु और माता-पिता के आदेशों के प्रति प्रमाद कभी न करना, माता-पिता को देवता समझना, आचार्य और अतिथि को भी देवता की तरह पूजित करना। तुम सदा हमारे उत्तम आचरणों को अनुसरण करना, अन्य का नहीं। तुम सदा हमारे प्रशंसनीय कर्मो को करना अन्य नहीं।

आगे फिर निर्देश दिया है- हमसे श्रेष्ठ जो आचार्य या दूसरे विद्वान लोग हैं उनको सदा सम्मान देना। श्रद्धा के साथ देना, अश्रद्धा से न देना, अपनी बढ़ती श्री सम्पत्ति में से श्री न बढ़ रही हो तो भी लोकलाज से देना, भय से देना, प्रेम से भी देना। ऐसा करते हुए भी यदि किसी बात में सन्देह उत्पन्न हो जाये, यह समझ न पड़े कि धर्माचार क्या है अथवा किस स्थिति में कैसा बर्ताव करना है, लोकाचार क्या है यह सन्देह उपस्थित हो जाये तो तुम्हारे आसपास के धर्म कार्य में स्वतः प्रवृत्त, प्रेरणावश प्रवृत्त, अरूद्धा स्वभाव के सब पहलुओं पर विचार करने वाले विद्वान जिस सन्देह का बर्ताव करें वैसा बर्ताव करना। विवादस्पद विषयों में भी युक्त, आयुक्त, ऊरूक्ष, धर्म काम सन्दर्शी ब्राह्मणों के पीछे ही चलना। यही आदेश है, यही उपदेश है, यही वेद और उपनिषद का सार है, यही हमारा अनुशासन है, ऐसा ही आचरण करना, ऐसा ही अनुष्ठान करना।

आज देश को मर्यादा में बांधने के लिए उपनिषदों की इन्हीं धार्मिक शिक्षाओं की आवश्यकता है। यही वास्तविक सांस्कृतिक कार्यक्रम है जिनका हमें प्रचार और प्रसार राष्ट्र और जीवन में करना चाहिये। आज की बढ़ती हुई उछृंखलता, अनुशासनहीनता और हिंसा को दूर करने का यही उपाय है और आध्यात्मिक शिक्षा की अनिवार्यता का यही उद्देश्य है।

पुस्तक यहीं समाप्त होती है लेकिन इस जगत में कुछ समाप्त नहीं होता है। जिसे आप समाप्त कहते हैं शायद नये आयाम की शुरूआत है। जो भी अक्षर मैंने

अपने भावों से व्यक्त किया वह कभी समाप्त नहीं होता। अ-क्षर जिसका क्षय न हो वही अक्षर है। 'अ' ही ओम है। 'अ' ही निराकार है, परब्रह्म है जिसका कभी क्षय नहीं होता और न कभी होता अन्त। वह अनन्त है असीम है सर्वत्र व्याप्त है।

आज जहां मैं अपनी पुस्तक को समाप्त कर रहा हूँ शायद उसी के आगे फिर मेरे जैसा मनस्वी भविष्य में पैदा हो आगे लिखना शुरू कर दे। शायद मेरी पुस्तक उसे प्रेरणा दे और आगे बढ़ने की शक्ति भी। संसार चलता रहेगा। रोज नये-नये आयाम जुड़ते रहेंगे और नयी आविष्कारें होती रहेंगी। जब विज्ञान उस जगत की खोज कर लेगा या उसे उस जगत का प्रमाण मिल जायेगा तब शायद मेरी पुस्तक एक प्रमाण की तरह उनके सामने होगी।

रही पुस्तक की बात उसमें मैंने आत्मा को ही केन्द्रित कर पुस्तक लिखी है और उसका सार तत्व है निरपेक्ष। जबतक मानव निरपेक्ष नहीं होगा और नहीं होगा तटस्थ संसार और समाज के प्रति तबतक उसे कष्ट और दुख झेलना पड़ेगा। जब किसी से जुड़ेंगे नहीं तब दुख कैसा। चाहे वह धन हो, ऐश्वर्य हो, पद हो, परिवार हो कुछ भी हो जब आप जुड़ेंगे तभी आपको आत्म कष्ट होगा। इस संसार में सभी लोग अकेले और नितान्त अकेले आते हैं और एकमात्र अकेले ही जगत को छोड़ते हैं। कोई साथ नहीं जाता। न धन जाता है, न समाज, न हीं आपका पद, सम्मान और न ही आपका परिवार। हम जाते हैं अकेले और नितान्त अकेले इस संसार से।

हर मनुष्य अपने कर्म और पिछले जन्म के प्रारब्ध को लेकर जीता है और अपना कर्तव्य पूरा करके संसार से चला जाता है। इस संसार में मनुष्य अकेला है और जीवन भर अकेला ही रहता है। वह दूसरों में सहारा खोज़ता है, अपनापन खोजता है और होता है आश्रित। जब सब टूटता है झटके से तब वह नितान्त अकेला पाता है अपने आपको। तब उसे एकमात्र उस परम सत्ता की, उस परब्रह्म परमेश्वर की याद आती है। वह ऊपर नीले आकाश की ओर देख कर उस निराकार को खोजने लगता है। बस वही एकमात्र सहारा नजर आता है। सारा जगत, सारी भीड़ में एकमात्र ईश्वर ही उसे दिखता है। बस उसी में लीन होना चाहता है और परम शान्ति खोजता है। उस परम शान्ति को उपलब्ध होता है परमेश्वर में लीन होकर। यही परम वैराग्य है, यही है सत्य और है परम सत्य.....।

इस जगत में मैंने केवल कृष्ण को ही अपना आदर्श माना। जब दुखी होता या आघात लगता बस परब्रह्म परमेश्वर कृष्ण को याद करता। जब उन्हे स्मरण करता और सोचता- अरे! मुझसे बड़े दुखी स्वयं कृष्ण थे। उनसे बड़ा दुखी संसार में न कोई

पैदा हुआ और न हुआ होगा। उनके मान-अपमान और दुख सहने की शक्ति को जब भी मैं स्मरण करता तब मेरा दुख, आघात नगण्य लगने लगता। उनके आदर्श वचन को जब करता स्मरण तो एक नयी ऊर्जा पैदा हो जाती स्वतः ही।

बड़ी इच्छा रही कृष्ण रहस्य नामक पुस्तक लिखने की। थोड़ा बहुत लिख चुका हूँ उसे भी पूर्ण कर दूंगा अगर समय मिला तो। खैर,

आपको एक कथा सुनाता हूँ। निस्तब्ध वातावरण, पूर्णिमा का चांद अपनी रूपहली छटा बिखेरे हुए था। उस शान्त और मनोरम वातावरण में मुरली की धुन वातावरण को और भी मोहित कर रही थी। चारो तरफ हरियाली, पहाड़ों, नदियों के बीच बहती वह स्वरलहरी सभी को मंत्र मुग्ध कर रही थी। पशु-पक्षी, मानव सभी उस धुन से सम्मोहित होकर आनन्द मग्न हो रहे थे। कदम्ब के घने वृक्ष के नीचे भगवान कृष्ण निर्विकार मुद्रा में मुरली बजा रहे थे। कितना समय हो गया शायद उन्हे पता नहीं लेकिन रूक्मिणी अपने शयन कक्ष में लेटी विचारमग्न थी। जब रूक्मिणी से रहा नहीं गया तो वह भारी कदमों से भगवन् के पास पहुंची और कुछ पल शान्त रहीं लेकिन भगवन् की नजर जब रूक्मिणी से मिली तब वो मुस्कुरा दिये और बांसुरी की स्वरलहरी को मिल गया विराम। भगवन् बोले- रूक्मिणी तुम अभी तक जाग क्यों रही हो? रूक्मिणी बोली- भगवन् आप भी तो अभी तक जाग रहे हैं तो मैं कैसे सो सकती हूँ। क्या बात है इतनी रात में किस चिन्ता में हैं आप। जब कभी आप चिन्तित होते हैं बस आप और आपकी मुरली ही रहती है।

क्या कारण है? भगवन् कुछ तो बोलें.....लेकिन भगवान कृष्ण रूक्मिणी की ओर देखकर मुस्कुरा भर दिये कुछ बोले नहीं। लगता है दुर्योधन ने जो आपका अपमान कर दिया है शायद.....। आप तो परमेश्वर हैं चाहते तो एक क्षण में सब कुछ नष्ट कर देते। लेकिन आप इतना घोर अपमान सहकर भी निरपेक्ष भाव से यहां मुरली की तान छेड़ रहे हैं। क्या रहस्य है भगवन कुछ तो बोले रूक्मणि एक श्वांस में सब कुछ बोल गयी। कृष्ण खड़े हो गये और रूक्मिणी से बोले - रूक्मिणी तुम्हे भ्रम हो रहा है। मुझे न तो मान स्पर्श करता और न अपमान। मैं निरपेक्ष हूँ, तटस्थ हूँ और हूँ साक्षी। मैं साक्षी भाव में रहता हूँ। मैं सब में हूँ और सब मुझमें हैं फिर भी मैं निरपेक्ष हूँ तब कैसा मान-अपमान। मान-अपमान, दुख-सुख, उसे स्पर्श करता है जो लिफ्त रहता है संसार से, मोह से और माया से। इतना कहकर भगवान शान्त हो गये और निर्विकार भाव से शून्य आकाश की ओर देखने लगे। चांद के आलौकिक प्रकाश से उनका चेहरा और भी मनोरम शान्त दिखने लगा।

आपने कृष्ण के भाव और शब्दों पर ध्यान दिया। उन्होने कहा है मैं निरपेक्ष हूँ और हूँ तटस्थ। फिर कहा कि मैं साक्षी भाव में रहता हूँ। साक्षी का तात्पर्य है कि सारी घटना घट रही है, सारे लोग विषाद में पड़े हैं और हैं दुखी लेकिन कृष्ण सभी के दुख-सुख और विषाद को और उनके कर्म को तटस्थ भाव से देख रहे हैं। कोई भाव उन्हे स्पर्श नहीं कर रहा है। कृष्ण कहते हैं कि मैं परब्रह्म परमेश्वर हूँ, मैं चराचर जगत और जड़ चेतन में व्याप्त हूँ। इतने महान शब्द केवल एकमात्र कृष्ण ही बोले। आज तक किसी ने भी इस शब्द को नहीं बोला। कृष्ण कहते हैं कि जो मुझे आत्मसात करता है मैं भी उसे आत्मसात कर लेता हूँ। जो मेरे वचन को मानता है, मेरे उपदेश को आत्मसात करता है और होता है पूर्ण समर्पित। मैं उसका हूँ और हर पल उनके साथ हूँ। कृष्ण की हर लीला रहस्यमय थी। उनके हर कार्य और कर्म को लीला कहा गया है। लीला का अर्थ है जैसे रंगमंच पर एक कलाकार अपने पात्र को जीता है उसी में हँसता है, रोता है, और भाव प्रगट करता है वही लीला है। कृष्ण को जानना है तो उनके चरित्र पर गहन अध्ययन करना होगा। उन्होने संसार के लिए केवल तीन शब्द का प्रयोग किया। तटस्थ, निरपेक्ष और साक्षी भाव। संसार में जो भी दुख है जो इन तीनों को छोड़ देता है वही दुखी है, वहीं अपमानित है उसे अपने मान-अपमान, दुख-सुख से डर लगेगा।

कृष्ण कहते हैं मैं सब जगह व्याप्त हूँ। आप भी उस परमेश्वर के अंश हैं तो आप क्यों अछूते महसूस करते हैं। जिस दिन आप भगवान कृष्ण के तीनों वचनों के रहस्य को जान जायेंगे और कर लेंगे आत्मसात तब दुख कैसा, मान-अपमान कैसा, आप उस परम शान्ति को हो जायेंगे उपलब्ध। आपको जंगल में नहीं जाना होगा, अपने परिवार, समाज के बीच रहकर भी निरपेक्ष हो जायेंगे आप और हो जायेंगे कृष्णमय। आप नरो में उत्तम हो जायेंगे। कृष्ण का एक नाम और भी है वह नरोत्तम। इन तीनों वचनों को जिस दिन बन्धु आप आत्मसात कर लेंगे उसी पल, उसी क्षण आप भी नरोत्तम हो जायेंगे और कृष्ण से कर लेंगे आत्मसात। सारा जगत आपको शान्त दिखेगा। उस पर्वत की तरह शान्त, स्थिर, झरने की तरह शान्त प्रवाह, उस घाटी की तरह निस्तब्ध। एक दिन आप उस परम शान्ति को उपलब्ध हो जायेंगे।

मैंने अपने जीवन में भगवान कृष्ण के इन तीन वचनों को आत्मसात किया। जिसका फल यह मिला है कि मैं लोगों के प्रति निरपेक्ष रहता हूँ, कर्म के प्रति तटस्थ और अपने प्रति रहता हूँ साक्षी भाव। न मुझे दुख-सुख स्पर्श करता और न करता है मान-अपमान। आज मैं उस असीम अलौकिक आत्म शान्ति को हूँ उपलब्ध। यही

है आत्म तत्व की प्रथम उपलब्धि। मेरा जीवन एक परम शान्ति का प्रवाह है जो निरन्तर बहता जा रहा है और एक दिन उस परब्रह्म परमेश्वररूपी समुद्र में हो जायेगा विलीन। बस आप इन तीनों वचनों का पालन करें और करें आत्मसात तो बन्धू सब कुछ बदल जायेगा आपके जीवन में। आमूलचूल परिवर्तन होने लगेगा स्वयं आप में। मेरी सारी पुस्तकें और जो पुस्तक अभी आपके सामने है उन सभी का बस यही सार तत्व है।

***

और अब अन्त में

परलोक के खुलते रहस्य में मैंने आत्मा सम्बन्धित विषयों पर भारतीय और पाश्चात्य शोधों का प्रमाण लेते हुए एवं अपने सत्तर साल के अनुभवों का भी सहारा लेते हुए पूर्ण करने की कोशिश की है। लेकिन किसी भी अनुभव का और किसी भी शोध का अन्त नहीं है। जब तक जगत है और है ब्रह्माण्ड शोध चलता रहेगा और मेरे जैसा कोई मनस्वी फिर अरूण कुमार शर्मा बनकर अभौतिक जगत की खोज में अपना जीवन समर्पित कर देगा।

मेरा सारा जीवन उस रहस्य को जानने और उसे आत्मसात करने में लगा लेकिन उस रहस्य की जितनी भी गहरायी में जाता वह और भी अन्तहीन आकाश की तरह दिखने लगता। धीरे-धीरे मेरा जीवन संसार समाज परिवार में सिमटकर मेरे साधना और शोध में रह गया। मैं धीरे-धीरे समाज से, परिवार से तथा सभी चीजों से निरपेक्ष हो गया। जिस तरह मैं संसार से कट गया उसी तरह संसार भी मुझसे कट गया। मुझे अच्छा लगा। यह संसार चल रहा है और चलता रहेगा। मैं रहूं या न रहूं।

लेकिन मुझे जो आत्म उपलब्धि और अनुभव हुए वही एकमात्र मेरी सम्पत्ति है और जन्म-जन्मान्तर तक रहेगी। इसे मुझसे कोई अलग नहीं कर सकता है। आज मैं इस भौतिक शरीर और भौतिक जीवन के आखिरी पड़ाव पर हूँ जहां से यह संसार छूट जायेगा। खैर, त्रैलोक्य मीमांसा और उस दिव्य आत्मा का सहयोग मेरे जीवन में अतुलनीय है। बहुत सारे प्राकृतिक रहस्यों को खोलने की इच्छा है लेकिन मैं उसे संसार के सामने उजागार नहीं कर सकता। यहीं पर मेरे कलम की गति थम गयी है। चूंकि स्थानाभाव के कारण कुछ अंश साधना तत्व नामक शीर्षक में 'कुण्डिलिनी योग' में प्रसंग वश लिख चुका हूँ आप अवश्य पढ़े।

प्रसंगवश प्रतिमा पूजा पर जो कुछ लिखा वह आध्यात्मिक रूप से सत्य परमेश्वर का सम्बन्ध भावराज्य से बना रहता है। आप प्रतिमा के सामने जो भी अर्पण करते हैं माला फूल मीठा आदि अगर उसमें भाव नहीं है तो वह व्यर्थ है। आपके भाव के

अनुसार ही पूजा साधना-आराधना सफल होती है। अगर भाव नहीं है तो सारी साधना पूजा करना व्यर्थ है। ईश्वर आपके द्वारा चढ़ाया गया नैवेद्य ग्रहण करने थोड़े ही आते हैं वह तो आपके भाव को देखता है और देखता है समर्पण।

कभी-कभी लोग मुझसे प्रश्न कर बैठते हैं उस मन्दिर में चोरी हो गयी। मुगलकाल में फला मन्दिर को तोड़ दिया गया भगवान कुछ नहीं किये। सुन कर हँसी आती है। इस ब्रह्माण्ड में परमेश्वर की शक्ति अथवा ऊर्जा दो प्रकार से काम करती है। ऐक्टिव (सक्रिय) और पैसिव (निरपेक्ष अथवा शान्त)। सक्रिय ऊर्जा से जगत और ब्रह्माण्ड का विस्तार और प्रलय है। सौम्य निरपेक्ष ऊर्जा वह है जो साधक के उपासना, साधना के निमित्त प्रतिमा है हम उस प्रतिमा या मूर्ति की पूजा नहीं करते। उस प्रतिमा अथवा मूर्ति में स्थित उस दैवी शक्ति की आराधना करते हैं और उस भाव से करते हैं जो अदृश्य चेतन तत्व है।

जहां तक चोरी और मंदिर ध्वस्त होने का प्रश्न है। मंदिर में स्थापित देवी-देवता निरपेक्ष हैं। उन्हे मंदिर से कुछ लेना-देना नहीं वह तो केवल भक्तों के भाव और समर्पण को देखते हैं और करते हैं मनोकामना पूर्ण। इतिहास में आक्रमणकारियों से जो मंदिर ध्वस्थ हुआ या चोरी करने वाले को जो सजा मिलती है। इसका कारण भी बड़ा ही रहस्यमय है। शक्ति निरपेक्ष है भौतिक घटनाओं से अपने को अलग रखती है। परन्तु उस मंदिर के उपासक साधक जब भौतिक शरीर छोड़कर सूक्ष्म शरीर में रहते हैं और करते हैं साधना तब यदि किसी प्रकार का व्यभिचार और आक्रमण आदि होता है तो उन्हे सहन नहीं होता। वे प्राकृतिक तत्व का सहारा लेकर उक्त लोगों को सजा देते हैं। जो दैवी चमत्कार के अन्तर्गत देखने को मिलता है। हमारे देश में आज भी कितने उदाहरण सुनने को मिलते हैं।

वाराणसी की एक ज्वलन्त घटना है। जब औरंगजेब काशी आया तो यहां पर भी उसने मंदिरों को ध्वस्त किया। जब जंगमबाड़ी में स्थित जंगम बाबा के मंदिर को तोड़ने के लिए सैनिकों के साथ औरंगजेब भी था। जंगम मठ में बड़ा ही भव्य शिव मंदिर लिंग सम्प्रदाय का है काफी प्राचीन भी है। औरंगजेब ने तीन बार तोड़ने की कोशिश की लेकिन असफल रहा। इसका कारण क्या था कोई नहीं जानता था। लेकिन जब भी उसके सैनिक मंदिर तोड़ने के लिए आते न जाने कहां से लाखों की संख्या में मधुमक्खियां आ जाती। उसके सैनिक कोशिश करके हार चुके थे। अन्त में औरंगजेब को हार माननी ही पड़ी और क्षमा मांग कर वापस चला गया। इसके बाद उसने भारत में कहीं भी मंदिर तोड़वाने का प्रयास नहीं किया।

इसी प्रकार एक घटना ज्वालाजी मंदिर की है। अकबर ने काफी प्रयास किया की ज्वालाजी की ज्वाला यानि अग्नि बुझ जाये लेकिन सफलता नहीं मिली। एक बार ब्रिटिश शासन में भी प्रयास किया था अंग्रेजों ने। फिर अकबर ने क्षमा मांग कर सवा मन चांदी का छत्र चढ़वाया। लेकिन मंदिर में लगते ही वह काला पड़ गया आज भी वह छत्र लगा है। इसी प्रकार काशी में बंगाली टोला के पास माँ दुर्गा की प्रतिमा १३० साल पुरानी यथावत् है। जब भी लोग नवरात्र के समापन के दिन उसे उठाते हैं वह प्रतिमा उठती ही नहीं है अपनी जगह से। यह सब रहस्य नहीं है तो और क्या है। ऐसे अनेक रहस्य भारतवर्ष के अन्य मन्दिरों से जुड़े हैं। बहुत सारी किवदन्तियां भी सुनने को मिलती है।

मेरे कहने का उद्देश्य यह है कि ईश्वर भाव, श्रद्धा और विश्वास इन तीनों रूपों में आपके अन्दर व्याप्त है। ईश्वर की कभी भी परीक्षा नहीं लेनी चाहिए। न तो चमत्कार की आशा करनी चाहिए। बस पूर्ण समर्पित भाव से आराधना-उपासना करना ही मानव धर्म है। स्वार्थवश ईश्वर से भौतिक वस्तुओं की याचना नहीं करनी चाहिए। माँ जगज्जननी कहती हैं जो साधक, भक्त मेरे प्रति समर्पित भाव से मेरी आराधना करता है उसे वो सारी भौतिक-अभौतिक और आध्यात्मिक तीनों चीजें स्वतः ही प्राप्त हो जाती है। **'इच्छा मंत्रेण संथिता'** यानि इच्छा जाग्रत होते ही मेरी कृपा से उसे स्वतः ही प्राप्त हो जाता है। निरपेक्ष और पूर्ण समर्पण ही साधना की कुंजी है। यही सत्य है और है परम सत्य।

इस पुस्तक में जिस जीवन और जगत की चमत्कारपूर्ण और हतप्रभ कर देने वाले अनुभवपूर्ण घटनाओं का वर्णन किया गया है। वह आत्मपरक जगत से है सम्बन्धित। जिसे आप पारलौकिक जगत कहते हैं इस ब्रह्माण्ड में केवल तीन ही मुख्य जगत हैं। आत्म जगत, मनोमय जगत और पदार्थ जगत। तीनों का अपना-अपना विज्ञान है। आत्म जगत, अध्यात्म विज्ञान है। मनोमय जगत का सम्बन्ध परामनोविज्ञान और विज्ञान से है। विज्ञान जो खोज करता है और सफल होता है उसका सम्बन्ध मनोमय जगत से है। परामनोविज्ञान के रहस्य को भी यही समझना चाहिए। पदार्थ जगत का सम्बन्ध भौतिक विज्ञान से है। किसी साधना का सम्बन्ध मन और आत्मा की साधना से है। साधक जब साधना की उच्चावस्था को होता है उपलब्ध वह है आत्म जगत। साधना के पूर्व जो संसार है वह है वस्तुपरक जगत। वस्तुपरक जगत की तमाम घटनाओं का प्रमाण दिया जा सकता है लेकिन आत्मपरम जगत के अनुभवों और घटनाओं का प्रमाण नहीं दिया जा सकता।

मेरे अनुभव, भावों और विचारों के जगत से आप सहभागी नहीं हो सकते। बस आप इतना समझ सकते है। कि यह वही स्थान है जहां से मनोमय जगत और आत्मपरक जगत शुरू होता है और शुरू होता है चमत्कारपूर्ण घटनाओं का सिलसिला भी। जहां भौतिक जगत के तमाम नियम व सिद्धान्त समाप्त हो जाते हैं। यही कारण कि संसार से दूरी बनी ली मैंने और अपने आप में स्थित कर लिया। बस यही इच्छा रही कि जगत में आया हूँ तो यह शरीर भी जगत का है। जो भी लोग इस जगत में आते हैं चाहे वह ईश्वर का अवतार हो या महान आत्माओं का आविर्भाव, सबका यही परम कर्तव्य रहा और रहेगा कि जगत को कुछ देकर जायें। चूंकि पृथ्वी कर्म भूमि है, ज्ञान भूमि है और है साधना भूमि। बस यही मैंने भी सोचा। ईश्वर ने भौतिक शरीर दिया इसका भी कोई रहस्य होगा। बस फिर क्या था। संसार को कुछ देने के लिए केवल मेरे पास अनुभव और ज्ञान था। बस कलम उठा लिया और अपनी कष्ट पूर्ण यात्रा, चमत्कारिक अनुभव का ज्ञान पुस्तक के रूप में जगत को दे दिया। मेरे अनुभव और ज्ञान से आप में परिवर्तन हो आप भी कुछ करना चाहते हैं इस जगत के लिए, संसार के लिए, समाज के लिए या मानवता के लिए तभी मैं समझूंगा कि मेरी लेखनी सफल हुई।

कुछ पुस्तकें मैं पूर्ण कर चुका हूँ। समय के साथ आपके सामने होगी। खैर, आज होली है पुस्तक यहीं समाप्त कर रहा हूँ। जीवन के सत्तर साल लग गये अब जो जीवन बचा था। माँ को समर्पित कर चुका हूँ। पिछले कई वर्षों से काशी के बाहर नहीं गया। बस एकान्तवास और संसार के प्रति जो कर्तव्य था लेखन के रूप में पूरा कर चुका हूँ। जब तक मेरी सारी पुस्तकें प्रकाशित नहीं हो जाती तब तक मैं सूक्ष्म जगत में निवास करूंगा। रही भौतिक शरीर की बात मेरे लिए सूक्ष्म शरीर और भौतिक शरीर समान है। जैसा अनुभव मैं भौतिक शरीर में करता हूँ उससे ज्यादा अनुभव सूक्ष्म शरीर में करता हूँ। भौतिक शरीर की अपनी एक सीमा है और यह शरीर भी अब जीर्ण शीर्ण होता जा रहा है। भौतिक शरीर में काल का बन्धन है। लेकिन सूक्ष्म शरीर में काल का कोई बन्धन नहीं है। सूक्ष्म शरीर द्वारा संसार के किसी भी कोने में जा सकता हूँ। लेकिन भौतिक शरीर से नहीं......।

बस एक बात का दुख है जब मैं इस संसार से विदा ले चुका होऊंगा बस एक ही आत्मा को अपार कष्ट होगा वह मेरा पुत्र मनोज। जो कि बचपन से मेरे साथ रहा और सहभागी भी रहा मेरे सुख और दुख का। जहां तक पुस्तक पूर्ण करने का प्रश्न है जब तक मैं था मुझसे अपनी शंका को दूर कर लेता था। पुस्तक से सम्बन्धित कोई

भी विषय हो पूछ लेता था। लेकिन जब मैं नहीं रहूंगा तब वह किससे पूछेगा। चूंकि मेरी लेखनी के एक शब्द मेरे खुद के अनुभव हैं। उसे पूर्ण करने के लिए उस अनुभव से गुजरना पड़ेगा। यह सम्भव नहीं है। लेकिन मुझे प्रसन्नता है मेरे पुत्र के शरीर में मेरा ही रक्त प्रवाह कर रहा है। रक्त प्राण ऊर्जा का प्रतीक है। रक्त में अपार प्राण ऊर्जा होती है। जब कभी मेरी जरूरत पड़ेगी मैं विचार के माध्यम से उसकी सहायता करता रहूंगा और समय-समय पर मेरी पुस्तके संसार में आती रहेंगी।

आज होली का दिन है। हिन्दू धर्म के अनुसार नया सम्वत् यानि नया साल शुरू हो गया। बस आज से मेरी लेखनी बन्द हो गयी। अब मैं आराम करना चाहता हूँ। वह भी जगज्जननी माँ के अंक में। क्योंकि मुझे अपना अगला पड़ाव दिख रहा है। जब यह पुस्तक आपके सामने होगी बन्धू तब शायद यह जगत से विदा ले चुका होऊंगा। क्योंकि मन अब ऊब गया है शरीर भी साथ नहीं दे रहा है। मेरा कर्तव्य पूरा हो चुका है संसार और समाज के प्रति।

लेकिन मैं सदा रहूंगा इस संसार में अपने लेखनी के माध्यम से और आपके साथ भी अपने भावों और विचारों के माध्यम से। जब भी आप अनुभव करेंगे, याद करेंगे मेरी उपस्थिति का आभास स्वतः आपको हो जायेगा। यही सत्य है और है परम सत्य। इस सत्य से सभी को एक न एक दिन गुजरना पड़ेगा। यही काल चक्र है जो आता है उसे एक न एक दिन जाना है संसार को छोड़ कर। इस परम सत्य को जो साध लिया वही साधक है, योगी है और महात्मा। बस यहीं अपनी लेखनी को विराम दे रहा हूँ। सर्वे भवन्तु सुखिना! सर्वे सन्तु निरामयाः!

***

गुरुजी की अगली पुस्तक पढ़ें

तंत्रम्

शीघ्र प्रकाशित

गुरुजी की स्वानुभूत अपने आप में अति विशिष्ट और अनुभव पूर्ण साधक सत्संग और योग-तंत्र पर आधारित पुस्तकें

पं. अरूण कुमार एक ऐसे चिन्तक व्यक्ति का नाम है जिनकी लेखनी पिछले पचास वर्षों से अनवरत गतिशील है।

पं. अरूण कुमार शर्मा एक ऐसे चिन्तक और विचारक का नाम है जिन्होने अपने गहन गम्भीर चिन्तन, मनन द्वारा भारतीय गुह्य विद्याओं और उनके आध्यात्मिक तत्वों के अन्तराल में प्रवेश कर उनके विषय में अपने मौलिक विचारों को व्यक्त किया है।

पं. अरूण कुमार शर्मा एक ऐसे सत्यान्वेषी व्यक्ति का नाम है जिन्हे योग-तंत्र में निहित रहस्यमय सत्यों से परिचित होने के लिए प्रच्छन्न-अप्रच्छन्न भाव से विचरण और निवास करने वाले सिद्ध, सन्त महात्माओं और योगी साधकों की खोज में सम्पूर्ण भारत ही नहीं बल्कि हिमालय और तिब्बत के दुर्गम स्थानों की जीवन मरणदायिनी हिमयात्रा की है।

पं अरूण कुमार शर्मा एक ऐसे साहित्यकार का नाम है जिन्होने अपनी सशक्त आध्यात्मिक और दार्शनिक कृतियों से सम्बन्धित समकालीन को सैकड़ों मील पीछे छोड़ दिया है। विलक्षण प्राञ्जल भाषा, मनोहारी शिल्प, आत्मग्राही सज्जा और आकर्षक प्रस्तुतिकरण उनकी कृतियों की विशेषता है।

हजारों पंक्तियों के बीच उनकी पंक्ति को पहचान लेना प्रत्येक वर्ग के पाठकों के लिए सरल और सहज है और यही वह तथ्य है जो अरूण कुमार शर्मा को अरूण कुमार शर्मा बनाता है।

1) **मारण पात्र**- (पृष्ठ संख्याः 571-मूल्यः 400 सजिल्द)

प्रच्छन्न और अप्रच्छन्न भाव से विचरण करने वाले उच्चकोटि के योगी, सन्त महात्माओं के साक्षात्कार से उपलब्ध योग-तंत्र सम्बन्धित अमूल्य आध्यात्मिक विवरण, जिसने अपने प्रथम संस्करण में ही देश-विदेश में एक विशेष आध्यात्मिक क्रान्ति का दीप प्रज्जवलित कर दिया।

2) **तीसरा नेत्र (प्रथम)**- (पृष्ठ संख्याः 350-मूल्यः 250 सजिल्द)

3) **तीसरा नेत्र (द्वितीय)**- (पृष्ठ संख्याः 400-मूल्यः 300 सजिल्द)

हिमालय और तिब्बत के दुर्गम स्थानों में निवास करने वाले गुप्त साधकों से साक्षात्कार और उनसे प्राप्त आध्यात्मिक उपलब्धियों से सम्बन्धित विषय।

4) **मरणोत्तर जीवन का रहस्य**- (पृष्ठ संख्याः 383-मूल्यः 250 सजिल्द)

जन्म-मृत्यु एवं पुनर्जन्म पर आधारित लेखक की एक मौलिक कृति जो जीवन के वास्तविक स्वरूप का स्वानुभव पर आधारित अविस्मरणीय विवरण है।

5) **अभौतिक सत्ता में प्रवेश**- (पृष्ठ संख्याः 296-मूल्यः 200 सजिल्द)

समाधि की अवस्था में एक दिव्य पुरूष के सहयोग से अभौतिक सत्ता में निवास करने वाले महान आत्माओं से साक्षात्कार और उनसे प्राप्त आध्यात्मिक विवरण का अद्भुत और अविस्मरणीय संग्रह।

6) **कारण पात्र**- (पृष्ठ संख्याः 262-मूल्यः 200 सजिल्द)

गुप्त रूप से निवास करने वाले योगी और साधकों के साक्षात्कार से प्राप्त आध्यात्मिक विषयों का अविस्मरणीय संग्रह।

7) **आकाशचारिणी**- (पृष्ठ संख्याः 278-मूल्यः 180 सजिल्द)

प्रस्तुत कथा संग्रह 'आकाशचारिणी' के अन्तर्गत सत्रह कथाओं का संग्रह है। ये अपने आप में विशिष्ट तो है ही, रहस्य रोमांच से भरपूर और सनसनीखोज भी है। यद्यपि ये अविश्वसनीय लगेगी किन्तु इनमें अतिश्योक्ति नहीं है।

8) **वह रहस्यमय संन्यासी**- (पृष्ठ संख्याः 332-मूल्यः 250 सजिल्द)

स्वामी अखिलेश्वरानन्द जो अपने आप में एक रहस्यमय संन्यासी थे। अपने तीन जन्मों के अविश्वसनीय कथा प्रसंग के अन्तर्गत जिन योग-तंत्र परक विषयों को व्यक्त किया, अपने अनुभव के आधार पर वह निश्चय ही अपने आप महत्वपूर्ण प्रसंग है। स्वामीजी की जो अपनी कथा है योग और तंत्र की अमूल्य निधि है।

9) **रहस्य**- (पृष्ठ संख्याः 452-मूल्यः 300 सजिल्द)

रहस्य शीर्षक में रहस्यमय कथाओं का अमूल्य संग्रह है।

10) **आवाहन**- (पृष्ठ संख्याः 462-मूल्यः 300 सजिल्द)

आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक खोजों पर तथा योग-तंत्र पर आधारित कृति।

11) **योग तांत्रिक साधना प्रसंग**- (पृष्ठ संख्याः 332-मूल्यः 250 सजिल्द)

तंत्र के ऐतिहासिक, आध्यात्मिक, क्रियाओं और व्यवहारिक पक्ष का समन्वय पर आधारित एवं तंत्र के साधना स्वरूप का मनोवैज्ञानिक और परामनोवैज्ञानिक विवेचन।

12) **परलोक के खुलते रहस्य**- (पृष्ठ संख्याः 330-मूल्यः 300 सजिल्द)

मृत्योपरान्त जीवन के रहस्य पर आधारित लेखक की स्वानुभूत एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से एक अद्भुत मौलिक कृति।

13) **वह रहस्यमय कापालिक मठ**- (पृष्ठ संख्याः 203-मूल्यः 180 सजिल्द) रहस्यमय तंत्र-मंत्र पर आधारित कथा प्रसंग।

14) **मृतात्माओं से सम्पर्क**- (पृष्ठ संख्याः 218-मूल्यः 200 सजिल्द) रहस्यमय तंत्र-मंत्र पर आधारित कथा प्रसंग।

15) **तिब्बत की वह रहस्यमय घाटी**-(पृष्ठ संख्याः 200-मूल्यः180सजिल्द) रहस्यमय तंत्र-मंत्र पर आधारित कथा प्रसंग।

16) **वक्रेश्वर की भैरवी**- (पृष्ठ संख्याः 204-मूल्यः 180 सजिल्द) रहस्यमय तंत्र-मंत्र पर आधारित कथा प्रसंग।

17) **कुण्डलिनी शक्ति**- (पृष्ठ संख्याः 592-मूल्यः 300 पेपर बैक) कुण्डलिनी शक्ति एवं योग पर आधारित अपने आप में एक अमूल्य कृति।

18) **परलोक विज्ञान**- (पृष्ठ संख्याः 374-मूल्यः 300 पेपर बैक) परामनोविज्ञान, विज्ञान, जन्म-मृत्यु, पुनर्जन्म पर आधारित एक मौलिक कृति।

शीघ्र प्रकाशित

19) **तंत्रम्**- तंत्र और योग पर आधारित एक मौलिक कृति।

20) **कुण्डलिनी योग**- कुण्डलिनी साधना प्रसंग जिसमें कुण्डलिनी जागरण के विषय में व साधकों के अनुभव तथा क्रियापक्ष का अमूल्य संग्रह।

21) **कालपात्र**- नक्षत्र एवं ज्योतिष विषय का एक अमूल्य संग्रह।

22) **कालञ्जयी**- भगवान शिव के विराट स्वरूप का अद्भुत प्रसंग तथा सिद्ध योगियों के चमत्कारपूर्ण कथा प्रसंग।

23) **साधना प्रसंग**-योग-तंत्र-मंत्र पर साधना सम्बन्धित प्रसंग।

24) **कृष्णम्**- भगवान कृष्ण पर आधारित उनके अछूते प्रसंग की एक आध्यात्मिक कृति।

***
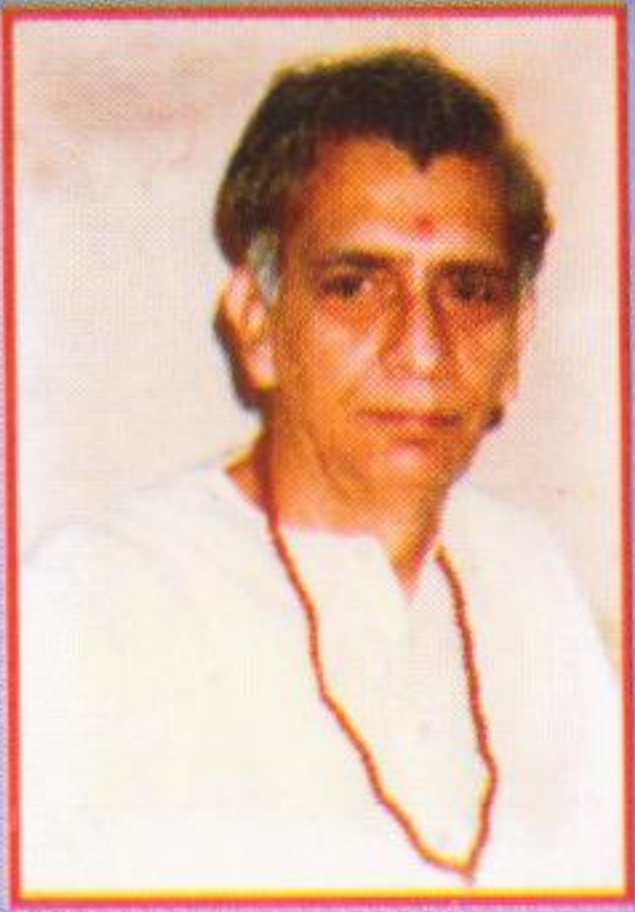
पं. अरुण कुमार शर्मा
की
अन्य मौलिक कृतियाँ

मारण पात्र
तीसरा नेत्र (दो भागों में)
मरणोत्तर जीवन का रहस्य
कारणपात्र
अभौतिक सत्ता में प्रवेश
वह रहस्यमय संन्यासी
आकाशचारिणी
रहस्य
आवाहन
योग तांत्रिक साधना प्रसंग
परलोक के खुलते रहस्य
परलोक विज्ञान
कुण्डलिनी शक्ति
वक्रेश्वर की भैरवी
वह रहस्यमय कापालिक मठ
तिब्बत की वह रहस्यमयी घाटी
मृतात्माओं से सम्पर्क

आस्था प्रकाशन
बी. 5/23 अवधगर्वी हरिश्चन्द्र रोड
वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
दूरभाष : (0542) 3297913, 9336915807
www.arun kumar sharma.com

Rs. 300.00
ISBN : 978-81-906796-8-8
9788190679688